केदारखण्ड पुराण

खण्ड २

स. (डा.) कृष्णकुमार

२

केदारखण्डपुराणम्

(मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत समीक्षा)

सम्पादक:
विद्यामार्तण्ड डा० कृष्णकुमार
आयुर्वेदालङ्कार
(एम० ए० साहित्याचार्य,
पी० एच० डी०, डी० लिट्)



प्राच्य विद्या अकादमी
मिश्रा बाग, कनखल (हरिद्वार)

केदारखण्डपुराणम्

(मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत समीक्षा)

सम्पादक:
डा0 कृष्णकुमार

प्रकाशक:
प्राच्य विद्या अकादमी
मिश्रा बाग, हनुमानगढ़ी
कनखल (हरिद्वार)

पुन: मुद्रित: 2002
मूल्य: रु0 350.00

वितरक
मयंक प्रकाशन
मिश्रा बाग हनुमानगढी,
कनखल

मुद्रक:
मनोजकुमार
278, गोविन्दपुरी,
हरिद्वार 249401



प्राक्कथन

भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, इतिहास और दार्शनिक चिन्तन की दृष्टि से पुराणों का महत्त्व असंदिग्ध, निर्विवाद और सर्वमान्य है। वस्तुतः भारतीयता का मुख्य आधार पुराण ही हैं, जो कि वैदिक साहित्य के अनन्तर सर्वमान्य प्रामाणिक वचनों को प्रस्तुत करते हैं। पुराणों में मानव-जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विशद विवेचन एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक संहितायें आर्य जाति के धर्म और संस्कृति की मूल हैं, तथापि उनकी विशद लोकसम्मत व्याख्या पुराणों में ही है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्राचीन ऋषियों ने पुराणों के रूप में विशाल-व्यापक साहित्य की रचना की थी। सामान्यतः इसमें १८ पुराणों और १८ उपपुराणों की गणना की जाती है। इनका लेखन, संग्रह और सम्पादन सत्यवती पुत्र पाराशर व्यास के नाम से प्रसिद्ध है।

अठारह पुराणों एवं अठारह उपपुराणों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित पुराणों की रचना भी मध्य युग में हुई। इनमें एक पुराण 'केदारखण्ड पुराण' भी है। यह पुराण केदारखण्ड (गढवाल) प्रदेश से सम्बन्धित है। 'केदारखण्ड पुराण' के प्रत्येक अध्याय के अन्तिम भाग के पादलेख[1] से तो यह प्रतीत होता है कि यह 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत है, परन्तु वास्तव में यह उससे भिन्न ही है। 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' का एक उपखण्ड 'केदारखण्ड पुराण' भी है, परन्तु वह 'केदारखण्ड पुराण' प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' से बिलकुल भिन्न है। प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' केदारखण्ड (गढवाल) की सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक और भौगोलिक परम्पराओं को अभिव्यक्त करता है। केदारखण्ड क्षेत्र (गढवाल) से सम्बन्धित होने के कारण यह पुराण गढवालवासियों के लिये तो बहुत अधिक आदरणीय है ही, इस क्षेत्र के धार्मिक महत्त्व के कारण सभी भारतीयों के लिये आदर का पात्र है।

पौराणिक साहित्य में हिमालय देवतात्मा और पृथिवी का मानदण्ड हैं[2]। कालिदास

---

१. इति श्री स्कान्दे केदारखण्डे एकाशीतिसाहस्र्ये केदारमण्डलप्रशंसावर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः।

२. अस्त्युत्तरस्यां दिशि वै गिरीशो हिमवान् महान्।
.... मानदण्ड इव क्षितेः।।
शिवपुराण-पार्वतीखण्ड १.१४

इस कथन की सम्पुष्टि करते हैं[1]। हिन्दुओं के अधिकांश तीर्थ यहां हैं। हिम से आच्छादित और नित्य-सलिला, निर्मल-पवित्र सरिताओं से भरे इस उत्तुङ्ग महान् पर्वत पर सभी प्रकार की धनसम्पत्तियां हैं। यह परम ब्रह्म का, सभी देवताओं का निवास है। हिमालय के पांच खण्ड हैं- नेपाल, कूर्माचल, केदार, जलन्धर और कश्मीर। इनमें केदारखण्ड मध्य हिमालय है तथा गंगा- यमुना की उद्गम भूमि है। इन सरिताओं के नाम-श्रवण, दर्शन, ध्यान और स्नान से त्रिविध संताप नष्ट होते हैं, महान् सुख प्राप्त होता है, कल्याण होता है और परम गति प्राप्त होती है। 'केदारखण्ड पुराण' इस क्षेत्र की सभी विशेषताओं को, महत्ता को प्रकट करता है। अतः यह पुराण सभी भारतीयों के घरों में सरल, सुबोध और सुपाठ्य रूप में होना आवश्यक है।

'केदारखण्ड पुराण' का प्रकाशन बहुत समय पूर्व १९०५ ई० में नन्दप्रयाग से, टिहरी नरेश की प्रेरणा से हुआ था। संस्करण बहुत पुराना हो गया है एवं उपलब्ध पाण्डुलिपियों के अनुसार इसमें संशोधन की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस संस्करण से विषय भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता है। बहुत समय से यह उपलब्ध भी नहीं हैं, किन्तु कहीं कहीं पुस्तकालयों में कोई प्रति दृष्टिगोचर हो जाती है। 'केदारखण्ड पुराण' का एक संस्करण मूल संस्कृत में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से पत्राकार रूप में २० वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में प्रकाशित हुआ था। सामान्य पाठक उसको न तो समझ सकता है और नाहीं विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह भी इस समय उपलब्ध नहीं है। इन दोनों ही संस्करणों में 'केदारखण्ड पुराण' की भूमिका और समीक्षा भी नहीं है, जिससे भक्त सहृदय पाठक इसके विषयों को सरलता से समझ सकें।

इस प्रयास की परम आवश्यकता थी कि 'केदारखण्ड पुराण' का एक विवेचनात्मक संस्करण इस प्रकार से सम्पादित होकर अनुवाद सहित प्रकाशित हो, जिसमें विस्तृत समीक्षात्मक भूमिका हो, विषय को स्पष्ट करने वाली विषय-सूची हो, श्लोकों का सरल-सुबोध भाषा में अनुवाद हो और केदारखण्ड से सम्बन्धित विभिन्न तत्त्वों को स्पष्ट करने वाले लेख हों।

सन् १९८२ ई० में, जबकि मैं गढवाल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर कार्यरत था, 'केदारखण्ड पुराण' के समीक्षात्मक अध्ययन तथा हिन्दी अनुवाद के लिये एक शोध योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली में प्रस्तुत की थी। इसको आयोग ने स्वीकार कर वित्तीय सहायता प्रदान की थी। उस समय मेरे निर्देशन में कार्य करने वाले अनेक शोध छात्रों ने भी इस पुण्य कार्य में उत्साह के साथ अपना योगदान किया। डा० ललिताप्रसाद पाण्डेय ने इसमें काफी समय तक कार्य कर कुछ

१. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

कुमारसम्भव १. १ ॥

अध्यायों का अनुवाद किया ओर कुछ लेख लिखे। इसके अतिरिक्त कु० रश्मि खंडूरी, कु० उषा विष्ट, कु० जयन्ती जुगरान, श्रीमती शैलबाला चमोली और कु० अंजलि उनयाल का भी इस पवित्र कार्य में योगदान रहा। अनेक वर्षों की कठोर तपस्या से तथा शोध छात्र-छात्राओं के सहयोग से इस अध्ययन को पूरा किया गया। इसके लिये केदारखण्ड (गढवाल) के विविध स्थलों की पैदल यात्रायें कर प्रत्यक्ष दर्शन करके शोध कार्य को अन्तिम रूप दिया गया। ये सभी छात्र-छात्रायें वात्सल्य और आशीर्वाद की पात्र हैं। परम प्रभु केदारेश्वर की अनुकम्पा से वे सभी अच्छी स्थिति में है और उन्नति कर रहे हैं।

'केदारखण्ड पुराण' के इस संस्करण को सम्पादित और प्रकाशित करना अति श्रमसाध्य है और महान् धन के व्यय की अपेक्षा भी रखता है। प्राच्य विद्या अकादमी ने 'केदारखण्ड पुराण' के इस संस्करण को प्रकाशित करने का निर्णय लिया था। परन्तु यह संस्था धन के अभाव में इस सम्बन्ध में बहुत समय तक कुछ न कर सकी। अब इसे प्रकाशित करने का साहस इसलिये कर रही है कि भारत सरकार के राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ने इस प्रकाशन के लिये प्रोत्साहन और सहयोग देना स्वीकार कर लिया है। इस पवित्र और पुण्य कार्य के लिये प्राच्य विद्या अकादमी तो राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की कृतज्ञ है ही, भारतीय संस्कृति, केदारखण्ड और गङ्गा-यमुना के प्रति भक्ति रखने वाले सभी जन उसके प्रति अनुगृहीत है।

प्राच्य विद्या अकादमी के सदस्यों और पदाधिकारियों ने भी इस पुराण के प्रकाशन के लिये महान् सहयोग प्रदान किया है। उन सबके प्रति मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। वस्तुतः यह प्रकाशन एक सामूहिक प्रयत्न, सहयोग और सद्भावना का ही परिणाम है। डा० निरूपण विद्यालंकार, श्री बंसीधर पोखरियाल, डा० भारतभूषण विद्यालंकार, डा० महावीर आदि विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनका सहयोग और परामर्श मुझको सदैव प्राप्त होता रहा।

'केदारखण्ड पुराण' का प्रस्तुत संस्करण भारतीय जनों की सेवा में प्रस्तुत है। आशा है कि यह भारतीयता के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखने वाले सभी जनों की आकांक्षा को पूरा करने वाला होगा।

वैशाख- १, २०५० वि० सम्वत्
१३ अप्रैल, १९९३

विनीत
कृष्णकुमार
निदेशक प्राच्य विद्या अकादमी
कनखल (हरिद्वार)

भूमिका

१. पुराणों का महत्त्व और उनकी रचना

भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से पुराणों का बहुत अधिक महत्त्व है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म, राजनीति, दर्शन और सामाजिक संगठन के मूल आधार पुराण हैं। पुराणों में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विस्तृत वर्णन है।

पुराण शब्द का अर्थ है- प्राचीन आख्यान, प्राचीन घटनाओं को बताने वाले ग्रन्थ, जगत् की आदि प्राचीन सृष्टि, उत्पत्ति और विकास के क्रम को बताने वाली पुस्तकें, पुरुष और प्रकृति के स्वरूप का चिन्तन करने वाला साहित्य और प्राचीन भारतीय परम्पराओं को प्रतिपादित करने वाली संहितायें।

पुराणों की रचना कब हुई और किसने की, इस विषय को सप्रमाण प्रस्तुत करना और प्रतिपादित करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य कार्य अवश्य है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार पुराणों की रचना सत्यवती के पुत्र पाराशर व्यास ने की थी। पुराणों की संख्या अठारह कही जाती है और अठारह ही उपपुराण हैं। अन्य भी पुराणों-उपपुराणों के नाम मिलते हैं। इन सभी के रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन बादरायण व्यास कहे गये हैं। इसके साथ ही महर्षि व्यास को 'महाभारत' का रचयिता और वैदिक संहिताओं का सम्पादन करने वाला भी कहा जाता है।

आधुनिक समालोचकों के अनुसार पुराणों की रचना के प्रारम्भ का समय सामान्यतः ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से ईसा की पांचवीं शताब्दी माना गया है। यह समय कुछ पहले का और बाद का भी हो सकता है। पुराणों में अनेक राजवंशों का वर्णन है, जिनके आधार पर भी इनके रचना-काल को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

२. पुराणों का वर्ण्य विषय

पुराणों में सृष्टि की रचना और लोक-व्यवहार से सम्बन्धित सभी विषयों का वर्णन है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार वर्ण्य विषयों के आधार पर पुराण का लक्षण निम्न है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात्, पुराणों में पांच विषयों का वर्णन है-

(१) सर्ग- सृष्टि की उत्पत्ति
(२) प्रतिसर्ग- प्रलय और उसके पश्चात् सृष्टि की पुनः उत्पत्ति
(३) वंश- देवताओं और ऋषियों की वंशावलियां
(४) मन्वन्तर- प्रत्येक मनु का समय और उसकी प्रमुख घटनायें
(५) वंशानुचरित- प्रमुख राजाओं और राजवंशों के विवरण

पुराणों में इतिहास की सामग्री प्रचुर मात्रा में है। अतः अनेक विद्वानों ने पुराणों को विश्व-सृष्टि का इतिहास कहा है।

पुराणों में अन्य भी अनेक विषयों के वर्णन हैं। जैसे – प्रार्थना, उपासना, उपवास, व्रत, तीर्थ, दर्शन, धार्मिक कर्मकाण्ड, विविध प्रकार के तकनीकी विषय, जैसे-ज्योतिष, शरीरशास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या, यन्त्रविज्ञान, पशुविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, व्याकरण, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, आदि। पुराण प्राचीन भौगोलिक ज्ञान का भी विशद चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इससे न केवल भारतवर्ष की ही, अपितु विश्व के और ब्रह्माण्ड के भी भूगोल और खगोल का काफी ज्ञान प्राप्त होता है।

पुराणों का महत्त्व विशेष रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक समझा जाता है। एक प्रकार से ये हिन्दू जाति के मूल धर्म-ग्रन्थ हैं। हिन्दुओं की धार्मिक परम्परायें, कर्मकाण्ड और लोक विश्वास बहुत कुछ पुराणों में प्रतिपादित किये गये हैं। यद्यपि हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का मूल आधार वैदिक और स्मृति साहित्य है, तथापि पुराणों को वेदों के व्याख्या ग्रन्थ मानकर हिन्दू धर्म का मूल कहा गया है। इनको पञ्चम वेद भी कहा जाता है। तो भी पौराणिक मान्यताओं में वैदिक मान्यताओं की अपेक्षा से पर्याप्त अन्तर हो गया है।

पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय और पुनः सृष्टि के विस्तृत विवरण दिये गये हैं। इनमें प्रतिपादित ईश्वरोपासना सरल है। ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी गई है। पुराण देवताओं की भौतिक शक्तियों के स्वरूप को मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनका अपना एक विशिष्ट रूप है। मनुष्यों को अच्छे या बुरे कर्मों के आधार पर एवं भक्ति के आधार पर विविध लोकों की प्राप्ति होती है। पुराणकारों ने ईश्वर की तीन शक्तियों-सृष्टि की उत्पत्ति रक्षा और विनाश के आधार पर तीन महादेवताओं-ब्रह्मा, विष्णु और महेश की कल्पना की, जो कि मूल रूप में एक ही हैं। इनकी भक्ति, उपासना और प्रार्थना कल्याणकारी है। अन्य इन्द्र आदि देवता उस परम

प्रभु की और प्रकृति की महान् शक्तियां हैं। महादेवताओं के और देवताओं के अपने लोक हैं। इस उपासना-प्रार्थना के लिये अनेक कर्मकाण्डों की कल्पना की गई। पृथिवी पर भी देवताओं के विशिष्ट स्थलों की कल्पना हुई। उनको तीर्थ मान कर तीर्थयात्रा का विधान हुआ।

३. पुराणों की अठारह संख्या और उनका संक्षिप्त परिचय

पुराणों के अनुसार मौलिक रूप से पुराण एक ही था[१]। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इनकी रचना के विकास के लिये विचार किया। मौलिक रूप से इसमें एक करोड श्लोक थे। महर्षि व्यास ने इनका सार चार लाख श्लोकों में प्रत्येक द्वापर युग में घोषित किया। पुराणों की कोई प्राचीन परम्परा थी या आरम्भ में एक ही पुराण था या यह कल्पना मात्र है, इन सब तथ्यों को निश्चित रूप से कहना कठिन है। पुराणों की संख्या, जो लोक में प्राप्त हैं, अठारह है-

(१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) वायुपुराण, (५) श्रीमद्भागवतपुराण, (६) नारदपुराण, (७) मार्कण्डेयपुराण, (८) अग्निपुराण, (९) भविष्यपुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (११) लिङ्ग पुराण, (१२) वराह पुराण, (१३) स्कन्दपुराण, (१४) वामन पुराण, (१५) कूर्मपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) गरुडपुराण और (१८) ब्रह्माण्डपुराण।

इन पुराणों का संक्षिप्त परिचय निम्न है-

(१) ब्रह्मपुराण-

ब्रह्मपुराण अष्टादश पुराणों में आदि और प्रथम माना जाता है। इसमें २४५ अध्याय तथा १४००० श्लोक हैं। इसको 'आदि ब्रह्म' पुराण भी कहते हैं।

ब्रह्मपुराण' ब्रह्मविषयक पुराण है। इसमें पुराणसम्मत सभी विषयों का समावेश हुआ है। अन्य देवों का भी इस पुराण में वर्णन है। २१ अध्यायों (३०-५०) में पार्वती विषयक आख्यान हैं। इसमें अनेक प्राचीन तीर्थों-के वर्णन माहात्म्य सहित वर्णित हैं (अध्याय ७०-१७५)। भगवान् कृष्ण का वर्णन है। सूर्य की उपासना है। सांख्य-योग की समीक्षा की गई है। भूगोल का विशेष वर्णन नहीं है।

---

१. मत्स्यपु० ५३.३-११, वायुपुराण १.६०-६१, ब्रह्माण्डपुराण १.१.४०-४१, लिङ्गपुराण १.२.२, नारदपुराण १.९२, पद्मपुराण ५.१.४५-५०

२. धर्मशास्त्र का इतिहास चतुर्थ भाग पृ० ३८१

(२) पद्मपुराण-

'स्कन्दपुराण' के पश्चात् 'पद्मपुराण' आकार में सब पुराणों में विशाल है। यह 'महाभारत' से लगभग आधा और 'श्रीमद्भागवत पुराण' से तीन गुना है। इसमें श्लोकों की संख्या ५५००० है। विष्णु भक्ति का प्रतिपादक यह पुराण अति विशाल है। इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं- बंगाली संस्करण और देवनागरी संस्करण।

देवनागरी संस्करण आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली के अन्तर्गत चार भागों में प्रकाशित हुआ है। 'पद्मपुराण' में पांच खण्ड हैं- (१) सृष्टि खण्ड, (२) भूमि खण्ड, (३) स्वर्ग खण्ड, (४) पाताल खण्ड, और (५) उत्तर खण्ड। इस पुराण के भूमि खण्ड से विदित होता है कि इसमें पहले ये ही पांच खण्ड थे। परन्तु बाद में छः खण्डों की कल्पना भी की गई । 'पद्मपुराण' के बंगाली संस्करण में आज भी पांच खण्ड हैं।

'पद्मपुराण' के सृष्टि खण्ड के ८२ अध्यायों में समुद्रमन्थन, पृथु की उत्पत्ति, पुष्कर तीर्थ के निवासियों का धर्मकथन, वृत्रासुरसंग्राम, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति, रामचरित, तारकवध आदि कथायें हैं। सृष्टि खण्ड पांच पर्वों में विभक्त है- पौष्कर पर्व, तीर्थपर्व, तृतीय पर्व (दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन), चतुर्थ पर्व (राजाओं का वंशानुकीर्तन) और पंचम पर्व (मोक्ष साधन)।

भूमि खण्ड में भी अनेक कथायें हैं। सोमशर्मा नामक ब्राह्मण की पितृभक्ति, राजा पृथु का जन्म और चरित्र, आध्यात्मिक संवाद, विष्णुभक्ति की कथा और च्यवन महर्षि की कथा इसमें है।

स्वर्गखण्ड में विभिन्न देवलोकों का;देवता-भूत-पिशाच-विद्याधर-अप्सरा-यक्ष आदि के लोकों का वर्णन है।

पाताल खण्ड में नागलोक का विशेष रूप से वर्णन है। व्यास द्वारा १८ पुराणों को रचे जाने की कथा भी इसमें है।

उत्तरखण्ड सबसे विशाल है तथा इसमें २८२ अध्याय हैं। इसमें वैष्णव मत से सम्बन्धित विविध आख्यानों, व्रतों, उत्सवों आदि का वर्णन किया गया है।

(३) विष्णु पुराण-

वैष्णव दर्शन का मूल आधार 'विष्णुपुराण' है। इसके खण्डों को अंश कहते हैं। इस पुराण में ६ अंश और १२६ अध्याय हैं। प्रथम अंश में सृष्टि वर्णन, द्वितीय अंश में भूगोल और तृतीय अंश में आश्रम सम्बन्धी कर्तव्यों और वैदिक शाखाओं का निर्देश है। चतुर्थ अंश विशेष रूप से ऐतिहासिक है। यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु,अनु और कुरु इन पांच क्षत्रिय वंशों का भिन्न भिन्न अध्यायों में वर्णन किया गया है। पञ्चम अंश में कृष्ण के अलौकिक चरित का वर्णन है। षष्ठ अंश में प्रलय और भक्ति का वर्णन

है। चार युगों- कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग को दर्शाकर कलियुग के दोषों का वर्णन किया गया है।

(४) वायु पुराण-

'वायु पुराण' को अति प्राचीन माना जाता है। इसमें ११२ अध्याय और मूल रूप से १२००० श्लोक थे। बाद में इसमें अनेक अध्याय और श्लोक जोड़े गये, जो २४००० तक हो गये। इस पुराण में चार खण्ड हैं, जो पाद कहलाते है। ये हैं- प्रक्रियापाद, अनुषङ्गपाद, उपोद्घातपाद और उपसहांरपाद।

'वायुपुराण' भौगोलिक वर्णनों के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता शिव के चरित्र का विस्तृत वर्णन करना है। परन्तु यह साम्प्रदायिकता से दूषित नही है। इस पुराण में कृष्ण के अवतारों का भी वर्णन है और गुप्तवंश का वृत्तान्त दिया गया है।

(५) श्रीमद्‌भागवत पुराण

'श्रीमद्‌भागवत पुराण' में १२ स्कन्ध और १८००० श्लोक हैं। यह पुराणों के पञ्च लक्षणों से समन्वित है तथा महनीय आध्यात्मिक रूप को प्रकट करता है।

'श्रीमद्‌भागवत पुराण' में भूगोल तथा खगोल, वंश और वंशानुचरित का विस्तृत वर्णन है। श्रीकृष्ण को भगवान् का रूप चित्रित करने तथा उनकी ललित लीलाओ का विवरण देने में यह पुराण अद्वितीय है। यह पुराण भगवान् विष्णु की महिमा का प्रतिपादक है। 'भागवत पुराण' के माहात्म्य का विचार कर पंडितों में कहावत प्रसिद्ध हुई "विद्यावतां भागवते परीक्षा"।

(६) नारद पुराण

'नारद पुराण' भगवान् विष्णु की भक्ति का प्रतिपादक है। इस पुराण के दो भाग हैं। प्रथम भाग में १२५ अध्याय हैं और दूसरे भाग में ८२१। सम्पूर्ण पुराण में २५००० श्लोक कहे गये हैं। परन्तु वर्तमान उपलब्ध प्रति में १८१०१ श्लोक मिलने हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'नारद पुराण' का बहुत महत्त्व है। इसमें १८ पुराणों की विस्तृत अनुक्रमणी है। व्याकरण, ज्योतिष, छन्द: आदि शास्त्रों का वर्णन अलग अलग अध्यायों में किया गया है। विष्णु, राम, हनुमान्, कृष्ण, काली, महेश, वेद आदि का इसमें विधिवत् निरूपण है। पूर्व भाग में वर्ण और आश्रम के आधार, श्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि के विधान हैं।

(७) मार्कण्डेय पुराण

'मार्कण्डेय पुराण' आकार में छोटा है। इसमे १३८ अध्याय और ९००० श्लोक

हैं। पर्जिटर ने इस पुराण का अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

प्रसिद्ध 'दुर्गासप्तशती', जो भगवती दुर्गा की स्तुति का स्तोत्र है, 'मार्कण्डेय पुराण' का ही अंश है। इस पुराण में दुर्गा के चरित्र का विस्तृत वर्णन है। प्राचीन समय की प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी महिषी मदालसा का जीवन चरित भी इस पुराण में विस्तार से है। इस पुराण के प्रवक्ता महर्षि मार्कण्डेय होने से इसका नाम 'मार्कण्डेय पुराण' हुआ।

(८) अग्निपुराण

'अग्निपुराण' मूल रूप में 'वह्निपुराण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें ३८३ अध्याय हैं और १५००० से कुछ अधिक श्लोक हैं।

'अग्निपुराण' में 'रामायण' और 'महाभारत' की कथा दी गई है। ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का वर्णन है। छन्दःशास्त्र का निरूपण आठ अध्यायों में है। अलङ्कारशास्त्र, व्याकरण और कोष के विषयों का अनेक अध्यायों में वर्णन है। योगशास्त्र के यम-नियम आदि आठ अंगों के विवरण हैं। अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों के सार का संकलन है। 'श्रीमद्भगवतगीता' का सारांश भी वर्णित है।

(९) भविष्यपुराण

'भविष्यपुराण' में १४५०० श्लोक हैं। इसमें सूर्य-पूजा का विशेष रूप से वर्णन है। विभिन्न राजवंशों का इतिहास भी इस पुराण में है। 'पाराशर स्मृति' की कुछ व्यवस्थाओं का संकेत भी किया गया है।

'नारद पुराण' द्वारा दी गई अनुक्रमणी के अनुसार 'भविष्य पुराण' में पांच पर्व हैं- ब्राह्मपर्व, विष्णुपर्व, शिवपर्व, सूर्यपर्व और प्रतिसर्ग पर्व।

इस पुराण का नाम 'भविष्य पुराण' इसलिये हुआ, क्योंकि भविष्य में होने वाली अनेक घटनाओं को वर्णित किया गया है। इसमें मंगोलों, मुसलमानों आदि के आक्रमण का भी वर्णन है।

(१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' विशाल आकार का पुराण है, जिसके चार खण्ड हैं- ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड और श्रीकृष्णखण्ड। चार खण्डों में इसका प्रकाशन आनन्दाश्रम पूना से हुआ था। इस पुराण में २७६ अध्याय तथा १८००० श्लोक हैं।

ब्रह्मखण्ड में ३० अध्याय हैं, जिनमें कृष्ण द्वारा सृष्टि की रचना का वर्णन है। १६ वें अध्याय में आयुर्वेद का उपदेश है। प्रकृतिखण्ड में भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार प्रकृति अपने को समय-समय पर दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा के रूप में

परिणत करती है। गणेशखण्ड में गणपति के जन्म, कर्म और चरित का वर्णन है। सावित्री और तुलसी की कथा भी विस्तार से दी गई है। श्रीकृष्ण खण्ड में १३३ अध्यायों में कृष्ण और राधा का विशेष वर्णन है।

(११) लिङ्गपुराण

'लिङ्गपुराण' अपेक्षाकृत लघुकाय है। इसमें १६३ अध्याय और ११००० श्लोक हैं। 'लिङ्गपुराण' में लिङ्गोपासना की उत्पत्ति और शङ्कर के अवतारों का विस्तृत वर्णन है। इस पुराण के दो भाग हैं- पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में शिव द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन है ओर वैवस्वत मन्वन्तर से लेकर कृष्ण के समय तक के राजवंश वर्णित हैं। इस भाग में लिङ्गोपासना का भी प्रतिपादन है। उत्तरभाग में पशु तथा पशुपति की व्याख्या की गई है तथा शिव की प्रसिद्ध अष्ट मूर्तियों के वैदिक नामों का उल्लेख है। यह शैव तन्त्रों के अनुकूल है। 'लिङ्गपुराण' में ओङ्कार के रहस्यमय अर्थ पर विशेष बल दिया गया है।

(१२) वराहपुराण

'वराहपुराण' पूर्णरूप से वैष्णव पुराण है। विष्णु ने वराह का रूप रख कर पृथिवी का पाताल से उद्धार किया था। इस कथा से विशेष सम्बन्ध रखने के कारण इस पुराण का नाम 'वराहपुराण' हुआ।

'वराहपुराण' में २१७ अध्याय और २४००० श्लोक हैं। परन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी से जो संस्करण प्रकाशित हुआ है, उसमें १०७०० श्लोक हैं।

'वराहपुराण' में मधुरा-माहात्म्य (अध्याय १५२-१७२) और नचिकेतोपाख्यान (अध्याय १९३-२१२) ये दो अंश अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(१३) स्कन्दपुराण

इस पुराण का आकार सबसे विशाल है। इसके श्लोकों की संख्या ८१००० है। इसके दो संस्करण हैं- खण्डात्मक और संहितात्मक।

संहितात्मक संस्करण में, 'सूतसंहिता' के अनुसार ६ संहितायें हैं- (१) सनत्कुमारसंहिता, (२) सूतसंहिता (३) शङ्करसंहिता, (४) वैष्णवसंहिता, (५) ब्राह्मसंहिता और (६) सौरसंहिता। इन संहिताओं में वर्तमान समय में केवल पहली तीन ही उपलब्ध हैं।

खण्डात्मक संस्करण के अनुसार इसमें ८ खण्ड हैं- (१) माहेश्वरखण्ड, (२) वैष्णवखण्ड, (३) ब्रह्मखण्ड, (४) काशीखण्ड, (५) तापीखण्ड, (६) रेवाखण्ड, (७) अवन्तीखण्ड और (८) प्रभासखण्ड। माहेश्वरखण्ड में दो खण्ड सम्मिलित हैं-

(१) केदारखण्ड और (२) कुमारिकाखण्ड। ब्रह्मखण्ड के भी दो भाग हैं- (१)ब्रह्माख्यखण्ड और (१) ब्रह्मोत्तरखण्ड।

'केदारखण्ड' नाम से एक अन्य पुराण भी उपलब्ध है। इसमें हिमालय के केदारखण्ड (गढवाल) क्षेत्र का वर्णन है। इस 'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता ने इसको 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत ही बताया है। परन्तु उसका यह कथन यथार्थ नहीं है। 'स्कन्दपुराण' का 'केदारखण्ड' अंश और गढवाल से सम्बन्धित 'केदारखण्ड पुराण' सभी दृष्टियों से, विषयगत दृष्टि से भी भिन्न हैं। सम्भवतः गढवाल (केदारखण्ड) से सम्बन्धित 'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता ने अपनी कृति को महनीय प्रतिपादित करने के लिये इसको स्कन्दपुराणान्तर्गत कहा।

भौगोलिक क्षेत्रों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करना 'स्कन्दपुराण' के विविध खण्डों की विशेषता है।

(१४) वामनपुराण

'वामनपुराण' लघुकाय पुराण है। इसमें ९५ अध्याय और १०००० श्लोक हैं। वामनपुराण के दो भाग किये गये हैं- पूर्व तथा उत्तर। इसमें चार संहितायें हैं - माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी। वामनपुराण में विष्णु के वामन से प्रारम्भ करके विभिन्न अवतारों का विशद वर्णन है। इसके साथ ही शिव, शिव का माहात्म्य, शैव तीर्थ, उमा, शिव-विवाह, गणेश की उत्पत्ति, कार्तिकेय का चरित आदि विभिन्न प्रकरणों का इसमें वर्णन है। धर्मशास्त्र के विषयों का भी संक्षिप्त वर्णन 'वामनपुराण' में है।

(१५) कूर्मपुराण-

'कूर्मपुराण' नामकरण इसलिये हुआ, क्योंकि भगवान् विष्णु ने कूर्म का अवतार लेकर इस पुराण का उपदेश राजा इन्द्रद्युम्न को किया था। परन्तु सामान्यतः यह शैव पुराण ही है।

उपलब्ध 'कूर्मपुराण' में दो भाग हैं- पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध । पूर्वार्द्ध में ५३ और उत्तरार्ध में ४६ अध्याय हैं। उपलब्ध कुल श्लोक संख्या केवल ६००० है।

कहा जाता है कि 'कूर्मपुराण' अतिविशाल था और इसमें १८००० श्लोक थे। 'विष्णुपुराण' के अनुसार १७००० तथा 'मत्स्यपुराण' के अनुसार १८००० श्लोक 'कूर्मपुराण' में होने चाहियें। नारद सूची के अनुसार इसमें चार संहितायें थीं- (१) ब्राह्मी (२) भागवती, (३) सौरी और (४) वैष्णवी। परन्तु अब केवल ब्राह्म संहिता उपलब्ध होती है।

'कूर्मपुराण' में शैव और वैष्णव दोनों विषयों का वर्णन होने पर भी शिव की महिमा अधिक है। शाक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित तत्त्व भी हैं। शक्ति की पूजा पर बल

दिया गया है।

(१६) मत्स्यपुराण-

'श्रीमद्भागवत' और 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में 'मत्स्यपुराण' के श्लोकों की संख्या १९००० कही गई है। परन्तु आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित 'मत्स्यपुराण' में २९१ अध्याय और १६००० श्लोक हैं। इसमें भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार का विस्तृत वर्णन है। इसमें प्रारम्भ में ही मन्वन्तर का सामान्य वर्णन करके पितृवंश का विशेष वर्णन किया गया है।

भगवान शंकर का विस्तृत वर्णन करने के कारण 'मत्स्यपुराण' को शैव पुराण भी कहा गया है। इसमें त्रिपुरासुर के साथ शंकर के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसकी अन्य विशेषतायें हैं- पितरों का वर्णन, प्रयाग-काशी-नर्मदा आदि के भौगोलिक विवरण, ऋषियों के वंश-वर्णन, राजधर्म, देवताओं की प्रतिमाओं का विधान आदि। इसके ५३ वें अध्याय में पुराणों की विषयानुक्रमणी है।

(१७) गरुडपुराण-

यह पुराण गरुड और विष्णु के संवाद के रूप में है। 'गरुडपुराण' में २६४ अध्याय और १८००० श्लोक हैं। इसके दो खण्ड हैं- पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड। २२९ अध्यायों के पूर्वखण्ड के आरम्भ में विष्णु और उनके अवतारों का वर्णन करके आगे विविध विद्याओं का वर्णन किया गया है।

उत्तरखण्ड में ३५ अध्याय हैं, जिनको प्रेतकर्म के नाम से जाना जाता है। मृत्यु के अनन्तर मनुष्य की क्या गति होती है, कर्म के अनुसार वह किस योनि में जन्म लेता है, कौन-कौन से भोग भोगता है, इनका उल्लेख है। प्रेतकर्म, प्रेतयोनि, प्रेतश्राद्ध, यमलोक, यमयातना, नरक आदि का विशेष चित्र 'गरुडपुराण' में अङ्कित किया गया है। श्राद्ध के समय इस पुराण का पाठ किया जाता है।

(१८) ब्रह्माण्ड पुराण-

'ब्रह्माण्डपुराण' की गणना भी १८ महापुराणों में है। इसमें १२००० श्लोक और १०९ अध्याय हैं। वायु ने इस पुराण का उपदेश महर्षि व्यास को दिया था। प्रसिद्ध रामचरित 'अध्यात्मरामायण' इसी पुराण का अंश है, जिसमें राम की कथा आध्यात्मिक रूप से कही गई है। इस पुराण में अनेक स्तोत्र एवं कवच कहे गये हैं। इनमें प्रसिद्ध हैं- गणेशकवच, तुलसीकवच, हनूमत्कवच, सिद्धलक्ष्मीस्तोत्र, सीतास्तोत्र, ललितासहस्रनाम और सरस्वतीस्तोत्र।

४. उपपुराण

अठारह पुराणों के अतिरिक्त अनेक उपपुराणों की भी उपलब्धि होती है। इनकी संख्या भी १८ कही जाती है। अठारह उपपुराणों के सम्बन्ध में दो मत हैं। प्रथम मत के अनुसार अठारह उपपुराण निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार (२) नृसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल, (७) मानव, (८) अनुशासन, (९) आदि, (१०) कालिका, (११) साम्ब, (१२) नान्दी (१३) सौर, (१४) पाराशर, (१५) आदित्य, (१६) महेश्वर, (१७) सोम और (१८) वसिष्ठ।

'गरुडपुराण' के अनुसार १८ उपपुराण निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) स्कन्द, (४) शिवधर्म, (५) नारदीय, (६) आश्चर्य, (७) कपिल, (८) वामन, (९) औशनस, (१०) ब्रह्माण्ड, (११) वारुण, (१२) कालिका, (१३) माहेश्वर, (१४) साम्ब, (१५) सौर, (१६) पाराशर, (१७) मारीच और (१८) भार्गव।

'हिन्दू धर्मकोश' में उपपुराणों की संख्या २९ कही गई है। वे निम्न हैं-

(१) सनत्कुमार
(२) नरसिंह
(३) बृहन्नारदीय
(४) शिव अथवा शिवधर्म
(५) दुर्वासा
(६) कापिल
(७) मानव
(८) औशनस
(९) वारुण
(१०) कालिका
(११) साम्ब
(१२) नन्दिकेश्वर
(१३) सौर
(१४) पाराशर
(१५) आदित्य
(१६) ब्रह्माण्ड
(१७) माहेश्वर
(१८) भागवत
(१९) वसिष्ठ
(२०) कौर्म
(२१) भार्गव
(२२) आदि
(२३) मुद्गल
(२४) कल्कि
(२५) देवीभागवत
(२६) बृहद्धर्म
(२७) परानन्द
(२८) पशुपति
(२९) हरिवंश

५. स्थानीय पुराण

पुराणों और उपपुराणों की रचना के अनन्तर स्थानीय भौगोलिक आधार पर

अनेक पुराण रचित हुये। इनमें स्थानीय विशेषताओं का विस्तृत विवरण दिया गया हैं।

पुराणों में हिमालय को पांच खण्डों में विभाजित किया गया है- नेपालखण्ड, मानसखण्ड, केदारखण्ड, जलन्धरखण्ड और कश्मीरखण्ड। हिमालय के इन पांच खण्डों को आधार बना कर, इनके भौगोलिक परिवेश, सांस्कृतिक वातावरण और धार्मिक विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिये, महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हुये पुराण लिखे गये। जैसे कि नेपाल के सम्बन्ध में 'हिमवन्त पुराण', कुमायूं के सम्बन्ध में 'मानसखण्ड पुराण', गढवाल के सम्बन्ध में 'केदारखण्ड पुराण' और कश्मीर के सम्बन्ध में 'नीलमतपुराण' लिखे गये। जलन्धर खण्ड के सम्बन्ध में किसी पुराण की रचना के प्रमाण नहीं मिलते। इन पुराणों की रचना उस समय हुई होगी, जबकि उत्तरी भारत का अधिकांश भाग मुसलिम आक्रमणों से त्रस्त हो गया था। धार्मिक वृत्ति के अनेक जन अपने प्राणों और धर्म की रक्षा के लिये अपने घरों को छोड़ कर पुण्यभूमि हिमालय में चले आये थे। यहां आकर उन्होंने विविध आबादियों और तीर्थों का विकास किया। प्राचीन धर्मग्रन्थों और अन्य साहित्य में हिमालय की महिमा का वर्णन पहले ही विद्यमान था।

हिमालय क्षेत्र अति प्राचीन काल से धार्मिक क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। विशेष रूप से मध्य हिमालय का क्षेत्र, जो किसी समय केदारखण्ड के नाम से प्रसिद्ध था और अब गढवाल कहलाता है, धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां गङ्गा, यमुना आदि नदियों के पवित्र उद्गम हैं। पतितों को पवित्र करने वाली और पापों का विनाश करने वाली गङ्गा नदी की महिमा इस देश में हजारों वर्षों से प्रचलित है। यह नदी हिमालय के मध्य खण्ड, केदारखण्ड से उदित होती है ओर अन्य सभी नदियों के जल को अपने में समेट कर पर्वतों से उतर कर उत्तर भारत के मैदानों को सींचती हुई बंग समुद्र में विलीन हो जाती है।

केदारखण्ड क्षेत्र की पवित्रता और यहां के तीर्थों की यात्रा 'रामायण' और 'महाभारत' के युग से भी पहले से रही थी। जिस समय इस क्षेत्र में शेष भारत से आकर धार्मिक वृत्ति के लोग बसे, उन्होंने इस क्षेत्र की महिमा को और भी अधिक गौरवान्वित किया। देवताओं की क्रीडास्थली अनेक पर्वत- मन्दाराचल, मेरु, कैलास, हेमकूट, भृगु आदि इसी के अङ्क में थे। पौराणिक परम्पराओं के अनुसार त्रेतायुग में ब्रह्महत्या के दोष का निवारण करने के लिये अपने भाइयों के साथ भगवान् राम ने तथा द्वापर युग में स्वर्गारोहण के लिये पाण्डवों ने इसी क्षेत्र की यात्रा की थी। महर्षि व्यास ने इसी क्षेत्र में वैदिक संहिताओं का सम्पादन किया और 'महाभारत' की रचना की। आदि शङ्कराचार्य ने इस क्षेत्र में तप करके चार धामों की पवित्र तीर्थ यात्रा को प्रारम्भ कराया था तथा यहां विश्वकर्मा को आदेश देकर ३६५ मन्दिरों का निर्माण कराया था। अतः 'केदारखण्ड' आदि पुराणों ने हिमालय के विभिन्न प्रदेशों की महिमा

को धार्मिक वृत्ति के जनों में निश्चित रूप से प्रतिष्ठित किया था।

६. केदारखण्ड पुराण का रचयिता

'केदारखण्ड पुराण' के रचयिता का नाम और परिचय जानने की अत्यधिक उत्सुकता होने पर भी उसको यथार्थ में जानना सम्भव नहीं है। किसी समय किसी महान् कवि, भक्त, लेखक ने इस महान् पुराण की रचना करके केदारखण्ड के महान् गौरव का लोक में यश गाया था। परन्तु उसने कहीं भी अपना नाम या अन्य परिचय नहीं दिया। लेखक ने इसको 'स्कन्दपुराण' का ही एक भाग बताया है, जैसा कि इस पुराण के प्रत्येक अध्याय के अन्त में- "इति स्कान्दे केदारखण्डे......" शब्दों के अनन्तर अध्याय का नाम और संख्या दी गई है। इस लेखन से यह प्रतीत हो सकता है कि इस पुराण के लेखक भी महर्षि व्यास होंगे। परन्तु ऐसा नहीं है। यह 'केदारखण्ड पुराण' 'स्कन्दपुराण' के केदारखण्ड से सर्वथा भिन्न है। लोकप्रसिद्ध 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत 'केदारखण्ड' में सती पार्वती की जो कथायें प्रकाशित हैं, वे प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' में लिखित गढवाल के तीर्थों से सर्वथा भिन्न हैं। अन्य भी सभी विवरण अलग अलग ही हैं। प्रस्तुत 'केदारखण्ड पुराण' को 'स्कन्दपुराण' के 'माहेश्वर खण्ड' के अन्तर्गत 'केदारखण्ड' से सर्वथा भिन्न मानना चाहिये। अतः महर्षि व्यास को इस पुराण का रचयिता नहीं माना जा सकता। इस पुराण का रचयिता तो कोई महनीय ऋषि, कवि, मनीषी लेखक रहा होगा, जिसने उस युग में अति दुर्गम केदारखण्ड में पैदल भ्रमण कर सब स्थानों को देखा और सारा विवरण लोकहित के लिये पुराण के रूप में निबद्ध कर दिया। उस अज्ञातनामा ऋषि के प्रति हमारे सैंकड़ों बार प्रणाम है।

७. केदारखण्ड पुराण का रचना काल

'केदारखण्ड पुराण' की रचना के समय का निर्धारण बाह्य प्रमाणों के आधार पर करना कठिन है, क्योंकि न तो इस पुराण के अन्तर्गत इसकी रचना के समय में कोई संकेत मिलते हैं और नाहीं किसी अन्य लेखक ने इसकी रचना का समय संकेतित किया है। तथापि आन्तरिक लेखों के आधार पर कुछ अनुमान अवश्य लगाये जा सकते हैं।

'केदारखण्ड पुराण' की रचना १२ वीं शताब्दी ई० के पश्चात् हुई होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इस समय तक काशी में यवन आ गये थे 'केदारखण्ड पुराण' में सौम्यकाशी अर्थात् उत्तरकाशी के माहात्म्य वर्णन में उल्लेख है कि जब धरती पर यवन फैल जायेंगे तो भगवान् शिव तीर्थों सहित हिमवन्त गिरि की काशी

में निवास करेंगे। यहां श्वेतवाहिनी गंगा कुछ उत्तर की ओर को बहती है। यहां असी और वरुणा नदियों का संगम है[१]। इसी प्रकार गोपेश्वर के त्रिशूल पर अशोकचल्ल के १२ वीं शताब्दी ई० के खुदे लेख को भूल कर पुराणकार ने उस त्रिशूल को देवासुर संग्राम वाली शक्ति कहा है[२]।

'केदारखण्ड पुराण' में गुरु गोरखनाथ का उल्लेख हुआ है। अत: इस पुराण की रचना को गुरु गोरखनाथ के बाद का मानना चाहिये। मन्दाकिनी के तट पर गौरी तीर्थ के समीप दक्षिण की ओर गोरक्ष का आश्रम है, जहां सिद्ध गोरक्ष रहा करते थे[३]। अन्य भी तीर्थों के माहात्म्य वर्णन में विद्वानों की विभिन्न धारणायें हैं-

डा० मोहन सिंह के आधार पर परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि गोरखनाथ के जीवन-काल के लिये दसवीं, ग्यारहवीं या अधिक से अधिक बारहवीं शताब्दी ई० का प्रारम्भिक भाग, या विक्रम की ११ वीं शताब्दी का ही कोई भाग निश्चित किया जाना उचित होगा[४]। ज्ञानदेव के लेख के आधार पर गोरखनाथ का समय १२ वीं शताब्दी ई० है। यह कथन उस परम्परा से मिलता है, जिसके अनुसार गोरक्ष और धर्मनाथ, ये दोनों गुरु भाई समकालीन माने गये हैं। धर्मनाथ का समय १२ वीं शताब्दी ई० है।

कुछ विद्वान् गोरखनाथ को ५०० ई० से १००० ई० तक किसी समय का मानते हैं[५]।

---

१ यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रान्तभूतलम्।
भविष्यति तदा विप्रा: निवासं हिमवद्गिरौ।।
काश्या सह करिष्यामि सर्वतीर्थै: समन्वित:।
अनादिसिद्धं मे स्थानं वर्तति सर्वदैवहि।।
यत्र भागीरथी गङ्गा उत्तरा श्वेतवाहिनी।
असी च वरुणा तत्र सन्निधाने सदैव हि।। केदारखण्ड पुराण ९०.५०-५२।।

२ विक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि सङ्गरे देवता सुरै:।
अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा।।
केदारखण्ड पुराण ९०.१४।।

३ तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रममण्डलम्।
यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसते निशम्।। केदारखण्ड पुराण ४०.५२-५३।।

४ डा० मोहन सिंह: गोरखनाथ एण्ड मिडीवल हिन्दू मिस्टीसिज्म पृ० २०-३९
परशुराम चतुर्वेदी: उत्तर भारत की संत परम्परा पृ० ६०

५ गोपीनाथ कविराज: सरस्वती भवन स्टडीज, भाग-६, पृ० २४

'केदारखण्ड पुराण' में सत्यनाथ का उल्लेख है[1]। इससे सिद्ध है कि यह पुराण सत्यनाथ के बाद की रचना है। नव नाथों में सत्यनाथ की गणना अधिक प्राचीन नहीं है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदाय' और कल्याणी मलिक के बंगला ग्रन्थ 'नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन एवं साधन प्रणाली' में नव नाथों की विभिन्न सूचनाओं में सत्यनाथ के सम्बन्ध में मतभेद है। किन्तु 'गोरक्ष सिद्धान्त' (पृ० ४०) में सत्यनाथ का उल्लेख है।

कुमायूं और गढवाल के इतिहास से विदित होता है कि १५०० ई० के आसपास गढवाल और चम्पावत में सत्यनाथ और नागनाथ नामक दो गोरखपन्थी जोगियों ने अपने डेरे लगाये। सत्यनाथ का शिष्य नागनाथ था। गढवाल के इतिहास से यह भी विदित होता है कि १५००ई० में गढवाल का पंवार नरेश अजयपाल चांदपुर के सिंहासन पर बैठा। उन्हीं दिनों चम्पावत के राजा कीर्तिचन्द ने गढवाल के बधाण प्रान्त पर आक्रमण किया। युद्ध में हार कर गढवाल का राजा अजयपाल देवलगढ की ओर भागा। सत्यनाथ का आशीर्वाद पाकर गढवाल नरेश ने पुनः कुमायूं के नरेश को पराजित कर अपना राज्य वापिस प्राप्त कर लिया[2]।

कीर्तिचन्द के राज्यकाल (१४८८-१५०३) में सत्यनाथ की काफी प्रसिद्धि थी[3]। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गढवाल में सत्यनाथ का आगमन १५०० ई० के आसपास हुआ होगा।

गोरक्षनाथ और सत्यनाथ के 'केदारखण्ड पुराण' में कुछ उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि इस ग्रन्थ में कुछ अंश पहले थे और कुछ को १५०० ई० के लगभग जोड़ा गया। शिवप्रसाद डबराल के अनुसार क्यूंकालेश्वर, किलकिलेश्वर और ज्वाल्पा जैसे नवीन मन्दिरों का 'केदारखण्ड पुराण' में जो उल्लेख हुआ है, वह दो-तीन सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है[4]।

'केदारखण्ड पुराण' में 'मानसखण्ड' का उल्लेख है। अतः इस पुराण की रचना 'मानसखण्ड' के पश्चात् हुई। बद्रीदत्त पाण्डे के अनुसार कूर्माञ्चल में 'मानसखण्ड' की रचना कूर्माञ्चली पण्डितों ने की थी[5]। स्वामी प्रणवानन्द ने 'मानसखण्ड' की हस्तलिखित

---

१ नवनाथाः समाख्यातास्तत्र श्रीआदिनाथकः।
अनादिनाथ कूर्माख्यौ भवनाथस्तथैव च।।
सत्यसन्तोषनाथौ तु मत्स्येन्द्रो गोपिनाथकः।। केदारखण्ड पुराण ७४.२८-२९।।

२ हरिकृष्ण रतूडीः गढवाल का इतिहास पृ० ३६४-६५

३ बद्रीदत्त पाण्डेः कुमायूं का इतिहास पृ० २५२

४ शिवप्रसाद डबरालः उत्तराखण्ड यात्रादर्शन पृ० १०७

५ बद्रीदत्त पाण्डेः कुमायूं का इतिहास पृ० १७७

प्रति देखने के बाद लिखा है कि यह ग्रन्थ दो-तीन सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है[1]।

'केदारखण्ड पुराण' में 'कुलार्णवतन्त्र' आदि के उद्धरण हैं। ३३ वें अध्याय में 'कुलार्णवतन्त्र' से अनेक पंक्तियां उद्धृत हैं। इस पुराण के ३५ वें अध्याय से यह भी स्पष्ट है कि पुराणकार को महिम्नस्तोत्र का ज्ञान था। ६५ वें अध्याय में श्लेष अलङ्कार, दोहा-कुण्डली-सोरठा छन्द और राग-रागिनियों के नाम हैं। इनमें रामकली, केहरी, गुर्जरी और पटुमञ्जरी रागिनियों को गिनाया गया है। गुर्जरी रागिनी को दीपक राग की वाराङ्गना कहा गया है। गुर्जरी रागिनी की रचना ग्वालयिर नरेश मानसिंह ने अपनी गुर्जरी रानी मृगनयनी के नाम पर की थी। मानसिंह का समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी माना जाता है[2]। इससे स्पष्ट होता है कि 'केदारखण्ड पुराण' की रचना इसके बाद ही हुई होगी।

बालाजीराव के समय से मराठे उत्तर भारत में आने लगे थे और अपने को वे हिन्दू धर्म और मन्दिरों का रक्षक कहते थे। सन् १७४१-४२-४३ में मध्य भारत में अपना प्रभाव जमा कर बालाजीराव (नाना साहब) ने धर्मस्थानों की रक्षा करनी प्रारम्भ कर दी थी[3]। अहिल्याबाई ने भी भारत के अनेक प्रमुख मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था। इस समय भारतवर्ष में तीर्थयात्रा को पुनः प्रोत्साहन मिला। इन कार्यों पर 'केदारखण्ड पुराण' का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

'केदारखण्ड पुराण' में बार बार भृगुपतन की प्रशंसा की गई है। भृगुशिखर से श्रीशिला पर कूद कर टुकड़े टुकड़े होकर परब्रह्म से मिलन का मार्ग अंग्रेजों ने बन्द कर दिया[4]। अतः 'केदारखण्ड पुराण' की रचना निश्चित रूप से अंग्रेजों के अधिकार से पूर्व हो गई होगी।

ऊपर के विवेचन से यह कहा जा सकता है कि 'केदारखण्ड पुराण' की रचना १६ वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भिक भाग में पूरी हो चुकी थी। यह पुराण इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी हस्तलिखित प्रति पंडित लोग अपने घरों में रखने लगे। आज भी अनेक घरों में इस पुराण की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त की जा सकती हैं।

८. केदारखण्ड पुराण का वर्ण्य विषय

'केदारखण्ड पुराण' का मुख्य वर्ण्य विषय हिमालय और उसके केदारखण्ड क्षेत्र की धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महिमा का वर्णन करना है। इसके अतिरिक्त इस पुराण में पुराणों के सामान्य विषयों को भी प्रस्तुत किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति,

१ प्रणवानन्दः एक्सप्लोरेशन इन तिबेट पृ० ११
२ ओझाः राजस्थान का इतिहास, भाग १, पृ० ३६
३ भीमसैन विद्यालंकारः वीर मराठे, पृ० १५०
४ शिवप्रसाद डबरालः उत्तराखण्ड यात्रा वर्णन पृ० १०९

प्रलय, आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म, यज्ञ-तप आदि कर्मकाण्ड, ऋषियों के नाम, तपोवन आदि का वर्णन है। धनुर्वेद और सङ्गीतशास्त्र का परिचय है। परन्तु मुख्य वर्ण्य विषय केदारखण्ड में स्थित तीर्थों की महिमा का गान करना है। 'केदारखण्ड पुराण' में २०६ अध्याय और १०१९२ श्लोक हैं। प्रारम्भ के १०८ अध्यायों तक तीर्थों का वर्णन इतना सुसम्बद्ध नहीं है, जितना कि अध्याय १०९ से लेकर २०६ तक है। इसमें केदारखण्ड की सीमाओं और क्षेत्रफल का भी निर्देश है। केदारखण्ड क्षेत्र ५० योजन (२०० मील) लम्बा और ३० योजन (१२० मील) चौड़ा है। इस प्रकार इसका विस्तार १५०० योजन (२४००० वर्गमील)है। यह उत्तर में श्वेतान्त (हिमाच्छादित कैलास आदि पर्वत शृंखला) पर्वत से लेकर दक्षिण में गंगाद्वार (हरिद्वार) तक और पश्चिम में तमसा (टौंस) नदी से लेकर पूर्व में बौद्धाचल (बधाण) तक विस्तृत है। देवताओं को भी दुर्लभ यह स्थान पृथिवी पर स्वर्ग ही है[1]।

'केदारखण्ड पुराण' में यहां की भूमि के अनेक विभागों को विभिन्न क्षेत्रों में दिखाया गया है। जैसे मायाक्षेत्र, कुब्जाम्रकक्षेत्र, सुदर्शनक्षेत्र, भास्करक्षेत्र, श्रीक्षेत्र आदि। इन क्षेत्रों के पुण्य पर्वत शिखरों, तीर्थस्थलों, नदियों और कुण्डों की महिमा का वर्णन इस पुराण में है।

इस पुराण में अनेक पर्वतों के नाम आये हैं। जैसे- नन्दादेवी, वानराचल (बन्दरपूंछ), गन्धमादन (कामठ), तुङ्गोच्च शिखर, चन्द्रशिला शिखर, गणेशपर्वत, नन्दापर्वत, यक्षकूट, महिषभण्डल, रेणुकाद्रि, श्रीमुख (सुमेरु), नीलपर्वत, बिल्वपर्वत, मलयपर्वत, श्वेत महापर्वत, हेमशृंग, मन्दराचल, पुष्करपर्वत. कैलासपर्वत, नागपर्वत, इन्द्रकीलपर्वत, स्वर्गारोहण पर्वत, भृगुतुङ्गशिखर, शङ्करपर्वत, नन्दनपर्वत आदि का वर्णन है।

अनेक तीर्थस्थलों की महिमा को इस पुराण में कहा गया है। जैसे- कनखल, मायापुर, गंगाद्वार (हरिद्वार), कुब्जाम्रक तीर्थ (ऋषिकेश), लक्ष्मणतीर्थ (लक्ष्मणझूला), इन्द्रप्रयाग (व्यासघाट), देवप्रयाग, सौम्यकाशी (उत्तरकाशी), श्रीक्षेत्र (श्रीनगर), रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, केदारनाथ, गोपेश्वर, विष्णुप्रयाग, बदरिकाश्रम (बदरीनाथ धाम), भिल्लांगण, तुङ्गनाथ, रुद्रालय (रुद्रनाथ), कल्पेश्वर, मेनकाक्षेत्र, लक्ष्मणतीर्थ (हिमकुण्ड), केशवप्रयाग (माणा ग्राम), गौरीतीर्थ, सूर्यकुण्ड, बैखानसतीर्थ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, कालीक्षेत्र (कालीमठ), पञ्चकेदार, पञ्चबदरी आदि हैं।

---

१. पञ्चाशद् योजनायामं त्रिंशद् योजनविस्तृतम्।
इदं वै स्वर्गगमनं न पृथ्वीं तां महाविभो।
गङ्गाद्वारपर्यन्तं श्वेतान्तं वरवर्णिनि।
तमसातटतः पूर्वभागे बौद्धाचलं शुभम्।।
केदारमण्डलं ख्यातं भूम्यां तद् भिन्नकं स्थलम्।। केदारखण्ड पुराण ४०.२६-२९

प्राय: प्रत्येक तीर्थ में वर्णित नदी, पर्वत आदि पर उसके अधिपति किसी ईश्वर (देवता) और ईश्वरी (देवी) का उल्लेख है। कुछ तीर्थों के भैरव भी बताये गये हैं। अनेक तीर्थों के वर्णनों में एक या अधिक रात्रि तक रहने तथा वहां भूमि और स्वर्ण का दान करने की प्रशंसा की गई है। कई तीर्थों में यज्ञ, तप, उपवास करने और कुछ में शरीर त्याग करने की भूरि भूरि महिमा कही गई है।

अनेक सरिताओं, जलाशयों और जलकुण्डों का वर्णन है, जिनके दर्शन, चिन्तन और स्नान से त्रिविध ताप दूर होकर मोक्ष प्राप्त होता है। भागीरथी, जाह्नवी, अलकनन्दा, सरस्वती, ऋषिगङ्गा, आकाशगङ्गा, पातालगङ्गा, यमुना, तमसा, नबालका (दोनों नयार), विरही, नन्दाकिनी, पिण्डर, मन्दाकिनी, धवलगङ्गा, भिल्लाङ्गणा आदि पवित्र नदियां हैं। अनेक तीर्थों पर अनेक काल्पनिक नाम वाली धारायें और नदियां कही गई हैं, जिनके नाम की संगति बिठाना भी कठिन है।

'केदारखण्ड पुराण' में अनेक सरोवरों, जलाशयों, कुण्डों आदि का वर्णन है। इनमें प्रसिद्ध हैं- विष्णुताल, सत्यपथताल, वासुकिताल, गौनाताल, देवरियाताल, अप्सराताल, यमताल, नचिकेताताल, दुग्धताल, मानसरोवर, सारस्वत सरोवर, मणिभद्र सरोवर, बिन्दु सरोवर, दिव्य सरोवर, नारायणकुण्ड, उर्वशीकुण्ड, सूर्यकुण्ड, चन्द्रकुण्ड, हेमकुण्ड, अमृतकुण्ड, रूपकुण्ड, होमकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड, इन्द्रकुण्ड, शिवकुण्ड, गौरीकुण्ड, नन्दीकुण्ड, हंसकुण्ड, रेतसकुण्ड, उदककुण्ड, अमृतकुण्ड, बदरीनाथ और यमुनोत्तरी के तप्तकुण्ड आदि।

'केदारखण्ड पुराण' यद्यपि बहुत प्राचीन नहीं है, तथापि इसमें प्राचीन कथाओं को इस प्रकार बिठाया गया है, जिससे केदारखण्ड प्रदेश का माहात्म्य सिद्ध हो सके। टिहरी और गढवाल के तीर्थों, नदियों, गधेरों, पानी के गढों, कुण्डों, सरोवरों, पर्वत शिखरों और शिलाओं का यह अद्भुत विश्वकोष है।

केदारखण्ड की महत्वपूर्ण महत्ता उसके तीर्थों के साथ ही उसमें निहित प्राकृतिक सौन्दर्य वाले स्थलों में है। उन्हीं में से कुछ स्थल तीर्थों के रूप में विकसित हो गये। परन्तु जहां तक प्राकृतिक दृश्यों का, वनप्रदेशों, बुग्यालों और हिमालय की मनोहारिणी छटा का सम्बन्ध है, यह ग्रन्थ उसकी ओर ध्यान आकृष्ट नहीं करता। लेखक की दृष्टि प्राकृतिक दृश्यावली की ओर न जाकर तीर्थों का माहात्म्य कहने, उनमें सुवर्ण तथा भूमि का दान करने, जप-उपवास-स्नान करने, देवताओं की पूजा-उपासना करने, निवास करने आदि के गुणगान करने में ही लगी रही है।

विषय-सूची

विषयानुक्रमणिका

(प्रथम खण्ड)

(द्वितीय-खण्ड)

अध्याय- ६४-१२०

(तृतीय-खण्ड)

अध्याय-१२१-१८०

के गिरने से शिवलिङ्ग का नाम ताटङ्केश्वर प्रसिद्ध होना, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६३ देवप्रयाग की यात्रा के विधान का विस्तार से निरूपण, तीर्थ-स्नान आदि के मन्त्रों का निरूपण

अध्याय-१६४ बलासुर का वध करने के लिये इन्द्र द्वारा गङ्गा-नबालका (नयार) के सङ्गम पर शिव की आराधना करने से इस क्षेत्र का नाम इन्द्रप्रयाग प्रसिद्ध होना, मछली मारने वाने दीर्घदन्त नामक धीमर द्वारा धर्मतीर्थ में एक मास तक स्नान करने से विष्णुपद की प्राप्ति, इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६५ इन्द्रप्रयाग में इन्द्रेश्वर शिवलिङ्ग के दर्शन-पूजन आदि का वर्णन और उसके फल का कथन

अध्याय-१६६ नबालका नदी की उत्पत्ति। धर्मारण्य निवासी धर्मचिन्तक वैश्य की पुत्री सौन्दर्यमञ्जरी की कथा। अपमान से कुपित च्यवन ऋषि के शाप से बचपन में ही बूढी हो जाने वाली उसकी लागंल पर्वत पर तपस्या और शिव की कृपा से पुनः यौवन की प्राप्ति। नबालका नाम होना। च्यवन ऋषि के कहने से उसका नदी रूप में परिणत होना तथा इन्द्रप्रयाग में गङ्गा में मिल जाना। उसके माहात्म्य का कथन

अध्याय-१६७ अमृत को लाने के लिये उद्यत गरुड द्वारा अनजाने में ब्राह्मण को निगल लेना। ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने के लिये कश्यप द्वारा महेश्वर की स्तुति और उनकी कृपा से आंखों से अश्रुपात, अश्रुधारा का वैनतेयी नदी नाम होना, गरुडेश्वर आदि का वर्णन

अध्याय-१६८ नबालका नदी के तट पर दीप्तज्वालेरी पीठ, देवराज इन्द्र की पति के रूप में कामना करती हुई पुलोमजा द्वारा सखी के कहने से दीप्तज्वाला भगवती की आराधना। इन्द्रासन के अर्धभाग की प्राप्ति। दीप्तज्वालेश्वरी के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१६९ काण्डवी नदी के तट पर उमादेवी पीठ का वर्णन, केवलेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन, राष्ट्रकूट पर्वत शिखर पर वन्यश्रीकेश्वर नामक शिवलिङ्ग का वर्णन और उसके

आराधना करना, भगवती के वर के प्रभाव से कोलासुर का विनाश, असुर के सिर को शरीर से काट कर धड़ को एक ओर तथा सिर को एक ओर फैंकना, दोनों के मध्य का क्षेत्र श्रीक्षेत्र कहलाना, श्रीक्षेत्र के माहात्म्य का कथन

अध्याय-१७९ श्रीक्षेत्र के तीर्थों का वर्णन, मेनका नाम की नदी के पूर्व वृत्तान्त का कथन, कोलासुर की कन्या श्यामला के नदी रूप का वर्णन, गङ्गा के तट पर भानुमती नाम की शिला के इतिहास का निरूपण, श्मशानवासिनी कण्डिका के स्थान का निरूपण, नहुषेश्वर की कथा का वर्णन

अध्याय-१८० सुखाश्रम का वर्णन, जीवनेन्द्र की कथा, लास्य तीर्थ का वर्णन, गङ्गा -गौरी नदियों के सङ्गम पर स्थित तीर्थों का वर्णन, मञ्जुघोष नामक भैरव की पञ्च कन्या रूप नदियों का कथन, भैरव के स्थान का वर्णन

(चतुर्थ-खण्ड)

अध्याय-१८१-२०६ एवं परिशिष्ट

अध्याय-१८१ गङ्गा-खाण्डव नदियों के सङ्गम पर शिवप्रयाग तीर्थ का वर्णन, शिवप्रयाग की कथा के प्रसङ्ग में भिल्लेश्वर और किलकिलेश्वर शिवलिङ्गों के इतिहास का निरूपण, उनके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८२ खाण्डव नदी के तट पर स्थित कालिका आदि तीर्थों का वर्णन, गंगा के उत्तरी किनारे पर ढुण्ढिप्रयाग तीर्थ का वर्णन, जयैषिणी ती्र्थ की कथा, वासवी शिला के पूर्व वृत्तान्त का कथन, उसके माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-१८३ गङ्गा के उत्तरी किनारे पर मुण्ड दैत्य के सिर के समीप ब्रह्मकुण्ड तीर्थ का वर्णन, यहां रहने वाले ब्राह्मण दम्पती के याचकों को अन्न देने की अत्यधिक कीर्ति को सुन कर ब्रह्मा का चील रूप धर कर उस आश्रम में आना, उनकी मांस को खाने की अभिलाषा को देख कर दम्पती द्वारा अपने मांस को देने के लिये उद्यत होना, "मैं तो तुम्हारे

उनके माहात्म्य का कथन

अध्याय-२०५ केदारक्षेत्र में स्थित सभी नदियों, पर्वतों, वृक्षों आदि के महान् पापों के समूह के विनाश करने में समर्थ होने से उनके माहात्म्य का कथन, राम द्वारा रावणवध के लिये प्रस्थान करने पर वसिष्ठ का सत्यव्रत के आश्रम में आगमन, सत्यव्रत द्वारा हिमदाव मुनि का समर्थन करने के लिये उसके द्वारा की गई उग्र तपस्या का वर्णन, हिमदावेश्वर नाम के शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

अध्याय-२०६ हिमदावेश्वर आश्रम में भीलों के साथ रहते हुये अरुन्धती और वसिष्ठ का उनके समान आचरण हो जाने का कथन, रावण का वध करके लौटे हुये राम के आदेश से वसिष्ठ को लाने के लिये लक्ष्मण का केदारक्षेत्र में प्रवेश, वहां के आचार- व्यवहार को देख कर शंका करने वाले लक्ष्मण के संशय को दूर करने के लिये वसिष्ठ द्वारा क्षेत्र की प्रशस्तता का वर्णन, हिमालय पर्वत के प्रदेश के अन्तर्गत केदारखण्ड की प्रंशसा का वर्णन, केदारखण्ड पुराण के श्रवण-पठन के फल का कथन

परिशिष्ट-१

हिमालय तथा केदारखण्ड का गौरव एवं केदारखण्ड का भौगोलिक परिचय

१. हिमालय तथा केदारखण्ड का गौरव

२. केदारखण्ड का भौगोलिक परिचय

(क) प्राचीन साहित्य के अनुसार केदारखण्ड की सीमायें

(ख) गढवाल की सीमायें तथा क्षेत्रफल

(ग) गढवाल के आकृतिक विभाग

(घ) पर्वतश्रेणियां

(ङ) पर्वतशिखर

(च) हिमानियां

(छ) नदियां

परिशिष्ट-२

तीर्थयात्रा दर्शन

(५) मुण्डन

(६) सङ्कल्प

७. तीर्थयात्रा करने की विधि

८. तीर्थों में कर्तव्य कर्म

(१) यात्रा

(२) स्नान

(३) देवदर्शन

(४) पिण्डदान, संकल्प, प्रसादवितरण

९. तीर्थयात्रा के सामाजिक लाभ

परिशिष्ट-३

केदारखण्ड की तीर्थयात्रा का संक्षिप्त इतिहास

१. केदारखण्ड का धार्मिक महत्त्व

२. केदारखण्ड (गढवाल)

३. केदारखण्ड तीर्थयात्रा के हेतु

(१) देश के प्रति प्रेम और ऐक्य की भावना

(२) हिमालय तथा गङ्गा का प्राकृतिक सौन्दर्य और आर्थिक महत्त्व

(३) हिमालय और गङ्गा के प्रति धार्मिक भावना

(४) स्वर्ग का द्वार

४. वैदिक युग में हिमालय और केदारखण्ड की तीर्थयात्रा

५. महाभारत और पुराण

६. धर्मशास्त्र

७. संस्कृत काव्यकार

८. भक्ति सम्प्रदाय

९. शङ्कराचार्य

१०. कत्यूरी शासनकाल

११. शङ्कराचार्य के बाद

परिशिष्ट-४

केदारखण्ड के चार धाम

परिशिष्ट-५

केदारखण्ड पुराण का दर्शन

८. माया संसार का मूल कारण

९. ब्रह्म का माया का आश्रयी होना

१०. माया के द्वारा ब्रह्म का प्रादुर्भाव

११. ब्रह्म के साक्षात्कार में माया की बाधकता

१२. माया को समझने में असाधारणत्व

१३. माया के द्वारा ब्रह्म की विविध रूपों में प्रतीति एवं परमेश्वर की कृपा से ही परमेश्वर का साक्षात्कार

१४. जीव

१५. निष्कर्ष

१६. सृष्टि का प्रतिपादन

१७. सृष्टि की पुनः पुनः स्थापना

१८. सृष्टि रचने में ब्रह्मा की प्रक्रिया

१९. सृष्टि-प्रक्रिया में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव

२०. ब्रह्मा-विष्णु-शिव का देहादि भेद

२१. ब्रह्मा-विष्णु-शिव का पुनः पुनः प्रादुर्भूत होना

२२. विष्णु और शिव में अभेद

२३. ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा परब्रह्म में अभेद

२४. सृष्टिकाल का निरूपण

२५. सृष्टिकाल में मनुओं की संख्या

२६. सृष्टिकाल में सर्ग निरूपण

२७. कर्म का सिद्धान्त

२८. पुनर्जन्म का सिद्धान्त

२९. पुनर्जन्म की पुष्टि में राजा भगीरथ का इतिहास

३०. लय का प्रतिपादन

३१. परम पद (मोक्ष) का स्वरूप

३२. मोक्षमार्ग

३३. निष्कर्ष

परिशिष्ट–६

केदारखण्ड पुराण में शक्ति, शाक्तपीठ, लक्ष्मी और सरस्वती

परिशिष्ट–७

केदारखण्ड पुराण के महादेवता

(छ) केदारखण्ड में पञ्चबदरी

(ज) केदारखण्ड में विष्णु के प्रसिद्ध मन्दिर

३ . ब्रह्मा

(क) ब्रह्मा द्वारा सृष्टि-सृजन की प्रक्रिया

(ख) केदारखण्ड में ब्रह्मा की पूजाविधि

(ग) केदारखण्ड में ब्रह्मा के प्रसिद्ध स्थान

परिशिष्ट-८

केदारखण्ड पुराण के देवता

(१) इन्द्र

(क) केदारखण्ड में इन्द्र का प्रवेश

(ख) केदारखण्ड में इन्द्र के प्रमुख स्थान

(२) सूर्य (आदित्य)

(३) चन्द्रमा (सोम)

(४) भैरव

(५) नागराज

(६) घंटाकर्ण

(७) गणेश

(८) कार्त्तिकेय (स्कन्द)

(९) हनुमान्

(१०) लक्ष्मण

(११) भरत

(१२) शत्रुघ्न

(१३) कुबेर

(१४) वसु

(१५) मातृका

(१६) अग्नि

(१७) वरुण

(१८) वायु

(१९) बृहस्पति

(२०) अश्विनी

(२१) मरुत्

(२२) नवग्रह

(२३) पितर

परिशिष्ट-९

केदारखण्डपुराण के अर्धदेवता और देवाङ्गनायें

(१) नन्दी

(२) भृङ्गी

(३) सिद्ध

(४) गुह्यक

(५) प्रमथ

(६) चण्ड

(७) यक्ष

(८) किन्नर

(९) वेताल

(१०) विद्याधर

(११) चारण

(१२) पन्नग (नाग)

(१३) गन्धर्व- चित्ररथ, तुम्बरु, हाहाहुहु

(१४) देवाङ्गनायें- उर्वशी, मञ्जुघोषा, मेनका, रम्भा

(१५) धनदा यक्षिणी

(१६) नागकन्यायें

परिशिष्ट-१०

केदारखण्ड पुराण के तिर्यक् देवता, पर्वत देवता, नदी देवता और वृक्षपूजन

१. तिर्यक् देवता

(क) गरुड (ख) सिंह (ग) मयूर (घ) गौ

२. पर्वत देवता

(क) कैलास पर्वत (ख) स्वर्गारोहण (ग) हस्तिपर्वत (गन्धमादन)

(घ) चन्द्रशिला (ङ) काष्ठाद्रि (च) रेणुका पर्वत (भिल्लांगण पर्वत)

(छ) नील पर्वत (ज) अन्य पर्वत

३. नदी देवता

(क) गङ्गा (ख) यमुना (ग) सरस्वती (घ) अन्य नदियां

४. वृक्षपूजन

परिशिष्ट-११

केदारखण्ड में तान्त्रिक उपासना

(१) भूत-प्रेत आदि

(२) आछरी-अपड़ी

(३) घात पैकार

(४) निरंकार

(५) गरदेवी

(६) क्षेत्रपाल

(७) भैरव

परिशिष्ट-१२

केदारखण्ड पुराण के जलस्रोत

(१) नदियां (२) नदियों के सङ्गम

(३) जलाशय और सरोवर (४) कुण्ड

(५) तप्तकुण्ड

परिशिष्ट-१३

केदारखण्ड पुराण की कथायें

परिशिष्ट-१४

केदारखण्ड पुराण का सांस्कृतिक जीवन

१. जातियां

२. वर्णव्यवस्था

(क) ब्राह्मण (ख) क्षत्रिय (ग) वैश्य (घ) शूद्र

३. आश्रमव्यवस्था

४. संस्कार

(क) जातकर्म संस्कार (ख) षष्ठी संस्कार
(ग) नामकरण संस्कार (घ) अन्नप्राशन संस्कार
(ङ) चूडाकर्म संस्कार (च) कर्णविध संस्कार
(छ) अक्षरारम्भ संस्कार (ज) उपनयन संस्कार
(झ) विवाह संस्कार (ञ) अन्त्येष्टि संस्कार

५. शिक्षा व्यवस्था

६. त्यौहार, उत्सव और मनोरञ्जन के साधन

(क) पाण्डवनृत्य
(ख) नन्दादेवी का मेला
(ग) अष्टबलि का मेला
(घ) रिन्दी का मेला
(ङ) वर्त का मेला
(च) लॉग का मेला
(छ) विषुवत् संक्रान्ति का मेला
(ज) धाड़ नृत्य-गीत
(झ) कांडा का मेला
(ञ) बैकुण्ठ चतुर्दशी का मेला

७. भोजन

मानचित्र - केदार खण्ड (गढ़वाल)

संख्या	विवरण	चिन्ह
1	गढ़वाल कमिश्नरी	....
2	जिले की सीमा	- - - -
3	नदियां	~
4	मोटर मार्ग	-o-o-
5	पैदल मार्ग	....
6	रेल मार्ग	++++++



द्वितीय खण्ड

स्कन्दपुराणान्तर्गत

केदारखण्ड पुराण

(अध्याय ६४ से अध्याय १२० तक)

KEDARKHANDA PURAN

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

शिवसहस्रनामस्तोत्रम्

अरुन्धत्युवाच--

मुने वद महाभाग नारदेन यथा स्तुतः ।
सहस्रनामभिः पुण्यैः पापघ्नैः सर्वकामदैः ॥ १ ॥

यानि यानि च नामानि नारदोक्तानि वै मुने ।
रागोत्पत्तिं विस्तरेण नामानि च वद प्रिय ॥ २ ॥

वसिष्ठ उवाच--

साधु साधु महाभागे शिवभक्तिर्यतस्त्वयि
तपःशुद्धो नारदोऽसौ ददर्श परमेश्वरम् ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा तद्वै परं ब्रह्म सर्वज्ञो मुनिपुंगवः ।
सस्मार प्रियनामानि शिवोक्तानि प्रियां प्रति ॥ ४ ॥

नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितः ।
श्रीशिवः परमात्मा वै देवता समुदाहृता ॥ ५ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
सर्वारम्भप्रसिद्धयर्थमाधिव्याधिनिवृत्तये ॥ ६ ॥

नारद उवाच—

श्रीशिवः शिवदो भव्यो भावगम्यो वृषाकपिः ।
वृषध्वजो वृषारूढो वृषकर्त्ता वृषेश्वरः ॥ ७ ॥

शिवाधिपः शिवः शम्भुः स्वयम्भूरात्मविद् विभुः ।
सर्वज्ञो बहुहंता च भवानीपतिरच्युतः ॥ ८ ॥

अध्याय ६४

शिवसहस्रनाम स्तोत्र

अरुन्धती बोली—

हे मुने महाभाग ! नारद जी ने जिस प्रकार पुण्यों को देने वाले, पापों का नाश करने वाले, समस्त कामनाओं को देने वाले सहस्र नामों से शिव की स्तुति की, उसे आप कहिए ।। १ ।।

हे प्रिय मुने ! नारद जी ने जो-जो नाम कहे हैं, उन नामों को और राग की उत्पत्ति को विस्तार से आप बताइये ।। २ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

हे महाभाग्यशालिनि ! आप धन्य हैं, जो कि आप में शिव के प्रति इस प्रकार की भक्ति है । तपस्या से शुद्ध होकर नारद ने परमेश्वर के दर्शन किये ।। ३ ।।

शिव में परब्रह्म रूप का दर्शन कर श्रेष्ठ मुनि नारद जी सर्वज्ञ हो गये, जिससे उन्हें शिवसहस्रनाम का स्मरण हो गया, जो शंकर भगवान् ने अपनी प्रिया पार्वती से कहे थे ।। ४ ।।

इस सहस्रनाम स्तोत्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और परमात्मा शिव देवता कहे गये हैं ।। ५ ।।

समस्त आरम्भों की सिद्धि के लिए आधि और व्याधियों की निवृत्ति के लिए, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करने में इसका विनियोग कहा गया है ।। ६ ।।

नारद जी बोले—

श्री शिव, शिवद (कल्याण देने वाला), भव्य (विशाल), भावगम्य (आत्म स्वरूप), वृषाकपि (धर्मपाल), वृषध्वज, वृषारूढ, वृषकर्त्ता, वृषेश्वर ।। ७ ।।

शिवाधिप, शिव, शम्भु, स्वयम्भू, आत्मविद्, विभु, सर्वज्ञ, वहुहन्ता, भवानी-पति, अच्युत ।। ८ ।।

तंत्रशास्त्र प्रमोदी च तंत्र शास्त्र प्रदर्शकः ।
तंत्रप्रियस्तंत्रगम्यो तंत्रो वऽनन्ततंत्रकः ॥ ९ ॥

तंत्रीनादप्रियो देवो भक्तितंत्रविमोहितः ।
तंत्रात्या तंत्रनिलयस्तंत्रदर्शी सुतंत्रकः ॥ १० ॥

महादेव उमाकान्तश्चन्द्रशेखर ईश्वरः ।
धूर्ज्जटिस्त्र्यम्बको धूर्त्तो धूर्त्तशत्रु रमावसुः ॥ ११ ॥

वामदेवो मृडः शम्भुः सुरेशो दैत्यमर्द्दनः ।
अंधकारहरो दण्डो ज्योतिष्मान् हरवल्लभः ॥ १२ ॥

गंगाधरो रमाकान्तः सर्वनाथः सुरारिहा ।
प्रचण्डदैत्यविध्वंसी जंभारातिररिन्दिमः ॥ १३ ॥

दानप्रियो दानतृप्तो दानदो दानवान्तकः ।
करिदानप्रियो दानी दानातमा दानपूजितः ॥ १४ ॥

दानगम्यो ययातिश्च दयासिन्धुर्दयावहः ।
भक्तिगम्यो भक्तसेव्यो भक्तिसंतुष्टमानसः ॥ १५ ॥

भक्ताभयप्रदो भक्तो भक्ताभीष्टप्रदायकः ।
भानुमान् भानुनेत्रश्च भानुवृन्दसमप्रभः ॥ १६ ॥

सहस्रभानुः स्वर्भानुरातमभानुर्जयाबहः ।
जयन्तो जयदो यज्ञो यज्ञातमा यज्ञविज्जयः ॥ १७ ॥

जयसेनो जयत्सेनो विजयो विजयप्रियः ।
जाज्वल्यमानो ज्यायांश्च जलातमा जलजो जबः ॥ १८ ॥

पुरातनः पुरारातिस्त्रिपुरघ्नो रिपुघ्नकः ।
पुराणः पुरुषः पुण्यः पुण्यगम्योऽतिपुण्यदः ॥ १९ ॥

प्रभंजनः प्रभुः पूर्णः पूर्वदेवः प्रतापबान् ।
प्रबलोऽतिबलो देवो वेदवेद्यो जनाधिपः ॥ २० ॥

तंत्रशास्त्रप्रमोदी, तंत्रशास्त्रप्रदर्शक, तंत्रप्रिय, तंत्रगम्य, तंत्र अनन्ततंत्रक ॥ ९ ॥

तंत्रीनादप्रिय, देव, भक्तितंत्रविमोहित, तंत्रात्मा, तंत्रनिलय, तंत्रदर्शी, सुतंत्रक ॥ १० ॥

महादेव, उमाकान्त, चन्द्रशेखर, ईश्वर, धूर्जटि, त्र्यम्बक धूर्त्त, धूर्त्तशत्रु, अमावसु ॥ ११ ॥

वामदेव, मृड, शम्भु, सुरेश, दैत्यमर्दन, अन्धकारहर, दण्ड, ज्योतिष्मान्, हरवल्लभ ॥ १२ ॥

गंगाधर, रमाकान्त, सर्वनाथ, देवशत्रुओं को नष्ट करने वाले, प्रचण्डदैत्यों के विध्वंसी, जम्भाराति, अरिन्दम ॥ १३ ॥

दानप्रिय, दानतृप्त, दानद, दानवान्तक, करिदानप्रिय, दानी, दानात्मा, दानपूजित ॥ १४ ॥

दानगम्य, ययाति, दयासिन्धु, दयावह, भक्तिगम्य, भक्तिसेव्य, भक्तितुष्ट-मानस ॥ १५ ॥

भक्तों को अभय देने वाला, भक्तों को अभीष्ट वस्तुयें देने वाला, प्रकाशमान, सूर्य के समान नेत्र वाला, सूर्य समूह के समान तेजस्वी ॥ १६ ॥

हजारों सूर्यों के समान, स्वर्भानु, आत्मभानु, जय को वहन करने वाला, जयन्त, जय देने वाला, यज्ञ, यज्ञ की आत्मा, यज्ञ में विजय देने वाला ॥ १७ ॥

जयसेन, जयत्सेन, विजय, विजय में प्रेम रखने वाला, दैदीप्यमान, सबसे महान्, जल की आत्मा, जल में उत्पन्न होने वाला जल ॥ १८ ॥

प्राचीन, पुराराति, त्रिपुर को नाश करने वाला, शत्रुओं को नाश करने वाला, पुराण, पुरुष, पुण्य, पुण्यगम्य, अतिशय पुण्यों को प्रदान करने वाला ॥ १९ ॥

प्रभंजन, प्रभु, पूर्ण, देवताओं में प्रथम, बलिष्ठ, प्रबल, अतिबलवान्, देव, वेदों से जानने योग्य, मनुष्यों का राजा ॥ २० ॥

नरेशो नारदो मानी दैत्यमानविमर्दनः।
अमोहो निर्ममो मान्यो मानवो मधुसूदनः॥ २१॥

मनुपुत्रो मयारातिर्मंगलो मंगलास्पदः।
मालवी मलयावासो महोभिः संयुतो नलः॥ २२॥

नराराध्यो नीलवासा नलात्मा नलपूजितः।
नलाधीशो नैगमिको निगमेन सुपूजितः॥ २३॥

निगमावेद्यरूपो हि धन्यो धेनरमित्रहा।
कल्पवृक्षः कामधेनुर्धनुर्धारी महेश्वरः॥ २४॥

दमनो दामिनीकान्तो दामोदर इरेश्वरः।
दमो दांतो दयावांश्च दानवेशो दनुप्रियः॥ २५॥

दन्वीश्वरो दमी दंती दन्वाराध्यो जनुप्रदः।
आनन्दकंदो मंदारिर्मंदारसुमपूजितः॥ २६॥

नित्यानन्दो महानंदो रमानन्दो निराश्रयः।
निर्ज्जरी निर्जरप्रीतो निर्ज्जरेश्वरपूजितः॥ २७॥

कैलासवासो विश्वात्मा विश्वेशो विश्वतत्परः।
विश्वम्भरो विश्वसहो विश्वरूपो महीधरः॥ २८॥

केदारनिलयो भर्त्ता धर्ता हर्ता हरीश्वरः।
विष्णुसेव्यो जिष्णुनाथो जिष्णुः कृष्णो धरापतिः॥ २९॥

बदरीनायको नेता रामभक्तो रमाप्रियः।
रमानाथो रामसेव्यो शैव्यापतिरकल्मषः[1]॥ ३०॥

धराधीशो महानेत्रिस्त्रनेत्रश्चारुविक्रमः।
त्रिविक्रमो विक्रमेशस्त्रिलोकेशस्त्रयीमयः॥ ३१॥

वेदगम्यो वेदवादी वेदात्मा वेदवर्द्धनः।
देवेश्वरो देवपूज्यो वेदांतार्थप्रचारक.।
वेदान्तवेद्यो वैष्णवश्च कविः काव्यकलाधरः॥ ३२॥

१. शैव्योऽपि हि व्रिकल्पषः।

मनुष्यों का प्रभु, नारद, मानी, दैत्यों का मर्दन करने वाला, मोहरहित, निर्मम माननीय, मानव, मधु दैत्य को मारने वाला ॥ २१ ॥

मनुपुत्र, मय दैत्य को मारने वाला, मंगल, मंगल को देने वाला, मालव, मलय पर्वत पर निवास करने वाला, आनन्दों से भरा हुआ, नल ॥ २२ ॥

मनुष्यों द्वारा पूजित, नील वस्त्रों को धारण करने वाला, नलरूप आत्मा, नल से पूजित, नल का अधिपति, वेदों को बनाने वाला, वेदों द्वारा पूजित ॥ २३ ॥

वेदों से जिसका रूप जाना जाता है, धन्य, धेनु, शत्रुओं को मारने वाला, कल्पवृक्ष, कामधेनु, धनुष को धारण करने वाला, महेश्वर ॥ २४ ॥

दमन, विद्युत के समान कान्तिमान्, दामोदर, इरेश्वर, दम, इन्द्रियों को विजय करने वाला, दयावान्, दानवों का राजा, दनु का प्रिय ॥ २५ ॥

दनु का ईश्वर, दमी, दंती, दनु द्वारा पूजित, सबका जन्मदाता, आनन्द को देने वाला, मंद का शत्रु, मंदार के पुष्पों से पूजित ॥ २६ ॥

हमेशा आनन्दित रहने वाला, महानन्द, रमा को आनन्द देने वाला, आश्रय रहित, वृद्धावस्था से रहित, देवताओं से प्रसन्न रहने वाला, इन्द्र द्वारा पूजित ॥ २७ ॥

कैलास में निवास करने वाला, संसार की आत्मा, संसार का पति, संसार में तत्पर, विश्व का पालन करने वाला, सँसार को धारण करने वाला, संसाररूप, पृथिवी को धारण करने वाला ॥ २८ ॥

केदार क्षेत्र में निवास करने वाला, भर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, हरीश्वर, विष्णु द्वारा सेवित, विष्णु का स्वामी, विष्णुस्वरूप, कृष्ण, पृथिवी का स्वामी ॥ २९ ॥

बदरीधाम का नायक, नेता, राम का भक्त, रमा का प्रिय, रमा का नाथ, राम द्वारा सेवित, शैव्या का पति, पापरहित ॥ ३० ॥

पृथिवी का पति, बड़े-बड़े नेत्र वाला, तीन नेत्र वाला, महापराक्रमी, त्रिविक्रम, विक्रमेश, तीनों लोकों का स्वामी, त्रयीमय ॥ ३१ ॥

वेदों के जानने योग्य, वेदों को बोलने वाला, वेदों का आत्मा, वेदों को बढ़ाने वाला, देवताओं का ईश्वर, देवताओं से पूजित, वेदान्त के अर्थ को प्रचारित करने वाला, वेदान्त से जानने योग्य, वैष्णव, कवि, काव्य-कला को धारण करने वाला ॥ ३२ ॥

कालात्मा कालत्हृकालः कलात्मा कालसूदनः ।
केलिप्रियः[1] सुकेलिश्च कलंकरहितः क्रमः ।। ३३ ।।

कर्मकर्त्ता सुकर्मा च कर्मेशः कर्मवर्ज्जितः ।
मीमांसाशास्त्रवेत्ता यः शर्वो मीमांसकप्रियः ।। ३४ ।।

प्रकृतिः पुरुषः पंचतत्वज्ञो ज्ञानिनां वरः ।
सांख्यशास्त्रप्रमोदी च संख्यावान्पण्डितः प्रभुः ।। ३५ ।।

असंख्यातगुणग्रामो गुणात्मा गुणवर्ज्जितः ।
निर्गुणो निरंहकारो रसाधीशो रसप्रियः ।। ३६ ।।

रसास्वादी रसावेद्यो नीरसो नीरजप्रियः ।
निर्मलो निरनुक्रोशी निर्दन्तो निर्भयप्रदः ।। ३७ ।।

गंगाख्यो गंगतोयं च मीनध्वजविमर्द्दनः ।
अंधकारिर्बृहद्दंष्ट्रो बृहदश्वो वृहत्तनुः ।। ३८ ।।

बृहस्पतिः सुराचार्य्यो गीर्वाणगणपूजितः ।
वासुदेवो महाबाहुर्विरूपाक्षो विरूपकः ।। ३९ ।।

पूष्णो दंतविनाशी च मुरारिर्भगनेत्रहा ।
वेदव्यासो नागहारो विषहा विषनायकः ।। ४० ।।

विरजाः सजलोऽनन्तो वासुकिश्चापराजितः ।
बालो वृद्धो युवा मृत्युर्मृत्युहा भालचन्द्रकः ।। ४१ ।।

बलभद्रो[2] बलारातिर्दृढधन्वा वृषभध्वजः ।
प्रमथेशो गणपतिः कार्तिकेयो वृकोदरः ।। ४२ ।।

अग्निगर्भोऽग्निनाभश्च पद्मनाभः प्रभाकरः ।
हिरण्यगर्भो लोकेशो वेणुनादः प्रतर्दनः ।। ४३ ।।

वायुर्भगो वसुर्भर्गो दक्षः प्राचेतसो मुनिः ।
नादब्रह्मरतो नादी नंदनावास अम्बरः ।। ४४ ।।

---

१. कलिप्रियः ।
२. "बलभद्रो······वृकोदरः" पाठ इसमें नहीं है ।

काल का आत्मा, काल का नाशक, काल, कला का आत्मा, काल को नष्ट करने वाला, क्रीड़ाओं का प्रेमी, सुकेलि, निष्कलंक, क्रम ॥ ३३ ॥

कर्मों को करने वाला, सुकर्मा, कर्मों का स्वामी, कर्मों से रहित, मीमांसा शास्त्र को जानने वाला, शर्व, मीमांसकों का प्रिय ॥ ३४ ॥

प्रकृति, पुरुष, पंचतत्त्व को जानने वाला, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, सांख्यशास्त्र प्रेमी, ज्ञानी, पंडित, प्रभु ॥ ३५ ॥

असंख्य गुणों का समूह, गुणों का आत्मा, गुणों से रहित, निर्गुण, अहंकार रहित, रसों का स्वामी, रसप्रेमी ॥ ३६ ॥

रसों का आस्वादन करने वाला, रस को जानने वाला, नीरस, कमल का प्रेमी, मलरहित, निरनुक्रोशी, निर्दन्त, निर्भयता को देने वाला ॥ ३७ ॥

गंगाख्य, गंगतोय, कामदेव को नाश करने वाला, अन्धक दैत्य को मारने वाला, बृहद्दंष्ट्र, बृहदश्व, बड़े शरीर वाला ॥ ३८ ॥

बृहस्पति, देवताओं का गुरु, गीर्वाण गणों से पूजित, वासुदेव, महाबाहु, विरूपाक्ष, विरूपक ॥ ३९ ॥

पूषा के दांत को तोड़ने वाला, मुर दैत्य को मारने वाला, इन्द्र के भगों को दूर करने वाला, वेदव्यास, सर्पों के हार को धारण करने वाला, विष को हरण करने वाला, विष का नायक ॥ ४० ॥

रजोगुण हीन, सजल, अनन्त, वासुकि, अपराजित, बाल, वृद्ध, युवा, मृत्यु को हरण करने वाला, सिर पर चन्द्रमा को धारण करने वाला ॥ ४१ ॥

बलभद्र, बल नामक असुर को नष्ट करने वाला, दृढ़ धनुष वाला, वृषभध्वज, प्रमथों का स्वामी, गणपति, कार्तिकेय, वृकोदर ॥ ४२ ॥

अग्निगर्भ, अग्निनाभ, पद्मनाभ, प्रभाकर, हिरण्यगर्भ, लोकेश, वेणुनाद, प्रतर्द्दन ॥ ४३ ॥

वायु, भग, वसु, भर्ग, दक्ष, प्रचेताओं का पुत्र, मुनि, नाद रूप ब्रह्म में मग्न, नादी, नंदनावास, अम्बर ॥ ४४ ॥

अम्बरीषोऽम्बुनिलयो जामदग्न्यः परात्परः ।
कृतवीर्य्यसुतो राजा कार्त्तवीर्य्यप्रमर्द्दनः ॥ ४५ ॥

जामदग्निर्जातरूपो जातरूपपरिच्छदः ।
कर्प्पूरगौरो गौरीशो गोपतिर्गोपनायकः ॥ ४६ ॥

प्राणीश्वरः प्रमाणज्ञोऽप्रमेयोऽज्ञाननाशनः ।
हंसो हंसगतिर्मीनो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४७ ॥

यमुनाधीश्वरो याम्यो यमभीतिविमर्द्दनः ।
नारायणो नारपूज्यो वसुवर्णो वसुप्रियः ॥ ४८ ॥

वासवो वलहा वृत्रहंता यंता पराक्रमी ।
बृहदश्वो बृहद्भानुर्वर्द्धनो वालवः परः ॥ ४९ ॥

शरभो नरसंहारी कोलशत्रुर्विभाकरः ।
रथचक्रो दशरथो रामः शस्त्रभृतांवरः ॥ ५० ॥

नारदीयो नरानन्दो नायकः प्रमथारिहा ।
रुद्रो रौद्रो रुद्रमुख्यो रौद्रात्मा रोमवर्जितः ॥ ५१ ॥

जलंधरहरो हव्यी हविर्द्धामा बृहद्धविः ।
रविः सप्तार्चिरनघो द्वादशात्मा दिवाकरः ॥ ५२ ॥

प्रद्योतनो दिनपतिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।
सोमोब्जो ग्लौश्च रात्रीशः कुजो जैवात्रिको बुधः ॥ ५३ ॥

शुक्रो दैत्यगुरुर्भौमो भीमो भीमपराक्रमः ।
शनिः पंगुर्मदांधो वै भंगाभक्षणतत्परः[1] ॥ ५४ ॥

राहुः[2] केतुः सैंहिकेयो ग्रहात्मा ग्रहपूजितः ॥ ५५ ॥

नक्षत्रेशोऽश्विनीनाथो मैनाकनिलयः शुभः ।
विन्ध्याटवीसमाच्छन्नः सेतुबन्धनिकेतनः ॥ ५६ ॥

---

१. भंचा भक्षण त्वत्परः ।
२. ' राहुः······निकेतनः'' पाठ इससे नहीं है ।

अम्बरीश, जल में निवास करने वाला, परशुराम, परात्पर, कृतवीर्य का पुत्र, राजा, कार्त्तवीर्य को मारने वाला ।। ४५ ।।

जामदग्नि, जातरूप, स्वर्णिम परिच्छद वाला, कर्पूर के समान गौर, पार्वती का पति, गौओं का स्वामी, गोपों का नेता ।। ४६ ।।

प्राणियों का ईश्वर, प्रमाणों को जानने वाला, अप्रमेय, अज्ञान को नाश करने वाला, हंस, हंस के समान गति वाला, मीन, ब्रह्मा, लोकों का पितामह ।। ४७ ।।

यमुना का स्वामी, दक्षिण दिशा का स्वामी, यम के भय को नष्ट करने वाला, नारायण, नारपूज्य, वसुओं के समान वर्ण वाला, वसुओं का प्रिय ।। ४८ ।।

वासव, बलहा, वृत्रासुर को मारने वाला, यंता, पराक्रमी, बृहदश्व, बृहद्भानु, वर्द्धन, बालव, पर ।। ४९ ।।

शरभ, नरों का संहार करने वाला, कोल का शत्रु, सूर्य रूप, रथचक्र, दशरथ, राम, शस्त्रों के प्रयोग कहने वालो में श्रेष्ठ ।। ५० ।।

नारदीय, नरानन्द, नायक, प्रमथों के शत्रुओं को मारने वाला, रुद्र, रौद्र, रुद्रमुख्य, रौद्र आत्मा वाला, रोम रहित ।। ५१ ।।

जलंधर को मारने वाला, हव्य, हवि को धारण करने वाला, बृहद्धवि, रवि, सप्तार्चि, पापरहित, द्वादश आदित्यों की आत्मा, दिवाकर ।। ५२ ।।

परम प्रकाश करने वाला, दिनपति, सप्तसप्ति, मरीचिमान्, सोमोब्ज, ग्लौ, रात्रि का स्वामी, कुज, बृहस्पति, बुध ।। ५३ ।।

शुक्र, दैत्यों का गुरु, भौम, भीम, बड़ा पराक्रमी, शनि, पंगु, मदान्ध, भांग खाने में तत्पर ।। ५४ ।।

राहु, केतु, सैंहिकेय, ग्रहात्मा, ग्रहों से पूजित ।। ५५ ।।

नक्षत्रों का स्वामी, अश्विनी देवताओं का नाथ, मैनाक पर्वत पर निवास करने वाला, शुभ, विन्ध्याटवी में व्याप्त, सेतुबन्ध रामेश्वर में निवास करने वाला ।। ५६ ।।

कूर्मपर्वतवासी च वागीशो वाग्विदांवरः।
योगेश्वरो महीनाथः पातालभुवनेश्वरः॥ ५७॥

काशीनाथो नीलकेशो हरिकेशो मनोहरः।
उमाकांतो यमारातिर्बौद्धपर्वतनायकः॥ ५८॥

तटासुरनिहंता च सर्वयज्ञसुपूजितः।
गंगाद्वारनिवासो वै वीरभद्रो भयानकः॥ ५९॥

भानुदत्तो भानुनाथो जरासंधविमर्द्दनः।
यवमालीश्वरः पारो गंडकीनिलयो हरः॥ ६०॥

शालग्रामशिलावासी नर्मदातटपूजितः।
बाणलिंगो बाणपिता बाणाधिर्बाणपूजितः॥ ६१॥

बाणासुरनिहन्ता च रामबाणो भयावहः।
रामदूतो रामनाथो रामनारायणोऽव्ययः॥ ६२॥

पार्वतीशः परामृष्टो नारदो नारपूजितः।
पर्वतेशः पार्वतीयः पार्वतीप्राणवल्लभः॥ ६३॥

सर्वेश्वरः सर्वकर्त्ता लोकाध्यक्षो महामतिः।
निरालम्बो हठाध्यक्षो वननाथो वनाश्रयः॥ ६४॥

श्मशानवासी दमंनो मदनारिर्मदालयः।
भूतवेतालसर्वस्वः स्कन्दः स्कन्दजनिर्जनः॥ ६५॥

वेतालशतनाथो वै वेतालशतपूजितः।
वेतालो भैरवाकारो वेतालनिलयो बलः॥ ६६॥

भूर्भुवः स्वर्वषट्कारो भूतभव्यविभुर्महः।
जनो महस्तपः सत्यं पातालनिलयो लयः॥ ६७॥

पत्री पुष्पी फली तोयी महीरूपसमाश्रितः।
स्वधा स्वाहा नमस्कारो भद्रो भद्रपतिर्भुवः॥ ६८॥

कूर्म पर्वत पर निवास करने वाला, वाणी का स्वामी, वाणी को जानने वालों में श्रेष्ठ, योगेश्वर, महीनाथ, पाताल लोक का पति ।। ५७ ।।

काशीनाथ, नीले बालों वाला, हरिकेश, मनोहर, उमा का स्वामी, यमाराति, बौद्ध पर्वत का नायक ।। ५८ ।।

तटासुर मारने वाला, सम्पूर्ण यज्ञों में सुपूजित, गंगाद्वार में रहने वाला, वीरभद्र, भयानक ।। ५९ ।।

भानुदत्त, भानुनाथ, जरासन्ध को मारने वाला, यवमालीश्वर, पार, गंडकी में निवास करने वाला, हर ।। ६० ।।

शालग्रामशिला में वसने वाला, नर्मदातट पर सुपूजित, बाणलिंग, बाणासुर का पिता, बाण का स्वामी, बाणासुर द्वारा पूजित ।। ६१ ।।

बाणासुर का निहन्ता, राम का बाण रूप, भय को दूर करने वाला, रामदूत, रामनाथ, रामनारायण, नष्ट न होने वाला ।। ६३ ।।

पार्वती का पति, परामृष्ट, नारद, जलों से पूजित, पर्वतों का स्वामी, पर्वत में रहने वाला, पार्वती का प्राणनाथ ।। ६३ ।।

सर्वेश्वर, सर्वकर्ता, लोकों का स्वामी, महामति, निरालम्ब, हठाध्यक्ष, वनों का नाम, वन को आश्रय देने वाला ।। ६४ ।।

श्मशान में निवास करने वाला, दमन, कामदेव का शत्रु, मदालय, भूत-बेतालों का सर्वस्व, स्कन्द, स्कन्द को उत्पन्न करने वाला, जन ।। ६५ ।।

सैकड़ों वेतालों का पति, सैकड़ों वेतालों द्वारा पूजित, वेताल, भैरव की आकृति वाला, वेतालों का निलय, बल ।। ६६ ।।

भूः, भूवः, स्वः, वषट्कार, भूत और भव्य का विभु, महान्, जनः, महः, तप, सत्य, पाताल में वास करने वाला, लय ।। ६७ ।।

पत्री, पुष्पी, फली, तोयी, पृथिवी रूप में आश्रित, स्वधा, स्वाहा, नमस्कार, भद्र, भद्रपति, भुवः ।। ६८ ।।

उमापतिर्व्योमकेशो भीमधन्वा भयानकः।
पुष्टस्तुष्टो धराधारो वलिदो वलिभृद् वली ॥ ६९ ॥

ओंकारो नृमयो मायी विघ्नहर्ता गणाधिपः।
ह्रों ह्रौं गम्यो ह्रौं जूँ सः हीं शिवायनमो ज्वरः ॥ ७० ॥

द्राँ द्राँ रूपो दुराधर्षो नादर्बिद्वात्मकोऽनिलः।
रस्तारो नेत्रनादश्च चण्डीशो मलयाचलः ॥ ७१ ॥

षडक्षरमहामंत्रः शस्त्रभृच्छस्त्रनायकः।
शास्त्रवेत्ता तु शास्त्रीशः शस्त्रमंत्रप्रपूजितः ॥ ७२ ॥

निर्वपुः सुवपुः कान्तः कान्ताजनमनोहरः।
भगमाली भगो भाग्यो भगहा भगपूजितः ॥ ७३ ॥

भगपूजनसंतुष्टो महाभाग्यसुपूजितः।
पूजारतो विपाप्मा च क्षितिबीजो धरोप्तिकृत् ॥ ७४ ॥

मंडलो मंडलाभासो मंडलार्द्धो विमंडलः।
चन्द्रमंडलपूज्यो वै रविमंडलमन्दिरः ॥ ७५ ॥

सर्वमंडलसर्वस्वः पूजामंडलमंडितः।
पृथ्वीमंडलवासश्च भक्तमंडलपूजितः ॥ ०६ ॥

मंडालत्परसिद्धिश्च महामंडलमंडलः।
मुखमंडलशोभाढ़्यो राजमंडलवर्ज्जितः ॥ ७७ ॥

निष्प्रभः प्रभुरीशानो मृगव्याधो मृगारिहा।
मृगाङ्कशोभो हेमाढ़्यो हिमात्मा हिमसुन्दरः ॥ ७८ ॥

हेमहेमनिधिर्हेमो हिमानीशो हिमप्रियः।
शीतवातसहश्शीतो ह्यशीतिगणसेवितः ॥ ७९ ॥

आशाश्रयो दिगातमा च जीवो जीवाश्रयः पतिः।
पतिताशीपतिः पान्थो निःपान्थोऽनर्थनाशकः ॥ ८० ॥

उमा का पति, व्योमकेश, भीषण धनुष को धारण करने वाला, भयानक, पुष्ट, तुष्ट, पृथिवी का आधार, बलि देने वाला, बलि को धारण करने वाला, बली ॥ ६९ ॥

ओंकार, नृमय, मायी, विघ्नों का नाशक, गणों का अधिपति, ह्रीं-ह्रौं से गम्य, "ह्रौं जूँ सः ह्रीं शिवायनमः", ज्वर ॥ ७० ॥

द्राँ द्राँ रूप, दुराधर्ष, नाद बिन्दु रूप, अनिल, रस्तार, नेत्रनाद, चण्डीश, मलयाचल ॥ ७१ ॥

छः अक्षरों के महामंत्र से अर्चित, शस्त्रों को धारण करने वाला, शस्त्रों का नायक, शास्त्रों को जानने वाला, शास्त्रज्ञों का पति, शस्त्र-मंत्रों द्वारा पूजित ॥ ७२ ॥

अशरीर, सुन्दर शरीर वाला, कान्त, कान्ताजन मनोहर, भगमाली, भग, भाग्य, भगहा, भगपूजित ॥ ७३ ॥

भगपूजन से सन्तुष्ट होने वाला, महाभाग्यशालियों से पूजित, पूजा में निरत रहने वाला, पाप रहित, पृथिवी का बीज रूप, पृथिवी को उत्पन्न करने वाला ॥ ७४ ॥

मंडल, मंडलाभास, मंडलार्द्ध, विमंडल, चन्द्रमण्डल के द्वारा पूजित, सूर्यमण्डल का मन्दिर ॥ ७५ ॥

समस्त मण्डलों का सर्वस्व, पूजामण्डल को मंडित करने वाला, पृथिवी मंडल का निवासी, भक्त मंडल के द्वारा पूजित ॥ ७६ ॥

मंडालत्परसिद्धि, महामंडमंडल, मुखमण्डल की शोभा बढ़ाने वाला, राज मंडल से अलग रहने वाला ॥ ७७ ॥

निष्प्रभ, प्रभु, ईशान, मृगव्याध, मृगों के शत्रुओं को मारने वाला, चन्द्रमा से सुशोभित, स्वर्ण से समृद्ध, हिमात्मा, हिमसुन्दर ॥ ७८ ॥

हेमहेमनिधि, हेम, हिमानीश, हिमप्रिय, सर्दी और आंधी को सहने वाला, शीत, अस्सी गणों द्वारा सेवित ॥ ७९ ॥

आशाओं का आश्रय, दिशाओं की आत्मा, जीव, जीवों का आश्रय, पतिताशी-पति, पान्थ, मार्ग रहित, अनर्थों का नाश करने वाला ॥ ८० ॥

बुद्धिदो बुद्धिनिलयो बुद्धो बुद्धपतिर्धवः ।
मेधाकरो मेधमानो मध्यो मेध्यो मधुप्रियः ।। ८१ ।।

मधुव्यो मधुमान्बंधुर्धुन्धुमारो धवाश्रयः ।
धर्मी धर्मप्रियो धन्यो धान्यराशिर्धनावहः ।। ८२ ।।

धरात्मजो धनो धान्यो मान्यनाथो मदालसः ।
लम्बोदरोऽलंकरिष्णुर्लंकनाथसुपूजितः ।। ८३ ।।

लंकाभस्मप्रियो लंको लंकेशरिपुपूजितः ।
समुद्रो मकरावासो मकरंदो मदान्वितः ।। ८४ ।।

मथुरानाथकोऽतंद्रो मथुरावासतत्परः ।
वृन्दावनमनःप्रीतिर्वृन्दापूजितविग्रहः ।। ८५ ।।

यमुनापुलिनावासः कंसचाणूरमर्द्दनः ।
अरिष्टहा शुभतनुर्माधवो माधवाग्रजः ।। ८६ ।।

वसुदेवसुतः कृष्णः कृष्णप्रियतमः शुचिः ।
कृष्णद्वैपायनो वेधाः सृष्टिसंहारकारकः ।। ८७ ।।

चतुर्विधो विश्वहर्त्ता धाता धर्मपरायणः ।
यातुधानो[1] महाकायो रक्षःकुलविनाशनः ।। ८८ ।।

घण्टावादो महानादो भेरीशब्दपरायणः ।
परमेशः पराविज्ञो ज्ञानगम्यो गणेश्वरः ।। ८९ ।।

पार्श्वमौलिश्चन्द्रमौलिर्धर्ममौलिः सुरारिहा ।
जंघाप्रतर्दनो जंभो जंभारातिररिन्दमः ।। ९० ।।

ओंकारगम्यो नादेशः सोमेशः सिद्धिकारणम् ।
अकरोऽमृतकल्पश्च आनन्दो वृषभध्वजः ।। ९१ ।।

आतमरतिश्चातमगम्यो यथार्थातमा नरारिहा ।
इकारश्चेतिकालश्च इतिहोतिप्रभंजनः ।। ९२ ।।

---

१. "यातु······परायण" पाठ इसमें नहीं है ।

बुद्धि को देने वाला, बुद्धि में वास करने वाला, बुद्ध, बुद्ध का स्वामी, धव, मेधाकर, मेधमान, मध्य, मेध्य, मधुप्रिय ।। ८१ ।।

मधुव्य, मधुमान्, बन्धु, धुन्धु नामक दैत्य को मारने वाला, धवाश्रय, धर्मी, धर्मप्रिय, धन्य, धान्यराशि, धनावह ।। ८१ ।।

पृथिवी का पुत्र, धन, धान्य, मान्यनाथ, मदालस, बड़े उदर वाला, अलंकरिष्णु, रावण द्वारा पूजित ।। ८३ ।।

लंका के भस्म में प्रीति रखने वाला, लंकारूप राम द्वारा पूजित, समुद्र, मकरावास, मकरंद, मदान्वित ।। ८४ ।।

मथुरा का पति, तन्द्रा से रहित, निरन्तर मथुरा वासी, वृन्दावन से प्रेम करने वाला, वृन्दा द्वारा पूजित शरीर वाला ।। ८५ ।।

यमुना की रेत में निवास करने वाला, कंस और चाणूर को मारने वाला, अरिष्ट नाशक, शुभतनु, माधव, माधव का बड़ा भाई (बलराम) ।। ८६ ।।

वसुदेव का पुत्र, कृष्ण, कृष्ण का अति प्रिय, शुचि, कृष्ण द्वैपायन, वेधा, सृष्टि का नाश करने वाला ।। ८७ ।।

चार प्रकार से समझने योग्य, संसार को नाश करने वाला, धाता, धर्मपरायण, यातुधान, महाकाय, राक्षसों के कुल को नष्ट करने वाला ।। ८८ ।।

घंटा की ध्वनि से प्रसन्न होने वाला, महानाद से प्रसन्न होने वाला, भेरी की ध्वनि से प्रसन्न होने वाला, परम ईश, पराविद्या को जानने वाला, ज्ञान से जानने योग्य, गणों का ईश्वर ।। ८९ ।।

पार्श्वमौलि, चन्द्रमौलि, धर्ममौलि, देवताओं के शत्रुओं को मारने वाला, जंघा को नष्ट करने वाला, जम्भ, जंभ का शत्रु, शत्रुओं का दमन करने वाला ।। ९० ।।

ओंकार से जानने योग्य, नाद का स्वामी, सोम का स्वामी, सिद्धियों का कारण भूत, हाथों से रहित, अमृतकल्प, आनन्द, वृषभध्वज ।। ९१ ।।

आत्मरति, आत्मगम्य, यथार्थात्मा, नरारिहा, इकार, काल, इतिहोतिप्रभंजन ।। ९२ ।।

ईशिताऽरिभवो ऋक्षः ऋकारवरपूजितः ।
लृवर्णरूपो लृकारो लृवर्णस्थो लरात्मवान् ॥ ९२ ॥

एऐरूपो महानेत्रो जन्ममृत्युविवर्ज्जितः ।
औतुरौतुरंडजस्थो हंतहंता कलाकरः ॥ ९४ ॥

कालीनाथः खंजनाक्षो खंडोऽखंडितविक्रमः ।
गन्धर्वेशो गणारातिर्घण्टाभरणपूजितः ॥ ९५ ॥

ङकारो ङीप्रत्ययश्च चामरश्चामराश्रयः ।
चीराम्बरधरश्चारुश्चारुचंचुश्चरेश्वरः ॥ ९६ ॥

छत्री छत्रपतिश्छात्रश्छत्रेशश्छात्रपूजितः ।
झर्झरो झंकृतिर्झंजा झंझेशो झंपरो झरः ॥ ९७ ॥

झंकेशांडधरो झारिष्टंकष्टंकारपूजितः ।
रोमहारिर्वृषारिश्च ढुंडिराजो झलात्मजः ॥ ९८ ॥

ढोलशब्दरतो ढक्का ढकारेण प्रपूजितः ।
तारापतिस्ततस्तंतुस्तारेशः स्तम्भसंश्रितः ॥ ९९ ॥

थवर्णस्थूत्करः स्थूलो दनुजो दनुजान्तकृत् ।
दाडिमीकुसुमप्रख्यो दांतारिर्दर्दरातिगः ॥ १०० ॥

दंतवक्रो दंतजिह्वो दंतवक्त्रविनाशनः ।
धवो धवाग्रजो धुंधुधौंधुमारिर्धराधरः ॥ १०१ ॥

धम्मिल्लीनो जनानन्दो धर्माधर्मविवर्जितः ।
नागेशो नागनिलयो नारदादिभिरर्चितः ॥ १०२ ॥

नंदो नंदीपतिर्नन्दी नंदीश्वरसहायवान् ।
पणः प्राणीश्वरः पान्थः पाथेयः पथिकार्चितः ॥ १०३ ॥

पानीयाधिपतिः पाथः फलवान् फलसंस्कृतः ।
फणीशतविभूषा च फणीफूत्कारमंडितः ॥ १०४ ॥

ईशिता, शत्रुओं का पराभव करने वाला, ऋक्ष, श्रेष्ठ ॠकार से पूजित, ऌवर्ण रूप ऌकार, ऌवर्ण में स्थित, ऌ रूप आत्मा वाला ॥ ९३ ॥

एऐ रूप, महानेत्र, जन्म मृत्यु से रहित, औतुरौतुरंडजस्थ, हंतहंता, कला को करने वाला ॥ ९४ ॥

काली का नाथ, खंजनाक्ष, खंड, अखंडित विक्रम, गन्धर्वेश, गणाराति, घंटों के आभूषणों से पूजित ॥ ९५ ॥

ङकार, ङी प्रत्यय, चामर, चामराश्रय, चीरवस्त्र को धारण करने वाला, चारु, चारुचंचु, चरेश्वर ॥ ९६ ॥

छत्री, छत्रपति, छात्र, छत्रेश, छात्रों द्वारा पूजित, झर्झर, झंकृति, झंजा, झंझेश, झंपर, झर ॥ ९७ ॥

झंकेश, अंडधर, झारिष्टंक, टंकार पूजित, रोमहारि, वृषारि, ढुंडिराज, झलात्मज ॥ ९८ ॥

ढोल शब्द में निरत रहने वाला, ढक्का, ढकार से पूजित, तारा का पति, तंतु, तारों का ईश, स्तम्भ में आश्रित ॥ ९९ ॥

थवर्ण को उत्पन्न करने वाला, स्थूल, दनुज, दानवों का नाश करने वाला, दाडिमीकुसुमप्रख्य (अनार के फूल के समान कान्ति वाला), दांतारि, दर्दरातिग ॥ १०० ॥

दन्तवक्र, दन्तजिह्व, दन्तवक्त्र का नाश करने वाला, धव, धवाग्रज, धुंधु, धौन्धु को मारने वाला, धराधर ॥ १०१ ॥

बड़े केशों वाला, मनुष्यों को आन्नदित करने वाला, धर्म और अधर्म से रहित, नागों का स्वामी, नागलोक में वास करने वाला, नारद आदि ऋषियों से पूजित ॥ १०२ ॥

नंद, नंदीपति, नन्दी, नंदीश्वर का सहायक, पण, प्राणियों का पति, पान्थ, पाथेय, पथिकार्चित ॥ १०३ ॥

जल का स्वामी, पाथ, फलवान्, फलसंस्कृत, सैकड़ों सर्पों से विभूषित, सर्पों के फूत्कार से मंडित ॥ १०४ ॥

फाल: फल्गुरथ: फान्तो वेणुनाथो वनेचर: ।
वन्यप्रियो वनानन्दो वनस्पतिगणेश्वर: ।। १०५ ।।

बालीनिहन्ता वाल्मीको वृन्दावनकुतूहली ।
वेणुनादप्रियो वैद्यो भगणो भगणार्चित: ।। १०६ ।।

भेरुण्डो भासको भासी भास्करो भानुपूजित: ।
भद्रो भाद्रपदो भाद्रो भद्रदो भाद्रतत्पर: ।। १०७ ।।

मेनकापतिसन्द्राश्वो महामैनाकपर्वत: ।
मानवो मनुनाथश्च मदहा मदलोचन: ।। १०८ ।।

यज्ञाशी याज्ञिको यामी यमभीतिविमर्द्दन: ।
यमको यमुनावासो यमसंयमदायक: ।। १०९ ।।

रक्ताक्षो रक्तदंतश्च राजसो राजसप्रिय: ।
रंतीदेवो रत्नमती रामनाथो रमाप्रिय: ।। ११० ।।

लक्ष्मीकरो लाक्षणिको लज्ञेशो लक्षपूजित: ।
लम्बोदरो लांगलिको लक्षलाभपितामह: ।। १११ ।।

बालको बालकप्रीतो वरेण्यो बालपूजित: ।
शर्व: शर्वी शरी शास्त्री शर्वरीगणसुन्दर ।। ११२ ।।

शाकम्भरीपीठसंस्थ: शाकद्वीपनिवासक: ।
षोढासमासनिलय: षंढ: षाढवमन्दिर: ।। ११३ ।।

षाडम्बाडंवर: षांड्य: षष्टीपूजनतत्पर: ।
सर्वेश्वर: सर्वतत्त्व: सामगम्यो समानक: ।। ११४ ।।

सेतु: संसारसंहर्त्ता सार: सारस्वतप्रिय: ।
हर्म्यनाथो हर्म्यकर्त्ता हेतुहानिहनोहर: ।। ११५ ।।

हालाप्रियो हलापांगो हनुमान्पतिरत्र्यय ।
सर्वायुधधरोऽभीष्टो भयो भास्वान्भयान्तकृत् ।। ११६ ।।

फाल, फल्गुरथ, कान्त, वेणुनाथ, वनेचर, वन्यप्रिय, वनानन्द, वनस्पति, गणों का ईश्वर ।। १०५ ।।

बाली को मारने वाला, वाल्मीक, वृन्दावन में कौतूहल रखने वाला, वेणु की ध्वनि का प्रेमी, वैद्य, भगण, भगणार्चित ।। १०६ ।।

भेरुण्ड, भासक, भासी, भास्कर, सूर्य से पूजित, भद्र, भाद्रपद, भाद्र, भद्रद, भाद्रतत्पर ।। १०७ ।।

मेनका का स्वामी मन्द्राश्व, विशाल मैनाक पर्वत, मानव, मनुनाथ, मद का विनाश करने वाला, मदिर नेत्रों वाला ।। १०८ ।।

यज्ञाशी, याज्ञिक, यामी, यम के भय को नाश करने वाला, यमक, यमुना में वास करने वाला, यम को संयम देने वाला ।। १०९ ।।

लाल आंखों वाला, लाल दांत वाला, राजस, राजस पदार्थों का शौकीन, रंतीदेव, रत्नमति, रामनाथ, रमा का प्रिय ।। ११० ।।

लक्ष्मी को देने वाला, लाक्षणिक, लक्षेश, लक्षपूजित, लम्बोदर, लांगलिक, लाखों का लाभ देने वाला, पितामह ।। १११ ।।

बालक, बालकों को प्रीति देने वाला, वरेण्य, बालकों से पूजित, शर्व, शर्वी, शरी, शास्त्री, शर्वरीगण सुन्दर ।। ११२ ।।

शाकम्भरी पीठ में निवास करने वाला, शाकद्वीप में रहने वाला, छः प्रकार के समासों का निलय, षढ, षाढत्र मन्दिर ।। ११३ ।।

षाडम्बाडंबर, षांड्य, षष्टी पूजन में निरत, सर्वेश्वर, सर्वतत्त्व, सामवेद से जानने योग्य, समान करने वाले ।। ११४ ।।

सेतु, संसार के नाशक, सार, सारस्वतों का प्रिय, हर्म्यनाथ, हर्म्यकर्ता, हर कारणों की हानियों के नाशक ।। ११५ ।।

मदिरा का प्रेमी, हलापांग, हनुमान्, पति, अव्यय, समस्त धातुओं का धारक, अभीष्ट, भय, भास्वान्, भय को नाश करने वाला ।। ११६ ।।

कुब्जाम्रकनिवासश्च झिंटीशो वाग्विदांवरः ।
रेणुका दुःखहन्ता च विराटनगरस्थितः ॥ ११७ ॥

जमदग्निर्भार्गवो वै पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
क्रांतिराजो द्रोणपुत्रोऽश्वत्थामा सुरथी कृपः ॥ ११८ ॥

कामाख्यनिलयो विश्वनिलयो भुवनेश्वरः ।
रघूद्वहो राज्यदाता राजनीतिकरो व्रणः ॥ ११९ ॥

राजराजेश्वरीकांतो राजराजसुपूजितः ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तः सर्वदारिद्र्यनाशनः ॥ १२० ॥

जटामंडलसर्वस्वो गंगाधारासुमंडितः ।
जीवदाताशयो धेनुर्यादवो यदुपुंगवः ॥ १२१ ॥

मूर्खवागीश्वरो भर्गो मूर्खविद्यो दयानिधिः ।
दीनदुःखनिहन्ता च दीनदाता दयार्णवः ॥ १२२ ॥

गंगातरंगभूषा च गंगाभक्तिपरायणः ।
भगीरथप्राणदाता काकुत्स्थनृपपूजितः ॥ १२३ ॥

मांधातृजयदो वैणः पृथुः पृथुयशाः[1] स्थिरः ।
जालमपादो जालमनाथो जालमप्रीतिविवर्द्धनः ॥ १२४ ॥

संध्याभर्ता रौद्रवपुर्महानीलशिलास्थितः ।
शंभलग्रामवासश्च प्रियानूपमपत्तनः ॥ १२५ ॥

शांडिल्यो ब्रह्मशौंडाख्यः शारदो वैद्यजीवनः ।
राजवृक्षो ज्वरघ्नश्च निर्गुण्डीमूलसंस्थितः ॥ १२६ ॥

अतिसारहरो जातीवल्कबीजो जलं नभः ।
जाह्नवीदेशनिलयो भक्तग्रामनिकेतनः ॥ १२७ ॥

पुराणगम्यो गम्येशः स्कंदादिप्रतिपादकः ।
अष्टादशपुराणानां कर्त्ता काव्येश्वरः प्रभुः ॥ १२८ ॥

१, पृथुयशाः ।

कुब्जाम्रक में निवास करने वाला, झिंटीश, वाग्विदों में श्रेष्ठ, रेणुका, दुःख का नाशक, विराट नगर में रहने वाला ॥ ११७ ॥

जमदग्नि, भार्गव, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, क्रान्तिराज, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सुरथी, कृप ॥ ११८ ॥

कामाख्या में निवास करने वाला, विश्वनिलय, भुवनों के ईश्वर, रघूद्वह, राज्य देने वाला, राजनीति को करने वाला, व्रण ११९ ॥

राजराजेश्वरी का पति, कुबेर द्वारा पूजित, समस्त बन्धनों से परे, समस्त दारिद्रय का नाश करने वाला ॥ १२० ॥

जटामंडल सर्वस्व, गंगा की धारा से सुसज्जित, जीवदाताशय, धेनु, यादव, यदुपुंगव ॥ १२१ ॥

मूर्ख, वाणी का ईश्वर, भर्ग, मूर्खों को विद्या देने वाला, दयानिधि, गरीबों के दुःखों का नाशक, दीनों को देने वाला, दया का समुद्र ॥ १२२ ॥

गंगातरंगभूषा, गंगाभक्ति परायण, भगीरथ का प्राणदाता, काकुत्स्थ वंशी राजाओं से पूजित ॥ १२३ ॥

मान्धाता को जय दिलाने वाला, वैण, पृथु, महान् यशस्वी, स्थिर, जाल्मपाद, जाल्मनाथ, जाल्मों की प्रीति को बढ़ाने वाला ॥ १२४ ॥

संध्या का पति, रौद्रवपु, महानीलशिला पर स्थित, शभल ग्राम में वास करने वाला, प्रियानूपमपत्तन ॥ १२५ ॥

शांडिल्य, ब्रह्मशौंडाख्य, शारद, वैद्यजीवन, राजवृक्ष, ज्वरों का नाश करने वासा, निर्गुंडी के मूल में स्थित ॥ १२६ ॥

अतिसार को नाश करने वाला, जातीवल्कबीज, जल, नभ, जाह्नवी देश का निवासी, भक्तों के ग्राम में रहने वाला ॥ १२७ ॥

पुराणों से जानने योग्य, गम्येश, स्कन्द आदियों का प्रतिपादन करने वाला, अठ्ठारह पुराणों को बनाने वाला, काव्य का ईश्वर, प्रभु ॥ १२८ ॥

जलयंत्रो जलावासो जलधेनुर्जलोदरः ।
चिकित्सको भिषग्वैद्यो निर्लोभो लोभतस्करः ॥ ४२९ ॥

चिदानन्दश्चिदाभासश्चिदात्मा चित्तवर्जितः ।
चित्सरूपश्चिरायुश्च चिरायुरभिदायकः ॥ १३० ॥

चीत्कारगुणसंतुष्टोऽचलोऽनन्तप्रदायकः ।
मासः पक्षो ह्यहोरात्रमृतुस्त्वयनरूपकः ॥ १३१ ॥

संवत्सरः परः कालः कलाकाष्ठात्मकः कलिः ।
सत्यं त्रेता द्वापरश्च तथा स्वायम्भुवः स्मृतः ॥ १३२ ॥

स्वारोचिषस्तामसश्च औत्तमी रैवतस्तथा ।
चाक्षुषो वैवस्वतश्च सावर्णिः सूर्यसंभवः ॥ १३३ ॥

दक्षसावर्णिको मेरुसावर्णिक इतिप्रभः ।
रौच्यो भौत्यस्तथा गव्यो भूतिदश्च तथादरः ॥ १३४ ॥

रागज्ञानप्रदो रागी रागी रागपरायणः ।
नारदः प्राणनिलयो नीलाम्बरधरोऽव्ययः ॥ १३५ ॥

अनेकनामा गंगेशो गंगातीरनिकेतनः ।
गंगाजलनिवासश्च गंगाजलपरायणः ॥ १३६ ॥

वसिष्ठ उवाच—

नाम्नामेतत्सहस्रं वै नारदेनोदितं तु यत् ।
तत्तेऽद्य कथितं देवि सर्वापत्तिनिवारणम् ॥ १३७ ॥

पठतः स्तोत्रमेतद्वै नाम्नां साहस्रमीशितुः ।
दारिद्र्यं नश्यते क्षिप्रं षड्भिर्मासैर्वरानने ॥ १३८ ॥

यस्येदं लिखितं गेहे स्तोत्रं वै परमात्मनः ।
नित्यं सन्निहितस्तत्र महादेवः शिवान्वितः ॥ १३९ ॥

स एव त्रिषु लोकेषु धन्यः स्याच्छिवभक्तितः ।
शिव एव परं ब्रह्म शिवान्नास्त्यपरः क्वचित् ॥ १४० ॥

जलयंत्र, जल का निवासी, जलधेनु, जलोदर, चिकित्सक, भिषक्, वैद्य, लोभ रहित, लोभ को चोरने वाला ॥ १२६ ॥

चिदानन्द, चिदाभास, चिदात्मा, चित्तवर्जित, चित्स्वरूप, चिरायु, दीर्घ आयु देने वाला ॥ १३० ॥

चीत्कारगुणसन्तुष्ट, अचल, अनन्त प्रदायक, मास, पक्ष, दिन और रात्रि रूप, ऋतु रूप, अयन रूप ॥ १३१ ॥

सम्वत्सर, पर, काल, कलाकाष्ठात्म, कलि, सत्य, त्रेता, द्वापर और स्वयं उत्पन्न होने वाला ॥ १३२ ॥

स्वारोचिष, तामस, औत्तमी, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि और सूर्य सम्भव ॥ १३३ ॥

दक्षसावर्णिक, मेरुसावर्णिक, इतिप्रभ, रौच्य, भौत्य, गव्य. भूतिद और आदर ॥ १३४ ॥

रागों के ज्ञान को देने वाला रागी, राग को जानने वाला, राग में निपुण, नारद, प्राणनिलय नील वस्त्रों को धारण करने वाला, अविनाशी ॥ १३५ ॥

अनेक नामों वाला, गंगेश, गंगातीर में निवास करने वाला, गंगा जल का वासी, गंगा जल परायण । इस प्रकार शिव के हजारों नाम हैं ॥ १३६ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे देवि ! जो नारद जी के द्वारा शिवसहस्रनाम वर्णित किया गया था, वह समस्त आपत्तियों को निवारण करने वाला है, जिसका वर्णन मैंने आप से किया है ॥ १३७ ॥

इस शिवसहस्रनाम स्तोत्र का निरन्तर छः महीने तक पाठ करने से दारिद्र्य का शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥ १३८ ॥

जिसके घर में यह परमात्मा का लिखा हुआ स्तोत्र स्थित रहता है, उस घर में नित्य पार्वती सहित शिव विद्यमान रहते हैं ॥ १३९ ॥

वही शिव भक्ति के करण तीनों लोकों में धन्य है । शिव ही परब्रह्म परमात्मा हैं । शिव से परे कोई वस्तु नहीं है ॥ १४० ॥

ब्रह्मरूपेण सृजति पाल्यते विष्णुरूपिणा ।
रुद्ररूपेण नयति भस्मसात् स चराचरम् ॥ १४१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मुमुक्षुः शिवमभ्यसेत् ।
स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं पठित्वा श्रीशिवो भवेत् ॥ १४२ ॥

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥
राज्यार्थी लभते राज्यं यस्त्विदं नियतः पठेत् ॥ १४३ ॥

दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नास्मात्किंचिन्महाभागे ह्यन्यदस्ति महीतले ॥ १४४ ॥

तावद्गर्जन्ति पापानि शरीरस्थान्यरुंधति ।
यावन्न पठते स्तोत्रं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ १४५ ॥

सिंहचौरग्रहग्रस्तो मुच्यते पठनात्प्रिये ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो लभते परमं सुखम् ॥ १४६ ॥

प्रातरुत्थाय यः स्तोत्रं पठते भक्तितत्परः ।
सर्वापत्तिविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ॥
जायते नात्र संदेहः शिवस्य वचनं यथा ॥ १४७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां श्रीशिव-
सहस्रनामस्तोत्रं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पंचषष्टितमोऽध्यायः

आहत-अनाहतोभयरूपनादस्याश्रयस्य देहस्योत्पत्त्यादिवर्णनं देहज्ञानपूर्वकमेव नादब्रह्मज्ञानवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

स्तुत एवं नारदेन तदैव भगवांच्छिवः ।
प्रत्यक्षमगमत्तस्य नारदस्य महात्मनः ॥ १ ॥

शिव ही इस चराचर का ब्रह्मरूप से सृजन करते हैं, विष्णुरूप से पालन करते हैं तथा रुद्ररूप से इस जगत् को भस्मसात् (नाश) करते हैं ।। १४१ ।।

इसलिए मुमुक्षुओं को हमेशा शिव का सेवन करने का प्रयत्न करना चाहिए। शिवसहस्रनाम स्तोत्र पढकर मानव शिवरूप हो जाता है ।। १४१ ।।

जिस-जिस वस्तु की वह कामना करता है, उसे निःसन्देह प्राप्त करता है। जो इस स्तोत्र को नियम से पढता है, पुत्रार्थी पुत्र को प्राप्त करता है, धनार्थी धन प्राप्त करता है और राज्यार्थी राज्य प्राप्त करता है ।। १४३ ।।

इस पाठ से दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं। यह पुण्य को देने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला है। हे महाभागे ! इस स्तोत्र से अधिक अन्य कुछ भी भूमि के ऊपर नहीं है ।। १४४ ।।

हे अरुन्धति ! शरीर में स्थित पाप तभी तक गर्जना करते हैं, जब तक परमात्मा शिव के सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ नहीं किया जाता ।। १४५ ।।

हे प्रिये ! सिंह, चौर एवं ग्रहों के द्वारा पीड़ित मनुष्य भी इस स्तोत्र के पाठ से मुक्त हो जाता है। इस स्तोत्र पाठ से समस्त व्याधियों से मुक्ति मिलकर मानव परम सुख को प्राप्त कर लेता है ।। १४६ ।।

जो मनुष्य इस स्तोत्र को भक्तियुक्त हो प्रातः उठकर पढ़ता है, वह समस्त आपत्तियों से मुक्ति पाकर धन-धान्य और पुत्र से युक्त हो जाता है : शिव जी कहते हैं कि इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। १४७ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-प्रशंसा में श्री शिव सहस्र नाम स्तोत्र नाम का चौसठवां अध्याम पूरा हुआ।

अध्याय ६५

आहत-अनाहत उभयरूप नाद के आश्रय में देह की उत्पत्ति आदि का वर्णन। देह का ज्ञान पहले होकर ही नाद ब्रह्म के ज्ञान का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—

नारद मुनि के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् महात्मा शिव उन नारद मुनि के समक्ष प्रकट हुये ।। १ ।।

नानाविभूतिसम्पन्नो नानागणविराजितः ।
वृषारूढो महाकायस्त्रिनेत्रो हिमसुन्दरः ।। २ ।।

व्यालयज्ञोपवीती च व्याघ्रचर्माम्बरोऽव्ययः ।
उमया सहितः शम्भुरुवाच वचनं प्रिये ।। ३ ।।

धन्योऽसि त्वं महाभाग यस्येयं भक्तिरीश्वरे ।
संतुष्टोऽस्मि तरां विप्र बरं वरय सुव्रत ।। ४ ।।

दुर्ल्लभं नास्ति ते किञ्चित्त्रिषु लोकेषु सर्वदा ।
मद्भक्तो नास्ति त्रैलोक्ये त्वत्तोऽन्यः प्रियको मम ।। ५ ।।

वरं ददामि ते सर्वं यत्ते मनसि संस्थितम् ।
यन्न कस्मै पुरा तच्च तुभ्यं दास्यामि नारद ।। ६ ।'

नारद उवाच—

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि दर्शनाते वृषध्वज ।
सम्पन्नो मे महान्कामो यस्य तुष्टो भवाञ्छिवः ।। ७ ।।

त्वत्प्रसादेन सर्वं हि प्राप्तं वै दर्शनात्तव ।
संगीतार्णवतः किंचिद्यथा जानामि तत्कुरु ।।८ ।।

नादरूपो भवान्देवः नादेनैव प्रियः सदा ।
ततोऽहं नादवेदं हि जानीयां त्वत्प्रसादतः ।। ९ ।।

न त्वं योगशतैस्तुष्टो न तीर्थशतमज्जनात् ।
न हि दानसहस्रेभ्यो न व्रतैः कोटिसंमितैः ।। १० ।।

गीताद्यथा महादेव सन्तुष्टः स्यान्महेश्वर ।
अहं च गानसंसर्गात्तव भक्तिपथे स्थितः ।। ११ ।।

संगीतशास्त्रसर्वस्वं वद मे सुकृपानिधे ।
येनाहं सर्वरागांश्च नादब्रह्ममयान्परान् ।। १२ ।।

जानीयां त्वप्रसादेन सन्तुष्टश्चेद्यतो मयि ।
क्वचिन्नास्त्यपरो ज्ञाता ब्रह्मणः परमात्मनः ।। १३ ।।

वे हिम के समान सुन्दर रूप वाले, विशाल शरीर वाले, तीन नेत्रों से युक्त, बैल पर बैठे हुये शिव अनेक विभूतियों से सम्पन्न थे तथा अनेक गणों से शोभायमान थे ॥ २ ॥

उन अविनाशी शिव का यज्ञोपवीत सर्प था और वे व्याघ्रचर्म को पहने हुये थे। हे प्रिये ! पार्वती को साथ में रखे हुये शिव ने उन नारदमुनि से कहा ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! आप धन्य हैं जिसकी भक्ति ईश्वर में है। हे विप्र ! मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ, अतः हे सुव्रत ! वर मांगो ॥ ४ ॥

आपको तीनों लोकों में कोई भी अप्राप्य वस्तु नहीं है। आपसे प्रिय भक्त भी तीनों लोकों में मेरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

अतः आपको मैं मनोवांच्छित वर देता हूँ। जो वर अब तक मैंने किसी को नहीं दिया, हे नारद ! उस वर को मैं आपको दूँगा ॥ ६ ॥

नारद ने कहा—

हे वृषध्वज ! आपके दर्शनों से मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया हूँ। मेरी महान् कामनायें सिद्ध हो गई हैं, जो कि मेरे ऊपर भगवान् शिव सन्तुष्ट हो गये हैं ॥ ७ ॥

आपके प्रसाद से और दर्शन से मुझे सब कुछ मिल गया है। आप ऐसा उपाय कीजिए कि मुझे कुछ संगीत विद्या रूपी सागर का ज्ञान हो सके ॥ ८ ॥

आप नादरूप देव हैं और आपको हमेशा नाद ही प्रिय है। इसलिए आपके प्रसाद से मैं नादवेद को जानना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

आप सैकड़ों योग करने से तथा सैकड़ों तीर्थों में स्नान करने से एवं हजारों दान देने से, करोड़ों व्रत करने से भी वैसे सन्तुष्ट नहीं होते···॥ १० ॥

हे महादेव ! शिव ! जिस प्रकार आप गान से सन्तुष्ट होते हैं। और मैं भी गान के पथ का अवलम्बन करके आपके भक्तिपथ में संलग्न हुआ हूँ ॥ ११ ॥

हे कृपालु ! संगीतशास्त्र का सर्वस्व मुझ से बोलिए, जिससे नादब्रह्म मय समस्त रागों को ॥ १२ ॥

यदि आप मेरे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो मैं आपके प्रसाद से जान सकूं। ब्रह्म परमात्मा का जानने वाला आपके अतिरिक्त कोई नहीं है ॥ १३ ॥

वसिष्ठ उवाच—

श्रीशिवोऽपि तदा श्रुत्वा विज्ञप्ति नारदस्य तु।
प्रसन्नश्चाब्रवीत् सर्वं नादशास्त्रमुमापतिः ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच—

संगीतं नाम शास्त्रं ते कथयामि महामुने।
त्रैलोक्यदीपकं नाम ये पठन्ति समाहिताः ॥ १५ ॥

पश्यन्ति ते तु त्रैलोक्यं सर्वज्ञाश्च भवंति हि।
पार्वत्यै कथितं यद्वै तत्ते वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ १६ ॥

गीतं नृत्यं च पाषंडं स्वररत्न निवेदितम्।
ध्रुवं रूपकसंकाशं परिबंधं तथैव च ॥ १७ ॥

गाहाकवित्वजे चैव रूपकं यतितालकम्।
पाषंडदर्शनं यस्य देहा हस्तं निवेदितम् ॥ १८ ॥

व्याहतुं कामतो मैनां सर्वं लयसमन्वितम्।
मृदंगपरिवादं च तत्सर्वं कथयाम्यहम् ॥ १९ ॥

नानात्मकं तथा गीतं नादवक्ता च वाद्यकम्।
तथा द्वयानुगं नृत्यं गीताधीनमतस्त्रयम् ॥ २० ॥

नादेन त्यजते वर्णः पदं बर्णात्पदाद्वचः।
वचसा सर्वमेतद्धि तस्मात्तादात्मकं जगत् ॥ २१ ॥

नादस्तु द्विविधः प्रोक्तोऽनाहताहतभेदतः।
पिण्डे तत्सर्वमखिलं तस्मात्पिंडो विविच्यते ॥ २२ ॥

परमात्मा चिदानन्दः स्वयंज्योतिर्निरंजनः।
अद्वितीयं चिदाभासं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २३ ॥

न वेत्ति माययाऽच्छन्नो नरो नारायणं परम्।
चामीकरं कण्ठगतं यथाऽज्ञो नारद प्रभुम् ॥ २४ ॥

अविद्योपहता जीवा यथाग्नेर्विस्फुलिंगकाः।
दार्वाद्युपाधिसंभिन्नास्तदंशा एव नारद ॥ २५ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

नारदमुनि के निवेदन को सुनकर उस समय प्रसन्न होकर पार्वती के पति शिव जी ने सम्पूर्ण नादशास्त्र नारदमुनि से कहा ।। १४ ।।

ईश्वर ने कहा—

हे महामुने ! संगीत नाम के शास्त्र को मैं आपसे कहता हूँ । मन को एकाग्र करके लोग तीनों लोकों के दीपक रूप इसको पढ़ते हैं···।। १५ ।।

वे तीनों लोकों का दर्शन करते हैं और सर्वज्ञ हो जाते हैं । जो मैंने पार्वती से कहा था, उसी को इस समय तुमसे कहूँगा ।। १६ ।।

उसमें गीत, नृत्य, पाषंड और स्वर-रत्न का प्रतिपादन है, ध्रुव, रूपक तथा परिवंध भी उसी में है ।। १७ ।।

जिसके गाहा और कवित्वज रूपक हैं, यति, ताल, पाषंड दर्शन, देह और आहस्त को आपसे निवेदन किया है ।। १८ ।।

सब कामनाओं की पूर्ति के लिए, समस्त लय आदि सहित मृदंग-परिवाद को मैं आपसे कहता हूँ ।। १९ ।।

अनेक प्रकार के गीत, नादवक्ता, वाद्य तथा दो प्रकार का नृत्य ये सभी तीनों प्रकार के संगीत के आधीन होते हैं ।। २० ।।

नाद से वर्ण का, वर्ण से पद का, पद से वाच्य का और वाच्य से सबका त्याग हो जाता है । अतः यह सम्पूर्ण संसार उससे व्याप्त है ।। २१ ।।

नाद आहत और अनाहत भेद से दो प्रकार का कहा गया है । ये दोनों प्रकार का पिंड (शरीर) में उपस्थित है, इसलिए पिंड का विवेचन किया जाता है ।। २२ ।।

सनातन परब्रह्म परमात्मा अद्वितीय हैं । वे चिदानन्द, स्वयं प्रकाशमान, निरंजन एवं चित्त को प्रकाशित करने वाले हैं ।। २३ ।।

हे नारद ! माया द्वारा अवरुद्ध दृष्टि वाला मनुस्य परमात्मा नारायण प्रभु को इसी तरह नहीं जान पाता, जिस तरह अज्ञानी मनुष्य अपने कंठ में सुवर्ण माला को नहीं पहचानता ।। २४ ।।

जिस प्रकार अग्नि के स्फुलिंग काष्ठ आदि के भेद से अनेक प्रतीत होते हैं, किन्तु हैं तो सब उसी के अंश । हे नारद ! माया से आहत प्राणी इसी प्रकार ईश्वर को भी पृथक् समझने लगते हैं ।। २५ ।।

अनादिभिः कर्मभिस्ते सुखदुःखात्मकैर्मुने ।
नानारूपाणि दधति देहानायुश्च कर्मजान् ।। २६ ।।

सूक्ष्ममेतच्छरीरं लिंगाख्यं परमं मतम् ।
सूक्ष्मेन्द्रियं पञ्चभूतप्राणावस्थात्मकं विदुः ।। २७ ।।

उपभोगाय जीवानां जगत्सृजति लोकपः ।
परमात्मा परानन्दो विश्रान्ते संहरत्यजः ।। २८ ।।

पुनः सृष्टिं च संहारं प्रवाहानादिसंभवम् ।
भिन्नास्ते ह्यात्मना जीवा भिन्नं चैवात्मनो जगत् ।। २९ ।।

सृजन्प्रकृत्या भिन्नोऽसौ सुवर्णान् कुण्डलादिवत् ।
रज्जौ भुजंगसंभ्रान्त्या ज्ञायते वै यथा परः ।। ३० ।।

आत्मनः पूर्वभाकाशस्ततो वायुस्ततोनलः ।
अनलात्तोययेतस्मात्पृथिवी समजायतः ।। ३१ ।।

महाभूतानि चोक्तानि तनुरेषा हि ब्रह्मणः ।
परमात्माऽसृजद्विश्वं वेदान्ददौ हरिः ।। ३२ ।।

भौतिकं वेदशब्दैश्च ससर्ज स च वै जगत् ।
नव प्रजापतीन्ब्रह्मा मनसैव तदासृजत् ।। ३३ ।।

तेभ्यस्तु रैतसी सृष्टिः शरीराणां निगद्यते ।
चतुर्विधानि चैतानि शरीराणि महामुने ।। ३४ ।।

स्वेदोद्भिदजराय्वंडभेदद्वै जगतीतले ।
यूकादयः स्वेदजाता ह्युद्भिजाश्च लतादयः ।। ३५ ।।

जरायोर्मानुषादीनां पक्ष्यादीनां तदंडतः[1] ।
नादः सर्वत्र देहेषु विशेषान्मानुषे स्मृतः ।। ३६ ।।

देहोत्पत्तिं मानुषस्य शृणु तस्मान्महामुने ।
आकाशे क्षेत्रपः पूर्वं तस्माद्वायुः समागतः ।। ३७ ।।

---

१ तदडज ।

हे मुने ! प्राणी सुख दु:खात्मक अनादि कर्मों के द्वारा अपने कर्मों के आधार पर विविध शरीरों को और आयु को धारण करते हैं ।। २६ ।।

इस परम सूक्ष्म शरीर को लिंग शरीर के नाम से कहा गया है । इसमें सूक्ष्म इन्द्रियां, पांच महाभूत और पांच प्राण होते हैं ।। २७ ।।

लोक पालक परमात्मा प्राणियों के उपभोग के लिए जगत् की रचना करते हैं । अजन्मा परानन्द परमात्मा विश्राम के निमित्त इसका संहार करते हैं ।। २८ ।।

फिर सृष्टि की रचना और संहार क्रम से होते रहते हैं । आत्मा से जीव भिन्न है और जीव से जगत् भिन्न है ।। २९ ।।

उससे भिन्न वह पुरुष प्रकृति से लोकों का उसी प्रकार सृजन करता है, जैसे सुवर्ण से अनेक कटक-कुण्डल आदि बनाये जाते हैं । जैसे रस्सी में सर्प की भ्रान्ति मात्र होती है , उसी प्रकार उसमें सृष्टि की भ्रान्ति होती है ।। ३० ।।

आत्मा से पहले आकाश की विद्यमानता है । आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न होती है ।। ३१ ।।

सब महाभूत परब्रह्म के शरीर कहे गये है । परमात्मा ब्रह्मा ने विश्व की रचना की और उनको भगवान् हरि ने वेदों को प्रदान किया ।। ३२ ।।

इस भौतिक जगत् की रचना ब्रह्मा ने वैदिक शब्दों के द्वारा की थी । उस समय ब्रह्मा ने अपने मन से नौ प्रजातियों का सृजन किया था ।। ३३ ।।

उन्हीं से शरीरों की रैतसी (वीर्य से) उत्पत्ति हुई । हे महामुने ! ये शरीर चार प्रकार से कहे गये हैं ।। ३४ ।।

भूमण्डल में स्वेदज, उद्भिज, जरायुज और अण्डज भेद से चार प्रकार की सृष्टि है । यूका आदि की सृष्टि स्वेदज और लता आदि वनस्पतियाँ की सृष्टि उद्भिज है ।। ३५ ।।

मनुष्य आदि की सृष्टि जरायुज तथा पक्षी आदि की सृष्टि अण्डज है । नाद इन सब देहों से मनुष्य देह में विशेष होता है ।। ३६ ।।

हे महामुने ! मनुष्य की देहोत्पत्ति को सुनिये । आकाश में पहले ही क्षेत्राधिप स्थित रहता है । उससे वायु का आविर्भाव होता है ।। ३७ ।।

वायुर्धूम्रस्तश्चाभ्रमभ्रं मेघेऽवतिष्ठते ।
यज्ञेनाप्यायितो ग्रस्तो ग्रीष्मे वै रश्मिभी रसः ॥ ३८ ॥

सूर्य्यो मेघे घनरसं धत्ते तं वै बलाहकः ।
यदा वर्षति जीवेन वर्षेण पृथिवीतले ।
ओषधींश्च तथा वृक्षान्संक्रामत्यविलक्षितः ॥ ३९ ॥

तदन्नजातं ताभ्यश्च पुरुषैः शुक्रतां गतम् ।
ऋतुस्नाता यदा योषिदार्त्तवं जायते रजः ॥ ४० ॥

निषिक्तं समरात्रेषु पुरुषः स्मरमंदिरे ।
विषमासु तदा नारी गर्भाशयगतं भवेत् ॥ ४१ ॥

कर्मणा प्रेरितो जीवो गर्भाशयगतस्तदा ।
गर्भत्वं चैव प्राप्नोति जलभूतोऽपि भौतिकः ॥ ४२ ॥

बुद्वुदः पंचरात्रेण कललं पंचविंशतिः ।
द्रवत्वं मासि चाप्नोति रेतःशोणितसंगमः ॥ ४३ ॥

द्वितीये मासि संप्राप्ते पेशी स्याद्घनमर्बुदम् ।
स्त्रीपुन्नपुंसका भावा जायंते मुनिवंदित ॥ ४४ ॥

तृतीये च तथा मासे करांघ्रिशिरसोंऽकुराः ।
अंगप्रत्यंगभागाश्च सूक्ष्माः स्युर्युगपन्मुने ॥ ४५ ॥

विहाय श्मश्रुदन्तादीन्यतस्ते प्रकृतेर्भवाः ॥ ४६ ॥
चतुर्थे मासि व्यक्तानि अंगान्यपि हि नारद ।
शौर्यादयस्तथा भावाः पुरुषाणां महामुने ॥ ४७ ॥

भीरुत्वाद्यास्तथा स्त्रीणां संकीर्णाः संकरात्मनाम् ।
यादृक्प्रकृतिको गर्भस्तादृशी जननी तथा ॥ ४८ ॥

मातृजं चापि हृदयं विषयानपि कांक्षति ।
अत एव महाभाग नारीं दौहृदिनीं विदुः ॥ ४९ ॥

प्रथम वायु, तदनन्तर धूम, उसके पश्चात् अभ्र होता है। यह अभ्र मेघ में स्थित होता है। यह अभ्र यज्ञ से आप्यामित होता है। ग्रीष्म ऋतु में इसमें सूर्य की किरणों से जल भर जाता हे ॥ ३८ ॥

सूर्य मेघ में रस रूप जल को धारण कर देते हैं। उसको मेघ (बलाहक) धारण करता है। जब वह जीवनदायक जल भूमण्डल पर बरसता है तब वह औषधियों एवं वृक्षों में अलक्षित रूप से प्रविष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

उससे अन्न उत्पन्न होता है, जिससे पुरुषों में वीर्य की उत्पत्ति होती है। जब स्त्री ऋतुस्नाना होती है, तब वह आर्तव रूप रजस् होता है ॥ ४० ॥

काममन्दिर में समरात्रि अथवा विषमरात्रि में वीर्य का सेचन करने पर गर्भाशय में पुरुष या नारी के रूप में स्थित होता है। (अर्थात् समरात्रि में सेचन करने से पुरुष एवं विषम रात्रि में सेचन करने से स्त्री की गर्भ में स्थिति होती है) ॥ ४१)।

कर्म के द्वारा प्रेरित जीव गर्भाशय में जब स्थित होता है, तब भौतिक अवस्था में जल रूप होते हुये भी गर्भ बनता है ॥ ४२ ॥

पांच रात्रियों में वह गर्भ बुदबुद स्वरूप, पच्चीस रात्रियों में कमल रूप, तथा एक महीने में वह रज और वीर्य का संयोग द्रवत्व को प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

मुनियों वंदित हे नारद ! दूसरे महीने में उसमें घनत्त्व होकर अर्बुद बनकर पेशियाँ बनती हैं ? अब इसमें स्त्री-पुरुष के चिह्न उत्पन्न होने लगते हैं ॥ ४४ ॥

तीसरे महीने में हाथ, पैर और सिर के अंकुर निकलने लगते हैं। हे मुने ! अंग, प्रत्यंग और सूक्ष्म भाग भी एक साथ उत्पन्न होने लगते हैं ॥ ४५ ॥

मूंछ, दाढी और दांतों को छोड़कर अन्य सभी अंग उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि जन्म के अनन्तर वे स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं ॥ ४६ ॥

हे महामुने नारद ! चतुर्थ मास में सभी अंग स्पष्ट हो जाते हैं। पुरुषों के शौर्य आदि भाव भी व्यक्त होने लगते हैं ॥ ४७ ॥

स्त्रियों में भीरुत्व एवं नपुंसकों में संकीर्ण भाव व्यक्त होने लगते हैं। गर्भ की जैसी प्रकृति होती है माता वैसी ही होने लगती हैं ॥ ४८ ॥

और माता का हृदय उसी प्रकार के विषयों की आकांक्षा करता है। इसलिए हे महाभाग ! इस अवस्था में स्त्री को दौहृदिनी कहते हैं (दोहृद = दो हृदय वाली = एक हृदय गर्भस्थ शिशु का, दूसरा गर्भवती का ॥ ४९ ॥

मनोऽभीष्टाप्रदानाद्धि गर्भस्य व्यंगतादयः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्मनोऽभीष्टमाचरेत् ॥ ५० ॥

मातुर्यद्विषयालाभः स तु स्यात्तेन दुःखितः ।
दोहदादर्थवान् भोगी राजकीयो भवेत्सुतः ॥ ५१ ॥

अलंकारप्रियश्चैव तपस्वी धर्मतत्परः ।
देवतादर्शने प्रीतो भीतो भुजगदर्शने ॥ ५२ ॥

गोधाशनात्तु निद्रालुर्बलवान् मांसभक्षणात् ।
माहिषेण सुरक्ताक्षं लोमशं च प्रसूयते ॥ ५३ ॥

एवं सर्वविकाराश्च संपद्यंते नरेऽखिलाः ।
पंचमे च तथा मासे मांसशोणितपुष्टता ॥ ५४ ॥

अंगानां संधयश्चैव विविच्यते पृथक्पृथक् ।
षष्ठे मासि महाभाग नखस्नायुविविक्तता ॥ ५५ ॥

रोमाणां च तथा विप्र बलं चैव सुवर्णकम् ।
सप्तमे ह्यंगसंपूर्तिर्ज्ञायते च तपोनिधे ॥ ५६ ॥

अधोमुखः स्वहस्ताभ्यां कर्णरंध्रे पिधाय सः ।
उद्विग्नो भ्रांतचेताश्च गर्भस्थमलसंवृतः ॥ ५७ ॥

स्मरते पूर्वकर्माणि ह्यनुभूतान्यनेकशः ।
नाना जातीस्तथा स्वस्य गर्भवासप्रपीडितः ॥ ५८ ॥

धिक्करोति तदाऽऽत्मानं निंदते च पुनः पुनः ।
केन वै कर्म्मणा मुक्तो भवेयं गर्भवासतः ॥ ५९ ॥

पापात्माहं येन दुःखमेतद्भोक्ष्यामि दुःखितः ।
पुनः कदाचित्संसारे भवेयं विष्णुतत्परः ॥ ६० ॥

गंगास्नानरतो यस्मान्न भवेयं पुनर्यथा ।
इत्यादि मानसेनेच्छन् ह्यष्टमे बलपूर्णता ॥ ६१ ॥

मन इच्छित वस्तु प्रदान न करने से गर्भ में व्यंगता (अंगों का विकृत होना) आदि रोग होते हैं। इसलिए सब प्रकार से प्रयत्न करके स्त्री को अभिलषित वस्तु देनी चाहिये ।। ५० ।।

माता को अभिलषित वस्तु न मिलने से गर्भस्थ जीव दुःखी होता है । दोहद मिलने से ही पुत्र धनवान्, भोगवान् तथा राज करने वाला होता है ।। ५१ ।।

और अलंकार प्रिय, तपस्वी, धर्म में तत्पर रहने वाला, देव दर्शन में प्रीति रखने वाला होता है और सांप (कुटिल व्यक्ति) के देखने में डरने वाला होता है ।। ५२ ।।

गोधा (गोह) का मांस खाने से सन्तान निद्रा प्रिय, मांस भक्षण से बलिष्ठ, महिष के मांस खाने से लाल नेत्रों वाली एवं लोमश (बड़े रोमों वाली) सन्तान उत्पन्न होती है ।। ५३ ।।

और इस प्रकार मनुष्य में सब विकार उत्पन्न होते हैं । पांचवें महीने उसमें मांस और रक्त पुष्ट होने लगते हैं ।। ५४ ।।

और अंगों के सन्धि स्थल भी अलग-अलग स्पष्ट होने लगते हैं । हे महाभाग ! छठे महीने में नख और स्नायु भी अलग-अलग प्रतीत होने लगते हैं ।। ५५ ।।

हे विप्र ! रोमों की प्रतीति, बल और वर्ण स्पष्ट हो जाते हैं । हे तपोनिधे ! सातवें महीने समस्त अंगों की सम्पूर्ति हो जाती है ।। ५६ ।।

नीचे की ओर मुख किये हुये, अपने हाथों से कानों के छिद्रों को दबाये हुये वह उद्विग्न एवं भ्रान्त मन वाला गर्भस्थ शिशु मल से व्याप्त रहता है ।। ५७ ।।

अपने पहले के अनेक कर्मों को तथा अनेक जन्मों को स्मरण करता हुआ वह जीव अपने गर्भवास में प्रपीड़ित रहता है ।। ५८ ।।

अपनी आत्मा को धिक्कार देता हुआ वह बार-बार अपनी निन्दा करता है । किस कर्म से मेरी इस गर्भवास से मुक्ति होगी, यह सोचता है ।। ५९ ।।

मैं पापात्मा हूँ, जिससे इन दुःखों को भोगकर दुःखित हो रहा हूँ । फिर यदि मेरा जन्म संसार में हो जाय तो मैं विष्णु भक्ति में तत्पर हो जाऊँगा ।। ६० ।।

मैं गंगा स्नान करने में रत रहूँगा, जिससे मेरा पुनः जन्म नहीं होगा । इस प्रकार विचार करते हुये ही अष्टम मास में बल की पूर्णता हो जाती है ।। ६१ ।।

नवमादिषु मासेषु समयः प्रसवस्य हि।
अनुभुंक्ते स्वकर्माणि गर्भस्थः पुण्यवर्जितः ॥ ६२ ॥

दुःखेन महताविष्टो ध्यायते च परात्परम्।
नाडीरसवहा मातुरनुबद्धाऽपराऽभिधा ॥ ६३ ॥

नाभिस्था स्रवते चास्य गर्भस्थस्य मुखे मुने।
कृतांजलिपुटो भाले पृष्ठे मातुः समास्थितः ॥ ६४ ॥

आस्ते संकोचयन्गात्रं गर्भदक्षिणपार्श्वगः।
नारी तु वामपार्श्वस्था क्लीवो मध्ये समास्थितः ॥ ६५ ॥

प्रसूतिमारुतैर्विप्र क्रियतेऽधःशिराः शिशुः।
महदार्त्तिसमायुक्तः प्रेरितः सूतिमारुतैः ॥ ६६ ॥

संकोचयंस्तु गात्राणि यंत्रच्छिद्रेण वै तदा।
निःसार्य्यते प्रकुर्वन्स मातुरार्त्तिं मुनीश्वर ॥ ६७ ॥

पूयक्लिन्नो यथा कीटो व्रणादिव महौषधैः।
संसारवायुना स्पृष्टो जातमात्रस्तदैव हि।
पूर्वसंस्कारसंपन्नो नष्टान्यस्मृतिरंजसा ॥ ६८ ॥

स्तन्यपाने प्रवृत्तोऽसौ बालको भवमोहितः।
मातृजाः पितृजा भावा षड्विधाः सर्वदेहिनाम् ॥ ६९ ॥

प्रसंगात्तानहं वक्ष्ये नादहेतून्महामुने ॥ ७० ॥

आत्मजा राजसा प्रोक्ताः सात्त्विकाः सत्त्वसंभवाः।
तमोभवास्तथा भावास्तामसाः परिकीर्त्तिताः ॥ ७१ ॥

मृदुताऽसृक्तथा मेदो प्लीहा मज्जा यकृद्गुदः।
हृदयं नाभिरित्याद्या मातृजाः समुदीरिताः ॥ ७२ ॥

श्मश्रूणि रोमकेशाश्च स्नायुर्धमनयो नखाः।
दंतास्तथैव शुक्रं च भावाः पित्र्युद्भवाः स्थिराः ॥ ७३ ॥

नवम आदि महीनों में प्रसव का समय पूरा होता है। उस समय तक पुण्यों से रहित हुआ वह अपने कर्मों का भोग करता है ॥ ६२ ॥

महान् दुःख से व्याप्त होकर वह परमात्मा का ध्यान करता है। माता से अनुबद्ध एक रसवाहिनी बाड़ी अपरा नाम की है ॥ ६३ ॥

हे मुने ! नाभि प्रान्त में स्थित यह नाड़ी उस गर्भस्थ जीव के मुख में रस स्रवित करती है। गर्भस्थ जीव ऊपर मुख किये माथे पर हाथ जोड़ कर माता के पृष्ठ भाग में स्थित रहता है ॥ ६४ ॥

यह जीव अपने अंगों को सिकोड़े हुये, पुरुष होने पर गर्भाशय के दक्षिण पार्श्व में स्थित रहता है। स्त्री होने पर वाम भाग में तथा नपुंसक होने पर मध्यभाग में स्थित रहता है ॥ ६५ ॥

हे ब्राह्मण ! प्रसव की वायु उस जीव के सिर को नीचा कर देती है। प्रसव-वायु के द्वारा प्रेरित वह जीव महान् दुःखों से पीड़ित रहता है ॥ ६६ ॥

वह वायु उसके अंगों को संकुचित करके योनि के यंत्रच्छिद्र से बाहर निकाल देता है। हे मुनीश्वर ! गर्भ से बाहर निकालते समय इसकी माता को बड़ा दुःख होता है ॥ ६७ ॥

जिस प्रकार पीप से व्याप्त कीट महान् औषधियों से व्रण से निकाले जाते हैं, ऐसे ही वह गर्भ वायु के द्वारा बाहर निकाला जाता है। उत्पन्न होते ही सांसारिक वायु उलका स्पर्श करता है। पूर्व संस्कारों से सम्पन्न होते हुये भी उसकी अन्य स्मृति शीघ्र विनष्ट हो जाती है ॥ ६८ ॥

सांसारिक वातावरण से मोहित हुआ यह बालक माता के स्तन-पान में प्रवृत्त हो जाता है। समस्त देहधारियों में छः मातृज और छः पितृज भाव होते हैं ॥ ६९ ॥

हे महामुने ! अब मैं प्रसंगवशात् नाद-हेतु उनका वर्णन करूंगा ॥ ७० ॥

आत्मा से उत्पन्न भाव राजस, सत्त्व से उत्पन्न भाव सात्त्विक और तमोगुण से उत्पन्न भाव तामस कहे गये हैं ॥ ७१ ॥

कोमलता, रक्त, मेद, (चर्वी), प्लीहा, मज्जा, यकृत्, गुदा, हृदय और नाभि ये सब मातृज भाव हैं ॥ ७२ ॥

श्मश्रु (दाढी, मूछ) रोम, केश, स्नायु, धमनियां, नख, दांत और वीर्य ये पितृज भाव हैं ॥ ७३ ॥

वपुर्वर्द्धिष्णुता रूपं बलं वृद्धिस्तथा स्थितिः ।
अलुब्धत्वं तथा तृप्तिरित्याद्या राजसा मताः ॥ ७४ ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नोत्तानमेव च ।
धर्माधर्मौ तथा चायुर्भावना इंद्रियाणि च ।
आत्मजास्तु महाभाग प्रोक्ता भावा मदादिभिः ॥ ७५ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि वक्ष्यामि तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
चक्षुः श्रोत्रं तथा जिह्वा स्पर्शनं घ्राणमेव च ॥ ७६ ॥

कर्मेन्द्रियाणि वाक्चैव करांघ्री गुदमेहने ।
विषयाः शब्दरूपे च स्पर्शो गंधस्तथा रसः ॥ ७७ ॥

वचनादानगमना विसर्गानंदनाः परे ।
क्रियास्तेषां महाभाग मनोबुद्ध्यंतरद्वयम् ॥ ७८ ॥

सुखदुःखे मनो हेतुः स्मृतिर्भीतिर्विकल्पकम् ।
धियः क्रियाः समाख्याताः कर्मादेव महामुने ॥ ७९ ॥

तदंककरणं भेदास्त्रिधा प्रोक्तास्त्रिभिर्गुणैः ।
आस्तिक्यं देवभक्तिश्च विप्रभक्तिस्तथैव च ॥ ८० ॥

इत्याद्याः सात्त्विका भावा राजसांश्च तथा शृणु ।
कामः क्रोधस्तथा मानो मदोऽहंमान एव च ।
इत्याद्या राजसाः प्रोक्ताः निद्रालस्यं प्रमादकः ॥ ८१ ॥
हिंसाऽसूयाप्रभृतयस्तामसाः परिकीर्त्तिताः ।
अनालस्यं तथारोग्यं प्रसन्नेंद्रियता तथा ।
इत्याद्याः स्वात्मजा भावाः प्रोक्ता योगविशारदैः ॥ ८२ ॥
पंचभूतात्मको देहो यस्मादुद्गुणको मतः ।
उत्क्षेपणादिकर्माणि पंच प्रोक्तानि योगिभिः ॥ ८३ ॥
प्राणापानौ तथा व्यानः समानोदानकौ तथा ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ ८४ ॥
दशैते वायवः प्रोक्ता विकृतश्च तथा ततः ।
तेषां श्रेष्ठस्तथा प्राणो नाभिकंठादिषु स्थितः ॥ ८५ ॥

शरीर की वृद्धि, रूप, बल, वृद्धि, स्थिति, लोभ न होना और तृप्ति इत्यादि राजस भाव हैं ॥ ७४ ॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, उन्नति, धर्म, अधर्म, आयु, भावना और इन्द्रियां, हे महाभाग ! ये आत्मज भाव कहे गये हैं ॥ ७५ ॥

अब मैं ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को कहूँगा। आंख, कान, जिह्वा, नाक, त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं ॥ ७६ ॥

वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं। शब्द, रूप स्पर्श, गन्ध तथा रस ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं ॥ ७७ ॥

वचन, ग्रहण करना, चलना, त्याग और आनन्द, हे महाभाग ! इनकी क्रियायें हैं। मन और बुद्धि इन दो के अन्तर्गत ये भाव रहते हैं ॥ ७८ ॥

सुख एवं दुःख में मन हेतु है। हे महामुने ! स्मृति, भय, संकल्प-विकल्प ये बुद्धि की क्रियायें क्रम से कही गई हैं ॥ ७९ ॥

सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के भेद से इनके भी तीन ही भेद कहे गये हैं। आस्तिकता, देवभक्ति और विप्रभक्ति ॥ ८० ॥

ये सात्त्विक भाव हैं। अब राजस भावों को सुनो। काम, क्रोध, मद और अहंकार राजस भाव कहे गये हैं। निद्रा, आलस्य, प्रमाद ॥ ८१ ॥

हिंसा, असूया आदि अनेक तामस भाव कहे गये हैं। आलस्य न होना, आरोग्यता, इन्द्रियों की प्रसन्नता आदि योगियों ने अपने आत्मज भाव कहे हैं ॥ ८२ ॥

शरीर पंच भूतात्मक है, जिनके आधार से योगियों द्वारा कहे गये पांच उत्क्षेपण आदि कर्म वह करता है ॥ ८३ ॥

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय···॥ ८४ ॥

यह दस प्रकार की वायु कही गई है। उसके बाद की वायु विकृत होती है। उनमें प्राणवायु सर्वश्रेष्ठ है, जिसका स्थान नाभि, कंठ आदि में है ॥ ८५ ॥

मुखनासिकयोर्नाभौ हृत्कुंजे संचरत्यसौ ।
उच्चारणं च शब्दस्य निश्वासोच्छ्वासकासका: ।। ८६ ।।

एतेषां कारणं प्रोक्तोऽपानवायुर्गुदे मत: ।
यथोदरे च जंघायां नाभिजानूरुषु स्थित: ।। ८७ ।।

अस्य कर्म विसर्ग: स्यान्मुने मूत्रपुरीषयो: ।
श्रोत्राक्षिगुल्फकट्यां च घ्राणे व्यानश्च कीर्त्तित: ।। ८८ ।।

प्राणापानधृतित्यागग्रहणाद्यस्य कर्म च ।
समानो व्याननिलयं शरीरे वह्निना सह ।। ८९ ।।

द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीरंध्राणि नारद ।
तेषु वै संचरन्वायुर्देहपुष्टिं करोति वै ।। ९० ।।

पादयोर्हस्तयो: संधावुदानस्तस्य कर्म च ।
देहत्रयेनोत्क्रमणे कीर्त्तितं तव नारद ।। ९१ ।।

पंच नागादयो धातून्प्राणानाश्रित्य सर्वदा ।
निमेषोद्गारछिक्काादितंद्राशोभादिकर्म च ।। ९२ ।।

घ्राणेन्द्रियं तथा भूमेर्गन्धाद्या: स्थैर्य्यधैर्य्यकौ ।
गौरवं श्मश्रुकेशाश्च नखदंताश्च कीकसम् ।। ९३ ।।

वातादिधातुप्रकृतिर्व्योमादिप्रकृतिस्तथा ।
अद्भ्यस्तु रसनं शैत्यं स्वेदमूत्रादि मार्द्दवम् ।। ९४ ।।

तेजसो लोचनं रूपं पित्तं पाक: प्रकाशता ।
ओजस्तेजस्तथा शौर्यं मेधावित्वं तथोष्मता ।। ९५ ।।

सप्तप्रकारा देवर्षे सात्त्विको देवविग्रह: ।
ब्रह्मेंद्रयमकौबेरगंधर्ववारुणार्थिक: ।। ९६ ।।

षड्विधो राजस: ख्यात: पैशाचो राक्षसासुरौ ।
शाकुन: सार्पप्रेताख्यो विग्रह: परिकीर्त्तित: ।। ९७ ।।

मुख में, नासिका में, नाभि में और हृदय में इस वायु का संचार होता है। शब्द का उच्चारण करना, श्वास लेना, श्वास का परित्याग करना तथा खांसना आदि इसके कार्य हैं ।। ८६ ।।

यह इनका कारण है। अपान वायु की स्थिति गुदा में रहती है। उदर, जंघा, नाभि, जानु तथा उरु में इस वायु की स्थिति रहती है ।। ८७ ।।

हे मुने ! इस वायु का कार्य मलमूत्र परित्याग करना है। व्यान वायु की स्थिति कान, आंख, गुल्फ और कटि में रहती है ।। ८८ ।।

प्राण, अपान, धृति का त्याग एवं ग्रहण इस वायु के कार्य हैं। समान वायु भी व्यान वायु के स्थानों में निवास करता है। शरीर में यह अग्नि के साथ स्थित रहता है ।। ८६ ।।

हे नारद ! बहत्तर हजार नाडियों के छिद्रों में विचरण करके यह वायु देह को पुष्ट करता है ।। ६० ।।

उदान वायु हाथ और पैरों की सन्धियों में स्थित रहता है। उसका कार्य देह को उन्नत एव अवनत करना है। हे नारद ! यह मैंने आपसे वर्णित किया है ।। ६१ ।।

नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पांच वायु हमेशा धातुओं और प्राणों का आश्रय लेकर निमेष, उद्गार, छिक्का, तंद्रा, शोभा आदि कर्मों को सम्पादित करते हैं ।। ६३ ।।

नासिका इन्द्रिय के सूंघना आदि कार्य, भूमि के स्थैर्य्य एवं धैर्य्य गुण सब उन्हीं के द्वारा सम्पन्न होते हैं। भारीपन, दाढी, मूंछ, केश, नख, दांत, हड्डियां ।। ६३ ।।

वायु आदि धातुओं की प्रकृति हैं और आकाश आदि की प्रकृति हैं। जल से रस, शीतलता, पसीना, मूत्र, कोमलता आदि होते है ।। ६४ ।।

तैजस प्रकृति से आंखों से रूप का अवलोकन, पित्त, पाक और प्रकाश का होना, ओज, तेज, शौर्य, मेधावित्त्व तथा उष्णता होते हैं ।। ६५ ।।

हे देवर्षे ! सात्त्विक देवदेह सात प्रकार का है—ब्रह्मा, इन्द्र, यम, कौबेर, गान्धर्व, वारुण और आर्थिक ।। ६६ ।।

राजस देह छः प्रकार के प्रसिद्ध हैं—पैशाच, राक्षस, आसुर, शाकुन, सार्प और प्रेत ।। ६७ ।।

त्रिविधस्तामसो मात्स्योंऽघ्रिपाच्चैव शवाकृतिः ।
षडंगानि तु पिंडस्य शिरः पादौ करौ कटिः ॥ ९८ ॥

प्रत्यंगानि च वक्ष्यंते त्वचः सप्तकुलस्तथा ।
छन्नाः कोशाग्निभिर्विप्र स्नायुश्लेष्मजरायुभिः ॥ ९९ ॥

सीमाभूताश्च धातूनां वा धातूनंतरेषु च ।
काष्ठसारोपमा विप्र प्रोक्ता ह्येते मदादिभिः ॥ १०० ॥

प्रथमो मांससंघर्षस्तासां धमनयः शिराः ।
स्नायुः स्रोतांसि रोहंति पंकपंकजकंदवत् ॥ १०१ ॥

असृङ्मेदःश्लेष्मशकृत्पित्तशुक्रधराः पराः ।
धातवः सप्त प्रोक्ताश्च त्वगसृङ्मांसमेदकाः ।
अस्थीनि मज्जा शुक्रं च सर्वविग्रहसंस्थिताः ॥ १०२ ॥

उत्पत्तिमेषां वक्ष्यामि श्रृणु नारद तन्मनाः ।
जाठरेणाग्निना पक्वाद्भवेदन्नरसान्मुने ॥ १०३ ॥

त्वग्रक्तं चैव रक्ताद्यैः पक्वैः कोशाग्निना ततः ।
जन्यंते धातवः सर्वे आश्रयानपि मे श्रृणु ॥ १०४ ॥

रक्ताशयस्तथा श्लेष्माशयः पित्ताशयः परः ।
आमाशयस्तथा पक्वाशयो बाह्याशयो मतः ॥ १०५ ॥

मूत्राशय इति सप्त प्रोक्तास्ते विप्र भक्तितः ।
पित्तपक्वाशयांते वै स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः ॥ १०६ ॥

कफासृग्भ्यां प्रसन्नाभ्यां हृदयं कमलाकृति ।
सुषिरं स्यादधोवक्त्रं यकृत्प्लीहांतरस्थितम् ।
इदं वै बुद्धिसंस्थानं वर्त्तते मुनिवंदित ॥ १०७ ॥

एतद्यथा तमो व्याप्तं निमीलति स्वपित्यपि ।
यदा विकाशते तद्वै तदात्मा जागरूपकः ॥ १०८ ॥

तामस देह तीन प्रकार से वर्णित है—मात्स्य, वनस्पति और शवाकृति (शव के समान निश्चल होना)। शरीर के छः अंग हैं—एक सिर, दो पैर, दो हाथ और एक कटि ॥ ९८ ॥

प्रत्यंगों का वर्णन करते हैं। सात त्वचायें होती हैं। हे विप्र ! ये कोश की अग्नियों से, स्नायु, श्लेष्मा और जरायु से आच्छादित रहती हैं ॥ ९९ ॥

ये धातुओं की सीमायें हैं और उनके अन्तर्गत हैं। हे विप्र ! काष्ठ के समान इनकी उपमा को हम जैसों ने वर्णन किया है ॥ १०० ॥

पहली उनमें से मांस को धारण करने वाली है। उनकी शिरायें और नाडियां हैं। स्नायु आदि स्रोतों में ये उसी प्रकार बढ़ती हैं, जैसे पंक में कमल ॥ १०१ ॥

अन्य नाडियां रक्त, मेद, श्लेष्म, विष्ठा, पित्त और वीर्य को धारण करती हैं। धातुयें सात कही गई हैं—त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, हड्डी, मज्जा ओर वीर्य। ये सब देहों में स्थित हैं ॥ १०२ ॥

इनकी उत्पत्ति को मैं कहता हूँ। हे नारद ! आप ध्यान से सुनो। हे मुने ! जठराग्नि के द्वारा अन्न का परिपाक हो जाने पर अन्न से रस का निर्माण होता है ॥ १०३ ॥

उस रस से त्वचा और रक्त बनते हैं। कोशाग्नि के द्वारा रक्त आदि का परिपाक होने पर समस्त धातुयें बनती हैं। अब उनके आश्रय का भी वर्णन सुनो ॥ १०४ ॥

रक्ताशय, श्लेष्माशय, पित्ताशय, आमाशय, पक्वाशय, आधाशय (वाह्याशय) ॥ १०५ ॥

और मूत्राशय ये सात आश्रय माने गये हैं। हे नारद ! 'यह बात मैं आपकी भक्ति के कारण कह रहा हूँ। पित्त और पक्वाशय के अन्त में स्त्रियों का एक आठवां गर्भाशय भी होता है ॥ १०६ ॥

कफ और रक्त के स्वच्छ होने पर हृदय की आकृति कमल के समान होती है। यकृत् प्लीहा के मध्य अधोमुख एक छेद होता है। इसे ही हे मुनि श्रेष्ठ ! बुद्धि का संस्थान कहा जाता है ॥ १०७ ॥

यह अन्धकार से व्याप्त हुये के समान संकुचित होता है एवं सुषुप्तावस्था में रहता है। जब इसका विकास होता है, उस समय आत्मा जागृत अवस्था में रहता है ॥ १०८ ॥

स्वप्नश्चैव सुषुप्तिश्च ताभ्यां द्वेधेंद्रियाणि चेत् ।
स्वापस्तदा महाभाग वाह्यानीमानि नारद ।। १०९ ।।

लीयते हृदि जागर्त्ति चित्तं स्वप्नस्तदोच्यते ।
यदा विलीयते प्राणैर्मनश्चेतसा सुषुप्तिका ।। ११० ।।

नव स्रोतांसि देहेषु श्रवणे नयने तथा ।
नासे च वदनं चैव तदा द्वे गुदशेफसी ।। १११ ।।

तानि स्युर्मलवाहानि बहिः सर्ववपुष्मताम् ।
स्तनयोर्द्वे भगे चैव स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि तु ।। ११२ ।।

जालानि षोडशोक्तानि देहस्थानि महामुने ।
कूर्चाः षट् करयोरंघ्र्योः स्कंधे मेढ्रे मयेरिताः ।। ११३ ।।

मांसरज्जु चतुष्कं च पार्श्वयोः पृष्ठवंशके ।
शिरसि पंचमोवत्यो द्वे जिह्वे लिंगयोस्तथा ।। ११४ ।।

विख्याता राशयोऽस्थ्नां वै दश चाष्टौ तपोनिधे ।
पंचधास्थीनि वर्त्तन्ते वलयादिकभेदतः ।। ११५ ।।

अस्थ्नां शतानि वै त्रीणि वर्त्तंते सर्वदेहके ।
दशोत्तरं महाभाग द्विशतं त्वस्थिसंधयः ।। ११६ ।।

प्रतराः स्तेनसेवंताः कोरकाश्च तथोखलाः ।
शंखावर्त्ता मंडलाश्च सामुद्गास्तुंडकास्तथा ।। ११७ ।।

अष्टप्रकाराश्चोद्दिष्टा अस्थिसंधिमुखा मुने ।
पेशीस्नायुशिरासंधि त्रिसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ।। ११८ ।।

चतुर्द्धा स्नायवोऽप्यन्ये शतानि स्नायवः परे ।
सुषिराः कुंदुराः पृथ्वप्रतानादिप्रभेदतः ।। ११९ ।।

स्नायुबद्धं वपुः प्रोक्तं भूरिभारक्षमं भवेत् ।
नौर्यथा बंधनैर्बद्धा भूरिभारक्षमा भवेत् ।। १२० ।।

उसी की स्वप्न और सुपुप्ति नाम की दो अवस्थायें हैं। हे महाभाग ! नारद ! स्वप्नावस्था उस समय रहती है जब ये बाह्य इन्द्रियां···॥ १०६ ॥

लय होकर हृदय में जाग्रत रहती हैं। यही स्वप्नावस्था कही गई है। जब प्राणों के साथ मन का विलय हो जाता है। उसे सुषुप्तिकावस्था कहते हैं ॥ ११० ॥

देह में नौ स्रोत हैं, दो कान, दो आंख, दो नाक, एक मुख, एक विष्ठा का स्थान और एक मूत्र स्थान ॥ १११ ॥

समस्त शरीर धारियों का मल ये ही वहन करते हैं। स्त्रियों में तीन छिद्र अधिक हैं—दो स्तन और एक भगयोनि (गुप्तेन्द्रिय) ॥ ११२ ॥

हे महामुने ! देह में सोलह जाल कहे गये हैं—कूर्च, हाथों और पैरों में स्कन्ध में और शिश्न में इस प्रकार छः ॥ ११३ ॥

चार मांस रज्जु, पार्श्व भागों में, पृष्ठवंश में, सिर में, दो जिह्वा में और लिंग में ॥ ११४ ॥

हे तपोनिधे ! अस्थियों की राशियां अठारह विख्यात हैं। वलय आदि के भेद से पांच प्रकार की अस्थियां होती हैं ॥ ११५ ॥

समस्त मनुष्य देह में तीन सौ अस्थियां विद्यमान हैं। हे महाभाग ! दो सौ दस अस्थिसन्धि हैं ॥ ११६ ॥

प्रतर, स्तेन-सेवन्त, कोरक, ऊखल, शंखावर्त, मंडल, सामुद्ग तथा तुंडक ॥ ११७ ॥

हे मुने ! ये आठ प्रकार की सन्धियों के मुख वर्णन किये गये हैं। पेशी (मांसपिंड), स्नायु और शिराओं की सन्धियां तीन हजार बताई गई हैं ॥ ११८ ॥

सुषिर, कुन्दुर, पृथु एवं अप्रतान आदि भेद से मुख्य स्नायु चार प्रकार से होती है। ओर अन्य स्नायु सौ प्रकार की मानी गई हैं ॥ ११६ ॥

स्नायु द्वारा बन्धे हुए देह में ही यह क्षमता होती है कि वह प्रभूत भार को वहन कर सके। जिस प्रकार दृढ बन्धनों से बांधी गई नाव ही प्रभूत भार को वहन करने में समर्थ होती है ॥ १२० ॥

पेशीशतानि वै पंच स्त्रीणां विंशाधिका मताः ।
स्तनयोर्दश लक्ष्यन्ते यौवने दश वै भगे ॥ १२१ ॥

अंतर्द्धे प्रसृतो बाह्ये तिस्रो वैगर्भमार्गगाः ।
शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्यंत्र तृतीयके ॥ १२२ ॥

तस्मिन्नावर्त्तके विप्र गर्भशय्या च संस्थिता ।
रोहितास्या तत्र पेशी शुक्रजीवनिका मता ॥ १२३ ॥

आर्तवे शुक्रपेशिन्यस्तिस्रः प्रस्थाविका मुने ।
एकोनत्रिंशल्लक्षाणि सार्द्धानि शतनन्दकम् ॥ १२४ ॥

षट्पंचाशच्च वै प्रोक्ताः शिरा धमनयो मुने ।
दश नाड्यस्तु तासां वै मूलभूताः कलेवरे ॥ १२५ ॥

द्व्यंगुलं वांगुलदलं यवं यवदलं तथा ।
गत्या द्रुमदलस्यैव वनयः प्रतता यदा ॥ १२६ ॥

तास्तदा सप्त भिद्यन्ते शतानि हि तपोनिधे ।
द्वे जिह्वे संस्थिते वाक्यरसज्ञानस्य कारणे ॥ १२७ ॥

घ्राणेन्द्रिये तथा द्वे वै गंधहेतुर्दृशोर्द्वयम् ।
निमिषोन्मेषकृच्छ्रोत्रे शब्दग्राहि द्वयं भवेत् ॥ १२८ ॥

नाड्यो रसवहाः प्रोक्ता विंशतिः परिसंख्यया ।
तैरसौ वर्द्धते देहो देहिनां तपसो निधे ॥ १२९ ॥

नाभ्यां प्रतिष्ठिता ह्येता नाड्यः सर्वमुनिस्तुत ।
उर्ध्वं दश तथाधस्ताच्चतस्रस्तिर्यगायताः ॥ १३० ॥

उर्ध्वगा हृदयं प्राप्ताः प्रतीयन्ते पृथक् कृताः ।
वातपित्तकफान् रक्तं रसं द्वे द्वे विमुंचतः ॥ १३१ ॥

शब्दरूपरसादीन्वै मुने तत्रावगच्छतः ।
द्वे द्वे च भाषणं घोषं स्वापं रोधं च रोदनम् ॥ १३२ ॥

पेशियां एक सौ पांच होती हैं। किन्तु स्त्रियों में ये बीस अधिक होती हैं। उनमें दस स्तन प्रदेश में तथा दस भग प्रदेश में युवाकाल में लक्षित होती हैं ॥ १२१ ॥

इसमें कुछ भीतर एवं कुछ बाहर स्थित रहती हैं। तीन गर्भ मार्ग में स्थित रहती हैं। योनि शंखनाभि के आकार की होती है। यहाँ यह तीसरे आवर्त्त में होती है ॥ १२२ ॥

हे विप्र नारद ! उसी आवर्त्त में गर्भशय्या स्थित रहती है। रोहित मत्स्य के आकार की यह पेशी वीर्य को ग्रहण करती है ॥ १२३ ॥

हे मुने ! ऋतु काल में वीर्य की स्थापना करने वाली पेशियां होती हैं और उनतीस लाख एक सौ पचास उसके सूक्ष्म अंश हो जाते हैं ॥ १२४ ॥

हे मुने ! छप्पन शिरायें और धमनियाँ कही गई हैं। उनकी मूलभूत दस दस नाडियाँ शरीर में स्थित हैं ॥ १२५ ॥

ये द्वयंगुल, अंगुल-दल, यव तथा, यवदल भेद से होती है। जब उनमें द्रुमदल की गति से अग्नियाँ का विस्तार होता है···॥ १२६ ॥

हे तपोनिधे ! तब वे सात सौ भेदों को प्राप्त होती हैं। दो प्रकार की जिह्वायें हैं। इनमें एक तो वाक्य बोलने की और दूसरी रस के ज्ञान की कारण है ॥ १२७ ॥

गन्ध को ग्रहण करने वाली दो नासिकायें हैं। निमेष और उन्मेष की कारण भूत दो आखें हैं। शब्द को ग्रहण करने वाले दो कान हैं ॥ १२८ ॥

बीस नाडियाँ रसवाहिनी कही गई हैं। हे तपोनिधे ! उन्हीं रसों के द्वारा देहधारियों के देह की वृद्धि होती है ॥ १२९ ॥

हे मुनिवन्दित नारद ! ये सब नाडियां नाभि प्रदेश में स्थित हैं। इनमें दस ऊपर और दस नीचे को गई हैं। ये तिरछी होकर देह में स्थित हैं ॥ १३० ॥

जो नाडियां ऊपर को गई हैं, वे हृदय में पहूँच कर पृथक् होती हैं। उनमें दो-दो नाडियां वात, पित्त, कफ, रक्त और रस को छोड़ती हैं ॥ १३१ ॥

हे मुने ! वे शब्द, रूप, रस आदि का ज्ञान कराती हैं। दो-दो नाडियां सम्भाषण, शब्द, स्वप्न, अवरोध और रोदन कराती हैं ॥ १३२ ॥

शुक्रं न्यस्तं तु स्रवतः स्त्रियां द्वे मुनिसत्तम।
पक्वाशयास्थितास्त्रेधा पृथक्ताश्च ह्यधोमुखाः ॥ १३३ ॥

प्रवर्त्तयन्ति तत्राद्या दश वातादि पूर्ववत्।
द्वे धमन्यो महाभाग भुक्तमन्नं जलं यथा ॥ १३४ ॥

मूत्रं मलं प्रकुरुतो वहतोऽत्र समाश्रयान्।
मुंचतश्चार्त्तवं स्त्रीणां द्वे शक्रद्विंशतेंत्रके ॥ १३५ ॥

स्वेदं सपर्ययं त्वष्टौ रोमकूपमुखा मताः।
प्रवेशयन्ति चैवान्तो रसानभ्यंगसम्भवान् ॥ १३६ ॥

सप्तोत्तरशतं मर्म्मस्थानानि मुनिपुंगव।
त्रिकोटिश्चैव पंचाशन्नियुतानि महामुने ॥ १३७ ॥

रोमकूपाश्च श्मश्रूणि केशाश्चैव त्रिलक्षकाः।
मानं जलादेर्वक्ष्यामि श्रृणु नारद कथ्यते ॥ १३८ ॥

दशांजलिमितं तोयं रसस्याञ्जलयो नव।
शोणितस्याष्टांजलयो विष्ठायाः सप्त चोदिताः ॥ १३९ ॥

श्लेष्मणः षट् समाख्याताः पित्तस्यांजलयो नव।
त्रयो मूत्रस्यांजलयो वसाया मेदसो द्वयम् ॥ १४० ॥

एकांजलिसमा मज्जा शिरोमज्जा तदर्द्धतः।
श्लेष्मसारो बलं त्वर्द्धं समासेनेरितं मया ॥ १४१ ॥

एषामेव विरोधेन ह्रासवृद्ध्या तथैव च।
जायन्ते च तथा रोगाः शरीरे सर्वदेहिनाम् ॥ १४२ ॥

योगाभ्यासरतो यस्तु सर्वापथ्यविवर्जितः।
नादब्रह्म स जानाति त्रैलोक्यं स चराचरम् ॥ १४३ ॥

इति प्रत्यंगगणनं संक्षेपात्तव कीर्तितम्।
सर्वमेव शरीरस्थमन्वेष्यं योगतत्परैः ॥ १४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे
पिण्डोत्पत्तिर्नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः।

हे मुनिश्रेष्ठ ! स्त्रियों में दो नाड़ियां स्थापित वीर्य को स्रवित करती हैं। पक्वाशय में तीन प्रकार की नाडियां पृथक्-पृथक् होती हैं, जो अधोमुख रहती हैं ।। १३३ ।।

उनमें पहली तो पूर्ववत् दस वायुओं को प्रवृत्त करती हैं। हे महाभाग ! दो धमनी नाड़ियां खाये गये अन्न और जल का यथोक्त स्थानों में संचालन करती हैं ।। १३४ ।।

दो नाड़ियां मल और मूत्र का वहन करती हैं, और दो नाड़ियां स्त्रियों के रज को प्रवर्तित करती हैं। वे आंतों में शकृत को संचरित करती हैं ।। १३५ ।।

उनमें आठ धमनियां रोमकूपों के अग्रभाग पर रह कर परिवर्तनशील पसीने को निकालती हैं। वे बाहरी रसों को शरीर के भीतर प्रवेश कराती हैं ।। १३६ ।।

हे मुनिवर ! मनुष्य के देह में एक सौ सात मर्म्मस्थान वर्णित हैं। हे महा-मुने ! तीन करोड़ पचास लाख···।। १३७ ।।

रोमकूप हैं। श्मश्रु और केश तीन लाख हैं। हे नारद ! मैं अब जल आदि के माप का वर्णन करूँगा, आप सुनो ।। १३८ ।।

मनुष्य के शरीर में दस अंजलि जल, नौ अंजलि रस, आठ अंजलि रक्त और सात अंजलि विष्ठा है ।। १३६ ।।

श्लेष्मा छः अंजलि, पित्त नौ अंजलि, मूत्र तीन अंजलि और दो-दो अंजलि वसा और मेद कहे गये हैं ।। १४० ।।

एक अंजलि मज्जा, आधा अंजलि शिरो-मज्जा और आधा अंजलि श्लेष्मा का सारबल होता है। मेरे द्वारा संक्षेप में यह वर्णित किया गया है ।। १४१ ।।

इन्हीं सब के विरोध से तथा न्यूनाधिकता से सम्पूर्ण प्राणियों के देह में रोगों की उत्पत्ति होती है ।। १४२ ।।

योग के अभ्यास में जो लगा हो और सम्पूर्ण अपथ्यों को छोड़ देने वाला हो, वही तीन लोकों में व्याप्त चराचर के नादरूप ब्रह्म को जानता है ।। १४३ ।।

इस प्रकार आपसे प्रत्येक अंग की गणना संक्षेप से कही गई है। योग क्रियाओं में निरत पुरुषों को इन सबका अन्वेषण शरीर के भीतर करना चाहिए ।। १४४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-प्रशंसा में
रुद्र तीर्थ में पिण्डोत्पत्ति नाम का पैंसठवां अध्याय पूरा हुआ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

देहचक्रवर्णनपुरस्परं शरीरशुद्धिजन्यानाहतनादप्राप्तिनिरूपणम्

नारद उवाच—

धन्योऽस्मि नाथ देवेश श्रोतास्मि तव भारतीम् ।
कथमस्मिन् शरीरे वै त्रैलोक्यं सर्वमन्दिरम् ॥ १ ॥

कथं वै ज्ञायते देव पिंडस्थं सार्वभौतिकम् ।
कृपया वद चैतन्मे श्रृण्वतो नास्ति मे श्रमः ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—

साधु साधु महाभाग पिंडस्थं ज्ञानकारणम् ।
श्रृणु मे वदतो भक्त्या समाधाय मनश्चलम् ॥ ३ ॥

श्रृणु देहस्थचक्राणि विज्ञाय मुक्तिभाग्भवेत् ।
गुदलिंगान्तरे विप्र चक्रमाधारसंज्ञितम् ॥ ४ ॥

चतुर्दलं समाख्यातं गणेशस्तत्र देवता ।
तस्येशानदले विप्र परमानन्दसंस्थितिः ॥ ५ ॥

तदाग्नेये दले चैव सहजानंदसंस्थितिः ।
नैऋत्ये च तथा पत्रे वींरानंदो वसत्यलम् ॥ ६ ॥

योगानन्दस्तु वायव्ये पत्रे ह्याधारपंकजे ।
अस्ति कुंडलिनी ब्रह्मन् ब्रह्मशक्तिस्तदम्बुजे ॥ ७ ॥

पीयूषदा सा सरला शक्तिराब्रह्मरन्ध्रकम् ।
स्वाधिष्ठानं द्वितीयं वै षड्दलं चक्रमीरितम् ॥ ८ ॥

अध्याय ६६

देहचक्र का वर्णन करके शरीर की शुद्धि से उत्पन्न अनाहत नाद की प्राप्ति का वर्णन

नारद ने कहा—

हे नाथ ! देवेश ! मैं धन्य हूँ जो आपकी वाणी का श्रवण कर रहा हूँ । इस शरीर में सम्पूर्ण तीनों लोक कैसे स्थित्त हैं ॥ १ ॥

और देह में स्थित सब भूतों का ज्ञान किस प्रकार से हो सकता है । इसे हे देव ! कृपा करके मुझे बताइये । मुझे इसे सुनने में कुछ भी श्रम का अनुभव नहीं होता है ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे महाभाग ! आप धन्य हैं ! मैं शरीर में स्थित ज्ञान के कारण को कहता हूँ । आप मन को निश्चल करके भक्तिपूर्वक उसे सुनिये ॥ ३ ॥

आप देहस्थ चक्रों का वर्णन सुनिये, जिसे जानकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है । हे विप्र ! गुदा और लिंग के बीच में एक आधार संज्ञक चक्र विद्यमान रहता है ॥ ४ ॥

हे विप्र ! उस चक्र के चार दल कहे गये हैं । उसके देवता गणेश हैं । उसके ईशान भाग में परमानन्द की स्थिति रहती है ॥ ५ ॥

उसके आग्नेय दल में सहजानन्द की स्थिति रहती है और उसके नैॠत्य दल में वीरानन्द की स्थिति रहती है ॥ ६ ॥

आधार संज्ञक कमल के वायव्य दल में योगानन्द की स्थिति रहती है । हे ब्रह्मन् ! उस कमल में कुण्डलिनी ब्रह्म शक्ति अवस्थित है ॥ ७ ॥

वह सरला शक्ति ब्रह्मरन्ध्र तक पीयूष प्रदान करती है । दूसरा अधिष्ठान चक्र षढ्दल चक्र कहा गया है ॥ ८ ॥

ब्रह्मादिदेवतास्तत्र स्वाधिष्ठानाम्बुजे मुने।
पूर्वादिषु दलेष्वेव फलान्येतान्यनुक्रमात् ॥ ९ ॥

प्रश्रयः क्रूरभावश्च वर्गनाशौ च मूर्च्छना।
अवज्ञा स्यादविश्वासः कामाशक्तेरिदं गृहम् ॥ १० ॥

मणिपूराभिधं चक्रं नाभौ तद्दशपत्रकम्।
सुषुप्तिका च तृष्णा च ईर्ष्या पैशुन्यमेव च।
ह्रीर्भयं च दया मोहो व्यवायश्च विषादिता ॥ ११ ॥

क्रमेणैतास्तु पूर्वादौ पत्रे वै भुवनं तथा।
अनाहतं चतुर्थन्तु चक्रं हृदयवर्त्तितम् ॥ १२ ॥

दलैर्द्वादशभिर्युक्तं पूजास्थानं मम प्रियम्।
प्रणवस्य तदिच्छन्ति श्रृणु पूर्वादिपत्रके ॥ १३ ॥

लौल्यं प्रणाशः कापट्यं तर्कश्चाप्यनुतापिता।
आशाप्रकारचिन्ता च समीहा समता मुने ॥ १४ ॥

दम्भो वैकल्यकं चैव विवेकोऽहंकृतिस्तथा।
फलान्येतानि पूर्वादिपत्रेषु कमलस्य हि ॥ १५ ॥

पंचमं भारतस्थानं विशुद्धं षोडशच्छदम्।
कंठे स्थितं महाभागं तत्रैव प्रणवादयः ॥ १६ ॥

प्रणवोद्गीतहुंफट् च वौषट्श्रौषट्वषट्स्वधा।
स्वाहा नमोऽमृतं तत्र स्वराः षड्जादयोऽपि च ॥ १७ ॥

इति पूर्वादिपत्रेषु फलान्यात्मनि षोडश।
षष्ठं वै ललनाख्यं च घंटिकायां महाप्रभम् ॥ १८ ॥

चक्रं द्वादशपत्रं वै मदो मानस्ततो मुने।
स्नेहः शोकस्तथा खेदो लुब्धता रतिसंभ्रमः ॥ १९ ॥

ऊर्म्मिः श्रद्धा ततस्तोषो विरोधश्चैव द्वादश।
फलानि ललनाचक्रे एतानि पूर्वकादिषु ॥ २० ॥

हे मुने ! उस कमल के अधिष्ठान में ब्रह्मा आदि देवता स्थित रहते हैं। उसके पूर्व आदि दिशाओं के दलों में क्रम से ये फल होते हैं ॥ ९ ॥

नम्रभाव, क्रूरभाव, वर्ग, नाश, मूर्च्छना, अवज्ञा और अविश्वास, ये सब काम की अशक्ति के घर हैं (इसके द्वारा काम पर विजय प्राप्त होती है) ॥ १० ॥

नाभि में एक मणिपुर नाम का दश दल वाला चक्र है। सुषुप्ति, तृष्णा, ईर्ष्या, पिशुनता, लज्जा, भय, दया, मोह, मैथुन-इच्छा और विषाद··· ॥ ११ ॥

क्रम से ये फल कमल के पूर्व आदि दलों में कहे गये हैं। अनाहत नाम का चतुर्थ चक्र हृदय में विद्यमान रहता है ॥ १२ ॥

वह बारह दलों से युक्त है और मेरी पूजा का यह प्रिय स्थान है। प्रणव ओंकार का भी यही स्थान माना गया है। इसमें पूर्व आदि दलों में स्थित फलों का श्रवण करो ॥ १३ ॥

हे मुने ! लौल्य, प्रणाश, कपटता, तर्क, अनुताप, विविध आशायें, चिन्ता, समीहा, समता ॥ १४ ॥

दम्भ, विकलता, विवेक और अहंकार, इस कमल के पूर्व आदि दलों में ये मल स्थित रहते हैं ॥ १५ ॥

परम शुद्ध सोलह दल का कमल पांचवा भारत का स्थान है। हे महाभाग ! यह कण्ठ में स्थित है और वहीं प्रणव आदि का स्थान है ॥ १६ ॥

प्रणव, उद्गीत, हुँफट्, वौषट्, श्रौषट्, वषट्, स्वधा, स्वाहा, नमः, अमृत और षड्ज आदि स्वर···॥ १७ ॥

इस कमल पूर्व आदि क्रम से पत्रों में ये सोलह फल होते हैं। तालुस्थ जिह्वा में एक ललना नाम का महातेज वाला छटवां चक्र है ॥ १८ ॥

यह चक्र बारह दलों से समन्वित है। हे मुने ! इनके फलों का क्रम इस प्रकार से है—मद, मान, स्नेह, शोक, खेद, लुब्धता, रति, सम्भ्रम···॥ १९ ॥

उत्साह, श्रद्धा, सन्तोष और विरोध। ये बारह फल ललनाचक्र से पूर्व आदि दलों के क्रम से विद्यमान हैं ॥ २० ॥

भ्रूमध्ये द्विदलं चक्रं सप्तमाख्यं महामुने।
आज्ञाभिधं समाख्यातं मुक्तिदं योगिसत्तमैः ॥ २१ ॥

त्रिगुणानां तथा भावास्तत्र पूर्वादिषु क्रमात्।
ततोऽप्यस्ति मनश्चक्रं षड्दलं तत्फलानि तु ॥ २२ ॥

स्वप्नो रसोपभोगश्च प्राणरूपोपलम्भनम्।
स्पर्शनं शब्दवादश्च दले पूर्वादिषु क्रमात् ॥ २३ ॥

यच्चक्रं षोडशारं वै सोमचक्रं महाप्रभम्।
दलेषु षोडशस्वे कलाः षोडश संस्थिताः ॥ २४ ॥

कृपार्जवं तथा शान्तिर्धैर्य वैराग्यसंधृतिः।
संमदाहाररोषाश्च निचयो ध्यानमेव च ॥ २५ ॥

स्थिरता चैव गाम्भीर्य्यमुद्यमः सत्त्वदानि तु।
एकाग्रता फलानि स्युः क्रमात्पूर्वादिपत्रके ॥ २६ ॥

सहस्रारं तथा चक्रं ब्रह्मरन्ध्रेति निर्मलम्।
सुधा संस्रवते तस्मादभिवर्द्धयते तनुः ॥ २७ ॥

अनाहते दले पूर्वे ह्यष्टमैकादशे तथा।
द्वादशे च तथा पत्रे जीवो गीतादिसिद्धिदः ॥ २८ ॥

चतुर्थे दशमे षष्ठे जीवो गीतविनाशकः।
विशुद्धान्यष्टमादीनि दलान्यष्टौ तु यानि तु ॥ २९ ॥

दद्युर्गानादि संसिद्धि यदि जीवोऽत्र संस्थितः।
षोडशे तु दले जीवो गीतनाशनकारकः ॥ ३० ॥

ललनायां च दशमे चैकयुक्ते च पत्रके।
जीवो गीतस्य संसिद्धौ तुर्ये प्रथमपंचमे।
नाशकस्तु तदा ख्यातो जीवो जीवविदात्मभिः ॥ ३१ ॥

यदा तु ब्रह्मरध्रस्थो जीवात्मा सुधयाप्लुतः।
तुष्टो गीतादिकार्याणि सप्रकर्षाणि साधयेत् ॥ ३२ ॥

हे महामुने ! भवों के बीच में दो दल वाला सातवां चक्र विद्यमान रहता है। इस आज्ञा नाम के चक्र को योगियों के द्वारा मुक्ति देने वाला कहा गया है ।। २१ ।।

पूर्व आदि क्रम से इसमें सत्त्व, रज और तम तीन गुणों के भाव विद्यमान रहते हैं। उसी में छः दलों वाला एक मन नामक चक्र भी है, जिसके फल इस प्रकार से वर्णित हैं ।। २२ ।।

स्वप्न, रसों का उपभोग, प्राणरूप का उपलम्भन, स्पर्शन, शब्द और वाद उसके पूर्व आदि दलों में विद्यमान हैं ।। २३ ।।

सोमचक्र नाम का एक चक्र महाकान्तिमान् षोडश दलों से परिवृत है, उसके सोलह दलों में सोलह कलायें विद्यमान हैं ।। २४ ।।

कृपा, ऋजुता, शान्ति, धैर्य, वैराग्य, धृति, मद, आहार, रोष, निचय, ध्यान···।। २५ ।।

स्थिरता, गाम्भीर्य, उद्यम, सत्त्वशक्ति और एकाग्रता क्रम से पूर्व आदि दलों के फल हैं ।। २६ ।।

वहीं एक अति निर्मल सहस्रदल कमल है उसका नाम ब्रह्मरन्ध्र है। उससे सुधा संस्रवित होती है। वह शरीर को प्रवृद्ध करता है ।। २७ ।।

पहले अनाहत दल में, आठवें दल में, ग्यारहवें दल में और बारहवें दल में गीत आदि की सिद्धि को देने वाला जीव स्थित रहता है ।। २८ ।।

चतुर्थ, दशम एवं छठे दल में गीत का नाश करने वाला जीव स्थित रहता है। अष्टम आदि दल विशुद्ध हैं। ये जो आठ दल हैं ।। २६ ।।

वे गान आदि की सिद्धि देते हैं, यदि उनमें जीव उपस्थित हो। सोलहवें दल में उपस्थित जीव गीत का नाश करने वाला होता है ।। ३० ।।

ललनाचक्र में ग्यारहवें दल में स्थित जीव गीत की सिद्धि देने वाला है। चतुर्थ, प्रथम और पंचम दल में स्थित जीव नाद का नाश करने वाला है, ऐसा जीव को जानने वाले लोग कहते है ।। ३१ ।।

जीवात्मा जब अमृत से आप्लुत हो, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होया है, तब तुष्ट होकर गीत आदि कार्यों को अच्छी रीति से सिद्ध करने में समर्थ हो जाता है ।। ३२ ।।

एषामन्यतमे स्थाने चक्रेष्वन्येषु जीवकः ।
न कदाचिन्महाभाग गीतसंसिद्धिमाप्नुयात् ।। ३३ ।।

आधाराद्द्व्यंगलादूर्ध्वं हेमनाड्यंगुलादधः ।
एकांगुलप्रमाणं च देहस्थं ज्योतिरीश्वरम् ।। ३४ ।।

तप्तस्वर्णसमाभासं परमं सिद्धिकारणम् ।
तस्मिन्नेव महाभाग तन्वी वह्नेः शिखास्ति वै ।। ३५ ।।

तस्मान्नवांगुले पीठे पीठात्मा वै समास्थितः ।
उत्सेधायां देहकन्दो नाभ्यां तु चतुरंगुलम्[1] ।। ३६ ।।

नाभिचक्रं तु तन्मध्ये द्वादशारं महाप्रभम् ।
तन्तुजाले यथा लूता तथाऽत्र भ्रमते प्रभुः ।। ३७ ।।

प्राणारूढस्तथा जीवो ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्णया ।
आरोहावरोहौ कुरुते रज्वां वै नटको यथा ।। ३८ ।।

क्रोडीकृत्य स्थिता नाड्यः सुषुम्णां परितो भृशम् ।
कंदादिब्रह्मरंध्रांतं कंदे शाखाभिरीरिता ।। ३९ ।।

तनुर्वै तन्यते विप्र बह्वयस्ताः सन्ति नारद ।
चतुर्दश महाभाग मुख्याः प्रोक्ता मदादिभिः ।। ४० ।।

इडा वै पिंगला चैव सुषुम्णा च तथा कुहूः ।
सरस्वती च गांधारी हस्तिजिह्वा च वारणा ।। ४१ ।।

यशास्विनी शंखिनी च पूषा विश्वोदरा तथा ।
पयस्विनी तथाऽलम्बुषेति नाड्यश्चतुर्दश ।। ४२ ।।

तिस्रो मुख्यतमाः ख्यातास्तासामाद्या सुषुम्णिका ।
वैष्णवी सा मया प्रोक्ता मुक्तिमार्गस्थिता सदा ।। ४३ ।।

कंदमध्ये महाभाग संस्थिता सा तपोनिधे ।
इडा सव्ये स्थिरा तस्य दक्षिणे पिंगला मता ।। ४४ ।।

---

१. ले ।

हे महाभाग ! इनमें किसी एक स्थान एवं अन्य चक्रों में जीव को कदापि गीत-सिद्धि नहीं हो सकती ।। ३३ ।।

आधार चक्र से दो अंगुल ऊपर तथा हेमनाड़ी से दो अंगुल नीचे एक अंगुल के बराबर ज्योति स्वरूप ईश्वर देह में स्थित रहता है ।। ३४ ।।

तपाये गये स्वर्ण के समान उसकी आभा है । वह परम सिद्धि का कारण है । हे महाभाग ! उसी में सूक्ष्म अग्नि की शिखा विद्यमान है ।। ३५ ।।

उसमें नौ अंगुल के पीठ में पीठात्मा विद्यमान है । नाभि में ऊंचाई पर चार अंगुल पर का देह का मूल स्थान है ।। ३६ ।।

उसके मध्य में एक द्वादश दल का महाकान्तिमान् नाभिचक्र है । जिस प्रकार अपने तन्तु जाल में मकड़ी भ्रमण करती है, ठीक उसी प्रकार इसमें ईश्वर भ्रमण करते हैं ।। ३७ ।।

प्राणों में आरूढ जीव सुषुम्णा के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में आरोह अवरोह इसी प्रकार करता है, जिस प्रकार नट रस्सी के द्वारा ऊपर चढ़ता है और नीचे उतरता है ।। ३८ ।।

अन्य नाड़ियां सुषुम्णा को गोद में लिये चारों ओर से घेरे रहती हैं । कन्द से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक वे नाड़ियां शाखाओं द्वारा मूल स्थान से विस्तृत रहती हैं ।। ३९ ।।

हे विप्र ! नारद ! वे बहुत सी नाड़ियाँ हैं, जो इस शरीर को बढ़ाती है । किन्तु, हे महाभाग ! हमने उनमें चौदह नाड़ियों को मुख्य मान कर वर्णन किया है ।। ४० ।।

इडा, पिंगला, सुषुम्णा, कुहू, सरस्वती, गांधारी, हास्तिजिह्वा, वारणा ।। ४१ ।।

यशस्विनी, शंखिनी, पूषा, विश्वोदरा, पयस्विनी और अलम्बुषा ये चौदह नाड़ियाँ हैं ।। ४२ ।।

उनमें भी तीन मुख्य हैं । उनमें सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है । मैंने उसे वैष्णवी नाम से कहा है । वह सदैव मुक्ति मार्ग में स्थित रहती है ।। ४३ ।।

हे महाभाग ! कन्द के मध्य में इसकी स्थिति है । हे तपोनिधे ! इसके बायें भाग में इडा और दाहिने भाग में पिंगला नाम की नाड़ियाँ विद्यमान हैं ।। ४४ ।।

इडापिंडलयोर्मध्ये चरन्तौ चन्द्रभास्करौ ।
कालहेतू क्रमाच्चोक्तौ सुषुम्णा कालशोषिणी ।। ४५ ।।

सुषुम्णापार्श्वयोश्चैव वर्त्तेते द्वे शृणु प्रिये ।
सरस्वती कुहूश्चैव योगमार्गप्रदे शुभे ।। ४६ ।।

इडायाः पृष्ठपूर्वस्थे गांधारीहस्तिजिह्वके ।
पिंगला पूर्वपृष्ठे वै वारणा च पयस्विनी ।। ४७ ।।

कुह्वाश्च हस्ति जिह्वाया मध्ये विश्वोदरा मता ।
वारणा संस्थिता मध्ये नाड्यो वै ब्रह्मवंदित ।। ४८ ।।

ते वै कुहूयशस्विन्यौ तथा पूषा सरस्वती ।
तयोर्मध्यस्थिता शेते नाम्ना नाडी पयस्विनी ।। ४९ ।।

गान्धारिका सरस्वत्योर्मध्यदेशे च शंखिनी ।
इडा च पिंगला चैवालंबुषा कंदमास्थिताः ।। ५० ।।

सव्यापसव्या नासांतं कुहूरमेढ्रकं पुरः ।
ऊर्ध्वमाजिह्वकं चारते नाम्ना नाडी सरस्वती ।। ५१ ।।

गांधारी पृष्ठतः प्रोक्ता वामनेत्रं तथा मुने ।
आसव्यपादं सांगुष्ठं संस्थिता च तपोधन ।। ५२ ।।

सर्वत्रगा हस्तिजिह्वा वारणाऽथ पयस्विनी ।
देहेऽखिले तथांगुष्ठाद्दक्षिणांघ्रिसमाश्रितात् ।। ५३ ।।

विश्वोदरा महाभाग शंखिन्या सव्यकर्णकम् ।
पूषा पाय्वान्वनेत्रान्ता तथा दक्षिणकर्णकम् ।। ५४ ।।

पयास्विनी तु विनतालंबुषा पायुमूलकम् ।
समालम्व्य स्थिता ब्रह्मन्संक्षेपात्ते मयोदितम् ।। ५५ ।।

अस्मिन्नेव महाभाग देहे मलपलान्विते ।
बुद्धिमंतो भवापायं मोक्षं संसाधयन्ति वै ।। ५६ ।।

इडा और पिंगला के बीच में सूर्य और चन्द्रमा विचरण करते हैं। इन्हें ही क्रम से काल का हेतु माना गया है। सुषुम्णा नाड़ी काल का शोषण (ह्रास) करती है ॥ ४५ ॥

सुषुम्णा के पार्श्व भाग में जो दो नाड़ियां विद्यमान रहती हैं, उनको सुनो। हे प्रिये ! उनका नाम सरस्वती और कुहू है, जो शुभ योगमार्ग को प्रदान करने वाली हैं ॥ ४६ ॥

इडा नाड़ी के पृष्ठ के पूर्व भाग में गान्धारी और हस्तिजिह्वा विद्यमान रहती हैं। पिंगला के पूर्व पीठ पर वारणा और पयस्विनी स्थित रहती हैं ॥ ४७ ॥

कुहू और हस्तिजिह्वा के मध्य में विश्वोदरा नाड़ी विद्यमान रहती है। हे ब्रह्मवन्दित नारद ! इन नाड़ियों के बींच में वारणा नाम की नाड़ी स्थित रहती है ॥ ४८ ॥

कुहू-यशस्विनी और पूषा-सरस्वती के बीच में स्थित होकर पयस्विनी नाम की नाड़ी शयन करती है ॥ ४९ ॥

गांधारी और सरस्वती के मध्व में शंखिनी नाम की नाड़ी विद्यमान रहती है। इडा, पिंगला और अलम्बुषा ये तीन नाड़ियां कन्द में स्थित रहती हैं ॥ ५० ॥

नासिका में सव्य एवं अपसव्य भाव से कुहू नाड़ी विद्यमान रहती है और मेढ़ू से लेकर जिह्वा तक सरस्वती नाम की नाड़ी स्थित रहती हैं ॥ ५१ ॥

हे मुने ! पीठ और बायें आंख में गान्धारी की स्थिति रहती है। हे तपोधन ! अंगूठे सहित बायें पैर तक इसी नाड़ी का विस्तार है ॥ ५२ ॥

हस्तिजिह्वा, वारणा और पयस्विनी ये नाड़ियां दाहिने पैर के अंगूठे से लेकर समस्त देह में व्याप्त रहती है ॥ ५३ ॥

हे महाभाग ! विश्वोदरा और शंखिनी बांयें कान में और पूषा गुदा, दांयें नेत्र और दाहिने कान में स्थित रहती है ॥ ५४ ॥

पयस्विनी और विनता-अलम्बुषा की स्थिति पायु (गुदा) में रहती है। हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार नाड़ियों की स्थिति मैंने आपसे संक्षेप में कह दी है ॥ ५५ ॥

हे महाभाग ! मल से आपूरित इसी देह से बुद्धिमान् लोग संसार की निवृत्ति कराने वाले मोक्ष का साधन कर लेते हैं ॥ ५६ ॥

उपायाद्गुरुवक्त्राच्च श्रुत्वा सेवादिभिर्मुने।
अस्मादेवाखिलं तत्त्वं प्राप्यते भुक्तिमुक्तिके ।। ५७ ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देहं संसाधयेत्पुमान् ।। ५८ ।।

निर्गुणस्तु परानन्दो रूपादिगुणवर्जितः।
पाणिपादाद्यवयवैर्हीनो नारायणोऽव्ययः ।। ५९ ।।

ध्यातुं तु न शक्यते कैश्चिद्वसिष्ठादिभिरप्ययम्।
तस्मात्तच्चरितं ज्ञेयं भुक्तिमुक्त्यैकलालसैः ।। ६० ।।

धन्यस्त्वं यस्य गेये वै बुद्धिरास्ते सुनिर्मला।
योगमार्गेण संसाध्य देहं मलसमाहतम् ।। ६१ ।।

नादब्रह्मरतो भूयात्परां सिद्धिमवाप्नुयात्।
नाहं योगशतैस्तुष्टो नाहं तीर्थविमज्जनात्।
यथाऽहं गीतसंतुष्टो ददामि परमां गतिम् ।। ६२ ।।

अनाहतस्य नादस्य जनिर्देहविशोधनात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देहं संशोधयेत्पुरा ।। ६३ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे
रागोत्पत्तौ देहशोधनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः।

हे मुने ! गुरु-मुख से सुन कर तथा सेवा आदि तथा उपायों से इसी देह से अखिल तत्त्व तथा भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है ।। ५७ ।।

इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह सम्पूर्ण उपायों से देह का साधन करे ।। ५८ ।।

रूप आदि गुणों से रहित, निर्गुण, परमानन्द स्वरूप हाथ पैर आदि अवयवों से रहित नारायण अव्यय हैं ।। ५९ ।।

वसिष्ठ आदि महर्षि भी उसका ध्यान करने में समर्थ नहीं हो सके । इसलिए भोग एवं मुक्ति चाहने वाले को नारायण के चरित्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।। ६० ।।

तुम धन्य हो, गान का ज्ञान पाने के लिये जिसमें इस प्रकार की परम निर्मल बुद्धि है । मल से आलुप्त देह को योग मार्ग से संशोधित करना चाहिए ।। ६१ ।।

जब जीव नाद स्वरूप ब्रह्म में लीन हो जाता है, तब उसे परम सिद्धि का लाभ होता है । सैंकड़ों योग साधनों से मैं उतना सन्तुष्ट नहीं होता और ना ही तीर्थों में स्नान करने से उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना प्रसन्न मैं गीत से होता हूँ । गीत से सन्तुष्ट होकर मैं परम गति को प्रदान करता हूँ ।। ६२ ।।

शरीर को पवित्र करने पर अनाहत नाद का प्रादुर्भाव होता है । इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह देह को यत्नपूर्वक शुद्ध करे ।। ६३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में कैशास-प्रशंसा
में रुद्रतीर्थ में रागोत्पत्ति में देह-शोधन नाम का
छियासठवां अध्याय पूरा हुआ ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

नादब्रह्मेच्छया मनःप्रवृत्तिपूर्वकदेहाग्निवायुप्रयत्नतो ध्वनेरुत्पत्तिद्वारा मन्द्रमध्यतारादित्रिविधनादोत्पत्तिपूर्वकं श्रुत्यादिप्रादुर्भावः सप्तस्वराणां वर्णदेशाद्याख्यानञ्च

नारद उवाच

नादः कथं समुद्भूतो देहादस्मान्मलाश्रयात्।
नादः कोऽयं समाख्यातः कतिधा वर्तते परः ॥ १ ॥

एतत्सर्वं समासेन कथनात्वं महेश्वर।
भक्तोपकारे प्रभवो नालस्यं कुर्वते प्रभो ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु नारद तत्त्वेन यथा नादो विधीयते।
नाद एव परं ब्रह्म नास्मात्किंचित्परात्परम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मा नादोपसेवाभिर्जगत्सर्वं चकार ह।
विष्णुर्वै पालने शक्तोऽहमस्मि नाशने तथा ॥ ४ ॥

वयं सर्वे महाभाग नादोपासनतत्पराः।
न जानन्ति परं पारं ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥

अहमेव हि जानामि नादब्रह्म समासतः।
नादीपासनया सर्वे सेविता देवतागणाः ॥ ६ ॥

आतमारामः परं ज्योतिर्मनः प्रेरयति प्रभुः।
देहस्थोऽग्निर्महाभाग स प्रेरयति मारुतम् ॥ ७ ॥

नभिमूलस्थितो वायुः क्रमेणोर्ध्वपथे चरन्।
नाभितो हृदयं कंठं ततोर्ध्वास्ये प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

अध्याय ६७

नाद ब्रह्म की इच्छा से पहले मन की प्रवृत्ति होकर देह की अग्नि और वायु के प्रयत्न से ध्वनि की उत्पत्ति और उसके द्वारा मन्द्र-मध्य-तार इन त्रिविध नादों की उत्पत्ति और उसके बाद श्रुति आदि का प्रादुर्भाव, सात स्वरों के वर्ण, देश आदि का कथन

नारद ने कहा—

मल के आश्रयभूत इस देह से नाद कैसे उत्पन्न होता है? यह नाद कौन वस्तु है और यह कितने प्रकार का होता है ॥ १ ॥

हे महेश्वर ! यह सब संक्षेप में बताइये । हे प्रभो ! आप भक्तों के उपकार में आलस्य नहीं करते ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे नारद ! जिस प्रकार नाद का विधान किया जाता है, उसे ठीक प्रकार से सुनो । नाद ही परब्रह्म है इससे परे कुछ नहीं है ॥ ३ ॥

नाद की सेवाओं से ब्रह्मा इस जगत् का सृजन करता है, विष्णु पालन करता है और मैं नाश करने में समर्थ हूँ ॥ ४ ॥

हे महाभाग ! हम सब ब्रह्मा आदि देवता नाद ब्रह्म की उपासना में तत्पर रहते हैं । परन्तु इसका पार पा सकने में समर्थ नहीं हो सके हैं ॥ ५ ॥

मैं ही संक्षेप से नाद ब्रह्म को जानता हूँ । नाद की उपासना करके ही सब देवता मेरी सेवा करते हैं ॥ ६ ॥

हे महाभाग ! परम ज्योति स्वरूप आत्मा में रमण करने वाला प्रभु, मन को प्रेरित करता है । देह में स्थित वह अग्नि वायु को प्रेरित करती है ॥ ७ ॥

नाभि मूल में स्थित वायु क्रम से ऊपर पथ की ओर चलता हुआ नाभि से हृदय और कंठ में प्रवेश करता हुआ ऊर्ध्वमुख में प्रवेश करता है ॥ ८ ॥

आविर्भावो ध्वनेः पूर्वं ततः पंचविधो मतः ।
अतिसूक्ष्मस्ततः सूक्ष्मः पुष्टोऽपुष्टश्च कृत्रिमः ॥ ९ ॥

नाभ्यादिस्थानसंस्थो वै पंचधा ससुदीरितः ।
प्राणो तकार आख्यात आकारो नलसंज्ञितः ।
संयुक्तः प्राणवह्न्योश्च तेन नादस्तथा स्मृतः ॥ १० ॥

त्रिधाऽसौ व्यवहारौ वै मंद्रस्तारस्तथा परः ।
घोरस्तृतीय आख्यातस्तेषां स्थानानि वै शृण ॥ ११ ॥

नाभिमध्ये स्थितो घोरो हृदये मंद्रको मतः ।
शिरो गात्रे तथा तारस्त एव ग्रामनामकाः ॥ १२ ॥

तस्य द्वाविंशतिर्भेदा नादस्य परमात्मनः ।
श्रुतयस्ते समाख्याताः श्रवणान्नारदेरिताः ॥ १३ ॥

नाड्यो द्वाविंशतिर्विप्र स्थितास्तिर्यगधश्च ताः ।
वायुनैव हतास्ता वै श्रुतयः संभवन्ति हि ॥ १४ ॥

प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः ।
सा श्रुतिर्वै परिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा ॥ १५ ॥

श्रुतिभ्यस्तु स्वराः सप्त ताञ्छृणुष्व महामुने ।
प्रथमः षड्जको नाम ऋषभस्तु द्वितीयकः ॥ १६ ॥

गांधारस्तु तृतीयश्च चतुर्थो मध्यमः स्मृतः ।
पंचमः पंचमः प्रोक्तो पष्ठो धैवत उच्यते ॥ १७ ॥

निषादः सप्तमः प्रोक्तस्तंत्रीकंठोत्थिता इमे ।
तेषां नामानि वर्णाश्च सरिगमपधनी मताः ॥ १८ ॥

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।
स्वनो रंजयति श्रोतुश्चित्तं स स्वर उच्यते ॥ १९ ॥

श्रुतिजातीः प्रवक्ष्यामि शृण नारद तत्त्वतः ।
दीप्ता तथाऽऽयता चैव करुणा च तृतीयका ॥ २० ॥

उससे पूर्व ध्वनि का आविर्भाय होता है। वह पांच प्रकार का है—अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट और कृत्रिम ॥ ६ ॥

नाभि आदि स्थानों में स्थित उसको पांच प्रकार से वर्णित किया गया है। प्राण को नकार करते हैं तथा आकार नल संज्ञक है। प्राण और वह्नि से संयोजित होकर वह नाद कहलाता है ॥ १० ॥

इसका व्यवहार तीन प्रकार से होता है—मन्द्र, तार और घोर। अब उनके स्थानों का वर्णन सुनो ॥ ११ ॥

नाभि में घोर, हृदय में मंद्रक और शिर तथा समस्त गात्र में तार स्थित रहता है। इन्हीं को ग्राम नाम से भी कहा जाता है ॥ १२ ॥

उस नाद स्वरूप ब्रह्म के बाईस भेद हैं। हे नारद ! श्रवण करने से उन्हें ही श्रुति कहा जाता है ॥ १३ ॥

हे विप्र ! मनुष्य के शरीर में तिर्यग् एवं अधोरूप से बाईस नाड़ियाँ स्थित रहती हैं। वायु के द्वारा आहत होने से वे श्रुति हो जाती हैं ॥ १४ ॥

पहली बार श्रवण करने ह्रस्व मात्र शब्द सुनाई देता है। उसी को स्वर के अवयवरूप लक्षणों से युक्त श्रुति जानना चाहिये ॥ १५ ॥

हे महामुने ! श्रुतियों से ही सात स्वरों का प्रादुर्भाव होता है। तुम उन्हें सुनो। पहला षड्ज स्वर, दूसरा ऋषभ···॥ १६ ॥

तीसरा गांधार, चौथा मध्यम, पांचवां पंचम, छटा धेवत···॥ १७ ॥

और सातयां स्वर निषाद है। इनका उत्थान वीणा के कंठ से होता है। इनके नाम और वर्ण स-रि-ग-म-प-ध-नी होते हैं ॥ १८ ॥

श्रवण हो चुकने के पश्चात् जो अनुरणनात्मक शब्द श्रवण करने वालों के मन को प्रसन्न करता है वह स्वर कहलाता है ॥ १६ ॥

हे नारद ! मैं श्रुति-जातियों का वर्णन करूँगा। आप ठीक प्रकार से सुनिये। पहली दीप्ता, दूसरी आयता, तीसरी करुणा···॥ २० ॥

मृदुर्मध्या तथा प्रोक्ताः पंच वै श्रुतिजातयः ।
आसां वै पंचजातीनां स्वरेष्वेव व्यवस्थितिः ॥ २१ ॥

दीप्तऽऽयता मृदुर्मध्या षड्जे च ऋषभे पुनः ।
संस्थिता करुणा मध्या मृदुर्गान्धारके पुनः ॥ २२ ॥

मध्यमे[1] ते दीप्तयते मृदुमध्ये तथास्थिते ॥ २३ ॥

मृदुश्चैव तथा मध्या करुणा मध्यमस्थिता ।
धैवते करुणा मध्याऽऽयता च परमा स्थिता ।
दीप्ता जातीः प्रवक्ष्यामि श्रृणु तत्त्वेन नारद ॥ २४ ॥

तीव्रा रौद्री वज्रिकोग्रा चतुर्द्धा दीप्तिका मता ।
आयतायास्तथा भेदाः पंच सन्ति श्रृणुष्व तान् ॥ २५ ॥

कुमुद्वती च क्रोधा च तृतीया वै प्रसारिणी ।
तथा संदीपिनी प्रोक्ता रोहिणी पंचमी मता ॥ २६ ॥

करुणायास्तया भेदास्त्रयः प्रोक्ता मदादिभिः ।
दयावती तु प्रथमा लापिनी च द्वितीयका ॥ २७ ॥

मदंतिका तृतीया स्यान्मृदोर्भेदचतुष्टयम् ।
मंदा रतिस्तथा प्रीतिः क्षितिश्चैव चतुर्थिका ॥ २८ ॥

मध्या भेदास्तु षट् प्रोक्ता रंजिनी मार्जनी तथा ।
छन्दोवती रक्तिका च रम्या च क्षोभिणी मता ॥ २९ ॥

स्वरस्थितिं प्रवक्ष्यामि तासां नारद तच्छृणु ।
मंदा छंदोवती तीव्रा षड्जे चैव कुमुद्वती ॥ ३० ॥

रतिर्दयावती चैव रंजिनी चर्षभे मता ।
क्रोधा रौद्री च गांधारी मध्यमे वज्रिका तथा ॥ ३१ ॥

प्रसारिणी च प्रीतिश्च मार्ज्जनीत्येवमाश्रिताः ।
संदीपिनी च रिक्ता च क्षितिरालापिनी तथा ॥ ३२ ॥

---

१. "मध्यमे स्थिता" पाठ इसमें नहीं है ।

चौथी मृदु और पांचवीं मध्या ये पांच श्रुति जातियाँ हैं। ये पांचों जातियाँ स्वरों में ही अवस्थित रहती हैं ॥ २१ ॥

दीप्ता, आयता, मृदु और मध्या षड्ज और ऋषभ में स्थित रहती हैं। करुणा, मध्या और मृदु ये गांधार में स्थित होती हैं ॥ २२ ॥

वे मृदु और मध्या जातियां मध्यम स्वर पर होने पर उसको दीप्त करती हैं ॥ २३ ॥

मृदु, मध्या और करुणा मध्यम स्वर में स्थित होती हैं। करूणा, मध्या और आयता धैवत स्वर में अवस्थित रहती हैं। अब मैं दीप्ता जातियों का वर्णन करूँगा। हे नारद ! आप ठीक से सुनिये ॥ २४ ॥

तीव्रा, रौद्री, वज्रिका और उग्रा ये चार प्रकार दीप्ता जातियों के कहे गये हैं। आयता के पांच भेद हैं, उन्हें आप सुनिये ॥ २५ ॥

कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपिनी तथा रोहिणी ये पांच भेद आयता के हैं ॥ २६ ॥

हमारे द्वारा करुणा जातियों के तीन भेद कहे गये हैं, पहला दयावती, दूसरा लापिनी···॥ २७ ॥

तीसरा भेद मदंतिका है। मृदु के चार भेद कहे गये हैं—मंदा, रति, प्रीति और चौथा भेद क्षिति है ॥ २८ ॥

मध्या जाति के छः भेद कहे गये हैं—रंजिनी, मार्जनी, छन्दोवती, रक्तिका, रम्या और क्षोभिणी ॥ २९ ॥

हे नारद ! स्वरों की स्थिति को सुनो, मैं उसका वर्णन करता हूँ। मन्दा, छन्दोवती, तीव्रा और कुमुद्वती ये षड्ज स्वर में स्थित मानी गई हैं ॥ ३० ॥

रति, दयावती और रंजिनी ये ऋषभ में स्थित रहती हैं। क्रोधा, रौद्री, गांधारी और वज्रिका ये मध्यम स्वर में अवस्थित मानी गई हैं ॥ ३१ ॥

प्रसारिणी, प्रीति, मार्ज्जनी, संदीपनी, रिक्ता, क्षिति, आलापिनी ॥ ३२ ॥

पंचमे संस्थिता ह्येता मदंती रोहिणी तथा ।
रम्या चैव तथा विप्र धैवते संस्थिता मताः ॥ ३३ ॥

उग्रा च क्षोभिणीति द्वे निषादे संस्थिते श्रुती ।
घोराख्यमंद्रताराणां स्थानभेदास्त्रिधा स्वराः ॥ ३४ ॥

एवं ते विकृतावस्था द्वादश प्रतिपादिताः ।
विकृतस्तु तथा षड्जे अच्युतच्युतभेदतः ।
द्विश्रुतिः षड्जको विप्र शृणु चान्यच्च वैकृतिम् ॥ ३५ ॥

काकलीत्वे निषादस्य तथा वै श्रुतयोन्तरे ।
साधारणा श्रुतिः षाड्जी संश्रितश्चर्षभो यथा ॥ ३६ ॥

चतुःश्रुतिमवाप्नोति विकृतिस्त्वेकको मतः ।
तस्मिन्नेव यदा विप्र तिस्रो वै श्रुतयोन्तरे ॥ ३७ ॥

पुनश्चतुःश्रुतिश्चान्ते गांधारो भेदकः स्मृतः ।
आसां धारणसंस्थानान्मध्योन्तः षड्जवद्द्विधा ॥ ३८ ॥

घोरग्रामे पंचमस्तु त्रिः श्रुतिः कौशिके पुनः ।
संप्राप्य मध्यमश्रुतिं द्विधेति च चतुःश्रुतिः ॥ ३९ ॥

घोरग्रामे धैवतस्तु विकृतः स्थाच्चतुःश्रुतिः ॥ ४० ॥

निषादस्त्रिचतुःश्रोतः काकलीत्वेन कौशिके ।
तदा द्वौ विकृतौ भेदौ प्राप्नोति द्वादश स्मृताः ॥ ४१ ॥

सार्द्धं शुद्धैः सप्तभिस्ते दश चैव नव स्मृताः ।
मयूरा ब्रुवते षड्जं चातकश्चर्षमं तथा ॥ ४२ ॥

गांधारं वर्करो ब्रूते क्रौंचः क्वणति मध्यमम् ।
कोकिलः पंचमं ब्रूते दर्दुरो धैवतं मुने ।
गजा निषादं ब्रुवते इति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ४३ ॥

पुनश्चतुर्विधः प्रोक्तो मुने वाद्यादिभेदतः ।
वादी विवादी संवादीह्यनुवादी प्रभेदतः ॥ ४४ ॥

ये सब पंचम स्वर में स्थित रहती हैं। मदंती, रोहिणी तथा रम्या ये तीन हे विप्र ! धैवत स्वर में स्थित रहती हैं ।। ३३ ।।

उग्रा और क्षोभिणी ये दो निषाद स्वर में स्थित रहती हैं। स्थान भेद से स्वर घोर, मंद्र और तार तीन प्रकार के कहे गये हैं ।। ३४ ।।

इस प्रकार उनकी बारह विकृत अवस्थाओं को मैंने प्रतिपादित किया है। अच्युत और च्युत भेद से षड्ज स्वर में विकार होते हैं। षड्ज स्वर का श्रवण दो प्रकार से होता है। हे विप्र ! अब अन्य विकृतियों को सुनो ।। ३५ ।।

निषाद स्वर की काकली (मधुर और अस्फुट) ध्वनि में अन्य श्रुतियों के बीच में जब षड्ज और ऋषभ स्वर होते हैं तब उनकी साधारण श्रुति होती है ।। ३६ ।।

वह श्रुति चार प्रकार से सुनी जाती है। विकृति का एक ही प्रकार माना गया है। हे ब्राह्मण ! जब उनमें तीन श्रुतियों का अन्तर होता है ।। ३७ ।।

तब ही गांधार स्वर भी चार प्रकार से श्रवण गोचर होता है। इनकी धारणा के संस्थान षड्ज स्वर मध्य और अन्त दो भेद से माना गया है ।। ३८ ।।

घोर ग्राम में पंचम स्वर तीन प्रकार से सुनाई देता है। फिर कौशिक में मध्यम श्रुति को प्राप्त होकर उसके दो भेद तथा फिर चार भेद हो जाते हैं ।। ३९ ।।

घोर ग्राम में धैवत स्वर जब विकृत होता है, तब उसकी श्रुति चार प्रकार से होती है ।। ४० ।।

कौशिक में काकली भेद से जब निषाद श्रवण होता है, तब दो विकृत भेदों को मिला देने से उसके सब बारह भेद हो जाते हैं ।। ४१ ।।

सात शुद्ध स्वरों के साथ उनको मिला लेने पर सब वे उन्नीस हो जाते हैं। मयूर षड्ज स्वर में तथा चातक ऋषभ स्वर में बोलता है ।। ४२ ।।

गांधार स्वर को बकरा और मध्यम स्वर को क्रौंच पक्षी बोलता है। हे मुने ! कोकिल पंचम स्वर में, मैंढक धैवत स्वर में और हाथी निषाद स्वर में बोलता है। इस प्रकार विद्वानों को यह जानना चाहिए ।। ४३ ।।

हे मुने ! फिर वाद्य आदि के भेद से वह स्वर वादी, विवादी, संवादी और अनुवादी चार भेद से जाना जाता है ।। ४४ ।।

प्रयोगे वहुलो वादी श्रुतयो वायुगोचराः ।
संवादी च विवादी च मिथः संवादिनौ यदा ।
संवादित्वं विवादित्वं स्यात्तयोर्वै पृथक्-पृथक् ॥ ४५ ॥

शेषाणामनुवादित्वं राजा वादी च गीयते ।
अनुसारित्वात्तु संवादी तथाऽन्मान्यो विधीयते ॥ ४६ ॥

वन्दारककुलोद्भूताः षड्जगांधारमध्यमाः ।
पितृजः पंचमः प्रोक्तो ऋधौ मुनिकुलोद्भवौ ॥ ४७ ॥

निषादस्त्वासुरः प्रोक्तः षड्जमध्यमपंचमा ।
ब्राह्मणास्ते समाख्याता ऋधौ तु क्षत्रियौ स्मृतौ ॥ ४८ ॥

गांधारश्च निषादश्च वैश्यजातिसमुद्भवौ ।
शूद्रावंतरकाकल्यौ तेषां रूपाण्यथो श्रृणु ॥ ४९ ॥

षड्जो भस्मसमाभासो रिश्च पिंजरमूर्तिमान् ।
गांधारः स्वर्णवर्णाभो मध्यमः कुन्दमूर्तिमान् ॥ ५० ॥

पंचमः श्वेतवर्णश्च धैवतः पीतवर्णकः ।
कर्बुरस्तु निषादो वै जन्मभूमिं तथा श्रृण ॥ ५१ ॥

जम्बुद्वीपभवः षड्जो ऋषभः शाकसम्भवः ।
कुशद्वीपभवो गश्च मध्यमः क्रौंचद्वीपजः ॥ ५२ ॥

पंचमः शालमलौ जातः श्वेतजो धैवतः स्मृतः ।
निषादः पुष्करे जातो देवताः श्रृणु नारद ॥ ५३ ॥

वह्निः को वै भारती चाऽहं विष्णुर्गणपो रविः ।
क्रमादेते षड्जाधीशाश्छन्दांसि श्रृणु नारद ॥ ५४ ॥

क्रमादनुष्टुब् गायत्री त्रिष्टुप् च बृहती तथा ।
पंक्तिरुष्णिक् च जगती षड्जादीनां महामुने ॥ ५५ ॥

वायु गोचर होने से ये श्रुतियाँ प्रयोग में वादी होती हैं। संवादी और विवादी इन दोनों का मिलन होने पर उन्हें संवादी कहते हैं। उनके अलग-अलग होने पर ये संवादी और विवादी होते हैं ॥ ४५ ॥

शेष स्वरों में अनुवादित्व धर्म रहता है। वादी नाद राजा कहलाता है। उसका अनुसरण करने से संवादी नाद उसका अमात्य कहलाता है ॥ ४६ ॥

षड्ज मध्यम और गांधार स्वर देवकुल में उत्पन्न हुये हैं, पंचम स्वर पितरों से उत्पन्न हुआ है तथा ऋषभ और धैवत स्वर मुनिकुल से उत्पन्न हुये हैं ॥ ४७ ॥

निषाद स्वर असुरों से उत्पन्न हुआ है। षड्ज, मध्यम और पंचम स्वर ब्राह्मण हैं। धैवत और ऋषभ स्वर क्षत्रिय हैं ॥ ४८ ॥

गांधार और निषाद स्वर वैश्य जाति से उत्पन्न हैं। अन्तर और काकली शूद्र स्वर हैं। अब इनके रूपों को सुनो ॥ ४९ ॥

षड्ज स्वर का स्वरूप भस्म के समान और ऋषभ स्वर का स्वरूप पिंजरे के समान है। गान्धार स्वर का स्वरूप स्वर्ण के समान तथा मध्यम स्वर का स्वरूप कुन्द पुष्प के समान है ॥ ५० ॥

पंचम स्वर का स्वरूप श्वेत वर्ण का है। धैवत स्वर का स्वरूप पीले वर्ण का है। निषाद स्वर का स्वरूप चितकबरे वर्ण का है। अब इनकी जन्म-भूमि सुनिये ॥ ५१ ॥

जम्बूद्वीप में षड्ज, शाकद्वीप में ऋषभ, कुशद्वीप में गान्धार और क्रौंचद्वीप में मध्यम उत्पन्न हुये हैं ॥ ५२ ॥

शालमलिद्वीप में पंचम, श्वेतद्वीप में धैवत, पुष्कर द्वीप में निषाद स्वर की जन्म भूमि है। हे नारद ! अब इनके देवताओं को सुनो ॥ ५३ ॥

अग्नि, ब्रह्मा, सरस्वती, शिव, विष्णु, गणेश और सूर्य ये क्रमशः स्वरों के देवता हैं। हे नारद ! अब तुम इनके छन्दों को सुनो ॥ ५४ ॥

हे महामुने ! अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक् और जगती ये क्रम से इन स्वरों के छन्द हैं ॥ ५५ ॥

सरवीरेऽद्भुते रौद्रे धो बीभत्से भयानके।
काय्यौं गनी तु करुणे हास्यश्रृंगारयोर्मपौ ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे
नादश्रुतिभेदाख्यानं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

ग्रामाणां संक्षेपतो वर्णनं, देवतानां गानसमयस्य गानयोगस्थलस्य च निरूपणम्

ईश्वर उवाच—

संक्षेपतो ग्रामभेदान्प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्व तान्।
स्वरसंदोहको ग्रामो यत्र मूर्च्छादिसंस्थितिः ॥ १ ॥

गातव्यौ द्वौ धरायां हि षड्जमध्यमसंज्ञितौ।
गांधारग्रामकः स्वर्गे गातव्यो भवदादिभिः ॥ २ ॥

ग्रामाणां देवता ब्रह्मा विष्णुश्चाहं यथाकमात्।
हेमन्ते च तथा ग्रीष्मे वर्षायां ते यथाक्रमम्।
प्रातर्मध्यापराह्णेषु गातव्याः शिवमिच्छता ॥ ३ ॥

तथा सप्तस्वराणां च ह्यारोहश्चावरोहणम्।
मूर्च्छनास्ताः समाख्याताः संख्यया चैकविंशतिः ॥ ४ ॥

ग्रामद्वये महाभाग चतुर्दश समीरिताः।
षड्जग्रामे तु मूर्च्छानां देवताः श्रृणु नारद ॥ ५ ॥

केन्द्रवायुसुगंधर्व्वसिद्धधात्रीभगाः क्रमात्।
नामानि श्रृणु तेषां हि मूर्च्छनानां यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

निरुद्गता च कान्ता च सौवेरी हृष्यती तथा।
उत्तरा चायता षष्ठी रजनी सप्तमी मता ॥ ७ ॥

मध्यमे मूर्च्छनाश्चैव व्यापिनी चन्द्रिका मता।
हेमा कर्पादिनी मैत्री तथा चांद्रवती मुने ॥ ८ ॥

स स्वर का रस वीर, री का अद्‌भुत, ध का रौद्र, ग का वीभत्स, नी का भयानक तथा करुण, म का हास्य और प का शृंगार रस हैं ।। ५६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-प्रशंसा में रुद्रतीर्थ में नाद-श्रुति-भेद आख्यान नाम का सड़सठवां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय ६८

ग्रामों का संक्षेप से वर्णन, उनके देवताओं का, गान के समय का और गान के योग्य स्थान का निरूपण

ईश्वर ने कहा—

अब मैं ग्राम के भेदों को संक्षेप से कहूँगा । आप उन्हें सुनिये । स्वरों के संदोह का नाम ग्राम है, जिसमें मूर्च्छना आदि की स्थिति रहती है ।। १ ।।

पृथ्वी पर षड्‌ज और मध्य स्वर का गान करना चाहिये । आप जैसे लोगों को चाहिए कि वे गांधार स्वर का गान स्वर्ग लोक में करें ।। २ ।।

ग्रामों के देवता क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं । हेमन्त, ग्रीष्म और तर्षा ऋतु में यथा क्रम गान करना चाहिये । प्रातः मध्याह्न और अपराह्न में कल्याण की इच्छा रखने वाला व्यक्ति इनका गान करे ।। ३ ।।

तथा सात स्वरों का आरोह-अवरोह क्रम मूर्च्छना कहा गया है, जिनकी संख्या इक्कीस है ।। ४ ।।

हे महाभाग ! दो ग्रामों में चौदह मूर्च्छनायें हैं । हे नारद ! अब षड्‌ज ग्राम में मूर्च्छनाओं के देवताओं को सुनो ।। ५ ।।

ब्रह्मा, इन्द्र, वायु, गन्धर्व, सिद्ध, धात्री और भग ये क्रमशः इनके देवता हैं । अब उन मूर्च्छनाओं के नामों को सुनो जिनका क्रम इस प्रकार से है ।। ६ ।।

ये मूर्च्छनायें सात हैं—निरुद्‌गता, कान्ता, सौवेरी, हृष्यती, उत्तरा, छठी आयता और सातवीं रजनी ।। ७ ।।

हे मुने ! मध्यम स्वर में व्यापिनी, चन्द्रिका, हेमा, कर्पादिनी, मैत्री, चांद्रवती तथा ।। ८ ।।

पित्र्या वं सप्तमी ख्याता गांधारे श्रृणु नारद।
नंदा विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखा॥ ९॥

आलापा चेति सप्त स्युर्मूर्च्छना वै तृतीयके।
ताना एकोनपंचाशत्रिग्रामे श्रृणु तान्मुने॥ १०॥

शुद्धाः स्युर्मूर्च्छनास्तानाः षाडवौढवनामकाः।
षड्जे निषादहीनाश्च क्रमाद्वारिपनैस्तु ते॥ ११॥

सरिगेभ्यो विहीनाश्च मध्यमेऽष्टौ च विंशतिः।
क्रमात्सप्त यदा तानास्तदा चैकोनविंशतिः॥ १२॥

षाडवाभिर्युता विप्र चत्वारिंशन्नवैव ते।
द्विश्रुतिभ्यां सश्यपश्यधारिभ्यां सत्त्ववर्जिताः॥ १३॥

पृथक्तानाः प्रथमके औडवास्त्वेकविंशतिः।
ऋषभाभ्यां च द्विश्रुत्या मध्यमे ग्राससंस्थिताः॥ १४॥

चतुर्दशैव हीनाः स्युः पंचत्रिशच्च संख्यया।
षाडवा औढवाश्चैत्वाशीतिश्च चतुरश्च ते॥ १५॥

कूटतानास्त्वसंपूर्णा व्युत्क्रमोच्चारितास्तथा॥ १६॥

सम्पूर्णाश्च यथा विप्र संख्यानं श्रृणु नारद।
चत्वारिंशत्तथा पञ्च सहस्राणि महामुने॥ १७॥

सम्पूर्णाश्च तथा ख्याताः कूटतानाः क्रमात्तथा।
एकैकस्यां मूर्च्छनायां षट्पंचाशत्तथेरिताः।
नेत्रलक्षनेत्रनागसहस्राण्यक्षिणी तथा॥ १८॥

खयुगाश्च चथा ख्याता ह्यपूर्णान् श्रृणु नारद।
विंशतिः षाडवानां तु तथा सप्तशतानि तु॥ १९॥

विंशोत्तरं शतं चैव ह्यौढवानां विधीयते।
चतुः स्वराणां कूटानां युगनेत्रमितिर्मता॥ २०॥

---

१. "सम्पूर्णाश्च · महामुने" पाठ इसमें नहीं है।

सातवीं पित्या नाम की मूर्च्छनायें हैं। हे नारद ! अब गान्धार स्वर में वास करने वाली मूर्च्छनाओं को सुनो। नंदा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवर्ती, सुखा···॥ ९ ॥

और आलापा, ये सात मूर्च्छनायें तीसरे गान्धार स्वर की हैं। हे मुने ! तीनों ग्रामों में उनचास तान हैं। अब आप उन्हें सुनिये ॥ १० ॥

शुद्धा, मूर्च्छना और षाढव-औडव नाम की तानें षड्ज स्वर में स्थित रहती है। ये क्रम से निषाद-हीन है ॥ ११ ॥

स-रि-ग से रहित, मध्यम स्वर में अठ्ठाईस तानें विद्यमान रहती हैं। जबकि क्रम से स्वर सात हैं तो तानें उन्नीस हैं ॥ १२ ॥

हे विप्र ! षाढव आदि से युक्त होकर वे सब उनचास हो जाते हैं। सश्य और पश्य से युक्त हो श्रुतियों से युक्त होकर वे सत्त्व से वर्जित रहती हैं ॥ १३ ॥

पहले स्वर में अलग-अलग औडव आदि इक्कीस तानें है। द्विश्रुति के द्वारा इनकी स्थिति मध्यम ग्राम में रहती हैं ॥ १४ ॥

चौदह कम होकर पैंतीस संख्या के द्वारा षाडव और औढव से मिलकर इनके चौरासी भेद होते हैं ॥ १५ ॥

व्युत्क्रम से उच्चारण करने पर ये ही कूटतान होती हैं। ये सम्पूर्ण नहीं हैं ॥ १६ ॥

हे महामुने विप्र नारद ! सुनो। जब ये संख्या में सम्पूर्ण होती हैं तो ५०४० संख्या में होती हे ॥ १७ ॥

तब वे कूटतानें क्रमशः सम्पूर्ण कहलाती हैं। एक-एक मूर्च्छना में छप्पन कूटतानें होती हैं। दो लाख, बहत्तर हजार दो सौ···॥ १८ ॥

चालीस कूटपूर्ण मूर्च्छनायें है। हे नारद ! अब आप अपूर्ण कूटतानों को सुनो। ये सात सौ बीस षाडवों की कूटतानें हैं ॥ १९ ॥

और आढवों की एक सौ बीस तानें हैं। चार कूट स्वरों के चौबीस भेद हैं ॥ २० ॥

रसनेत्रस्वरौ चैव त्रिः स्वराश्चैककः स्वरः ।
आर्च्चिकः प्रथमः ख्यातो गाथिकः सामिकस्तथा ॥ २१ ॥

स्वरीयकश्चतुर्थश्च नामान्येषां क्रमान्मुने ।
युक्तौ निषादगांधारौ तत्र शुद्धादिभेदतः ॥ २२ ॥

चतुर्विधाः प्रजायन्ते तयोरेकैकहानितः ॥ २३ ॥

षाद्यौ माद्यौ तु चत्वारो द्विविधौ द्विविधौ यतः ।
अन्ये दश तथा चाष्टौ चतुर्द्धा च यथा क्रमात् ॥ २४ ॥

चत्वारिंशच्च तथा विंशतिः खखसप्तकम् ।
शतं च गुणिताः सर्वे षाडवानां तथा मितिः ॥ २५ ॥

सहस्राणां चतुस्त्रिंशत्षष्टिः पंचशतानि च ।
सर्वौढवानां संख्यानं श्रृणु नारद कृत्स्नशः ॥ २६ ॥

मध्याद्यौ धैवताद्यौ च भेदाश्चत्वार एव च ।
षडौढवा द्विधेत्येव मुक्तपूर्वप्रभेदतः ॥ २७ ॥

अष्टावन्त्यादिमे विप्र चत्वारिंशत्सप्तविंशतिः ।
शतं च गुणितं तैश्च तथा गजशतानि वै ॥ २८ ॥

पंचस्वरेषु संख्या स्यान्मुने कृतसहस्रकम् ।
चतुर्द्धाद्यौ तथा नाद्यौ द्वादश प्रथमे मताः ॥ २९ ॥

गुणिता युगनेत्राख्यैर्द्वात्रिंशद्वै महामुने ।
संख्याश्चतुःस्वरे चोक्तास्त्रिस्वरेषु तथा श्रृणु ॥ ३० ॥

माद्यौ चतुर्धा भेदौ द्वौ परनेत्रेन्दुसम्मिताः ।
ते वै द्विधेयं षड्त्रिंशत् षड्भिस्ते गुणितास्ततः ॥ ३१ ॥

द्विस्वरेषु द्विधा विप्र रिगधेत्यादयोऽष्टकम् ।
शुद्धाः स्युर्द्वाविंशतिरब्ध्यब्धिगुणिता मुने ॥ ३२ ॥

स्वर एक ही है, परन्तु उनके छ, दो और तीन प्रकार है। हे मुने ! चार कूट स्वरों के क्रमशः नाम हैं—पहला आर्च्चिक, दूसरा गाथिक, तीसरासामिक तथा ॥ २१ ॥

चौथा स्वरीयक। शुद्ध आदि भेद से ये निषाद और गांधार से युक्त हैं ॥ २२ ॥

उनसे एक-एक घटा देने से वे चार-चार प्रकार के हो जाते हैं ॥ २३ ॥

षड्ज और मध्यम स्वर के दो-दो भेद हैं और अन्य स्वरों के दस, आठ और चार भेद यथाक्रम से हैं ॥ २४ ॥

षाडव के सब मिलाकर सात सौ बीस, चालीस और दो सौ भेद हैं ॥ २५ ॥

हे नारद ! समस्त औढवों के सम्पूर्ण भेद चौंतीस हजार पांच सौ साठ हैं ॥ २६ ॥

मध्य आदि और धैवत आदि के चार भेद हैं। औढव आदि के दो भेद तथा पहले छः भेद हैं ॥ २७ ॥

हे विप्र ! स्वरों की अलग-अलग गणना चालीस, सत्ताईस, सौ तथा आठ सौ है ॥ २८ ॥

हे मुने ! पांच स्वरों की संख्या हजार मानी गई है। नाद में उनका चार प्रकार से विभाजन है। पहले स्वर के बारह भेद माने गये हैं ॥ २९ ॥

हे महामुने ! चार और दो से गुणा कर लेने पर उनके बत्तीस भेद हो जाते हैं। चार स्वरों में संख्या क्रम कहा गया है। अब तीन स्वरों में संख्या क्रम सुनिये ॥ ३० ॥

मध्यम और धैवत स्वर में भी चार प्रकार के भेद होते हैं। वे निश्चय से दो प्रकार के हैं। छः से उन्हें दो प्रकार से गुणन करने से छत्तीस भेद हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

हे विप्र ! दो स्वरों में दो प्रकार से रि-ग-ध आदि में आठ प्रकार की स्थिनि बन जाती है। हे मुने ! उनकी शुद्ध गणना बाईस मानी गई है ॥ ३२ ॥

एकस्वरादिभेदत्वान्मूलभूताश्चतुर्द्दश ।
ते षड्जशुद्धमध्यायपंचकं भिदिकं विना ।। ३३ ।।

सर्वेष्टचत्वारिंशद्वै ज्ञातास्त्रिस्वरकेषु वै ।
द्वादश द्विस्वरे प्रोक्ता द्वयमेकैककस्वरे ।। ३४ ।।

त्रिषष्टिरुत्तरैर्मद्रैस्ताना मार्गीभवा पुनः ।
शराः स्वराश्च चत्वारस्तत्तानानां चतुःशतम् ।। ३५ ।।

स्वराधिकाः स्वरास्तद्वत्तथा षण्णवतिस्तथा ।
द्वादश त्रिस्वरद्वन्द्वे चत्वारो द्विस्वरे द्वये ।। ३६ ।।

एकैक स्वरतानां भवेत्पंचशतीत्वियम् ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विस्तरो मूर्च्छनादिकः ।। ३६ ।।

नामानि शुद्धतानानां शृणु नारद साम्प्रतम् ।
अग्निष्टोमस्तथात्यग्निष्टोमो वै वाजपेयकः ।। ३८ ।।

षोडशः पुण्डरीकोऽश्वमेधो वै राजसूयकः ।
सहीनानां महाभाग सप्त नामान्यनुक्रमात् ।। ३९ ।।

स्विष्टकृद्बहुवर्णश्च गोसवश्च महाव्रतः ।
विश्वजिद्ब्रह्मयज्ञश्च प्राजापत्यश्च सप्तमः ।। ४० ।।

नामानि रिविहीनानां तानानां स्युर्यथाक्रमम् ।
अश्वक्रान्तो रथक्रान्तो विष्णुक्रान्तो महामुने ।
सूर्य्यक्रान्तो गजक्रान्तो बलभिन्नागयक्षकौ ।। ४१ ।।

पहीनानां[1] यथा संज्ञाश्चोक्ता नारद ते[2] मया ।
चातुर्मास्योऽथ संस्थश्च शास्त्रमैक्यश्चतुर्थकः ।। ४२ ।।

सौभामणिस्तथा चित्रो मदः सप्तम एव च ।
इति नामानि संख्या च कथिता ते द्विजोत्तम ।। ४३ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थे संगीतशास्त्रे ग्रामादिभेदकथनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।

---

१. विहीनानां २. वै ।

एक ही स्वर आदि का भेद होने से मूलभूत चौदह स्वर हैं। उनकी शुद्ध स्थिति का भेद षड्ज, मध्यम और पंचम हैं ॥ ३३ ॥

तीन स्वरों में सब अड़तालीस भेदों की स्थिति मानी गई है। दो स्वरों, बारह और अन्य एक-एक स्वर में दो-दो भेदों की स्थिति है ॥ ३४ ॥

उत्तर के मन्त्रों के द्वारा मार्गीभूत तानों की संख्या तिरेसठ मानी गई हैं। उन स्वरों के चार स्वर और चार शर हैं। उनके तानों की संख्या चार सौ है ॥ ३५ ॥

तथा स्वर अधिक भी हैं। स्वरों की संख्या छियानवे है। दो-दो के क्रम से तीन स्वरों में बारह भेद और दो स्वरों में चार भेद हैं ॥ ३६ ॥

इस प्रकार भेद करने से एक-एक स्वर की तानें पांच सौ हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मूर्च्छना आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है ॥ ३७ ॥

हे नारद ! अब शुद्ध तानों के नामों को सुनो—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेयक ॥ ३८ ॥

षोडश, पुण्डरीक, अश्वमेध और राजसूय ये सात क्रम से हैं। हे महाभाग ! स स्वर से रहितों के क्रमशः सात नाम हैं ॥ ३९ ॥

स्विष्टकृत्, बहुवर्ण, गोसव, महाव्रत, विश्वजित्, ब्रह्मयज्ञ और प्राजापत्य ये सात ॥ ४० ॥

रि स्वर से रहित तानों के क्रम से नाम हैं—अश्वक्रान्त, रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त, सूर्यक्रान्त, गजक्रान्त, बलभिद्, नाग और यक्ष ॥ ४१ ॥

हे नारद ! मैंने इन सात प से रहित के नाम आपसे कहे हैं। चातुर्मास्य, संस्थ, शास्त्र, ऐक्य, चतुर्थक ॥ ४२ ॥

सौत्रामणि तथा सातवां चित्रमद। ये नाम और संख्या मैंने हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपसे वर्णित की है ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-प्रशंसा में
रुद्रतीर्थ में संगीत शास्त्र में ग्राम आदि भेद कथन नाम
का अड़सठवां अध्याय पूरा हुआ।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मध्यमग्रामसम्बद्धषाडवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

मध्यग्रामसम्बद्धान्षाडवान् शृणु नारद।
सावित्री चार्द्धसावित्री सर्वतोभद्रकस्तथा ॥ १ ॥

ख्यायनो गवायश्च तथा सर्वायनः स्मृतः।
कौडपायननामा च सहीनानां तथाविधा ॥ २ ॥

अग्निजिह्वो दशाहश्च ततः पांशुः कलाधरः।
अश्वप्रतिग्रहो बर्हिस्तथात्युदयसंज्ञकः ॥ ३ ॥

नामानि रिविहीनानां कथितानि महामते।
सर्वस्वदक्षिणश्चैव दीक्षाख्यौ ग्लौः समित्तथा ॥ ४ ॥

स्वाहाकारस्तनूपाच्च गोदोहश्चैव सप्तमः।
गहीनानां महाभाग संख्योक्ता ह्येकविंशतिः ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे मध्यमग्रामषाडवकथनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः।

अध्याय ६९

मध्यम ग्राम सम्बन्धी षाडवों का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे नारद ! मध्यम ग्राम से सम्वद्ध षाडवों का नाम सुनो। सावित्री, अर्द्ध-सावित्री, सर्वतोभद्र ॥ १ ॥

ख्यायन, गवाय, सर्वायन, कौडपायन, ये सब 'स' स्वर से रहितों के नाम हैं ॥ २ ॥

अग्निजिह्व, दशाह, पांशु, कलाधर, अश्वप्रतिग्रह, र्बाह और अभ्युदय ॥ ३ ॥

हे महामते ! रि स्वर से रहितों के नाम आपसे कहे गये हैं। सर्वस्वदक्षिण, दीक्षाख्य, ग्लौ, समित्···॥ ४ ॥

स्वाहाकार, तनूपात् और सातवां गोदोह ये ग स्वर से रहितों के नाम हैं। हे महाभाग ! इनकी कुल संख्या इक्कीस है ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीतशास्त्र
में मध्यम ग्राम षाडव कथन नाम का
उनहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

सप्ततिमोऽध्यायः

षड्जग्रामौढवसमाख्यानम्

ईश्वर उवाच—

षड्जग्रामे महाभाग ह्यौढवान् शृणु तत्परः।
इडा पुरुषमेधश्च श्येनो वज्रस्तथा शरः ॥ १ ॥

अंगिरा कर्कनामा च सपाभ्यां रहितास्त्विमे।
ज्योतिष्टोमस्तथा दर्शो नादी वै पौकसस्तथा ॥ २ ॥

अश्वप्रतिग्रहो रात्रिः सौरभाख्यस्तु सप्तमः।
एतानि नगहीनानां नामानि कथितानि ते ॥ ३ ॥

सौभाग्यदः सुकर्मा च शान्तिदः पुष्टिदस्तथा।
वैनतेयः श्वादनश्च वशीकरणसंज्ञकः।
नामानि परिहीनानां कथितानि महामते ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे षड्जग्रामौढवनाम-
कथनन्नाम सप्ततितमोऽध्यायः।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

षाडवौढवनिरूषणम्

ईश्वर उवाच—

मध्यमग्रामिके विप्र ह्यौढवान् शृणु नारद।
मोहनो वीरकन्दर्पदर्पहा शंखचूडकः।
गजच्छायस्तथा रौद्रो विष्णुविक्रम एव च ॥ १ ॥

नामान्येतानि देवर्षे चतुर्धा तत्प्रकीर्तितम्।
काकल्यंतरसैर्मेतत् विशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥

अध्याय ७०

षड्ज ग्रामौढवों का व्याख्यान

ईश्वर ने कहा—

हे महाभाग ! आप षड्ज ग्राम में औढवों का वर्णन सावधान होकर सुनिये। इडा, पुरुषमेध, श्येन, वज्र, शर ॥ १ ॥

अंगिरा, कर्क ये नाम स और प स्वरों से रहितों के हैं। ज्योतिष्टोम, दर्श, नादी, पौकस···॥ २ ॥

अश्वप्रतिग्रह, रात्रि और सौरभ ये सात नाम न और ग स्वरों से रहितों के कहे गये हैं ॥ ३ ॥

हे महामते ! सौभाग्यद, सुकर्मा, शान्तिद, पुष्टिद, वैनतेय, श्वदन और वशीकरण ये सात नाम प और रि स्वरों से रहितों के कहे गये हैं ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीत शास्त्र में षड्जग्राम-औढव नाम का सत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ७१

षाडव-औढव का निरूपण

ईश्वर ने कहा—

हे नारद ! विप्र ! मध्यम ग्राम में औढवों की स्थिति को सुनो। मोहन, कन्दर्प, वीर, कन्दर्प, दर्पहा, शंखचूड़, गजच्छाय, रौद्र और विष्णुविक्रम···॥ १ ॥

हे देवर्षे ! इन नामों को चार प्रकार से कहा गया है। उनके विषय काकली-अन्तर रसों की की विशेषता से वर्णित किये गये हैं ॥ २ ॥

निसयोः काकली साधारणं ते परिकीर्तितम् ।
गांधारमध्ययोश्चैवांतरस्यापि मतं तु तत् ॥ ३ ॥

समुच्चार्य्य प्रयोज्यौ हि काकलीधैवतौ ततः ।
समुच्चार्य्य महाभागांतरर्षभौ ततो मुने ॥ ४ ॥

तथोच्चार्य्यं सकाकलिनौ संगच्छेत्तदनन्तरम् ।
तदन्यं मध्यमं चान्तं रस्वरं वै प्रयुज्य च ॥ ५ ॥

एवं सर्वत्र देवर्षे रताभ्यां रहितानि ते ।
संज्ञा निगविहीनानां श्रृणु भैरवपूर्वकान् ॥ ६ ॥

भैरवः कामदश्चैवावभृथोऽष्टाकपालकः ।
स्विष्टकृच्च वषट्कारो मोक्षरस्त्वपरो मतः ॥ ७ ॥

मध्यमग्रामके विप्र चतुर्द्धा[1] इव तानकाः ।
साधारणं[2] द्विधा प्रोक्तं स्वरजातिविशेषतः ॥ ८ ॥

तत्र स्वरीयं देवर्षे चतुर्द्धा तत्प्रकीर्त्तितम् ।
काकल्यंतरसैर्मेन विशेषेण च काकली ॥ ९ ॥

स्वरसाधारणे प्रोक्तं जातिसाधारणं श्रृणु ।
एकग्रामे स्थिता अंशा भवेयुर्यदि जातिषु ॥ १० ॥

रागाश्चैव तथा विप्र जातिसाधारणा मताः ।
एतद् ग्रामौढवाषाढं व्याख्यानं ते प्रकीर्त्तितम् ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे षाडवौढवाख्यानं
नामैकसप्ततितमोऽध्यायः

---

१. चतुर्धा २. साधारणी तथा ।

नि और स स्वरों की काकलियों को साधारणतः मैंने आपसे कहा है। उसको गान्धार एवं मध्यम का अन्तर भी माना गया है ॥ ३ ॥

हे मुने ! उनका उच्चारण करके काकली और धैवत का प्रयोग करना चाहिए। हे महाभाग ! ऋषभों में भी इसी प्रकार उच्चारण करके प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

उस प्रकार काकली सहित उच्चारण करके उनकी संगति बिठानी चाहिये। इसी प्रकार अन्य मध्यम स्वर को एवं अन्त में रि स्वर को प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ५ ॥

इस प्रकार हे देवर्षे ! उनको सर्वत्र र और त से अलग जानना चाहिये। अब भैरवपूर्वक नि और ग से रहितों की संज्ञाओं को सुनो ॥ ६ ॥

भैरव, कामद, अवभृथ, अष्टाकपालक, स्विष्टकृत्, वषट्कार और मोक्षर ॥ ७ ॥

हे विप्र ! मध्यम ग्राम में चार प्रकार की तानें होती हैं। उनको साधारणतः स्वर तथा जाति की विशेषता से दो प्रकार का वर्णित किया गया है ॥ ८ ॥

हे देवर्षे ! वहाँ स्वरीय विभागों को चार प्रकार से वर्णित किया गया है। काकली से रहित का सामान्य रूप से और काकली का विशेष रूप से वर्णन किया गया है ॥ ९ ॥

यह स्वर साधारण का वर्णन किया गया है। अब आप जाति साधारण का वर्णन सुनो। यदि एक ही ग्राम में स्थित हुये अंश जातियों में स्थित हो जाये तो···॥ १० ॥

हे विप्र ! इस अवस्था में राग जाति साधारण माने जाते हैं। इस प्रकार ग्रामों के औढव और षाडव की व्याख्या हमने कर दी है ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीत शास्त्र में षाडवौढवाख्यान नाम का इकहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

स्थाय्याद्यलङ्कारवर्णनम्

नारद उवाच[1]—

गानक्रियां महादेव भक्तानुग्रहतत्पर ।
भक्ताय वद देवेश तृप्तिर्मे नास्ति श्रृण्वतः ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु नारद वात्सल्यात्तव सर्वं वदामि च ।
न कदाचिद्धि देवर्षे प्रोक्तं कस्मै मया खलु ॥ २ ॥

वर्णैर्गानक्रिया प्रोक्ता चतुर्द्धा सा प्रवर्त्तते ।
तद्भेदाञ्च्छृणु विप्रर्षे कथयामि समागतः ॥ ३ ॥

स्थाय्यारोही चावरोही[2] तु सञ्चारी तच्चतुर्विधा ।
स्थिरप्रयोगवर्णश्च स्थायिवर्णः प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

तथा नारद नामाद्यपरा वत्वर्थवामकौ ।
उत संकरवर्णश्च सञ्चारी समुदाहृतः ॥ ५ ॥

विशेषवर्णग्रथनमलंकारः प्रकीर्त्तितः ।
वहवस्त्वस्य भेदाः स्युः संक्षेपेण वदामि ते ॥ ६ ॥

स्थायिगान् संप्रवक्ष्यामि येषामाद्यंतयोः स्थिरे ।
स्वरस्थे वै प्रसन्नादिः प्रसन्नान्तस्तथैव च ॥ ७ ॥

तथाद्यन्तप्रसन्नस्तु तृतीयः परिकीर्तितः ।
प्रसन्नमध्यमश्चैव पञ्चमः क्रमरेचितः ॥ ८ ॥

प्रस्तारनामा षष्ठश्च प्रसादः सप्तमः स्मृतः ।
स्थाय्यालंकारकाः सप्त कीर्तितास्ते द्विजोत्तम ॥ ९ ॥

---

१. नारद उवाच—गानक्रिमां···श्रृण्वतः” पाठ इसमें नहीं है ।
२. रोह्यवरोही ।

अध्याय ७२

स्थायी आदि अलङ्कारों का वर्णन

नारद ने कहा—

भक्तों के प्रति अनुग्रह करने में तत्पर हे महादेव ! देवों के स्वामिन् ! मुझ भक्त को गान की क्रिया बताइये। सुनते हुये मेरी तृप्ति नहीं हो रही ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे नारद ! सुनिये। परम वात्सल्य के कारण यह सब मैं आपसे कह रहा हूँ। हे देवर्षे ! मैंने कभी किसी से निश्चय ही इसका वर्णन नहीं किया ॥ २ ॥

वर्णों के द्वारा जो गान की क्रिया होती है, वह चार प्रकार से होती है। उसके भेदों को मैं संक्षेप से कहता हूँ। हे विप्रर्षे ! आप सुनिये ॥ ३ ॥

स्थायी, आरोही, अवरोही, सञ्चारी, वह गान क्रिया चार प्रकार की है। और स्थिर वर्ण के प्रयोग को स्थायी वर्ण कहा गया है ॥ ४ ॥

हे नारद ! अन्य अर्थ के अनुरूप नाम के वर्ण हैं। इन संकर वर्णों को सञ्चारी माना गया है ॥ ५ ॥

विशेष वर्णों के ग्रथन को अलंकार कहा गया है। उसके अनेक भेद हैं। संक्षेप में मैं आपसे कहता हूँ ॥ ६ ॥

मैं पहले स्थायी गान क्रिया में विद्यमान अलंकारों का वर्णन करूँगा, जिनके आदि और अन्त में प्रसन्नता देने वाले स्वच्छ स्वर स्थित रहते हैं। इस प्रकार ये अलंकार प्रसन्नादि और प्रसन्नान्त हैं ॥ ७ ॥

तीसरा अलंकार आद्यन्त प्रसन्न है। चौथा प्रसन्न मध्यम और पांचवां क्रमरेचित है ॥ ८ ॥

छठा प्रस्तार और सातवां प्रसाद नाम का अलंकार है। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुमसे इन सात स्थायी अलंकारों का वर्णन किया गया है ॥ ९ ॥

आरोहिवर्णालंकारा द्वादश परिकीर्तिताः ।
शृणुचैतान्महाभाग हसितं प्रेषितं तथा ।। १० ।।

आक्षिप्तं सन्धिप्रच्छादोद्गीतोद्वाहितकास्तथा ।
विस्तीर्य्यंश्चैव निष्कर्षस्तथोभ्युच्चयसंज्ञकः ।। ११ ।।

त्रिवर्णो वेणिरिति वै द्वादश परिकीर्त्तिताः ।
तथाऽवरोहक्रमत एत एव च रोहिणी ।। १२ ।।

द्वादशावरोह्यलंकारास्तथा वै परिकीर्त्तिताः ।
शृणु नारद वक्ष्यामि संचारिणी तृतीयकः ।। १३ ।।

मंद्राद्यो मंद्रमध्यश्च मंद्रान्तस्तु तृतीयकः ।
प्रस्तारश्च प्रसादश्च यावृतः स्खलितस्तथा ।। १४ ।।

परिवृत्तोत्क्षेपविद्वद्वाहितोर्म्मिसमास्तथा ।
प्रेषितं च निकूजश्च श्येनोद्घटितरंजिता ।। १५ ।।

सन्निवृत्तः प्रवृत्तश्च वेणुर्ललित एव च ।
हुंकारश्च तथा ख्यातो हृदमानावलोकितौ ।। १६ ।।

षंचविंशतिरुद्दिष्टाः सञ्चारिणि महामुने ।
समालंकारकाश्चान्ये कथ्यन्ते भाषिता मुने ।। १७ ।।

तारमंद्रौ प्रसन्नश्च द्वितीयो विपरीतकः ।
आवर्तकः संप्रदानो विधुतश्ज तथैव च ।। १८ ।।

क्रमलोलस्तथा चान्यस्तथोल्लसित एव च ।
अलंकाराः प्रकथिता भक्तितस्ते द्विजोत्तम ।। १९ ।।

इति श्रीस्कन्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे स्थाय्याद्य लंकारवर्णनं
नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

---

१. हुटित । २. शय्या ।

आरोही वर्ण के अलंकार बारह कहे गये हैं। हे महाभाग ! उनको सुनो— हसित, प्रेषित ।। १० ।।

आक्षिप्त, सन्धि, प्रच्छाद, उद्‌गीत, उद्‌वाहितक, विस्तीर्य, निष्कर्ष तथा अभ्युच्चय ।। ११ ।।

त्रिवर्ण और वेणि ये बारह कहे गये है। तथा अवरोहण के क्रम से इन्हीं को रोहिणी कहा जाता है ।। १२ ।।

ये अवरोही अलंकार भी बारह ही कहे गये हैं। हे नारद ! अब मैं तीसरे सञ्चारी अलंकारों को कहूँगा। सुनो ।। १३ ।।

एक मन्द्राद्य, दूसरा मन्द्रमध्य और तीसरा मन्द्रान्त हैं। इनके भेद हैं— प्रस्तार, प्रसाद, यावृत, स्खलित ।। १४ ।।

परिवृत्त, उत्क्षेप, त्रिद्वद्, वाहितोर्मि, सम, प्रेषित, निकूज, श्येन, उद्‌घटित, रंजित ।। १५ ।।

सन्निवृत्त, प्रवृत्त, वेणु, ललित, हुंकार, ह्रदमान और अवलोकित ।। १६ ।।

हे महामुने ! सञ्चारी के इन पच्चीस अलंकारों का वर्णन किया गया है। हे मुने ! अन्य जो सम अलंकार हैं, वे कहे जाते हैं ।। १७ ।।

तार, मन्द्र, प्रसन्न, विपरीतक, आवर्तक, सम्प्रदान, विधुत ।। १८ ।।

क्रम, लोल और उल्लसित। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! ये अलंकार आपकी भक्ति के कारण कहे गये हैं ।। १९ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीत शास्त्र में स्थायी आदि अलंकार वर्णन नाम का बहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

षड्जादिजातिगीताद्यक्षरन्यासमगणादिफलनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

स्वरैः षड्जादिभिः सप्त जातयः शुद्धनामकाः।
ता वक्ष्यामि महाभाग मयि भक्तिः परा तव ॥ १ ॥

षड्जी चैवार्षभी विप्र गांधारी मध्यमा तथा।
पंचमी धैवती षष्ठी नैषादी सप्तमी तथा ॥ २ ॥

एतत्सांकर्य्यजातीनामानन्त्यं वर्त्तते मुने।
मूलभूताः प्रकथितास्ताभ्यः सर्वं प्रलक्ष्यते ॥ ३ ॥

इति ते कथिता नादसमुद्भूतिर्मया मुने।
नाद एव पदं ब्रह्म सर्वं नादात्मकं जगत् ॥ ४ ॥

शुद्धं समभ्यसेद् ब्रह्मन् गुरुवक्त्रात्समीरितम्।
गीताक्षरप्रथमके पवर्गं परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥

सकारं च दकारं रकारं च तथैव च।
नकारं च चकारं च हकारं च फलं शृणु ॥ ६ ॥

दकारे कुलनाशः स्यात्सकारे शोकसम्भवः।
रकारे मरणं प्रोक्तं लक्ष्मीनाशो नकारके ॥ ७ ॥

चकारे स्थाननाशः स्याद्धेह्यायुः क्षीयते परम्।
उद्वाहे नगरा वर्णाः शरलांश्चान्तरे त्यजेत् ॥ ८ ॥

अध्याय ७३

षड्ज आदि, जाति-गीत आदि, अक्षरन्यास, समगण आदि के फल का निरूपण

ईश्वर ने कहा—

षड्ज आदि स्वरों के द्वारा शुद्ध नाम की सात जातियां सम्पन्न होती हैं। हे महाभाग ! मैं उनका वर्णन करूँगा, क्योंकि आपकी मेरे में परम भक्ति है ॥ १ ॥

हे विप्र ? षड्जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, षष्ठी, धैवती और सातवीं नैषादी ये सात जातियों के नाम हैं ॥ २ ॥

हे मुने ! इनसे उत्पन्न संकर जातियों के असंख्य भेद हैं, किन्तु उनकी मूलभूत जातियां ये ही हैं तथा उन्हीं से सबके लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

हे मुने ! इस प्रकार नाद की उत्पत्ति को मैंने आपसे कहा है। नाद ही परब्रह्म है और सम्पूर्ण जगत् नादात्मक है ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! गुरु मुख से जिस प्रकार नाद विनिर्गत हो उसी प्रकार स्वयं भी अभ्यास करना चाहिए। गीत अक्षर में पहले प वर्ग अक्षरों को वर्जित कर देना चाहिए ॥ ५ ॥

सकार, दकार, रकार, नकार, चकार और हकार के फल को सुनो ॥ ६ ॥

दकार के प्रयोग से कुल का नाश, सकार के प्रयोग से शोक की सम्भावना, रकार के प्रयोग से मृत्यु और नकार के प्रयोग से लक्ष्मी का नाश होता है ॥ ७ ॥

चकार के प्रयोग से स्थान का नाश और हकार के प्रयोग से परम आयु का क्षय होता है। उद्वाह में 'न-ग-र' अक्षरों को और 'श-र-ल' को अन्तर में त्याग देना चाहिए ॥ ८ ॥

आभोगे हटकान् विप्र नव वर्णा इमे स्मृताः ।
उद्वाहे हरते लक्ष्मीमन्तरे हरते यशः ॥ ९ ॥

आभोगे हरते जीवं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

अष्टौ गणाः समाख्याता गीते छंदसि पुण्यदाः ।
तान्वक्ष्यामि महाभाग सावधानोऽवधारय ॥ ११ ॥

मयरसतजभनाः कीर्त्तिता भेदसम्मिताः ।
लक्षणानि प्रवक्ष्यामि देवताश्च फलं तथा ॥ १२ ॥

मगणस्त्रिगुरुः ख्यातो यगणो लघुरादिमः ।
रगणो वै मध्यलघुः सगणोऽन्तगुरुः स्मृतः ॥ १३ ॥

तगणोन्तलघु ख्यातो जगणो गुरुमध्यमः ।
आदिगुरुर्भगणो नगणस्त्रिलघु स्मृतः ॥ १४ ॥

भूमिनाथस्तु मगणो लक्ष्मीप्राप्तिकरो मतः ।
शिखी[1] यगणनाथश्च पुत्रप्राप्तिकरस्तथा ॥ १५ ॥

वह्नी रगणस्वामी च मृत्युदो वै प्रकीर्त्तितः ।
सगणस्य तथा स्वामी वायुर्वै समुदाहृतः ॥ १६ ॥

नानार्थनाशकश्चैव तथैव गृहनाशकः ।
तगणेशस्तथाकाशो धनहानिकरो मतः ॥ १७ ॥

जगणेशो[2] धामनिधिर्महत्कष्टप्रदो मतः ।
चन्द्रो भगणनाथस्तु यशःसुखकरो मतः ॥ १८ ॥

ईश्वरोऽहं नगणपो धनायुष्यकरो मतः ।
मगणो नगणः पूर्वे यभौ चैव तु पश्चिमे ॥ १९ ॥

रजौ चैवोत्तरे प्रोक्तौ सतौ चैव तु दक्षिणे ।
ईशानादौ मयरसतजभनाश्च तथा स्मृताः ॥ २० ॥

१, जलं ।
२. जगणेशः ।

हे विप्र ! आभोग में 'ह-ट-क' वर्ण त्याज्य हैं । इन त्याज्य नौ वर्णों को कहा गया है । उद्वाह में त्याज्य वर्णों के प्रयोग से लक्ष्मी का नाश तथा अन्तर में त्याज्य वर्णों के प्रयोग से यश का हरण होता है ।। ९ ।।

आभोग में त्याज्य वर्णों के प्रयोग से प्राणनाश होता है । अतः त्याज्य वर्णों का प्रयोग छोड़ देना चाहिए ।। १० ।।

गीत के छन्दों में पुण्य देने वाले आठ गणों का वर्णन किया गया है । हे महाभाग ! मैं उन्हीं का वर्णन करूँगा । आप सावधान होकर सुनो ।। ११ ।।

मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण ये उनके अलग-अलग नाम कहे गये हैं । अब उनके लक्षण, देवता तथा फल को कहूँगा ।। १२ ।।

मगण में तीन गुरु होते हैं (SSS), यगण में आदि में लघु (ISS), रगण के मध्य में लघु (SIS), सगण के अन्त में गुरु (IIS) होता है ।। १३ ।।

तगण के अन्त में लघु (SSI), जगण के मध्य में गुरु (ISI), भगण के आदि में गुरु (SII) और नगण में तीनों लघु (III) होते हैं ।। १४ ।।

मगण का भूमि देवता है और लक्ष्मी की प्राप्ति इसका फल है । यगण का देवता जल है और पुत्र प्राप्ति इसका फल है ।। १५ ।।

रगण का देवता अग्नि है और मृत्यु इसका फल है । सगण का देवता वायु कहा गया है ।। १६ ।।

अनेक प्रकार के धन का नाश तथा घर का नाश उसका फल है । नगण का देवता आकाश है और धन की हानि उसका फल है ।। १७ ।।

जगण का देवता सूर्य है और महाशोक का देना उसका फल है । भगण का स्वामी चन्द्रमा है और यश और सुख उसका फल है ।। १८ ।।

नगण का देवता मैं शिव हूँ और धन और पुण्य इसका फल है । मगण और नगण पूर्व में तथा यगण और भगण पश्चिम में ।। १९ ।।

रगण और जगण उत्तर में तथा सगण और तगण दक्षिण में बसते हैं । ईशान आदि आठ दिशाओं में म, य, र, स, त, ज, भ, न ये गण क्रमशः निवास करते हैं ।। २० ।।

विचार्य्य सुधिया गाने गातव्या[1] मगणादिकाः ।
नादरूपं परं ब्रह्म नादरूपी जनार्दनः ॥ २१ ॥

नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपी महेश्वरः ।
काव्यालापाश्च ये केचिद् गीतकान्यखिलान्यपि ।
शब्दरूपधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः ॥ २२ ॥

स्वरस्य जायते नादो नादस्य स्वर एव हि ।
स्वरस्य लीयते तालं ताले गीतं समाचरेत् ॥ २३ ॥

नादमध्ये स्थितः सूर्य्यो बिन्दुमध्ये च चन्द्रमाः ।
नादबिंद्वोस्तथैवैक्यं वीर्यमध्ये स्थितं सदा ॥ २४ ॥

अस्मादेव समुद्भूतिः सर्वस्य जगतो मुने ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नादब्रह्म समभ्यसेत् ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे गीतशास्त्रे षड्जादि-
जातिप्रमुखकथनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

चतुःसप्ततिमोऽध्यायः

स्वरभेदपदादिगानक्रियावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

स्वरभेदान्प्रवक्ष्यामि पदानि विविधानि च ।
उपहन्तुर्गलं चैव त्रितयं तु विशारदम् ॥ १ ॥

चतुर्थं चार्थभोगेन ह्येवं च पदलक्षणम् ।
विधिः संप्रोच्यते विप्र जाकजोकसरोरकम् ॥ २ ॥

रेका टेका तथा ख्याता तथैवाथ प्रहस्तिका ।
विधिः पंचविधः प्रोक्तो मया वै प्रकटीकृतः ॥ ३ ॥

---

1. गतिव्या ।

विद्वानों को चाहिए कि वे मगण आदियों का विचार करके गान करें। नाद रूप ही परब्रह्म है तथा नादरूप ही भगवान् विष्णु है ।। २१ ।।

नादरूप ही अनिर्वचनीया पराशक्ति है और नादरूप ही शिव हैं। जितने भी काव्यों के आलाप हैं तथा अखिल गीत हैं, वे शब्दरूप को धारण करने वाले महात्मा विष्णु भगवान् के अंश हैं ।। २२ ।।

स्वर से नाद और नाद से स्वर की उत्पत्ति होती है । स्वर ही में ताल होता है और ताल में गीत का आचरण होता है ।। २३ ।।

नाद के मध्य में सूर्य स्थित होता है तथा बिन्दु के मध्य में चन्द्रमा की स्थिति रहती है। अतः नाद और बिन्दु की एकता सदा वीर्य के मध्य में स्थित रहती है ।। २४ ।।

हे मुने ! इसी नाद से सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है। इसलिए समस्त प्रयत्नों से नाद रूप ब्रह्म का अभ्यास करना चाहिये ।। २५ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीतशास्त्र में षड्जादि जाति-प्रमुख-कथन नाम का तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ७४

स्वर भेद से पद आदि के गान की क्रिया का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

अब मैं स्वर के भेदों तथा विविध पदों का वर्णन करूँगा। उपहन्ता का एक गल, त्रितय दो, विशारद तीन ।। १ ।।

और अर्थभोग चार ये ही पद के लक्षण हैं। हे विप्र ! इस समय विधि का वर्णन करते हैं—जाकजोक, सरोरक···।। २ ।।

रेका, टेका और प्रहस्तिका नाम से वे विख्यात हैं। मेरे द्वारा प्रकट की गई ये विधियां पांच प्रकार से वर्णित की गई हैं ।। ३ ।।

गुणा अथ च प्रोच्यन्ते ताञ्च्छृणुष्व महामुने ।
उपकारी महाधीरो ह्यन्तर्वार्ता न चोदति ।। ४ ।।

दीक्षारसविलम्वेन मोक्षार्थी पूत एव च ।
उपकारी महाधीरो निष्ठुरो वचनी बली ।। ५ ।।

दुःखमंत्ररसंवित्तु तमवेक्ष्य च वर्त्तनम् ।
अथ वर्गाश्च प्रोच्यन्ते नादरूपाः महामुने ।। ६ ।।

अकचटतपयशा अष्टौ वर्गाः प्रकीर्त्तिताः ।
अकवर्गौ तथा विप्रौ चटवर्गौ च क्षत्रियौ ।
तपवर्गौ तथा वैश्यौ यशौ शूद्रौ महामुने ।। ७ ।।

लयान् शृणु महाभाग गदतो मे यथाक्रमम् ।
लयश्च विजयश्चैव हास्यं वै तुलतानि च ।
प्रौढलक्षणकाश्चैव द्विर्नामलयादिव ।। ८ ।।

अथालतीं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः ।
जाते कृतेऽग्नौ गतिरिति ततो गीतसमागमे ।। ९ ।।

द्विकरस्पर्शसंयोगादालत्या हृदये तथा ।
हस्त्यश्वमैणवी हंसी मृगी खञ्जनजातकी ।। १० ।।

एवं गतिविधानेन तद्वदेतत्सुपर्य्यति ।
तालस्य कथ्यते संज्ञा तथा च च पुरो मुने ।। ११ ।।

आच चपुटश्चैवोद्‌घाटस्तथा संप्रवेष्टितः ।
सम्यङ्‌मानश्च विज्ञेयो पंच तालविधिः स्मृतः ।। १२ ।।

महाकलासु । वचने भोजने चोपवेशने ।
संयोगे च वियोगे च निष्ठुरे गायने भवेत् ।। १३ ।।

तेषु तेषु कलाः ख्याता भोजनादौ महासुने ।
शुभाशुभौ शिवः शक्तिर्धरित्री गगनं तथा ।। १४ ।।

अब गुणों का वर्णन करते हैं। हे महामुने ! उन्हें आप सुनिये। उपकारी और महाधीर पुरुष अन्तवर्ती वार्ताओं को प्रकट नहीं करता। ॥ ४ ॥

दीक्षा रस का विलासी, मोक्षार्थी, पवित्र होता ही है। उपकारी, महाधीर, क्रूर वचन बोलने वाला, बलवान् ॥ ५ ॥

दुःख-मन्त्र, रसंविद् (रस को जानने वाला), पुरुष उनका अवलोकन करके व्यवहार करता है। हे महामुने ! अब नादरूप वर्गों का वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

अवर्ग (स्वर—अ, इ, उ ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ), कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण), तवर्ग (त, थ, द, ध, न), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म), यवर्ग (य, र, ल, व), शवर्ग (श, ष, स, ह) ये आठ वर्ग कहे गये हैं। हे महामुने ! इनमें अ वर्ग और क वर्ग ब्राह्मण वर्ण हैं और च वर्ग और ट वर्ग क्षत्रिय वर्ण हैं तथा त वर्ग और प वर्ग वैश्य वर्ण हैं एवं य वर्ग और श वर्ग शूद्र वर्ण हैं ॥ ७ ॥

हे महाभाग ! मैं क्रमशः लयों का वर्णन करता हूँ, आप सुनो। लय, विजय, हास्य, तुलता और प्रौढलक्षण ये लयों के दो-दो नाम हैं ॥ ८ ॥

हे नारद ! अब आलती का वर्णन करूँगा, आप ध्यान से सुनो। गान के समय अग्नि के समान गति होती है ॥ ९ ॥

दोनों हाथों के स्पर्श होने पर आलती से हृदय में हस्ती, अश्व, ऐणवी, हंसी, मृगी, खञ्जनजातकी की ॥ १० ॥

गति के विधार से उनका उच्चारण करना चाहिये। हे मुने ! अब आपसे ताल की संज्ञा कही जायेगी ॥ ११ ॥

आच, चपुट, उद्घाट, संप्रवेष्टित और सम्पण्ड्न्मान ये पांच ताल की विधि कही गई हैं ॥ १२ ॥

महाकलाओं में, बोलने में, भोजन में, उपवेशन में, संयोग में, वियोग में तथा निष्ठुर गायन में इसका प्रयोग होता है ॥ १३ ॥

हे महामुने ! भोजन आदि में भी कलाओं का प्रतिपादन किया गया है। शुभ-अशुभ, शिव-शक्ति, धरित्री-आकाश ॥ १४ ॥

धर्म्मं पापं च जानीयादेवं च रचना श्रुता[1] ।। १५ ।।

अथ ज्योतिर्दिनेशश्च चन्द्रमाश्च ततः परम् ।
दीप्तस्तृतीयो व्याख्यातो ज्योतिस्त्रितयमिष्यते ।। १६ ।।

द्विसप्ततिः कलाः ब्रह्मन् कथयामि समासतः ।
अथादौ गमनकला रसायनकला ततः ।। १७ ।।

तथांगलेपनकला रंगाख्या स्तनमर्दनम् ।
भोजनं योजनं चैव हास्यं लेखनमेव च ।। १८ ।।

पठितं वचनं चैव स्त्रीपरिचर्य्या तथैव च ।
चन्दनं चित्तवचनं मूकाख्या स्तनजोहने ।। १९ ।।
मोहनं चित्रवैचित्र्यौ तथांजनकला मता ।
देवविद्याकला चैव परकायप्रवेशनम् ।। २० ।।

कवित्त्वं वै नादकला पुराणं धर्ममेव च ।
कर्मविद्या ज्ञानकला विज्ञातं भोग्यमेव च ।। २१ ।।

विवादश्चोपवादश्च मनोरंजनमेव च ।
वैद्यविद्याकला चैव पैशाची मागधी तथा ।। २२ ।।

सावर्णा खेटककला संग्रामस्तंत्रर्तार्किके[2] ।
सुगन्धाख्या कला चैव विचारणकला मता ।। २३ ।।

तथा विविधवैचित्र्यं ध्यानं वाजिकला तथा ।
चक्रं हर्षाश्वकला तथा मंडकला मता ।। २४ ।।

अभिन्नाख्या सैन्यकला चूडामणिकला तथा ।
भुक्तिमुक्तिकले कैव व्यवहारकला तथा ।। २५ ।।

ध्यानार्का च व्रतकला जनराजकला तथा ।
गीतकला क्रोधकला कला सर्वजनप्रिया ।
प्रसादोत्साहावुद्वेगः क्रीडा लज्जा द्विसप्ततिः ।। २६ ।।

---

१ स्मृता ।   २. तार्किका ।

धर्म और पाप को जानना चाहिये। इस प्रकार की रचना को सुना जाता है ॥ १५ ॥

पहली ज्योति सूर्य है, तदन्तर दूसरी चन्द्रमा है और तीसरी दीप्त है। ये तीन ज्योति कही गई हैं ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मन् ! बहत्तर कलायें हैं, मैं संक्षेप से उनका वर्णन करता हूँ। पहली गमनकला, तदनन्तर रसायनकला ॥ १७ ॥

अंगलेपनकला, रंगकला, स्तनमर्द्दनकला, भोजनकला, योजनकला, हास्यकला, लेखनकला ॥ १८ ॥

पठनकला, वचनकला, स्त्रीपरिचर्याकला, चन्दनकला, चित्त को प्रसन्न करने की वचनकला, स्तन अवलोकन में मूककला ॥ १९ ॥

मोहनकला, चित्रवैचित्र्यकला, अंजनकला, देवविद्याकला, परकायप्रवेश-कला ॥ २० ॥

कवित्वकला, नादकला, पुराणकला, धर्मकला, कर्मविद्याकला, ज्ञानकला, विज्ञानकला, भोग्यकला ॥ २१ ॥

विवादकला, उपवादकला, मनोरंजनकला, वैद्यविद्याकला, पैशाचीकला, मागधीकला ॥ २२ ॥

सावर्णकला, खेटकला, संग्रामकला, तन्त्रकला, तार्किककला, सुगन्धकला, विचारणकला ॥ २३ ॥

विविधवैचित्र्यकला, ध्यानकला वाजिकला, चक्रकला, हर्षकला, अश्वकला, मंडकला ॥ २४ ॥

अभिन्नकला, सैन्यकला, चूड़ामणिकला, भुक्तिकला, मुक्तिकला, व्यवहार-कला ॥ २५ ॥

ध्यानकला, अर्ककला, व्रतकला, जन्नकला, राजकला, गीतकला, क्रोधकला, सर्वजनप्रिय-कला, प्रसादकला, उत्साहकला, उद्वेगकला, क्रीड़ाकला, लज्जाकला ये बहत्तर कलायें हैं ॥ २६ ॥

रसाः षड् वै समाख्यातास्तिक्ताम्लकटुकाः क्रमात् ।
कषायमधुरौ लवणं रसाश्चेमे समीरिताः ॥ २७ ॥

नव नाथाः समाख्यातास्तत्र श्री आदिनाथकः ।
अनादिनाथकूर्माख्यौ भवनाथस्तथैव च ॥ २८ ॥

सत्यसंतोषनाथौ तु मत्स्येन्द्रो गोपिनाथकः ।
नव नाथास्त्विमे ख्याताः नादब्रह्मरताः सदा ॥ २९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रीये गानक्रिया नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

पंचसप्ततितमोऽध्यायः

रागरागिणीतत्पुत्रनामसमयादिकथनम्

नारद उवाच—

कतिरागा[1]...

मूलभूतास्तु षड्ग्रामास्त्वत्त एव समुद्भवाः ।
रागिण्यश्च कति प्रोक्ता एतद्विस्तरतो वद ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

मूलभूतास्तु षड्ग्रामा मत्त एव समुद्भवाः ।
तेषां स्त्रियस्तथा पुत्राः पुत्रवध्वस्तथैव च ॥ २ ॥

पौत्राश्चैव ह्यसंख्याताः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ।
तेषां हि विस्तरं प्रोक्तुं नालं वर्षशतैरपि ॥ ३ ॥

श्रेष्ठानेव समाख्यास्ये शृणु नारद तन्मनाः ।
भैरवः प्रथमः ख्यातो द्वितीयो मालकौशिकः ॥ ४ ॥

तृतीयश्चाथ हिन्दोलश्चतुर्थो दीपकस्तथा ।
श्रीराग पंचमो ज्ञेयो मेघमल्लार षष्ठकः ॥ ५ ॥

भैरवस्य स्त्रियः पंच ताः शृणुष्व महामते ।
पाली भैरवी चैव रक्तहंसी सुश्रेष्ठिकी ॥ ६ ॥

---

१. कतिरागाः ... समुद्भवः" पाठ इसमें नहीं है ।

रसों के छः प्रकार वर्णित किये गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार से है—तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय, मधुर और लवण ॥ २७ ॥

नौ नाथ (स्वामी) कहे गये हैं। उनका नामों का अनुक्रम इस प्रकार से है—श्रीनाथ, आदिनाथ, अनादिनाथ, कूर्मनाथ, भवनाथ ॥ २८ ॥

सत्यनाथ, संतोषनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोपिनायकनाथ। ये नौ नाथ हमेशा नादब्रह्म में निरत रहते हैं, ऐसा मैंने वर्णन किया है ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीत शास्त्र
में गान क्रिया नाम का चौहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ७५

राग-रागिनियों, उनके पुत्रों के नाम और गान के समय आदि का कथन

नारद ने कहा—

आपसे प्रादुर्भूत हुये मूलभूत छ ग्रामों को मैंने सुना। अब आप रागिनियाँ कितनी हैं, इन्हें विस्तार से कहिये ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा—

मूलभूत छः ग्राम मेरे से ही उत्पन्न हुये हैं। उनकी स्त्रियाँ, पुत्र और पुत्रवधू हैं ॥ २ ॥

पौत्र, साले तथा अन्य सम्बन्धी असंख्य हैं। मैं उनका विस्तार से वर्णन करने में सौ वर्ष में भी समर्थ नहीं हूँ ॥ ३ ॥

हे नारद! उनमें श्रेष्ठों का ही वर्णन करता हूँ, आप मन लगाकर सुनिये। पहला राग भैरव, दूसरा राग मालकौशिक है ॥ ४ ॥

तीसरा राग हिन्दोल, चौथा राग दीपक, पांचवां श्रीराग और छठवां मेघ-मल्हार नाम का राग है ॥ ५ ॥

भैरव राग की पांच स्त्रियाँ हैं। हे महाभते! आप उनके नामों को सुनो। भूपाली, भैरवी, रक्तहंसी, सुश्रेष्ठिकी ॥ ६ ॥

वैलावली च विख्याता: कौशिकस्य शृणु प्रिया: ।
कर्णाटी चाथ देशाक्षी कामोदी च धनाश्रकी ॥ ७ ॥

गौरी मोहीति विख्याता मालकौशिकयोषित: ।
गायनी चाथ गांधारी निर्याना निर्मला तथा ॥ ८ ॥

आसावरी चांशकला गौडी हिण्डोलयोषित: ।
रामकली कोहरी च गुर्जरी पटुमंजरी ।
मारुका मारुषेणा च दीपकस्य वरांगना: ॥ ९ ॥

केदारी सुहवा चैव सिन्धुका भद्रवी तथा ।
नटी च मोहिनी चैव श्रीरागस्य वरांगना: ॥ १० ॥

मल्लारिका गुंडगिरी आक्षीरी तोटिका तथा ।
कामोदी च प्रिया प्रोक्ता मेघमल्लारयोषित: ॥ ११ ॥

शारदे भैरवो रागो गातव्य: शिशिरे तथा ।
मालकौशिकरागो हेमन्ते हिन्दोलक: स्मृत: ॥ १२ ॥

वसन्ते दीपको रागो ग्रीष्मे श्रीरागसंज्ञक: ।
वर्षायां मेघरागश्च षड्रागा ऋतुषु स्मृता: ॥ १३ ॥

शृणु पुत्रान्भैरवस्य बंगाल: पंचमस्तथा ।
हर्षो मधुश्च देशाखो ललितो माधवस्तथा ॥ १४ ॥

वैलावसस्तथाख्यातो ह्यष्टौ भैरवपुत्रका: ।
मारुमेघाटकौ चैव मिष्टांगो बर्बरस्तथा ॥ १५ ॥

धन्द्राश्रयालिनंदाख्या: खोखरश्चाष्टमो मत: ।
मालकौशिकपुत्राश्च प्रोक्ता अष्टौ महामुने ॥ १६ ॥

मंगलश्चन्द्रबिम्बश्च शुभ्रांगानंदसंज्ञकौ ।
विभासो वर्द्धनश्चैव विनोदाख्यवसन्तकौ ॥ १७ ॥

हिन्दोलकस्य पुत्रास्ते कथिता वसुसंख्यका: ।
कमलो गौडगंभीरौ तथा च गुणसागर: ।
कल्याणकुंडगंडश्च श्रीरागस्य सुतास्त्विमे ॥ १८ ॥

और वेलावली । अब आप मालकौशिक की पत्नियों के नाम सुनो । कर्णाटी, देशाक्षी, कामोदी, धनाश्रकी ॥ ७ ॥

गौरी और मोही । ये नाम मालकौशिक की पत्नियों के विख्यात हैं । गायनी, गान्धारी, निर्याना, निर्मला…॥ ८ ॥

आसावरी, अंशकला और गौरी ये नाम हिन्दोल की पत्नियों के प्रसिद्ध हैं । रामकली, कोहरी, गुर्जरी, पटुमंजरी, मारुका और मारुषेणा ये दीपक राग की स्त्रियाँ हैं ॥ ९ ॥

केदारी, सुहवा, सिन्धुका, भद्रवी, नटी और मोहिनी ये श्रीराग की स्त्रियाँ हैं ॥ १० ॥

मल्लारिका, गुंडगिरी, आक्षीरी, तोटिका, कामोदी और प्रिया ये मेघमल्लार राग की स्त्रियाँ हैं ॥ ११ ॥

शरद ऋतु में भैरव राग, शिशिर ऋतु में मालकौशिक राग, हेमन्त ऋतु में हिन्दोल राग ॥ १२ ॥

वसन्त ऋतु में दीपक राग, ग्रीष्म ऋतु में श्रीराग तथा वर्षा ऋतु में मेघ-मल्लार राग का गान करना चाहिये । ये छः राग ऋतुओं के आधार पर कहे गये हैं ॥ १३ ॥

आप अब भैरव राग के पुत्रों के नाम सुनो—बंगाल, पंचम, हर्ष, मधु, देशाख, ललित, माधव और…॥ १४ ॥

वेलावस ये आठ भैरव के पुत्र हैं । मारु, मेघाटक, मिष्टांग, बर्बर…॥ १५ ॥

चन्द्राश्रय, अलि, नन्दाख्य और और खोखर ये आठ, हे महामुने ! मालकौशिक राग के पुत्रों के नाम हैं ॥ १६ ॥

मंगल, चन्द्रबिम्ब, शुभ्रांग, आनन्द, विभास, वर्द्धन, विनोद और वसन्त ॥ १७ ॥

ये बहुत से हिन्दोल राग के पुत्र कहे गये हैं । कमल, गौड, गम्भीर, गुणसागर, कल्याणकुण्ड और गंड ये श्रीराग के पुत्र हैं ॥ १८ ॥

कर्णाटो नटसारंगौ गौडकेदारसंज्ञकः।
गुंडमह्लारकश्चैव तथा जालन्धरः स्मृतः।
संकरश्चाष्टमः प्रोक्तः पुत्राश्चाष्टौ प्रकीत्तिताः ॥ १९ ॥

एषां सांकर्यभेदेन रागाश्च बहुधा तथा।
षड्जादिस्वरमिलिता यतस्तत्समयाः स्मृताः ॥ २० ॥

इति रागाः समाख्याता मूलभूता महामुने।
पुत्रवध्वस्तथा पौत्रा ज्ञेयास्तत्संकरा वुधैः ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे रागगणनानाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शृङ्गारगीतादिसंख्याप्रदर्शनपूर्वकं दोहा-सोरठा-कुण्डलियादिवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

शृंगाराः षोडश ख्यातास्ताञ्च्छृष्व महामुने।
मज्जनं चारु चीरं च तिलकं नेत्ररंजनम् ॥ १ ॥

कुण्डलं नासिकामुक्ताफलं कुसुमहारकः।
केशप्रसाधनं चैव तथा झंकारनूपुरौ ॥ २ ॥

अंगचन्दनलेपश्च कंचुकीधारणं तथा।
कांचीकंकणताम्बूलचातुर्य्यं च्चेति षोडश ॥ ३ ॥

गीतनामान्यहं वक्ष्ये कमला ललिता तथा।
रेका टेकाथ हास्या च तथा चैच प्रबोधिका ॥ ४ ॥

ओतस्याता महावल्ली कलहो मुद्गरस्तथा।
खड्गश्चंडस्तथा पूज्यो रसाधिक्यं तथैव च ॥ ५ ॥

कर्णाट, नट, सारंग, गौड, केदार, गुंडमल्लारक, जालन्धर और संकर ये मेघमल्लारक राग के आठ पुत्र हैं···।। १९ ।।

इनके संकर भेद से राग बहुत प्रकार के हो जाते हैं। षड्ज आदि स्वरों मैं वे मिले रहते हैं।अतः वैसा ही उनके नियम का उल्लेख किया गया है ।। २० ।।

हे महामुने ! मूलभूत ये राग वर्णित किये गये हैं। विद्वानों को चाहिये कि वे इनकी पुत्रवधुओं तथा पौत्रों एवं उनके संकरों का भी ज्ञान कर लें ।। २१ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीतशास्त्र
में राग-गणना नाम का पचहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ७६

शृङ्गार-गीत आदि की संख्या को प्रदर्शित करके दोहा, सोरठा, कुण्डली आदि छन्दों के स्वरूप का वर्णन

ईश्वर ने कहा—

हे महामुने ! शृंगार सोलह कहे गये हैं। आप उन्हें सुनो। मज्जन (विधिपूर्वक स्नान), उत्तम वस्त्रों का परिधान, तिलक लगाना, आंखों को रंजित करना (सुरमा लगाना) ।। १ ।।

कानों में कुण्डल धारण करना, नासिका में मुक्ताफल (वेसर बुलाक या मोती) धारण करना, फूलों का हार पहिरना, केशों को संवारना, झंकार और नूपुर ।। २ ।।

शरीर में चन्दन का लेप करना, कंचुकी धारण करना, कांची (मेखला), कंकण, और ताम्बूल में चातुरी ये सोलह शृंगार हैं।। ३ ।।

अब मैं गीतों के नामों का वर्णन करता हूँ—कमला, ललिता, रेका, टेका, हास्या, प्रबोधिका···।। ४ ।।

ओतस्याता, महावल्ली, कलह, मुद्गर, खड्ग, चण्ड, पूज्य, और रसाधिक्य ।। ५ ।।

धनाढ्या च दरिद्रा च हीना ,प्रौढांगनास्तथा ।
कुमुदीन्द्रसमुद्रा च वेतालमुशलौ गणौ ।। ६ ।।

यथा नाम तथा दोषो यथा दोषस्तथा गणः ।
गुणैर्विरहिते राज्यं धातुहीने धनक्षयः ।। ७ ।।

रंगहीने भवेन्मृत्युर्नास्ति गीतसमो रिपुः ।
पदहीने शिरो वक्रं कंठहीने च धातवः ।। ८ ।।

पदहीनेंऽगहीनत्त्वं गीतस्यापि भवेन्मुने ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्तद्दोषांश्च वर्जयेत् ।। ९ ।।

वक्ष्यामि ध्रुवकान्विप्र जयन्तः शिखरस्तथा ।
उत्साहो मधुरश्चैव निर्ज्जलः कुन्तलोम्बुजः ।। १० ।।

धनं वैराटरेखा च शेखरो बर्व्वरो मतः ।
हेमाली च तथा व्याघ्रः पिंडली दरिता तथा ।। ११ ।।

ध्रुवाः षोडश विख्याताः मण्डाञ्छृणृ महामुने ।
हयश्च कुंजरश्चैव वृषभो माहिषस्तथा ।। १२ ।।

भूषितः पृष्ठनामा च प्रभटाञ्च्छृणु विप्रक ।
कठिनः कमलश्चैव वज्रं वै मुद्गरस्तथा ।
खड्गं चक्रं तथा प्रोक्ताः ज्ञेयाः प्रभटसंज्ञकाः ।। १३ ।।

अद्भुतादिविभेदेन अष्ट तालविधिः स्मृतः ।
जातयः पञ्चधा प्रोक्ताः रेकाटेकाप्रहस्तिकाः ।। १४ ।।

विह्वला समया चैव ह्येताः सौभाग्यदायिकाः ।
दर्शनानि तथा वक्ष्ये सांक्यं शैवं जिनात्मकम् ।
भाट्टं बौद्धं च पाखंडं कीर्तितानि मया हि षट् ।। १५ ।।

सप्त लोकाः समुद्दिष्टाः भूर्भुवः स्वस्तथा मुने ।
जनस्तपो महर्लोकः सत्यलोकश्च सप्तमः ।। १६ ।।

मानं पृथिव्या वक्ष्यामि समासाद् गदतः शृणु ।
यवश्चतुस्तिलः प्रोक्तश्चतुर्णामंगुलिः स्मृतः ।। १७ ।।

धनाढ्या, दरिद्रा, हीना, प्रौढांगना, कुमुदी, इन्द्रसमुद्रा, वेताल और मुशलगण ॥ ६ ॥

इनके जिस प्रकार नाम हैं उसी प्रकार से इनमें दोष हैं। जिस प्रकार दोष हैं, उसी प्रकार गुण भी हैं। गुण-रहित होने पर राज्य का नाश तथा धातुहीन होने पर धन का क्षय होता है ॥ ७ ॥

रंग हीन होने पर मृत्यु हो जाती है। अतः गान के समान कोई शत्रु नहीं है। पदहीन होने पर शिर टेढ़ा होता है तथा कण्ठहीन होने पर धातुयें नष्ट होती हैं ॥ ८ ॥

हे महामुने ! गीत की पद-हीनता हो जाने पर अंग की हीनता हो जाती है। इसलिए समस्त प्रयत्नों से उन-उन दोषों को छोड़ देना चाहिये ॥ ९ ॥

हे ब्राह्मण ! अब मैं ध्रुवों का वर्णन करता हूँ। जयन्त, शिखर, उत्साह, मधुर, निर्जल, कुन्तल, अम्बुज ॥ १० ॥

धन, वैराट, रेखा, शेखर, बर्वर, हेमाली, व्याघ्र, पिंडली तथा दरिता···॥ ११ ॥

ये सोलह ध्रुव विख्यात हैं। हे महामुने ! अब आप मण्डों को सुनो। ये हय, कुंजर, वृषभ, माहिष ॥ १२ ॥

भूषित और पृष्ठनाम हैं। हे विप्र ! अब आप प्रभटों के नामों को सुनो। कठिन, कमल, मुद्‌गर, खड्‌ग और चक्र ये नाम प्रभटों के हैं ॥ १३ ॥

अद्‌भुत आदि के भेद से ताल की विधि भी आठ प्रकार से वर्णित की गई है। जातियाँ पांच कही गई हैं—रेका, टेका, प्रहस्तिका ॥ १४ ॥

विह्वला और समया। ये सौभाग्य को देने वाली हैं। अब जो मैंने सांख्य, शैव, जिनात्मक, भाट्ट, बौद्ध और पाखण्ड ये छः दर्शन वर्णित किये हैं, उन्हें कहता हूँ ॥ १५ ॥

हे महामुने ! भूः, भुवः, स्वः, जनः, तपः, महः और सत्यम् ये सात लोक विख्यात हैं ॥ १६ ॥

अब मैं पृथिवी के प्रमाण का संक्षेप में वर्णन करूँगा। आप सुनिये। चार तिल का एक यव, चार यव का एक अंगुलि होता है ॥ १७ ॥

तच्चतुर्णा भवेन्मुष्टिश्चतुर्णा हस्तसंज्ञकः ।
चतुर्हस्तं धनुः प्रोक्तं द्विशतं धनुषां तथा ।
क्रोशस्तद्द्वयगव्यूतिर्द्विगव्यूतिश्च योजनम् ॥ १८ ॥

शतयोजनको देशः शतदेशस्तु मंडलम् ।
मंडलानां शतं खंडं नवखंडात्मका धरा ॥ १९ ॥

प्रथमं मेघखंडं तु तथा मदनखंडकम् ।
खरिखंडं शर्वखंडं तथा भरतखंडकम् ॥ २० ॥

दधिखंडोद्यानखंडौ बाजिखंडं तथाष्टमम् ।
तेजखंडं महाभाग पदार्थान् शृणु तत्परः ॥ २१ ॥

धर्मार्थिकाममोक्षाख्याः पदार्थाः गानगोचराः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलानि वै ॥ २२ ॥

लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षाराब्धिः परिकीर्त्तितः ।
द्विगुणेक्षुसमुद्रः स्यात्तद्वैगुण्यं सुरांबुधिः ॥ २३ ॥

सर्प्पिस्तद्द्विगुणः प्रोक्तस्तद्द्वैगुण्यं दध्यंबुधेः[1] ।
क्षीराब्धिः स द्विगुणको जलाब्धिर्द्विगुणस्तथा ॥ २४ ॥

तत्तद्द्वीपान् प्रवक्ष्येऽहं जम्बूद्वीपस्तथा कुशः ।
शाल्मलिः पुष्करश्चैव भ्रमरो गोमेदस्तथा ॥ २५ ॥

सप्तमोऽभ्युदयो ह्येषां प्रमाणं पूर्ववत्स्मृतम् ।
पृथिव्यां विप्र कोटीनां नगराणि द्विसप्ततिः ॥ २६ ॥

नवकोटिमिता ग्रामाः पंचाशत्कोटिकं तथा ।
ऊषराणि तथा विप्र चोज्जटाभिस्तथैव च ॥ २७ ॥

पृथ्वीप्रमाणमाख्यातं संगीते चोपकारकम् ।
कंदर्पस्य गुणान्वक्ष्ये स्वेदः स्तम्भो महामते ॥ २८ ॥

रोमांचः स्वरभंगश्च वेपथुश्च विवर्णता ।
अश्रुपातस्तथाष्टौ वै सात्विका गीतसंभवाः ॥ २९ ॥

---

१. दध्यमतुधेः ।

चार अंगुल की एक मुष्टि, चार मुष्टि का एक हाथ, चार हाथ का एक धनुष, दो सौ धनुष का एक कोस, दो कोस की एक गव्यूति, दो गव्यूति का एक योजन ॥ १८ ॥

सौ योजन का एक देश, सौ देश का एक मण्डल और सौ मण्डल का एक खण्ड होता है । इस भूमि के ऊपर इस प्रकार के नौ खण्ड हैं ॥ १९ ॥

पहला मेघखण्ड, दूसरा मदनखण्ड, तीसरा खरिखण्ड, चौथा शर्वखण्ड, पांचवां भरतखण्ड ॥ २० ॥

छठवां दधिखण्ड, सातवां उद्यानखण्ड, आठवां वाजिखण्ड और नवां तेजखण्ड है । हे महाभाग ! अब आप तत्पर होकर पदार्थों को सुनो ॥ २१ ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम के ये चार पदार्थ गान के गोचर हैं । लवण इक्षु, सुरा, घृत, दही, दुग्ध और जल ये सात समुद्र हैं ॥ २२ ॥

क्षार समुद्र का विस्तार एक लाख योजन है । इसका दुगुना रस समुद्र का विस्तार है । इससे दुगुना विस्तार सुरा समुद्र का है ॥ २३ ॥

सुरा समुद्र से दुगुना विस्तार घृत समुद्र का है । इससे दुगुना दधि समुद्र का विस्तार है । इससे दुगुना विस्तार दुग्ध समुद्र का है और इससे दुगना विस्तार जल समुद्र का है ॥ २४ ॥

अब मैं उन उन द्वीपों का वर्णन करता हूँ । जम्बूद्वीप, कुशद्वपी, शालमलिद्वीप, पुष्करद्वीप, भ्रमरद्वीप, गोमेदद्वीप तथा ॥ २५ ॥

अभ्युदयद्वीप ये सात द्वीप हैं । इनका प्रमाण भी पहले की तरह क्रमशः समुद्रों के अनुसार वर्णन किया गया है । हे ब्राह्मण ! पृथिवी के ऊपर बहत्तर करोड़ नगर हैं ॥ २६ ॥

तथा उनसठ करोड़ ग्राम हैं । हे विप्र ! बहुत अधिप्रभाग में ऊँची-नीची ऊसर भूमि हैं ॥ २७ ॥

संगीत के लिए उपकारी पृथिवी के प्रमाण का वर्णन किया गया है । अब मैं कामदेव के गुणों का वर्णन करूँगा । हे महामते ! स्वेद, स्तम्भ ॥ २८ ॥

रोमाञ्च, स्वरभंग, कम्प, विवर्णता और अश्रुपात ये सात्त्विक आठ भाव गीत का श्रवण करने से उदय होते हैं ॥ २९ ॥

छंदांसि श्रृणु संक्षेपादनुष्टुबष्टवर्णकः।
एकादशाक्षरी प्रोक्ता सेन्द्रवज्रा प्रकीर्त्तिता ॥ ३० ॥

द्वादशार्णोपेन्द्रवज्रा वसन्ततिलकं श्रृणु।
चतुर्दशाक्षरी ख्याता मालती सैव वर्णका ॥ ३१ ॥

सप्तदशाक्षरी प्रोक्ता छन्दः शिखरिणी मया।
शार्दूलविक्रीडितं छन्दो वर्णैकोनकविंशतिः ॥ ३२ ॥

एकाधिका विंशतिभिर्वर्णैश्च स्रग्धरा मता।
इति छन्दांसि गीतानां प्रोक्तानि द्विजसत्तम ॥ ३३ ॥

गाहाश्च कथिता विप्र प्रथमा कमला तथा।
ललिता च तथा नीला द्रुतारम्भा च मागधी ॥ ३४ ॥

लक्षवीजामला हंसी शशिनी ह्यवमुग्धगीः।
काली कुमारी वोहारीर्विशुद्धिः कामकारिणी ॥ ३५ ॥

यक्षिणी धविनार्वाची गांधारी मंजरी गुरुः।
अथ दोहाः[1] समाख्यासे घर्घरो व्यर्धर[2]स्तथा ॥ ३६ ॥

बाह्यो हेमनिवारश्च तथा च श्वानगर्दभौ।
पाखण्डो हेमरागश्च उच्चाटो मोहनो रसः ॥ ३७ ॥

इति दोहा समाख्याता अद्रिलान् श्रृणु विप्रक।
रसंजनी कुमद्वेषी बाला प्रौढ़ा च मुग्धधीः ॥ ३८ ॥

सती च रागभाना च अडिडलास्त्वमृधा मुने।
सोरठा च तथा विप्र स्तम्भनो मोहनस्तथा ॥ ३९ ॥

विलम्बश्चौदयश्चैव हासश्चैव मनस्वरः।
सोरठा च समाख्याता कवित्त्वं श्रृणु तत्परः ॥ ४० ॥

रंजनी लोगनी लोहा पांचाली च विभाषिका।
मंत्रश्च शंकरो नागः कृष्णो रीतया सुधारिकः ॥ ४१ ॥

---

१. दोहां २. व्यधर्रः।

अब आप संक्षेप में छन्दों का वर्णन सुनिये । आठ वर्ण के छन्द को अनुष्टुप् छन्द कहते हैं । ग्यारह वर्ण का छन्द इन्द्रवज्रा छन्द कहलाता है ।। ३० ।।

बारह वर्ण का छन्द उपेन्द्रवज्रा छन्द है । अब आप वसन्ततिलका छन्द को सुनो । उसमें चौदह वर्ण निहित रहते हैं । उसी को मालती छन्द भी कहते हैं ।। ३१ ।।

सतरह वर्ण का छन्द शिखरिणी छन्द मेरे द्वारा कहा गया है । उन्नीस वर्ण का छन्द शार्दूलविक्रीडित नाम से कहा गया है ।। ३२ ।।

इक्कीस वर्ण का छन्द स्रग्धरा है । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इस प्रकार गीतों के छन्द मैंने आपसे कहे हैं ।। ३३ ।।

हे विप्र ! अब गाहों का वर्णन करते हैं—क्रम से कमला, ललिता, नीला, द्रुतारम्भा, मागधी ।। ३४ ।।

लक्षबीजा, अमला, हंसी, शशिनी, अवमुग्धगी, काली, कुमारी, वोहारि, विशुद्धि, कामकारिणी ।। ३५ ।।

यक्षिणी, ध्वविना, अर्वाची, गान्धारी, मंजरी और गुरु ये उनके नाम हैं । अब दोहों का वर्णन करते हैं—घर्घर, व्यर्धर ।। ३६ ।।

बाह्य, हेमनिवार, श्वान, गर्दभ, पाखण्ड, हेमराग, उच्चाट, मोहन और रस ।। ३७ ।।

इस प्रकार दोहों को कहा गया है । हे विप्र ! अब आप अद्रिलों का वर्णन सुनिये । रसंजनी, कुमद्वेषी, बाला, प्रौढा, मुग्धधी···।। ३८ ।।

सती, रागभाना, अड्डिला, अमृधा, सोरठा, स्तम्भन, मोहन ।। ३९ ।।

विलम्ब, ओदय, हास, मनस्वर और सोरठ ये अद्रिल कहे गये हैं । अब आप कवित्व का वर्णन सुनो ।। ४० ।।

रंजनी, लोगनी, पांचाली, विभाषिका, मन्त्र, शंकर, नाग, कृष्ण और सुधारिक ये कवित्त्व की रीतियां हैं ।। ४१ ।।

तथा कुंडलिया विप्र कथ्यते तन्मनाः श्रृणु।
मृगरूपी सपंचाली विदुरो मेघयानकम् ॥ ४२ ॥

शयः पंचविधः ख्यातो हास्यं च कलहस्तथा।
सन्निकर्षो निराशश्च उपालम्भस्तु पंचमः ॥ ४३ ॥

रूपकं त्रिविधं प्रोक्तं व्यापिचालितकालकाः।
इति ते कथिता विप्र सर्वगीतस्य संस्थितिः।
यज्ज्ञात्वा सर्वविद्विप्र जायते भुवि मानवः ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे संगीतशास्त्रे श्रृंगारादिकथनं-
नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सङ्गीतदोषतालमृदङ्गादिस्वरूपकथनपुरस्सरं श्रीमहादेवेन नारदाय वीणादानम्

ईश्वर उवाच—

गीतदोषान्प्रवक्ष्यामि श्रृणु नारद तन्मनाः।
कंठहीनो लम्बग्रीवो दन्तहीनस्तथैव च ॥ १ ॥

तथा कंठकपालित्वं कंपितं लुंठितं तथा।
तारहीनं तथा जिह्वाखंडितं च निषादकम् ॥ २ ॥

गीतदोषाः समाख्याता अथ गायनलक्षणम्।
तारे मंद्रे तथा घोरे निःशंकं ग्राम एव च।
मनश्चाषि तथा तुष्टमेते गीताः प्रियाः स्मृताः ॥ ३ ॥

मृदंगाश्च त्रयः ख्याताः श्रीमुखः स्वस्तिकस्तथा।
यवाकृतिस्तृतीयो वै मृदंगाः परिकीर्तिताः ॥ ४ ॥

मध्यपर्वत्रयांगं च उदकं कष्टवर्ज्जितम्।
ऋवं ऋवं च शब्दौ च तत्कालं घननं स्मृतम् ॥ ५ ॥

धेगुरो धेगुरुश्चैव टंकारश्च विरामिता।
तालेन सह गातव्यं कुंभिदीर्घं तथा मुखम् ॥ ६ ॥

हे ब्राह्मण ! अब मैं कुण्डलिया का वर्णन करूँगा, अत: आप उन्हें मन लगाकर सुनिवे। मृगरूपी, सपंचाली, विदुर, मेघयानक ये चार भेद हैं ।। ४२ ।।

शय के ये पांच प्रकार विख्यात हैं—हास्य, कलह, सन्निकर्ष, निराश और उपालम्भ ।। ४३ ।।

व्यापी, चालित और कालक ये तीन प्रकार के रूपक हैं। इस प्रकार, हे विप्र ! समस्त गीतों की संस्थिति आपसे वर्णित की है। इसे जानकर मानव भूमि के ऊपर सर्वज्ञ हो जाता है ।। ४४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में संगीत शास्त्र में शृंगारादि कथन नाम का छियत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ७७

संगीत के दोष, ताल, मृदंग आदि के स्वरूप का वर्णन करके श्री महादेव द्वारा नारद के लिये वीणा प्रदान करना

ईश्वर ने कहा—

हे नारद ! मैं गीत के दोषों को कहूँगा, आप उन्हें मन लगाकर सुनो। कंठहीन (दबी आवाज), लम्बग्रीव (ऊँची आवाज) तथा दांतहीन···।। १ ।।

कंठकपालित्व, कंपित, लुंठित, तारहीन, खण्डितजिह्वा और निषादक ।। २ ।।

ये गीत-दोष वर्णित किये गये हैं। अब गायन के लक्षण को कहते हैं। तार, मन्द्र तथा घोर ये निस्सन्देह ग्राम्य हैं। वे मन की तुष्टि करते हैं। तथा वे ही गीत प्रिय कहलाते हैं ।। ३ ।।

मृदंग भी तीन प्रकार के कहे गये हैं—पहला श्रीमुख, दूसरा स्वस्तिक तथा तीसरा मृदंग यवाकृति ।। ४ ।।

मृदंग के मध्य भाग में तीन पर्व होते हैं। कष्ट से रहित्त जल के समान उनकी वाणी है। तत्काल क्रब्-क्रव शब्द उससे घने रूप ध्वनित्त होते हैं ।। ५ ।।

धेगुर, धेगुरु के क्रम में बजावे जाते हुये उस मृदंग का टंकार में विराम होता है। कुम्भिदीर्घ मुख करके उससे ताल के साथ गान करना चाहिए ।। ६ ।।

यस्तालेन विहीनः स्यादुमया सहितो ह्ययम् ।
तस्यार्चा निष्फला ज्ञेया तस्मात्तालपरो भवेत् ।। ७ ।।

वंशबद्धा तथा वीणा वंशवर्द्धनकारिणी ।
रक्तचन्दनबद्धा च विद्या नैपुण्यदायिनी ।। ८ ।।

खादिरा च तथा वीणा धनधान्यकरी मता ।
सार्द्धहस्तप्रमाणा वै वीणा कार्य्या सदा बुधैः ।। ९ ।।

इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽखिलम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।। १० ।।

वीणां च महतीं नाम्ना गृहाण स्वरभूषिताम् ।
ज्ञास्यसे तन्महाभाग महत्यामेव नारद ।। ११ ।।

संन्यस्ताश्च महाभाग स्वराः सप्त सभेदकाः ।। १२ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति श्रुत्वा नारदोऽपि प्रणम्य च पुनः पुनः ।
संजग्राह महादेवाद्वीणां परमपाविनीम् ।। १३ ।।

ज्ञातवान् सकलान् गीतभेदान्सावरणांस्तथा ।
शिवोऽपि भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत ।। १४ ।।

नारदोऽपि महाभागो रणयन्महतीं मुहुः ।
परं सन्तोषमापन्नो ब्रह्मलोकं ययौ मुनिः ।। १५ ।।

इति सर्वं महाभागे कथितं ते मया शुभम् ।
सर्वपापप्रशमनं वेदवेदांगसम्मतम् ।। १६ ।।

नादब्रह्मपराख्यानं स्वर्गीयं मक्तिकारणम् ।
नादब्रह्मपरा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।। १७ ।।

जो ताल के विना गान करता है, उससे पार्वती के सहित यह मैं (नाराज हो जाता हूँ)। अतः उसकी पूजा निष्फल हो जाती है। इसलिए ताल में तत्पर होकर गान करना चाहिए ।। ७ ।।

वांस की वनी हुई वीणा वंश को बढ़ाती है। लाल चन्दन की लकड़ी से बनाई गई वीणा विद्या तथा निपुणता को प्रदान करने वाली होती है ।। ८ ।।

खदिर से निर्मित वीणा धन तथा धान्य को बढ़ाने वाली होती है। हमेशा विद्वानों को चाहिए कि वे डेड़ हाथ प्रमाण की वीणा को बनावें ।। ९ ।।

इस प्रकार हे विप्र ! आपके द्वारा पूछे गये सारे प्रश्नों का उत्तर मैंने दे दिया है। इसे सुनकर समस्त पापराशि से मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सण्देह नहीं है ।। १० ।।

स्वरों से विभूषित महती नाम की वीणा को तुम ग्रहण करो। हे महाभाग ! नारद ! इस महती वीणा से आपको सम्पूर्ण ज्ञान का लाभ होगा ।। ११ ।।

हे महाभाग ! इस वीणा में सात स्वर अपने समस्त भेदों के साथ निहित हैं ।। १२ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार सुनकर नारद ने शिव को पुनः-पुनः प्रणाम करके उनसे परम-पाविनी महती नाम की वीणा को ग्रहण किया ।। १३ ।।

इससे उन्हें समस्त गीत-भेदों तथा सावरणों का ज्ञान हो गया। भगवान् शिव भी उसी स्थान में अन्तर्धान हो गये ।। १४ ।।

महाभाग नारद मुनि भी महती वीणा को बार-बार बजाते हुये परम सन्तोष का अनुभव करते हुये ब्रह्मलोक को चले गये ।। १५ ।।

हे महाभाग्यशालिनि ! इस प्रकार समस्त शुभ को देने वाला उपाख्यान मैंने आपसे कहा है। यह वेद एवं वेदांग सम्मत है, अतः समस्त पापों का नाश करने वाला है ।। १६ ।।

नादब्रह्म स्वरूप यह आख्यान स्वर्ग तथा मोक्ष को देने वाला है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों देवता भी नादब्रह्म में ही निवास करते हैं ।। १७ ।।

पुरारुन्धति विप्राद्या गताः कैलासमन्दिरे ।
सरस्वती च सावित्री सर्वतीर्थानि चैव हि ॥ १८ ॥

श्रोतुं गानं महेशस्य भक्तितत्परमानसाः ।
शिवोऽपि तेषां भक्तिं वै संलक्ष्य परमात्मनि ॥ १९ ॥

रागभेदांश्च सर्वान्वै श्रावयामास कृत्स्नशः ।
श्रुत्वा नादामृतं सर्वे द्रवीभूताः सुरेश्वराः ॥ २० ॥

तद्द्रवो गंगया [1]सार्धभागतो भुवनत्रये ।
तस्मादिदं परं ब्रह्ममयं गंगाजलं प्रिये ॥ २१ ॥

तत्र स्नात्वा नारदोऽपि रुद्रतीर्थे महामतिः ।
गंगामंदाकिनीसंगे परां सिद्धिमतो गतः ॥ २२ ॥

अतः पृथिव्यां तच्छ्रेष्ठं रुद्रतीर्थं वरानने ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा नागानन्तादयः परे ॥ २३ ॥

परां सिद्धिं समापन्नास्ततस्तत्संश्रयेत्पुमान् ।
लक्षत्रयं च तीर्थानां सहस्राणि तथा दश ॥ २४ ॥

तस्मिन्प्रदेशे वर्त्तन्ते भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै ।
नागपर्वतमारूढा ह्यारूढास्त्रिदिवं नराः ॥ २५ ॥

मुक्ता लक्षत्रयं तत्र पातका ब्रह्मराक्षसाः ।
तदैवेदं शुभं स्थानं पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ २६ ॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं मासमात्रेण तत्र सत्यं न संशयः ॥ २७ ॥

इरि श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थमाहात्म्ये
संगीतशास्त्रसमाप्तिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

---

१. सर्वं ।

हे अरुन्धति ! पहले नारद आदि ब्राह्मण कैलास पर्वत के ऊपर गये। सरस्वती, सावित्री तथा समस्त तीर्थ वहां उपस्थित हुये ।। १८ ।।

वे भक्ति में तत्पर होकर एकाग्र मन से शिव का गान सुनने के लिये गये। शिव ने भी परमात्मा में उनकी भक्ति को देखकर ।। १९ ।।

उन्हें समस्त रागों के भेदों को विधिपूर्वक सुनाया। नाद रूपी अमृत का श्रवण करके समस्त देवता द्रवीभूत हो गये ।। २० ।।

वह द्रव गंगा के साथ तीनों लोकों में आ गया। हे प्रिये ! इसलिए यह गंगा जल परब्रह्म स्वरूप है ।। २१ ।।

वहां गंगा और मन्दाकिनी के संगम स्थल पर रुद्रतीर्थ में महामतिशाली नारद ने भी स्नान करके परम सिद्धि का लाभ प्राप्त किया ।। २२ ।।

हे प्रिये ! इसलिए पृथिवी पर वह रुद्रतीर्थ श्रेष्ठ है। यहाँ ब्रह्मा आदि देवता तथा श्रेष्ठ अनन्त आदि नाग आये थे ।। २३ ।।

इनको यहाँ परम सिद्धि प्राप्त हुई थी। अतः पुरुष उस तीर्थ का आश्रय लें। यहाँ तीन लाख दश हजार तीर्थ ।। २४ ।।

उस प्रदेश में विद्यमान हैं, जो भोग और मोक्ष को देने वाले हैं। नाग पर्वत के ऊपर आरूढ़ होने से मनुष्यों को स्वर्ग प्राप्त होता है ।। २५ ।।

तीन लाख ब्रह्मराक्षसों के पातक वहाँ नष्ट हुये थे। तब से ही वह शुभ स्थान पापियों को मुक्ति देने वाला है ।। २६ ।।

समस्त तीर्थों में जो फल और पुण्य मिलता है, वह फल केवल एक महीने में इस तीर्थ में प्राप्त होता है। यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। २७ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-प्रशंसा में
रुद्रतीर्थ माहात्म्य में संगीतशास्त्र समाप्ति नाम
का सतत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

देवाश्रयपुत्रस्य गोपालस्य शिवमन्त्रजपादेवदुर्लभस्थानप्राप्तिपूर्वकं लक्षत्रयब्रह्मराक्षसानां कैलासक्षेत्रप्राप्त्योत्तमगतिलाभः

अरुन्धत्युवाच—

भगवन् सर्वशास्त्रज्ञ कथं लक्षत्रयं मुने।
कथं मुक्ति समापन्नाः के वै ते ब्रह्मराक्षसाः॥ १॥

एतत्सर्वं समासेन वद वृत्तं प्रियास्मि ते।
राक्षसत्वं समापन्ना दिव्यदेहं कथं गताः॥ २॥

वसिष्ठ उवाच—

शृणु प्रिये यथा वृत्तं तेषां चैव दुरात्मनाम्।
ब्राह्मणस्य तथा देवि नाम्ना गोपालशर्मणः॥ ३॥

पुरा देवाश्रयो नाम गंगाद्वारेऽवसत् परम्।
तस्य पुत्रास्तु पंचासन् वेदवेदांगपारगाः॥ ४॥

षष्ठोऽयं च महाभागे नाम्ना गोपालसंज्ञकः।
न पपाठ गुरोर्विद्यां न च धर्मपरोऽभवत्॥ ५॥

कृतवान् बालकं तं वै गवां गोपालकं पिता।
नित्यं व्रजति चारण्ये गवामनुगतः सदा॥ ६॥

सक्तुपिंड भक्षयति ब्रह्मसूत्रविवर्जितः।
इति तस्य व्यतीयुश्च वत्सराश्च चतुर्दश॥ ७॥

एकदा तस्य मनसि वैराग्यं समुपागतम्।
कस्य माता पिता कस्य भ्रातरश्च तथा वृथा॥ ८॥

अध्याय ७८

देवाश्रय के पुत्र गोपाल द्वारा शिव मन्त्र के जप से देव दुर्लभ स्थान प्राप्त करना और तीन लाख ब्रह्मराक्षसों द्वारा कैलास क्षेत्र को प्राप्त करके उत्तम गति प्राप्त करना

अरुन्धती बोली—

हे भगवन् ! आप समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं। हे मुने ! वे तीन लाख ब्रह्म-राक्षस कौन थे और उन्हें किस प्रकार मोक्ष मिला ॥ १ ॥

इस सब वृतान्त को आप संक्षेप में कहिए, क्योंकि मैं आपकी प्रिया हूँ। राक्षस योनि में उत्पन्न इन्होंने दिव्य देह को कैसे प्राप्त किया ॥ २ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे प्रिये ! देवि ! उन दुष्ट आत्माओं का तथा गोपाल शर्मा नाम के ब्राह्मण का चरित्र सुनो ॥ ३ ॥

पहले गंगाद्वार में एक देवाश्रय नाम का ब्राह्मण निवास करता था। उसके वेद तथा वेदांगों में पारंगत पांच पुत्र हुये ॥ ४ ॥

और छठा यह गोपाल नाम का पुत्र हुआ। इसने न तो गुरुजनों से विद्या पढी और नाही यह धर्म का आचरण करने वाला हुआ ॥ ५ ॥

अतः उसके पिता ने उसे गौओं को पालने के काम में नियुक्त कर दिया। वह हमेशा गायों को चराने के लिए उनके पीछे वन में जाता था ॥ ६ ॥

सत्तुओं का वह भोजन करता था, यज्ञोपवीत से वह रहित था। इस दशा में उसके चौदह वर्ष बीत गये।। ७ ॥

एक दिन उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। किसकी माता है, किसके पिता हैं और किसका भ्राता है। ये सब व्यर्थ की बातें हैं ॥ ८ ॥

यतो मां विद्यया हीनं धनोत्पादे त्वशक्तकम् ।
तत्यजुर्गोषु संसक्तं कुर्युश्च स्वार्थकांक्षिणः ॥ ९ ॥

तस्मादहं हि कैलासं गत्वा तीर्थशतं तनुम् ।
त्यक्ष्यामि परमां सिद्धिमाप्नुयां यत् करोमि तत् ॥ १० ॥

इति संचिन्त्य मनसि नत्वा गोभ्यः पृथक्-पृथक् ।
गतो महामतिः प्रीत्या कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ११ ॥

नानातीर्थेषु सुस्नातो रुद्रतीर्थं गतो द्विजः ।
प्रायोपवेशनं चक्रे त्यक्ताहारविहारकः ॥ १२ ॥

मां यावत्कोऽप्युपदिशेन्मन्त्रं मन्त्रविशारदः ।
तावन्नाहं हि भोक्ष्यामि न गमिष्यामि कुत्रचित् ॥ १३ ॥

ततः पंचमदिवसे मध्याह्ने मुनयस्तदा ।
अहमार्दिहि येषां वै सप्त वै परिसंख्यया ॥ १४ ॥

अकुर्वतोपदेशं हि श्रीशिवस्य द्विजातये ।
संग्रह्य च ततो मन्त्रं जजाप वसुलक्षकम् ॥ १५ ॥

शिवोऽपि तस्य सन्तुष्टो ददौ तस्य वरत्रयम् ।
सर्वज्ञत्वं पवित्रत्वं सर्वगत्वं च मे प्रिये ॥ १६ ॥

नाम्ना गोपाशसिद्धो वै ख्यातः सर्वत्रगः प्रिये ।
एकदा ह्यटतस्तस्य कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ १७ ॥

तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे तं वै ददृशिरेऽसुराः ।
लक्षत्रयं संख्यया वै विरूपा ब्रह्मराक्षसाः ।
क्षणात्सिद्धिमवापन्नाः सुरूपाः स्रग्विभूषणाः ॥ १८ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं गोपालो द्विजसत्तमः ।
विचार्य्य ज्ञातवान्सर्वं तथापि मम वल्लभे ॥ १९ ॥

क्योंकि विद्या से विहीन धन उपार्जन में अशक्त मुझ को उन स्वार्थियों ने त्याग कर गौओं के पालन के कार्य में लगा दिया है ।। ९ ।।

इसलिए सैंकड़ों तीर्थों से समलंकृत कैलास में जाकर ऐसा आचरण करके शरीर का परित्याग करता हूँ, जिससे परम सिद्धि प्राप्त हो ।। १० ।।

इस प्रकार मन में विचार करके गौओं को अलग-अलग प्रणाम करके महा-मतिशाली वह गोपाल शर्मा प्रसन्नता से पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत के ऊपर चला गया ।। ११ ।।

अनेक तीर्थों में स्नान करता हुआ वह ब्राह्मण रुद्रतीर्थ में गया। वहाँ उसने आहार तथा विहार का परित्याग करके प्रायोपवेशन व्रत का आचरण किया ।। १२ ।।

उसने प्रतिज्ञा करली कि जब तक कोई मन्त्रवेत्ता मुझे मन्त्र का उपदेश नहीं देता, तब तक मैं न तो भोजन करूँगा और नाहीं कहीं जाऊँगा ।। १३ ।।

उससे पांचवें दिन मध्याह्न काल में हम सात मुनीश्वर, जिनमें मैं तथा अन्य थे, वहां आये ।। १४ ।।

हमने ब्राह्मण को श्री शिव के मन्त्र का उपदेश किया। उसने भी उस मन्त्र को ग्रहण कर आठ लाख बार उसका जप किया ।। १५ ।।

हे प्रिये ! शिव जी ने भी सन्तुष्ट होकर उस ब्राह्मण को सर्वज्ञत्व (सब कुछ जान लेना), पवित्रत्व और सर्वगत्व (सब स्थानों पर जाने की सामर्थ्य) ये तीन वर प्रदान किये ।। १६ ।।

हे प्रिये ! वह गोपाल शर्मा गोपाल सिद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सर्वत्र जाने में समर्थ हो गया। एक समय वह पर्वतों में उत्तम कैलास पर्वत पर विचरण कर रहा था ।। १७ ।।

उसी महाक्षेत्र में असुरों ने उसको देखा। क्षण भर में ही वे तीन लाख विरूप ब्रह्मराक्षस परम सिद्धि को प्राप्त करके सुन्दर स्वरूप वाले हो गये। उन्होंने सुन्दर मालायें तथा अन्य आभूषण धारण किये हुये थे ।। १८ ।।

हे मेरी प्रिये ! यह देखकर गोपाल सिद्ध श्रेष्ठ ब्राह्मण को परम आश्चर्य हुआ। तथापि विचार करने पर उसे सारा वृत्तान्त विदित हो गया ।। १९ ।।

पप्रच्छाश्चर्य्यचेतास्तु किमिदं किमिदं तथा।
के यूयं विकृताकाराः कथमेतां गतिं गताः ॥ २० ॥

दिव्यदेहधरास्तद्वत्कथं जाता विरूपकाः।
इति मे महदाश्चर्य्यं वदत प्रभवो मम।
आश्चर्य्य परमं दृष्ट्वा व्यथितोऽहं न संशयः ॥ २१ ॥

ब्रह्मराक्षसा ऊचुः—

वयं सर्वे महाभाग संख्यया शतलक्षकाः।
ब्राह्मणा वेदवेदांगपारगा ब्रह्मवित्तमाः ॥ २२ ॥

गयस्य यज्ञे होतारः सर्वे जाता महामते।
राजप्रतिग्रहात् सर्वे राक्षसीं योनिमाश्रिताः ॥ २३ ॥

शापात्परशुरामस्य एवं भूता विरूपकाः।
पुनः प्रसादात्तस्यैव परां सिद्धि समागताः ॥ २४ ॥

ब्राह्मण उवाच—

कथं परशुरामेण शप्ता यूयं महात्मना।
प्रसादश्च कथं जातो वदध्वं विस्तरान्मम ॥ २५ ॥

ब्रह्मराक्षसा ऊचुः—

गता यज्ञे गयस्यापि वयं कोटिस्तु संख्यया।
लब्ध्वा धनं ततो भूरि ह्यसन्तुष्टा गता गृहात् ॥ २६ ॥

भिक्षितुं भार्गवं रामं गता वै धनलुब्धकाः।
क्रोधावेशसमारूढः स्वजातीयान्महामतिः ॥ २७ ॥

राज्ञः परिग्रहाद्दुष्टान् लुब्धान् दृष्ट्वा स नो द्विजः।
शशाप जलमुत्सृज्य भवथ ब्रह्मराक्षसाः ॥ २८ ॥

प्रायश्चित्तमकुर्वन्तः सम्प्राप्य भूरिद्रव्यकम्।
तृष्णापूर्तिर्न वो जाता यथा वै ब्रह्मराक्षसाम् ॥ २९ ॥

यूयं च हि दुरात्मानो भूयास्त ब्रह्मराक्षसाः।
इति शप्त्वा द्विजान्सर्वान् जामदग्न्यो महामुनिः ॥ ३० ॥

---

१. पाठ भेद—"लक्षत्रयं महाभाग वयं सर्वे घ संख्यया"।

आश्चर्य से भरे मन वाला होकर उसने उनसे पूछा कि यह क्या हुआ, यह क्या हुआ। विकृत शरीर वाले आप कौन हैं ? इस गति को कैसे प्राप्त हो गये ॥ २० ॥

आप सब विरूप देह को धारण किये हुये थे, कैसे आपकी यह दिव्य देह हो गई। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे मेरे प्रभुओ ! आप यह मुझ से बोलिए। इस परम आश्चर्य को देखकर मैं अति व्याकुल हो गया हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥

ब्रह्मराक्षस बोले—

हे महाभाग ! हम सब ब्रह्मविद्या के ज्ञाता, वेद-वेदांगों में पारंगत सौ लाख ब्राह्मण थे ॥ २२ ॥

हे महामते ! राजा गय के यज्ञ में हम सब होता नियुक्त किये गये थे। राजा से दक्षिणा रूप धन लेने से हम सब राक्षस योनि को प्राप्त हो गये ॥ २३ ॥

परशुराम जी के शाप से हम इस प्रकार विरूप देह को प्राप्त हो गये। फिर उन्हीं के प्रसाद से हमें परम सिद्धि का यह लाभ हुआ ॥ २४ ॥

ब्राह्मण ने कहा—

आपको महात्मा परशुराम का शाप किस प्रकार मिला और किस प्रकार आपको उनका प्रसाद मिला, यह विस्तारपूर्वक आप मुझ से कहिए ॥ २५ ॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा—

गय के यज्ञ में गये हम लोगों को करोड़ों की संख्या में धन प्राप्त हुआ तथा बहुत धन मिलने पर भी हम असन्तुष्ट होकर उसके घर से गये ॥ २६ ॥

धन के लोभी हम भिक्षा मांगने के लिए परशुराम के पास गये। वे महामति परशुराम स्वजातीय हमको देखकर अत्यन्त क्रोधित हुये ॥ २७ ॥

राजा के प्रतिग्रह से दूषित हम ब्राह्मणों को लोभ करते देख उस ब्राह्मण ने जल को छोड़कर शाप दिया कि तुम ब्रह्मराक्षस हो जाओ ॥ २८ ॥

प्रभूत धन पाने पर भी तुमने प्रायश्चित्त नहीं किया तथा ब्रह्मराक्षसों की तरह तुम्हारी तृष्णा पूरी नहीं हुई ॥ २९ ॥

इसलिए तुम दुष्ट आत्मा हो, अतः तुम ब्रह्मराक्षस हो जाओ। हम सब ब्राह्मणों को इस प्रकार शाप देकर जमदग्नि ऋषि के पुत्र महामुनि परशुराम ने···॥ ३० ॥

कैलासमन्दिरे चैव तपस्तप्तुं मनो दधे।
तेऽपि विप्रा वयं सर्वे शापोद्विग्ना महामते ।। ३१ ।।

तं वै प्रसादयामासुर्मुनिं वै जमदग्निजम्।
क्षमस्वेति क्षमस्वेति क्षमस्वेति मुहुर्मुहुः ।। ३२ ।।

लोभाक्रान्तात्मनां नो हि तारणं वै भवादृशाः।
पापयोनिं समापन्नाः कथं मुक्ता भवाम हे ।। ३३ ।।

त्वद्विधा एव भगवन् शिक्षकाश्च दुरात्मनाम्।
राजप्रतिग्रहे मग्नास्तृष्णयोपहता वयम् ।। ३४ ।।

न कर्त्तास्मः कदाचिद्वै हीदृशं कर्म गर्हितम।
इत्युक्त्वा तं महाभागं प्रणम्य च पुनः पुनः ।। ३५ ।।

पादयोः पतितास्तस्य रेणुकातनयस्य हि।
ततः प्रसन्नचेताश्च जगाद वचनं हितम् ।। ३६ ।।

ब्रह्मरक्षस्त्वमापन्ना भूयः शुद्धा भविष्यथ।
कैलासं वै महाक्षेत्रं गंगास्थानं मलापहम् ।। ३७ ।।

गत्वा तद्दर्शनादेव शुद्धात्मानो भविष्यथ।
नास्मात्परं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।। ३८ ।।

यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः।
ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि गरुतल्परतोऽपि च ।। ३९ ।।

हंतारो गोत्रपितॄणां स्तेयानां च हिमस्थलात्।
निष्कृतिर्हि मया दृष्टा नास्मादन्यत्र हे द्विजाः ।। ४० ।।

तस्माद्यूयं महाक्षेत्रं गत्वा कैलासमन्दिरे।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मुक्ति प्राप्स्यथ निर्मलाः ।। ४१ ।।

इत्युक्त्वा वचनं सोऽपि ययौ कैलासमन्दिरम् ।। ४२ ।।

कैलास पर्वत के ऊपर जाकर मन में तपस्या करने का विचार किया। हे महामते ! शाप से उद्विग्न मन वाले हम सब ब्राह्मण ।। ३१ ।।

उन जमदग्नि के पुत्र परशुराम को प्रसन्न करने लगे। क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो, बार-बार, हमने उनसे यह प्रार्थना की ।। ३२ ।।

लोभ से आक्रान्त हुये हम जैसी आत्माओं का उद्धार आप जैसे महात्मा ही करने में समर्थ हो सकते हैं। पाप योनि को प्राप्त होने पर हमारी मुक्ति किस प्रकार होगी ? ।। ३३ ।।

हे भगवन् ! आप जैसे व्यक्ति ही दुष्ट लोगों के शिक्षक होते हैं। राजप्रतिग्रह में निमग्न हम लोग लालच से उपहत हो गये थे ।। ३४ ।।

नहीं तो हम इस प्रकार का निन्दनीय आचरण कभी न करते। यह कह कर महाभाग उस मुनि परशुराम को बारम्बार हमने प्रणाम किया और ।। ३५ ।।

उन रेणुका के पुत्र परशुराम के पैरों में हम गिर गये। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने हित के वचन कहे ।। ३६ ।।

तुम ब्रह्मराक्षस होकर भी फिर शुद्ध हो जाओगे। कैलास महाक्षेत्र का दर्शन तथा गंगा-स्नान समस्त पापों का विनाशक है ।। ३७ ।।

वहां जाकर उस महाक्षेत्र से दर्शन के ही तुम्हारी आत्मायें शुद्ध हो जायेंगी। इससे अतिरिक्त कोई महापुण्य पापों का नाश करने वाला नहीं है ।। ३८ ।।

जिसके मात्र दर्शन करने से समस्त पापराशियाँ नष्ट हो जाती हैं। ब्रह्महत्या करने वाले, मदिरा पीने वाले, गुरु की शय्या पर शयन करने वाले और···।। ३९ ।।

अपने गोत्र और पितरों का वध करने वाले की भी मैंने उस हिमस्थल कैलास पर निष्कृति देखी है। हे ब्राह्मणो ! इससे अधिक पावन कोई और क्षेत्र नहीं है ।। ४० ।।

इसलिए तुम महाक्षेत्र कैलास पर्वत पर जाकर समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त करके निर्मल हो जाओगे ।। ४१ ।।

यह वचन कहकर वे महात्मा परशुराम भी कैलास धाम को चले गये ।। ४२ ।।

ब्रह्मरक्षस्त्वमापन्ना ह्यासुरं भावमाश्रिताः ।
कोटिसंख्यामिताः सर्वे मानुषाहारतत्पराः ॥ ४३ ॥

वयं च भ्रममाणाश्च बहुवर्षसहस्रकम् ।
ततः कदाचित्क्षुधिता दृष्टवन्तो महामुनिम् ॥ ४४ ॥

पराशरं चन्द्रवने दीप्यमानं स्वतेजसा ।
तमतुकामास्तत्रापि तमोपहतचेतनाः ॥ ४५ ॥

तद्दर्शनात्तमः सर्वं ननाश द्विजसत्तम ।
रामोक्तस्मृतिमापन्नाश्चक्रम प्रणतिं मुहुः ॥ ४६ ॥

ततः कैलासमासाद्य मुक्ताः सर्वे कुयोनितः ।
लक्षद्वयं वयं ह्यत्र मुक्तास्तत्कृपया द्विज ।
वैकुंठं गन्तुमारब्धाः स्वस्ति तेऽस्तु महामते ॥ ४७ ॥

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्त्वा प्रययुः खं वै विमानैश्चार्कसन्निभैः ।
सोऽपि गोपालसिद्धो वै तत्रैव तपसि स्थितः ॥ ४८ ॥

संप्राप परमं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् ।
इति तत्परमं स्थानं विख्यातं तव सुप्रिये ॥ ४९ ॥

रुद्रतीर्थस्य माहात्म्यं समासेन मया तव ।
कथितं विस्तरेणैव नालं वर्षशतैरपि ॥ ५० ॥

श्रुत्वा यत्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
पठित्वा प्राप्यते स्थानं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ ५१ ॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वया प्रिये ।
अतः परं महाभागे किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां रुद्रतीर्थमाहात्म्यं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

करोड़ों की संख्यां में हम सब ब्रह्मराक्षस होकर असुर योनि को प्राप्त हो गये तथा मनुष्यों को खाने लगे ।। ४३ ।।

इस प्रकार हजारों वर्षों तक भ्रमण करते हुये भूख से व्याकुल हमने कभी महामुनि पराशर को देखा ।। ४४ ।।

वे पराशर मुनि चन्द्रवन में अपने तेज से दैदीप्यमान हो रहे थे। तमोगुण से विनष्ट चेतना वाले हम लोगों की उन पराशर मुनि को भक्षण करने की इच्छा हुई ।। ४५ ।।

हे द्विजसत्तम ! उनके दर्शन से हमारा अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो गया। हमें परशुराम की उक्ति का स्मरण हो गया और बारम्बार हमने उन्हें प्रणाम किया ।। ४६ ।।

उसके पश्चात् कैलास में आकर हम सबको राक्षस योनि से मुक्ति मिल गई। उनकी कृपा से, हे विप्र ! हम दो लाख ब्रह्मराक्षस यहाँ बैकुण्ड जाना आरम्भ कर रहे हैं। हे महामते ! आपका कल्याण होवे ।। ४७ ।।

वसिष्ठ ने अहा—

यह कहकर, सूर्य के समान दीप्तिमान विमानों के द्वारा वे सब आकाश मार्ग से चले गये। वह गोपाल सिद्ध ब्राह्मण भी वहीं तपस्या में स्थित हो गया ।। ४८ ।।

उसने उस स्थान पर अपनी तपस्या के बल से देवताओं के लिए भी दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त किया। हे सुप्रिये ! इस प्रकार वह परम स्थान विख्यात है ।। ४९ ।।

रुद्रतीर्थ के माहात्म्य को संक्षेप से मैंने आप से कह दिया है। विस्तारपूर्वक इस तीर्थ का वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकता ।। ५० ।।

जो इस आख्यान को सुनता है, उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस आख्यान को पढ़कर परमात्मा शिव के स्थान की प्राप्ति होती है ।। ५१ ।।

हे महाभागे ! हे प्रिये ! इस प्रकार आपके पूछने के अनुसार मैंने आपसे वर्णन किया। अब इससे आगे आप और क्या सुनना चाहती हैं ? ।। ५२ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास प्रशंसा में
रुद्रतीर्थ माहात्म्य नाम का अठहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

नीलकण्ठतीर्थचक्रक्षेत्रबिल्वेश्वरहेरम्बकुण्डादिविविधतीर्थकथनम्

अरुन्धत्युवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ भर्त्तर्ब्रह्मसुत प्रभो ।
लक्षद्वयं रुद्रतीर्थे मुक्ता वैं ब्रह्मराक्षसाः ॥ १ ॥

अन्ये कस्मिन्महाक्षेत्रे मुक्तास्ते वद बल्लभ ।
किं तत्क्षेत्रं महापुण्यमन्यदस्ति महामते ॥ २ ॥

तच्छ्रोतुं श्रोतुकामास्मि त्वत्तो ववता न कुत्रचित् ॥ ३ ॥

वसिष्ठ उवाच—

श्रृण्वरुन्धति क्षेत्राणि यत्र यत्र महासुराः ।
दिव्याभरणसंपन्ना देवा इव महाप्रभाः ॥ ४ ॥

ययुः परमिकां तन्विं गतिं श्रृणु मम प्रिये ।
नीलकंठाख्यतीर्थेषु सप्तलक्षाणि रक्षसाम् ॥ ५ ॥

मुक्तिं प्राप्तानि तत्क्षेत्रं श्रृणु देवि यथातथम् ।
तत्र शुंभनिशुंभाख्यौ पर्वतौ द्वौ महोन्नतौ ॥ ६ ॥

तंत्र देवी महेशानी ब्रह्मादिभिरभिष्टुता ।
यत्र तु श्रीमहादेवः पार्वत्या सहितः प्रभुः ॥ ७ ॥

समक्षं क्रीडते तत्र दृश्यते पुण्यकृज्जनैः ।
एकदा तत्र रम्भोरु रन्तिदेवो महीपतिः ॥ ८ ॥

चचार तु तपस्तीव्रं तोषयन्मनसा शिवम् ।
समक्षं गतवांस्तस्य ह्यचिरेण सदाशिवः ॥ ९ ॥

अध्याय ७९

नीलकण्ठ तीर्थ, चक्रक्षेत्र, बिल्वेश्वर, हेरम्बकुण्ड आदि विविध तीर्थों का वर्णन

अरुन्धती बोलीं—

हे भगवन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! ब्रह्मा जी के पुत्र ! आप समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं। वे दो लाख ब्रह्मराक्षस रुद्रतीर्थ में मुक्ति को प्राप्त हो गये ॥ १ ॥

हे पतिदेव ! अन्य ब्रह्मराक्षसों को मुक्ति का लाभ किसमहा क्षेत्र में हुआ ? हे महामते ! क्या वह महापुण्यशाली कोई अन्य क्षेत्र है ? ॥ २ ॥

उसे सुनने की मेरा कामना है। आपसे अधिक कोई अन्य वक्ता नहीं है ॥ ३ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे अरुन्धति ! उन-उन क्षेत्रों का श्रवण करो जिन-जिन क्षेत्रों में वे ब्रह्मराक्षस दिव्य आभूषणों से युक्त हो देवताओं के समान महातेजस्वी हो गये ॥ ४ ॥

हे तन्वि ! मेरी प्रिये ! परम गति को प्राप्त हुये उनके वृत्तान्त का श्रवण करो। नीलकण्ठ नाम के तीर्थ में सात लाख ब्रह्मराक्षस ॥ ५ ॥

मुक्ति को प्राप्त हुये। हे देवि ! आप उस क्षेत्र के लक्षण को सुनिये। वहां दो अति उच्च पर्वत शुम्भ तथा निशुम्भ नाम के विख्यात हैं ॥ ६ ॥

उस स्थान में ब्रह्मा आदि देवताओं से अभिवन्दित महेशानी देवी प्रतिष्ठित हैं। उस स्थान में देवाधिदेव महादेव पार्वती के साथ निवास करते हैं ॥ ७ ॥

वहां पुण्यात्मा लोगों के समक्ष वे क्रीड़ा करते हुये देखे जाते हैं। हे रम्भोरु ! एक दिन वहां रन्तिदेव नाम के राजा ने ॥ ८ ॥

शिव जी को प्रसन्न करने के लिए मनोयोग से उग्र तप किया था, जिससे शंकर भगवान् शीघ्र उसके समक्ष उपस्थित हुये ॥ ९ ॥

तत्र रामाज्ञया सप्त लक्षाणि ब्रह्मरक्षसाम् ।
गत्वा तद्दर्शनादेव ययुः परमिकां गतिम् ।। १० ।।

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं चक्राख्यमद्भुतम् ।
मानसाद्दक्षिणे पार्श्वे नानाधातुविचित्रिते ।। ११ ।।

सर्वदेवगणाकीर्णे यक्षगंधर्वसेविते ।
तत्रैको बिल्ववृक्षोऽस्ति सहस्रकरसम्मितः ।। १२ ।।

तत्र बिल्वेश्वरो नाम महादेवो भयापहः ।
महत्कष्टसमापन्नो द्विदिनात् सुखमाप्नुयात् ।। १३ ।।

तत्र हेरंबकुंडं तु स्नात्वाऽनन्तफलप्रदम् ।
हेरंबेन पुरा यत्र स्तुतो देवि सदाशिवः ।। १४ ।।

सर्वकर्मप्रथमतः पूज्यत्वं प्रददौ प्रिये ।
तत्र गाणेश्वरी मूर्तिस्त्रिदिनात्सिद्धिदायिनी ।। १५ ।।

तत्र वै पंचलक्षाणि मुक्तिमापुर्मम प्रिये ।
पुण्यक्षेत्रमिदं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।। १६ ।।

अथान्यद्वैणवं नाम क्षेत्रं सर्वोत्तमं प्रिये ।
वेणुना यत्र सुतपस्तप्तमंगात्मजेन हि ।। १७ ।।

सरस्तत्र महत्पारं वेणुना निर्मितं पुरा ।
स्नात्वा तत्र महत्पुण्यं हयमेधसमुद्भवम् ।। १८ ।।

प्राप्नोति च तथा स्पृश्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
सरसो दक्षिणे पार्श्वे चण्डी चण्डगणैः स्तुता ।। १९ ।।

जलान्तर्धानमापन्ना स्मरणात्पापनाशिनी ।
पूर्वभागे ततो देवि पुण्यं पापविशोधनम् ।। २० ।।

वहाँ परशुराम जी की आज्ञा पाकर सात लाख ब्रह्मराक्षस उनके दर्शन करने से परम गति को प्राप्त हुये ।। १० ।।

अब मैं एक अन्य चक्र नाम के अद्भुत क्षेत्र का वर्णन करूँगा । मानस के दक्षिण भाग में अनेक धातुओं से चित्र-विचित्र···।। ११ ।।

समस्त देवताओं से आकीर्ण और यक्ष तथा गन्धर्वों से सेवित स्थान है । वहां एक बेल का वृक्ष है, जिसका प्रमाण एक हजार हाथ है ।। १२ ।।

वहां भय को नाश करने वाले बिल्वेश्वर नामधारी महादेव विद्यमान हैं। महान् कष्ट में पड़ा हुआ व्यक्ति भी वहां दो दिन के उपवास से सुख प्राप्त करता है ।। १३ ।।

वहां एक हेरम्ब नाम का कुण्ड है, जिसमें स्नान करने से अनन्त फलों की प्राप्ति होती है । हे देवि ! वहाँ पहले गणेश ने शंकर भगवान् की स्तुति की थी ।। १४ ।।

हे प्रिये ! महादेव ने गणेश को वहीं सब देवताओं में प्रथम पूज्य होने का वर दिया । वहां एक गाणेश्वरी नाम की मूर्ति है, जो केवल तीन दिन की उपासना से सिद्धियों को देने वाली है ।। १५ ।।

हे मेरी प्रिये ! वहाँ पांच लाख ब्रह्मराक्षसों को मुक्ति मिली थी । महापातकों का नाश करने वाला यह पुण्यक्षेत्र कहा गया है ।। १६ ।।

हे प्रिये ! सर्वोत्तम एक अन्य वैणव नाम का क्षेत्र है । यहाँ अंग के पुत्र वेणु ने परम तप किया था ।। १७ ।।

पहले वेणु ने वहां एक विशाल सरोवर का निर्माण किया । वहां स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ के पुण्य के समान पुण्य ।। १८ ।।

प्राप्त होता है और जल के स्पर्श मात्र से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तालाब के दक्षिण भाग में चण्डगणों द्वारा स्तुति की जाती हुई चण्डी देवी निवास करती है ।। १९ ।।

जल के अन्दर निहित वह देवी स्मरण मात्र से समस्त पापों को नष्ट करती है । हे देवि ! उसके पूर्व भाग में पापों का विशोधक एवं पुण्यों को देने वाला ।। २० ।।

जलं तत्पीतवर्णं च लक्षणं कथितं तव ।
तत्र मासाद् व्रती स्थित्वा निधिं पश्यति निश्चयात् ।। २१ ।।

तत ऊर्ध्वं देवलस्य स्थानं परमपुण्यदम् ।
तत्र वै दशलक्षाणि ययुः परमिकां गतिम् ।। २२ ।।

अन्यच्छृणु महत्क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ।
विकटक्षेत्रमाख्यातं धन्यमुनिवरान्वितम् ।। २३ ।।

जंभासुरस्य द्वौ पुत्रौ तटो विकट एव च ।
हते जम्भे वासवेन तेपतुः परमं तपः ।। २४ ।।

विकटः शिवभक्तोऽभूद्विष्णुभक्तस्तटो ह्यभूत् ।
स्थितवन्तौ हि द्विस्थाने महाबलपराक्रमौ ।। २५ ।।

तत्र क्षेत्रे महाविष्णुश्चतुर्बाहुः सदा स्थितः ।
विकटेशो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ।। २६ ।।

तस्थौ विकटभक्त्या[1] वै भूतवेतालसंवृतः ।
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि क्षेत्रस्य वरवर्णिनि ।। २७ ।।

महादेवस्थलाद्याम्ये जलं परमदुर्लभम् ।
शैलोदकमिति ख्यातं स्पर्शनात्प्रस्तरो भवेत् ।। २८ ।।

यत्किंचिद्वस्तु संजातं सत्यमेव न संशयः ।
इदं स्थानं परं गोप्यं न वदेद्यस्य कस्यचित् ।। २९ ।।

स्वर्णं च मुक्ता रजतं गुटिका खेचरी तथा ।
अंजनं च तथाऽदृश्यं परकायप्रवेशनम् ।। ३० ।।

तत्सर्वं साध्यते तेन शैलोदेन वरानने ।
नंदीश्वरो महाभागः सर्वकर्मफलप्रदः ।। ३१ ।।

तत्र नंदी महादेवं शिवमाराधयत्प्रिये ।
तदादीदं परं स्थानं जातं त्रैलोक्यपावनम् ।। ३२ ।।

१, भक्तो ।

जल विद्यमान है। उसका रंग पीला है। यही उसका लक्षण है। यह मैंने आपसे कहा। वहां केवल एक महीने तक स्थित रहकर उपवास करने से निश्चय ही प्रभूत द्रव्य का लाभ होता है ॥ २१ ॥

उससे ऊपर देवल ऋषि का निवास स्थल है, जो परम पुण्यों को देने वाला है। वहां भी दस लाख ब्रह्मराक्षसों को परमगति का लाभ हुआ ॥ २२ ॥

समस्त पापों को नष्ट करने वाले एक अन्य क्षेत्र को सुनो। श्रेष्ठ मुनियों से समन्वित धन्य वह क्षेत्र विकट क्षेत्र नाम से विख्यात है ॥ २३ ॥

जम्भासुर के दो पुत्र थे। एक का नाम तट और दूसरे का नाम विकट था। इन्द्र द्वारा जम्भासुर के मारे जाने पर उन दोनों ने परम तप किया ॥ २४ ॥

विकट शिवभक्त हुआ और तट विष्णु का भक्त हुआ। महाबलिष्ठ एवं तेजस्वी ये दोनों अपने-अपने देवताओं की तपस्या के लिए अलग-अलग स्थानों में स्थित हुये ॥ २५ ॥

उस क्षेत्र में चतुर्भुजी महाविष्णु हमेशा स्थित रहते हैं और विकटेश महादेव समस्त कामों की पूर्ति के लिए भी वहां विराजमान हैं ॥ २६ ॥

विकट की भक्ति के कारण भूत वेताल आदि से परिवृत विकटेश शिव वहां निवास करने लगे। हे वरवर्णिनि ! उस क्षेत्र के लक्षण को मैं कहूँगा ॥ २७ ॥

महादेव के स्थान से दक्षिण में परम दुर्लभ जल है। वह जल शैलोदक नाम से प्रसिद्ध है, जिसके स्पर्श से वस्तुयें पाषाणवत् होती है ॥ २८ ॥

जो वस्तुयें उस जल का स्पर्श करती हैं, वे सब पाषाण हो जाती हैं। यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह स्थान परम गोपनीय है। हर किसी को यह स्थान नहीं बताना चाहिये ॥ २९ ॥

सुवर्ण, मोती, चांदी, खेचरीगुटिका, अदृश्यांजन और परकायप्रवेशन ॥ ३० ॥

हे वरानने ! ये सब उस शैलोदक के द्वारा सिद्ध हो जाते हैं। सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले नंदीश्वर नाम के महादेव वहां विराजमान हैं ॥ ३१ ॥

वहां नंदी गण ने महादेव शिव जी की आराधना की थी। हे प्रिये ! उस समय से यह स्थान परम पुण्य को देने वाला हुआ, जो तीनों लोकों को पवित्र करने वाला हुआ ॥ ३२ ॥

अस्मिन्वै विकटक्षेत्रे द्विलक्षं ब्रह्मराक्षसाः।
मुक्तिं प्राप्ताः महाभागे दर्शनादेव तस्य वै॥ ३३॥

तटक्षेत्रं तथा देवि शृण्वरुन्धति कथ्यते।
तटो नाम महादैत्यो विष्णुभक्तिसमाश्रितः॥ ३४॥

जजाप परमां विद्यां पिंडारकनदीतटे।
वसुवर्षाणि महाभागस्त्यक्ताहारविहारकः॥ ३५॥

विंशतिश्च तथा दैत्यः सहस्रद्वितयं तथा।
ततो ददर्श गोविन्दं शंखचक्रगदाधरम्॥ ३६॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशं नानामणिविराजितम्।
चतुर्बाहुं महाविष्णुं घनश्यामं घनस्वनम्॥ ३७॥

प्रसन्नो भगवांस्तस्मै निजं स्थानं ददौ तदा।
तस्यानुग्रहतस्तत्र वासं चक्रे रमापतिः॥ ३८॥

तटाश्रमे तु यत्किञ्चित् क्रियते योजनास्तृते।
तत्सर्वं कोटिगुणितं सत्यमेव न संशयः॥ ३९॥

तत्प्रदेशोत्तरे भागे ब्रह्मपुत्रतपःस्थलम्।
मरीचिर्भगवान् यत्र प्राप सिद्धिं दुरासदाम्॥ ४०॥

तत्र यत् क्रियते कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तत्सर्वं कोटिगुणितं वर्द्धते च दिने दिने॥ ४१॥

तस्मात्पुण्यं प्रकुर्य्याच्च पापं नैव समाचरेत्।
ब्रह्मपुत्रेश्वरं तत्र शिवलिंगं महाद्भुतम्।
नानाद्रुमलताकीर्णं सद्यो मुक्तिप्रदायकम्॥ ४२॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नानातीर्थमाहात्म्य एकोनाशीति-
तमोऽध्यायः।

हे महाभागे ! इस विकट नाम के क्षेत्र में दो लाख ब्रह्मराक्षसों को उनके दर्शन मात्र से ही मुक्ति प्राप्त हुई ।। ३३ ।।

हे देवि ! अरुन्धति ! आप से अब तट क्षेत्र का वर्णन करूँगा, सुनो । तट नाम के महादैत्य ने विष्णु भक्ति को ग्रहण किया ।। ३४ ।।

पिंडारक नदी के तट पर उस महाभाग ने आहार एवं विहार का परित्याग करके अष्टाक्षरी परम विद्या का जप किया ।। ३५ ।।

उस दैत्य ने दो हजार बीस दिन उस स्थान पर जप किया । तब शंख-चक्र और गदा को धारण करने वाले गोविन्द भगवान् के उसने दर्शन किये ।। ३६ ।।

करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान तेजोमय, अनेक मणियों से विराजित, चार बाहुओं वाले, मेघ के समान वर्ण वाले तथा मेघ के सदृश गम्भीर महाविष्णु ने ।। ३७ ।।

प्रसन्न होकर उसको अपना स्थान प्रदान किया । उसी के अनुग्रह से लक्ष्मी-कान्त भगवान् विष्णु ने उस स्थान में निवास किया ।। ३८ ।।

एक योजन में विस्तृत उस तटाश्रम में जो कुछ भी कर्म किया जाता है, वह सब करोड़ों गुणा हो जाता है । यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं ।। ३९ ।।

उस क्षेत्र के उत्तर भाग में ब्रह्मा के पुत्र का तपस्या का स्थल है । यहाँ भगवान् मरीचि ऋषि ने परम सिद्धि को प्राप्त किया था ।। ४० ।।

वहाँ जो शुभ अथवा अशुभ कर्म किये जाते हैं, वे सब प्रत्येक दिन करोड़ों गुणा बढ़ जाते हैं ।। ४१ ।।

इसलिए इस क्षेत्र में पुण्य का आचरण करना चाहिए, पाप का नहीं । वहाँ ब्रह्मपुत्रेश्वर नाम का बड़ा अद्‌भुत एक शिवलिंग विद्यमान है । वह अनेक वृक्षों एवं लताओं से आकीर्ण है, जो तत्काल मोक्ष को प्रदान करने वाला है ।। ४२ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नाना तीर्थ माहात्म्य में उनासीवां अध्याय पूरा हुआ ।

अशीतितमोऽध्यायः

नागेभ्यो ब्रह्मशापस्तदुद्धारार्थं तेषां शिवाराधनं वरप्राप्तिश्च, हिमालयतीर्थवर्णनपुरस्सरं पुष्करपर्वतमाहात्म्यवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

ब्रह्मपुत्रोत्तरे भागे नाम्ना पुष्करपर्वतः।
तस्मिन्देवाः सगन्धर्वा नागाः किन्नरगुह्यकाः ॥ १ ॥

उपासन्ते[1] स्म भूतेशं सर्वेऽन्ये च मुमुक्षवः।
तत्राऽनेकानि तीर्थानि भवलोकप्रदानि च ॥ २ ॥

शिवस्थानानि लिंगानि मुनीनामाश्रमास्तथा।
देवीपीठानि दिव्यानि सद्यः प्रत्ययदानि च ॥ ३ ॥

यत्र नागैः पुरा तन्वि सोमः शिव उपासितः।
शिवभूषणतां प्राप्ता हिंसका अपि ते प्रिये।
इदं गुह्यतमं स्थानं ज्ञातं प्रीतया शिवान्मया ॥ ४ ॥

अरुन्धत्युवाच—

आश्चर्यभूतं कठितं क्षेत्रं परमदुर्लभम्।
नागा यत्र दुरात्मानः प्राप्ताः शिवकलेवरम् ॥ ५ ॥

विस्तरेण समाचक्ष्व सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो।
त्वया यदपि ख्यातानि तीर्थानि प्रवराणि मे।
तथापि तीर्थमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छा प्रवर्द्धते ॥ ६ ॥

वसिष्ठ उवाच—

पुरा रतिरहस्ये वै शिवेन कथितं प्रिये।
प्रियायै प्रीतिकामायै तत्ते वक्ष्यामि सर्वशः ॥ ७ ॥

सर्गादौ सृष्टवान् ब्रह्मा पुरा सर्वं चराचरम्।
सृष्ट्वा अपि न वर्द्धन्ते प्रजा देवि प्रजापतेः ॥ ८ ॥

---

१. उपासते।

अध्याय ८०

नागों के लिये ब्रह्म-शाप, उससे उद्धार पाने के लिये नागों द्वारा शिव की आराधना और वर प्राप्त करना। हिमालय के तीर्थों का वर्णन करके पुष्कर पर्वत के माहात्म्य का वर्णन करना

वसिष्ठ ने कहा—

ब्रह्मपुत्र के उत्तर भाग में पुष्कर नाम का एक पर्वत है। उसमें देवता, गन्धर्व, नाग, किन्नर, यक्ष ॥ १ ॥

और मोक्ष के अन्य सब अभिलाषियों ने भूतनाथ महादेव की उपासना की थी। वहाँ अनेक तीर्थ शिवलोक को प्रदान करने वाले हैं ॥ २ ॥

वहाँ शिव जी के स्थान तथा लिंग, मुनियों के आश्रम और दिव्य देवी सिद्ध-पीठ शीघ्र ज्ञान देने वाले हैं ॥ ३ ॥

हे तन्वि ! यहाँ पहले नागों ने उमा के सहित शिव की उपासना की थी। हे प्रिये ! हिंसक होने पर भी वे शिव के भूषण हो गये। इस गुप्त स्थान का ज्ञान प्रीति के कारण शिव जी के द्वारा मुझे हुआ ॥ ४ ॥

अरुन्धती बोली—

आपने परम दुर्लभ आश्चर्य को देने वाले क्षेत्र को कहा। जहाँ दुरात्मा नाग भी शिव के शरीर के अलंकार हो गये ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! आप इस आख्यान को विस्तार से कहिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। आपने यद्यपि विख्यात श्रेष्ठ तीर्थों का वर्णन किया है, तथापि तीर्थों के माहात्स्य को सुनने के लिए मेरी इच्छा बढ़ती जा रही है ॥ ६ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे प्रिये ! पहले रति क्रीड़ा करते हुये प्रिया को प्रसन्न करने के लिये शिव ने जो वर्णन किया था, उसे मैं कहूँगा ॥ ७ ॥

पहले सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने समस्त चराचर का सृजन किया था। किन्तु, हे देवि ! ब्रह्मा के सृजन करने पर भी सृष्टि की वृद्धि नहीं हुई ॥ ८ ॥

तदा मनसि संदध्यौ प्रजाः स्रष्टुं दृढव्रते ।
तस्य संध्यायतो जज्ञे मानसी सन्ततिस्तदा ।। ९ ।।

तथापि न प्रजाः सर्वा वर्द्धिताः कर्मणि क्षमाः ।
तदा मैथुनकीं सृष्टिं चक्रे लोकपितामहः ।। १० ।।

अदित्यां कश्यपाद्देवा दित्यां दैत्या दुरासदाः ।
कद्र्वां नागाः समभवन्विषदिग्धकलेवराः ।। ११ ।।

बहवस्ते दुरात्मानो ब्रह्माणं दष्टुमुद्यताः ।
करालवदनाः घोराः फणामंडलमंडिताः ।। १२ ।।

अनेकवर्णा विकृताः शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा ।
हिंसकाः प्राणिनां यूयं भविष्यथ न संशयः ।। १३ ।।

क्षुधया तृषयाविष्टाः परद्रोहपरायणाः ।
इति शप्ता ब्रह्मणा ते भयसंविग्नमानसाः ।
ब्रह्माणं प्रणिपत्योचुर्नागाः कद्रुतनूद्भवाः ।। १४ ।।

नागा ऊचुः —

नमस्ते देवदेवेश ब्रह्मन् लोकपितामह ।
त्वया सृष्टमिदं विश्वं सचरं साचरं विभो ।। १५ ।।

त्वयैव हि वयमपि सृष्ट्वा विषमयाः कृताः ।
परीक्षैव कृतास्माभिः शरीरान्तर्विषस्य हि ।। १६ ।।

स्वभाव एव चास्माकं प्राणिनां यच्च दंशनम् ।
क्षन्तव्यश्चापराधो नः क्षमाशीला हि साधवः ।। १७ ।।

ब्रह्मोवाच —

अमोघो मामकः शापो भविष्यत्येव बालिशाः ।
तथापि च तदुद्धारो भविष्यति युगान्तरे ।। १८ ।।

सदाशिवानुग्रहेण गच्छध्वं हिमपर्व्वते ।
तत्र देवाधिदेवस्य चन्द्रचूडस्य सेवनम् ।। १९ ।।

हे दृढ़व्रते ! तब उन्होंने मन में प्रजाओं की सृष्टि करने का विचार (ध्यान) किया। उस ध्यान से तब मानसी सृष्टि उत्पन्न हुई ।। ९ ।।

तब भी कर्म में सामर्थ्य रखने वाली समस्त प्रजा की वृद्धि न हुई। तब लोक पितामह ब्रह्मा ने मैथुनी सृष्टि को निर्मित किया ।। १० ।।

अदिति में कश्यप से देवता, दिति में दुष्ट दैत्य और कद्रू में विष से व्याप्त शरीर वाले नागों की उत्पत्ति हुई ।। ११ ।।

वे दुरात्मा बहुत से नाग ब्रह्मा को डंसने के लिए उद्यत हुये। उनके मुख कराल थे, आकृति भयंकर थी और वे फणों के मंडल से सुशोभित थे ।। १२ ।।

तब उन अनेक विकृत वर्ण वाले सर्पों को ब्रह्मा ने शाप दिया कि तुम प्राणियों को मारने वाले होओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।। १३ ।।

तुम क्षुधा और तृष्णा से पीड़ित रहोगे तथा दूसरों से द्रोह करने में निमग्न रहोगे। ब्रह्मा के शाप को सुनकर वे भय से उद्विग्न मन वाले हो गये। तब कद्रू के पुत्र नागों ने ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा ।। १४ ।।

नाग बोले—

हे देवदेवेश ! लोकपितामह ब्रह्मन् ! आपको नमस्कार है। हे विभो ! आपने यह समस्त चराचर जगत् सृजित किया है ।। १५ ।।

आपके द्वारा ही हम विषमय सृजित किये गये हैं। शरीर के अन्दर रहने वाले विष की हमने परीक्षा की थी ।। १६ ।।

प्राणियों को डस लेना हमारा स्वभाव ही है। आप हमारे अपराध को क्षमा कीजिये, क्योंकि साधु लोग क्षमावान् होते हैं ।। १७ ।।

ब्रह्मा जी बोले—

अरे मूर्खो ! मेरा शाप अमोघ होगा। तथापि तुम्हारा उद्धार दूसरे युग में हो जायेगा ।। १८ ।।

जो शंकर भगवान् की कृपा से होगा। आप लोग हिमालय पर्वत पर जाओ। वहाँ देवताओं के अधिदेव चन्द्रचूड़ शंकर भगवान् की सेवा···।। १९ ।।

कुरुध्वं स च युष्मभ्यं वरं दास्यति सर्वथा ।
इति श्रुत्वा तु ते नागाः पुष्कराद्या हिमालये ।। २० ।।

गतास्तेपुः परं ताप्यं तपो दुश्चरणीयकम् ।
एकपादेन त्यक्तान्ना वायुभक्षा दिवानिशम् ।। २१ ।।

कल्पत्रयं गतं तेषां तपतां वरवर्णिनि ।
शिवस्य परदेवस्य चलितं हि तदासनम् ।। २२ ।।

पुनस्तेपुश्च ते नागास्तवाविर्भाविता गतः ।
शिवः समागतस्तत्र यत्र ते कद्रुजाः प्रिये ।। २३ ।।

दर्शनं दत्तवान्दिव्यं त्रिशूलांकितहस्तकम् ।
तत्र दृष्ट्वा शिवं नागाः पुष्कराद्याः प्रतुष्टुवुः ।। २४ ।।

नमस्ते शिवेश प्रभो भीम भर्ग त्रिनेत्र त्रिशूलं विभर्षि क्षमेश ।
सदा सृष्टिकर्त्रे प्रहर्त्रे बिभर्त्रे नमोऽस्तु क्षमानाथ खंडालकाय ।। २५ ।।

महारौद्रदण्डप्रहारेन्द्रमुख्यत्रसद्देववृन्दैः स्तुतायार्त्तिहन्त्रे ।
नतस्येष्टदात्रे पुरारे नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।। २६ ।।

असारसंसारमहासमुद्रसंतारणोपायतरिस्त्वमेव ।
त्वमेव सूक्ष्मोऽसि नृणां हृदन्तर्विराजसे लीनतरः सदैव ।। २७ ।।

त्वन्मायया मोहसमाकुलैः स्वैर्न ज्ञायसे व्याप्य बिभर्षि विश्वम् ।
वेदान्तविद्यापरिवेदिभिश्च कुतार्किभिर्वाङ्मयजालवादैः ।। २८ ।।

चिन्वन्ति न त्वां सुतरां सुशीलैर्मूढा भवन्तीह त्वदर्थवादे ।
नंदीमुखैस्त्वं सततं समीड्यस्त्वदिच्छयैतत् सचराचरं जगत् ।। २९ ।।

करो। वे तुम्हें सर्वथा वर प्रदान करेंगे। यह सुनकर वे पुष्कर आदि नाग हिमालय पर्वत पर चले चये ।। २० ।।

वहाँ जाकर उन्होंने दिन-रात एक पैर से खड़े होकर अन्न का परित्याग कर केवल वायु भक्षण करके अत्यन्त दुश्चर तप किया ।। २१ ।।

हे वरवर्णिनि ! उनको तपस्या करते हुये तीन कल्प व्यतीत हो गये। तब परमात्मा शिव जी का आसन विचलित होने लगा ।। २२ ।।

किन्तु वे नाग फिर भी तप करते ही रहे। तब शंकर भगवान् का आविर्भाव हुआ। हे प्रिये ! शिव उस स्थान पर गये जहाँ कद्रू के पुत्र नाग तपस्या कर रहे थे ।। २३ ।।

त्रिशूल हाथ में लिए हुये भगवान् शिव ने उन्हें अपने दिव्य दर्शन दिये। वहाँ वे पुष्कर आदि नाग शिव जी को देखकर स्तुति करने लगे ।। २४ ।।

हे कल्याणेश्वर ! प्रभो ! आपका तेज अत्यधिक होने के कारण आप भयंकर हैं, आप तीन आंखों वाले तथा तीन शूलों को धारण करने वाले हैं ! किन्तु क्षमावान् हैं। अतः आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मारूप से सृष्टि करने वाले, विष्णु रूप से पालन करने वाले तथा शिव रूप से संहार करने वाले हैं, अतः चन्द्रार्द्धचूड़ामणि आपको नमस्कार है ।। २५ ।।

आप भयानक दंड से प्रहार करने वाले हैं, भयभीत हुये इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा आपकी स्तुति की गई थी। आप सबके दुःखों का नाश करने वाले हैं। नम्रता से आप समस्त इष्ट सिद्धियों को देने वाले हैं। आप त्रिपुरासुर को मारने वाले हैं। अतः आपको बार-बार नमस्कार है ।। २६ ।।

सारहीन संसाररूपी महासागर को पार करने के लिए आप ही नावरूप में उपस्थित रहते हैं। सूक्ष्म होने के कारण आप ही मनुष्यों के हृदय में लीन होकर हमेशा विराजमान रहते हैं ।। २७ ।।

आपकी माया से मोहित होकर मनुष्य आपको नहीं जान सकता। आप सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होकर उसका पालन करते हैं। वेदान्त विद्या को जानने वालों के द्वारा अनेक वाद-विवादों से आपके तत्त्व को जाना जाता है ।। २८ ।।

जो लोग विशेष अनुशीलन के द्वारा आपको समझने का प्रयास नहीं करते, वे आपके अर्थवाद के समय मूढ़ हो जाते हैं। प्रमुख नन्दीगण के द्वारा निरन्तर आपकी स्तुति की गई है। आपकी इच्छा से ही इस चराचर समस्त जगत् का सृजन होता है ।। २९ ।।

हिमालयोर्वीसुविहारदक्ष भक्तिप्रवोधैक सुगम्यपाद ।
भक्तार्तिनाशे सततं प्रदत्तचेतः सुचेतः समवाप्य देव ॥ ३० ॥

इति स्तुतो महादेवः काद्रवेयैस्तदा प्रिये ।
तुष्टः प्रोवाच वचनं तपसा स्तवनेन च ॥ ३१ ॥

वरं वृणुध्वं भद्रं वो यद्युष्मन्मनसि स्थितम् ।
श्रुत्वा शिववचो नागा वरमूचुः सनातनम् ॥ ३२ ॥

यदि देवेश तुष्टोऽसि स्याम त्वद्भूषणं वयम् ।
पूज्याश्च सर्वमर्त्यानां क्षेत्रमेतन्महेश्वर ॥ ३३ ॥

अस्मनाम्ना ख्यातिमेतु ह्याचन्द्रार्कनभस्तलम् ।
इदं पुण्यतमं क्षेत्रं तीर्थवृन्दविराजितम् ॥ ३४ ॥

त्वया चैव हि न त्याज्यं सोमेन सगणेन च ।
श्रुत्वा नागवचो देवस्तथेत्युक्त्वा तिरोऽभवत् ॥ ३५ ॥

तदादीदं महाभागे बभूव क्षेत्रमुत्तमम् ।
शिवभूषणतां प्राप्तास्तत आरभ्य सुन्दरि ॥ ३६ ॥

अस्मिंस्तीर्थवरे सन्ति सर्वे देवाः सकिन्नराः ।
गन्धर्वाश्चाप्सरोवृन्दाः दृश्यन्ते पुण्यसंचयात् ॥ ३७ ॥

पुष्करः पद्मकश्चैव वासुकिस्तक्षकस्तथा ।
कम्बलाश्वतरौ नागौ शेषः शंखपुलिस्तथा ॥ ३८ ॥

महापद्मश्चैकशिरा द्विशीर्षास्त्रिशिरास्तथा ।
एकपुच्छा द्विपुच्छाश्च बहुपुच्छास्तथापरे ॥ ३९ ॥

एते चान्येऽपि बहवो लीनास्तिष्ठन्ति जिह्मगाः ।
स्वर्णादिधातुनिलयास्तथा ताम्रमया नगाः ॥ ४० ॥

रत्नानां चाकरा ह्यत्र निधीनां निलयास्तथा ।
तथा च सिद्धौषधयः सर्बे ते पुण्यगोचराः ॥ ४१ ॥

हिमालय पर्वत के भूभाग पर आप अति चतुरता से बिहार करते हैं। भक्ति भावना के द्वारा ही आपके शुभ चरणों का ज्ञान होता है। अपने भक्तों के दुःखों का नाश करने में आप सदैव दत्तचित्त रहते हैं, तथा उत्कृष्ट देवस्वरूप भी आप ही हैं ॥ ३० ॥

हे प्रिये! कद्रू के पुत्रों के द्वारा इस प्रकार जब शंकर भगवान् की स्तुति की गई, तब शिव जी उनके तप से और स्तोत्र पाठ से सन्तुष्ट होकर इन वचनों को बोले ॥ ३१ ॥

आपका कल्याण हो। जो आपके मन में हो उस वर को मांगो। शिव जी के यह वचन सुनकर नागों ने सनातन वर की याचना की ॥ ३२ ॥

हे देवेश! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हम आपका भूषण बनें और सब मनुष्यों के पूज्य बनें। हे महेश्वर! वह क्षेत्र ॥ ३३ ॥

जब तक आकाश में सूर्य एवं चन्द्रमा विद्यमान हैं, तब तक हमारे नाम से विख्यात रहे। समस्त तीर्थ इस पुण्यतम क्षेत्र में विराजमान रहें ॥ ३४ ॥

आपके द्वारा तथा उमा जी के द्वारा एवं आपके गणों के द्वारा इस क्षेत्र का परित्याग न किया जाय। नागों के यह वचन सुनकर "ऐसा ही हो" यह कह कर शिव अन्तर्धान हो गये ॥ ३५ ॥

उसी दिन से हे महाभागे! यह क्षेत्र उत्तम क्षत्र हुआ। हे सुन्दरि! और तब से ही नागों को शिव का आभूषणत्व प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥

इस श्रेष्ठ तीर्थ में समस्त देवता, किन्नर, गन्धर्व और अप्सरायें निवास करते हैं, किन्तु पुण्य संग्रह से ही इसके दर्शन होते हैं ॥ ३७ ॥

पुष्कर, पद्मक, वासुकि, तक्षक, कम्बल, अश्वतर, शेष, शंखपुलि···॥ ३८ ॥

महापद्म, एकशिरा, द्विशिरा, त्रिशिरा, एकपुच्छ, द्विपुच्छ तथा बहुपुच्छ ॥ ३९ ॥

ये सब नाग तथा बहुत सी अन्य नागों की जातियाँ भी इस स्थान में छिप कर निवास करती हैं। सुवर्ण आदि धातुओं के स्थान एवं ताम्रमय पर्वत भी यहाँ विद्यमान हैं ॥ ४० ॥

यहाँ रत्नों के आकर, निधियों के स्थान तथा सिद्ध औषधियाँ विद्यमान हैं। किन्तु ये सब पुण्यात्माओं को ही दृष्टिगत होते हैं ॥ ४१ ॥

बह्व्यो नद्यस्तथा धारा गंगातुल्यफलप्रदाः ।
गौरीपीठान्यनेकानि शिवलिंगान्यनेकशः ॥ ४२ ॥

सद्यः प्रत्ययकारीणि सर्वपापहराणि च ।
धन्याः कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिते ।
अस्मिन्क्षेत्रे स्थिता नित्यं तेऽप्यशोच्या मृता यदि ॥ ४३ ॥

अरुन्धत्युवाच—

कियत्प्रमाणं तत्क्षेत्रं कानि तीर्थानि तत्र वै ।
कैश्च तप्तं तपश्चात्र किं चाप्तं फलमत्र हि ॥ ४४ ॥

को वा पुष्करको नामा यन्नाम्ना पर्वतो ह्यभूत् ।
इति में शंस दयित विस्तरेण ममाधुना ॥ ४५ ॥

वसिष्ठ उवाच—

ब्रह्मपुत्रतपःस्थानाद् गव्यूतिद्वयकाधिके ।
उत्तराश्रितदिग्भागे ख्यातः पुष्करपर्वतः ॥ ४६ ॥

आद्यो हि सर्वनागानां पुष्करोऽनन्तकल्पकः ।
सदाशिवप्रेमपात्रं शिवमूर्ध्नि स्थितोऽनिशम् ॥ ४७ ॥

तस्माद्गव्यूतिमात्रं च पश्चिमे योजनायतम् ।
पूर्वे क्रोशत्रयं याम्ये चोत्तरे क्रोशमात्रकम् ॥ ४८ ॥

एतत्प्रमाणकं क्षेत्रं मुनिसिद्धनिषेवितम् ।
नानामुनिगणाकीर्णं नानागुल्मलतावृतम् ॥ ४९ ॥

नानाद्रुमगणोपेतं नागकन्याप्सरोवृतम् ।
गमनाद्दर्शनादेव महापातकनाशनम् ॥ ५० ॥

क्षेत्रगामिनरं दृष्ट्वा कम्पन्ते पापराशयः ।
अत्र यस्त्यजते प्राणान्स याति शिवमच्युतम् ॥ ५१ ॥

प्रमाणं कथितं भद्रे तीर्थानि शृणु तत्त्वतः ।
पुष्करो नाम नागस्तु ततापं परमं तपः ॥ ५२ ॥

गंगा जी के समान फल देने वाली यहाँ अनेक नदियों की धारायें विद्यमान हैं। यहाँ अनेक देवी सिद्ध पीठ तथा बहुत शिवलिंग स्थित हैं ॥ ४२ ॥

ये शीघ्र ज्ञान देने वाले तथा समस्त पापों का नाश करने वाले हैं। पुण्य रहित इस कलियुग में वे नर धन्य हैं, जो इस क्षेत्र में नित्य स्थित रहते हैं। यदि यहाँ उनकी मृत्यु भी हो जाय तो वह भी शोक के योग्य है ॥ ४३ ॥

अरुन्धती ने कहा—

उस क्षेत्र का मान कितना है, कौन-कौन तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं। किसने यहाँ तप किया और उन्हें क्या फल मिला ? ॥ ४४ ॥

पुष्कर नाम किसका है, जिसके नाम से वह पर्वत प्रसिद्ध हुआ। हे प्राणेश ! अब इस सबको विस्तारपूर्वक मुझे बताइये ॥ ४५ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

ब्रह्मपुत्र के तपस्या स्थल से चार कोस से कुछ अधिक की दूरी पर उत्तर दिशा में पुष्कर नाम का पर्वत विख्यात है ॥ ४६ ॥

समस्त नागों में पुष्कर अनन्तकल्पक नाग शंकर भगवान् का प्रेमपात्र था। वह अहर्निश शिव के मस्तक पर विराजमान रहता है ॥ ४७ ॥

उससे दो कोस की दूरी पर पश्चिम दिशा में चार कोस विस्तृत, पूर्व दिशा में तीन कोस और उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं में एक एक कोस···॥ ४८ ॥

प्रमाण का क्षेत्र मुनियों तथा सिद्धों द्वारा सेवित हैं। यह क्षेत्र अनेक श्रेष्ठ मुनियों से आकीर्ण एवं अनेक गुल्म तथा लताओं से आवृत्त है ॥ ४९ ॥

नाग कन्याओं और अप्सराओं से आवृत वह स्थान अनेक वृक्षों से सुसज्जित है। उस स्थान की यात्रा करने एवं दर्शन करने से महापातकों का विनाश हो जाता है ॥ ५० ॥

इस क्षेत्र की यात्रा करने वाले मानव को देखकर समस्त पापराशियाँ कांपने लगती हैं। यहाँ जो व्यक्ति प्राणों का परित्याग करता है, वह अच्युत भगवान् शिव के धाम को जाता है ॥ ५१ ॥

हे भद्रे ! उस तीर्थ का प्रमाण मैंने वर्णित कर दिया है। अब आप ध्यान-पूर्वक तीर्थों को सुनो। पुष्कर नाम के नाग ने इस पर्वत पर परम तप किया था ॥ ५२ ॥

पर्वतेऽस्मिस्ततो नाम्ना ख्यातः पुष्करपर्व्वतः ।
शिवाराधनतो जातो गिरिः पुण्यतमः प्रिये ।। ५३ ।।

तत्रास्ते शिवलिंगं तु पुष्करेश्वरसंज्ञितम् ।
दृष्टै्व सर्वपापानि प्रशमं यांति सर्वशः ।। ५४ ।।

पूजनाद् व्योमयानेन किंकिणीजालमालिना ।
आलिंगितोऽप्सरोभिश्च शिवलोकमवाप्नुयाम् ।। ५५ ।।

तस्मात्पूर्वाश्रिते याम्ये देवीस्थानमनुत्तमम् ।
तत्रास्ते चण्डिका देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ।। ५६ ।।

दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव पूजनाद् बलिदानतः ।
सन्तुष्टा वरदा नित्यं स्वलोकं संप्रयच्छति ।। ५७ ।।

तत्र स्थित्वा तु कल्पान्तं भूपतिर्जायते धनी ।
तत्रैव शिवलिंगं तु नाम्ना तारेश्वरः स्मृतः ।। ५८ ।।

तदर्चनात्पुत्रपौत्रैः सहितो भगवान् भवेत् ।
अन्ते याति परं स्थानं योगिनामपि दुर्ल्लभम् ।। ५९ ।।

तस्माद्याम्याश्रिते भागे कावेरीति नदी स्मृता ।
तज्जलस्पर्शमात्रेण निष्पापो जायते नरः ।। ६० ।।

पानेन तज्जलस्यापि नरो याति शिवालयम् ।
कोटिसूर्याभयानेन प्रस्फुरद्ध्वजराजिना ।। ६१ ।।

अप्सरोगणगंधर्वैः सेव्यमानोऽनिशं भृशम् ।
तस्यां तु मज्जनाद्याति शिवसायुज्यमुत्तमम् ।। ६२ ।।

पितृनुद्दिश्य यः श्राद्धं तर्पणं वापि शक्तितः ।
पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदाभूतसंप्लवम् ।। ६३ ।।

तत्रैव शिवलिंगं तु कावेरीश्वरसंज्ञितम् ।
दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ।। ६४ ।।

इस पर्वत पर पुष्कर नाम के तप करने से यह पर्वत पुष्कर पर्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ। हे प्रिये ! शिव जी की आराधना से यह पर्वत पुण्यतम हो गया ॥ ५३ ॥

वहाँ पुष्करेश्वर नाम का शिवलिंग विराजमान है। उसके दर्शन मात्र से समस्त पापों का विनाश हो जाता है ॥ ५४ ॥

उस लिंग का पूजन करने से मानव किंकिणी जाल से समलंकृत व्योम विमान से शिवलोक को प्राप्त करता है। यहाँ अप्सरायें उसका आलिंगन करती हैं ॥ ५५ ॥

उससे पूर्व दिग्भाग में दक्षिण दिशा में देवी का परमोत्तम स्थान है। वहाँ चण्डी देवी शीघ्र ही ज्ञान कराने वाली निवास करती हैं ॥ ५६ ॥

दर्शन, स्पर्श, पूजन और वलिदान से प्रसन्न होकर वह देवी वर प्रदान करती है तथा नित्य अपने लोक को देती है ॥ ५७ ॥

कल्प के अन्त तक वह मानव देवी लोक में निवास करने के पश्चात् राजा अथवा धनाढ्य होकर जन्म ग्रहण करता है। वहीं एक तारेश्वर नाम का शिवलिंग है ॥ ५८ ॥

उस लिंग के पूजन से मनुष्य पुत्र-पौत्रवान् तथा ऐश्वर्यवान् हो जाता है। अन्त में वह उस परमोत्तम स्थान को प्राप्त करता है, जो योगियों को भी दुर्लभ है ॥ ५९ ॥

उससे दक्षिण दिशा में कावेरी नाम की नदी विख्यात है। उसके जल के स्पर्श करने मात्र से मनुष्य निष्पाप हो जाता है ॥ ६० ॥

उस जल के पीने मात्र से मनुष्य करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान एवं वहाँ ध्वजाओं से सुशोभित यान पर आरूढ़ होकर शिवलोक को जाता है ॥ ६१ ॥

अप्सरायें तथा गन्धर्वगण नित्य उसकी सेवा में निरत रहते हैं। उसमें स्नान करने से शिव का उत्तम सायुज्य प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

अपनी शक्ति के अनुसार जो लोग इस स्थान में पितरों का श्राद्ध अथवा तर्पण करते हैं, उनके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ६३ ॥

वहीं कावेरीश्वर नाम का शिवलिंग विद्यमान है। उस लिंग के दर्शनों से ब्रह्महत्या महापातक भी नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

पूजनाद् भ्रूणहत्यादिपापानि नाशमाप्नुयु: ।
पक्षमात्रं पूजनेन स्नपनेनाम्बुधारया ॥ ६५ ॥

शिवसायुज्यतां याति भुक्त्वा भोगानशेषत: ।
महारुद्रविधानेन लघुरुद्रेण वाऽनघे ॥ ६६ ॥

स्नपयेच्छैवलिंगं तु तस्य पुण्यं फलं श्रृणु ।
भुक्त्वाऽशेषांस्तु भोगान्वै कृत्वा चैव महत् सुखम् ॥ ६७ ॥

पुत्रादिभिर्युतो मर्त्यो वसेच्छिवपुरं तत: ।
भूमंडले समागत्य चक्रवर्ती नृपो भवेत् ।
अन्ते च शिवसायुज्यं लभते नात्र संशय: ॥ ६८ ॥

ततो याम्याश्रिते देशे नागधारा स्मृता प्रिये ।
यत्र नागैस्तपस्तप्तं शिवाराधनतत्परै: ॥ ६९ ॥

तैर्नीतेयं पयोधारा पानप्रकरलोलुपै: ।
शिवेन दत्ता नागेभ्यो नागधारा तत: स्मृता ॥ ७० ॥

तत्पानतो नरो नित्यममृतत्वं प्रगच्छति ।
अत: श्रृणु महाभागे निगमालयसंज्ञिका ॥ ७१ ॥

नदी पुण्या पापहरा स्मृता परमपाविनी ।
निगमैर्यत्र लब्धं हि पावनत्वं महाद्भुतम् ॥ ७२ ॥

द्वीपेश्वरो नृपो यत्र पंचत्वं हि गतामपि ।
प्राप भार्यां स्वकीयां वै पतिधर्मानुचारिणीम् ॥ ७३ ॥

अरुन्धत्युवाच—

अत्यद्भुतमिदं प्रोक्तं भवता सर्ववेदिना ।
कथं प्राप मृतां भार्यां नाथ द्वीपेश्वरो नृप: ॥ ७४ ॥

वसिष्ठ उवाच—

जम्बूद्वीपेऽभवद् भूपो द्वीपेश्वरनृपो महान् ।
सदा धर्मरत: साधुर्विजयी धनवान् क्षमी ॥ ७५ ॥

इस लिंग के पूजन से भ्रूणहत्या आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। इस लिंग के पन्द्रह दिन तक पूजन करने तथा जलधारा से स्नान कराने से ॥ ६५ ॥

समस्त भोगों का उपभोग करके मानव शिव से सायुज्य प्राप्त करता है। हे अनघे ! महारुद्र अथवा लघुरुद्र के विधान से···॥ ६६ ॥

जो लोग शिवलिंग को स्नान कराते हैं, उसके फल को सुनो। समस्त भोगों का उपभोग करके और महान् सुखों का भोग करके···॥ ६७ ॥

वह मनुष्य पुत्र-परिवार से समन्वित होकर अन्त में शिवलोक में निवास करता है। फिर भूमण्डल में जन्म धारण करके वह चक्रवर्ती राजा होता है और अन्त में शिवसायुज्य को प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥

हे प्रिये ! उससे दक्षिण दिशा के प्रान्त भाग में नागधारा विद्यमान है। यहाँ नागों ने शिव की आराधना में तत्पर होकर तपस्या की थी ॥ ६९ ॥

पान करने में लोलुप उन नागगणों के द्वारा यह जल-धारा यहाँ लाई गई थी। यह धारा शिव ने नागों को दी थी, इसलिए इसका नाम नागधारा हुआ ॥ ७० ॥

इस जल के नित्य पान करने से मनुष्य को अमृतत्व की उपलब्धि होती है। हे महाभागे ! इससे आगे सुनो, निगमालया नाम की···॥ ७१ ॥

एक पुण्यों को देने वाली तथा पापों को हरण करने वाली परमपावनी नदी है। जहाँ निगमों ने परम अद्भुत पवित्रता को प्राप्त किया था ॥ ७२ ॥

तथा जहाँ राजा द्वीपेश्वर ने मृत हुई भी अपनी पतिव्रता भार्या को पुनः प्राप्त किया था ॥ ७३ ॥

अरुन्धती बोली—

हे सर्वज्ञ ! सब कुछ जानने वाले आपने यह परम अद्भुत बात कही है। हे नाथ ! राजा द्वीपेश्वर ने अपनी मृत भार्या को किस प्रकार प्राप्त किया ? ॥ ७४ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

जम्बूद्वीप में एक महान् द्वीपेश्वर नाम का राजा हुआ था। वह सदा धर्म में निरत रहने वाला, शत्रुओं पर विजय पाने वाला, धनवान् तथा क्षमाशाली था ॥ ७५ ॥

ददौ दानानि सर्वाणि महादानानि षोडश।
उपयेमे प्रिया बह्व्यो गुणरूपसमन्विताः। ७६ ॥

तास्वप्येका बभूवास्य भूपस्य प्राणवल्लभा।
माणिक्याभा स्मृता नाम्ना समस्तसुगुणालया ॥ ७७ ॥

सततं निरतस्तस्यां प्रेमाधिक्यं चकार सः।
तत्परोक्षे किमपि नो करोति सुकरं तु वा ॥ ७८ ॥

अवरोधेऽपि महति सत्यपि क्षितिपालकः।
पत्नीवन्तं स्वमात्मानं मेने पत्न्या तया नृपः ॥ ७९ ॥

चकार सैव सर्वं हि राजकार्य्यादिकं प्रिया।
तया विना जलमपि पातुं नेच्छति भूपतिः ॥ ८० ॥

पुत्रान्वितोऽपि तत्रैव प्रेमासीन्नृपतेस्तदा।
अथ दैववशाद्राज्ञी ग्रस्तातंकेन वल्लभा ॥ ८१ ॥

मृद्वंगी नासहत्तं तु ततः पंचत्वमागता।
श्रुत्वा राजा तु पंचत्वं भार्यायाः शोकपीडितः ॥ ८२ ॥

हा हतोऽहं क्व गच्छामि कथं जीवामि निःश्वसन्।
विना सुप्रियया पत्न्या संलप्येति मुहुर्मुहुः ॥ ८३ ॥

सर्वं राज्यादिकं त्यक्त्वा मरणे कृतनिश्चयः।
भूयादसुव्यपायो मे केन चिन्तामिति व्यधात् ॥ ८४ ॥

वने वने च बभ्राम हा प्रिये चेति संलपन्।
ययौ देशात्परं देशं भ्रांतचेता बभूव ह ॥ ८५ ॥

तीर्थात्तीर्थान्तरं गत्वा तपः परमदारुणम्।
चकार तन्मना भूत्वा तत्संगो मे कथं भवेत् ॥ ८६ ॥

ततो बहुतिथे काले दैवयोगाद्ययौ नृपः।
हिमालये पुण्यदेशे मुनिवृन्ददविराजिते ॥ ८७ ॥

उस राजा ने सब प्रकार के दान दिये तथा सोलह महादानों को किया। गुण तथा रूप से समन्वित अनेक स्त्रियों से उसने विवाह किया ॥ ७६ ॥

उनमें से एक उस राजा की प्राणप्रिय रानी हुई। समस्त सुन्दर गुणों से वह संयुक्त थी तथा माणिक्याभा उसका नाम था ॥ ७७ ॥

उस रानी में विशेष आसक्ति के कारण राजा उससे विशेष प्रेम करता था। कोई सुकर कार्य भी हो, राजा उस रानी के परोक्ष में कुछ नहीं करता था ॥ ७८ ॥

यद्यपि उस राजा का अन्तःपुर बहुत बृहद् था, तथापि वह राजा अपने को भार्या के सहित इसी रानी से मानता था ॥ ७९ ॥

उसके समस्त राजकार्य आदि को भी वही प्रिय रानी करती थी। उसके विना राजा जल पीने तक की इच्छा नहीं करता था ॥ ८० ॥

पुत्रों से समन्वित होने पर भी उस राजा का उसी रानी पर प्रेम था। किसी समय रोग से पीड़ित होकर दैववशात् राजा की प्रिय रानी···॥ ८१ ॥

कोमलांगी वह रानी असह्य रोग के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गई। भार्या की मृत्यु को सुनकर वह राजा शोक से पीड़ित हो गया ॥ ८२ ॥

हाय, मैं मारा गया हूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे जीवित रहूँ ? अपनी प्रिय पत्नी के विना कैसे श्वास लूँ ? इस प्रकार बार-बार विलाप करने लगा ॥ ८३ ॥

समस्त राज्य का त्याग करके उस राजा ने मरने का निश्चय किया। वह चिन्ता करने लगा कि किस प्रकार मेरे प्राण इस शरीर से वियुक्त होवें ॥ ८४ ॥

हा प्रिये, हा प्रिये, इस प्रकार विलाप करता हुआ वह राजा बनों में भ्रमण करने लगा। तथा व्याकुल मन होकर एक देश से दूसरे देश को जाने लगा ॥ ८५ ॥

अनेक तीर्थों में जाकर उसने ध्यान मग्न होकर परम तपस्या का आचरण किया। इस समय भी वह मन में विचार कर रहा था कि मेरी पत्नी का मेरे साथ संयोग कैसे हो सकेगा ॥ ८६ ॥

तदनन्तर बहुत समय व्यतीत हो जाने पर दैववशात् वह राजा मुनिगणों से सुशोभित पुण्य प्रदेश हिमालय में गया ॥ ८७ ॥

ददर्श तत्र सिद्धांश्च तान्नत्वा पर्य्यपृच्छत।
अये सिद्धाः महात्मानः प्रियाविरहितो ह्यहम् ।। ८८ ।।

कथं[1] प्रिया समं संगो मे स्यात् द्रुतं दयालवः।
तया विना न जीवामि सत्यमेतन्मयोदितम् ।। ८९ ।।

तन्मध्ये कश्चिदृषिराट् प्रोवाच वचनं त्विदम्।
तत्र गच्छ तपः कर्तुं नदी च निगमालया ।। ९० ।।

तत्तीरे वसते नित्यं शिवः सोमः सुमुक्तिदः।
तदाऽराधनतो भार्यां प्राप्स्यसे त्वं न संशयः ।। ९१ ।।

राजा तद्वचनं श्रुत्वा यत्र वै निगमालया।
आययौ तत्र नृपतिश्चकार परमं तपः ।। ९२ ।।

आराधयामास शिवं भक्ताधिव्याधिनाशनम्।
ततस्तुष्टः शिवः प्रादाद्दर्शनं योगिदुर्ल्लभम् ।। ९३ ।।

वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि संस्थितम्।
इति श्रुत्वा शिववचो नृपतिर्ह्यमृतोपमम् ।। ९४ ।।

उवाच मनसोऽभीष्टं वचो जीवनहेतुकम्।
किं मे भोगैः सुखैः किं मे वाजिवारणकैश्च किम् ।। ९५ ।।

किं जनैर्मधुरैर्वाक्यैर्यदि न स्यादसुप्रिया।
प्रियायोगेन मां देव पुनरुज्जीवय प्रभो ।। ९६ ।।

मृता मे प्रेयसी भार्या तां ददस्वास्ति चेद्दया।
अन्यथाऽहं त्यजे प्राणान् तवाग्रे च दयानिधे ।। ९७ ।।

इति तद्वचनं श्रुत्वा शिवः परमविस्मितः।
मनसा चिन्तयामास किं कुर्य्यां कथमन्यथा ।। ९८ ।।

वरं यदि न दास्येऽहं मदीयाराधनं वृथा।
अयं च त्यजति प्राणान्मृतः कश्चिन्न चागतः ।। ९९ ।।

---

१. प्रियया च समं सगो मे कथ स्याद्दयालवः ।

वहाँ उसने सिद्धों को देखा । उनको प्रणाम करके वह पूछने लगा—अये, सिद्ध महात्माओ ! मैं अपनी प्रिया से रहित हो गया हूँ ॥ ८८ ॥

हे दयालुओ ! मेरा अपनी प्रिया के साथ शीघ्र समागम कैसे हो सकता है ? मैं आप से सत्य कहता हूँ कि अपनी प्रिया के विना मैं जीवित नहीं रह सकता ॥ ८९ ॥

उनमें से किसी ऋषिराज ने यह वाक्य कहा कि तुम जहाँ निगमालया नदी है, वहीं तप करने के लिए चले जाओ ॥ ९० ॥

उसके तट पर मुक्ति प्रदान करने वाले शिव उमा देवी के साथ नित्य निवास करते हैं । उनकी आराधना से तुम निःसन्देह अपनी भार्या को प्राप्त करोगे ॥ ९१ ॥

उस ऋषि के इस वाक्य को सुनकर राजा जहाँ निगमालया नदी है, वहाँ आया और उस राजा ने वहाँ परम तप का आचरण किया ॥ ९२ ॥

भक्तों की समस्त आधि तथा व्याधियों का नाश करने वाले शिव की उसने आराधना की । इससे सन्तुष्ट होकर शिव ने योगियों को दुर्लभ अपने दर्शन उस राजा को दिये ॥ ९३ ॥

और कहा कि जो आपके मन में हो उस वर को आप मांगो । आपका कल्याण हो । इस प्रकार शिव के अमृत तुल्य वचनों को सुनकर राजा ने ॥ ९४ ॥

मन में अभिलषित अपने जीवन हेतुओं के वचनों को कहा । मुझे भोग से, सुख से, घोड़ों से, हाथियों से क्या प्रयोजन है ? ॥ ९५ ॥

यदि मेरी प्राणप्रिया न हो तो मधुर वाक्य बोलने वाले लोगों से भी मुझे क्या लेना है । हे प्रभो ! देव ! प्रिया के समागम से मुझे पुनः जीवित करो ॥ ९६ ॥

यदि आप मेरे ऊपर दया करते हों तो मृत हुई उस मेरी प्रेयसी भार्या को मुझे दो । अन्यथा हे दयानिधे ! मैं आपके सामने प्राणों का त्याग करता हूँ ॥ ९७ ॥

इस प्रकार उस राजा के वचन को सुनकर शंकर भगवान् परम विस्मित हुये । वे मन में विचार करने लगे कि क्या कार्य करना चाहिये ॥ ९८ ॥

यदि मैं इसे वर न दूँ तो, मेरी आराधना करना व्यर्थ है । यह राजा प्राणों का परित्याग करने के लिए तैयार है । मृत हुआ कोई प्राणी लौटकर वापिस नहीं आता ॥ ९९ ॥

इति चिन्ताकुलो भीमः स्वमायामकरोत्तदा ।
तत्पत्नीं तादृशीं शीलरूपलक्षणवर्णकैः ॥ १०० ॥

कल्पयित्वा ददौ तस्मै वचनं च ह्युवाच ह ।
इयं तेऽस्ति न वा पत्नी वद सत्यं महीपते ॥ १०१ ॥

श्रुत्वा नृपोऽवदद्वाक्यं धन्योऽसि त्वं महेश्वर ।
इयमेव मदीया हि पत्नी पूर्वं मृता हि या ॥ १०२ ॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं त्वत्प्रसादात्सदाशिव ।
प्राप्ता मया सुतुल्या हि पत्नी प्राणप्रदायिनी ॥ १०३ ॥

तवैव सर्वदा भक्तिर्मेऽस्तु जन्मनि जन्मनि ।
अत्रैव तव वासो वै भवताद् भुक्ति[2] मुक्तिदः ॥ १०४ ॥

इत्थं वचः शिवः श्रुत्वा तथेत्यन्तर्हितोऽभवत् ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने स पृथिवीपतिः ॥ १०५ ॥

पुनस्तथैव राज्यादिभोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
विमानवरमारुह्य शिवलोकमवाप सः ॥ १०६ ॥

अस्मात्क्षेत्रात्परं क्षेत्रं नास्त्येव हि महीतले ।
यत्र देवः शिवः साक्षाद्वर्तते चोमया सह ॥ १०७ ॥

यद्दर्शनादपि नरो गतिमाप्नोति दुर्ल्लभाम् ।
अस्मिन्क्षेत्रे महाभागे शिवलिंगं महाद्भुतम् ॥ १०८ ॥

जलेश्वरमिति ख्यातं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ।
तत्रैवास्ते महादेवी जलेश्वरीति संज्ञिता ॥ १०९ ॥

दर्शनान्पूजनान्मर्त्त्यो महैश्वर्य्यमवाप्नुयात् ।
सर्वकामप्रदा देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥ ११० ॥

बलिदानेन सन्तुष्टा भवतीह न चान्यथा ।
तस्मात्तस्यै बलिर्देयो महदैश्वर्य्यमिच्छता ॥ १११ ॥

१. मुनिमुक्तिद   २. "पुनर्जात ···पृथिवीपतिः" पाठ इसमें नहीं है ।

इस प्रकार चिन्ता से व्याकुल होकर शंकर भगवान् ने अपनी माया से उस राजा की प्रेयसी पत्नी के समान शील-रूप-लक्षणों वाली···।। १०० ।।

एक पत्नी कल्पित करके उस राजा को दी और उससे ये वाक्य कहे—हे राजन् ! सत्य बताओ, यह तेरी पत्नी है अथवा नहीं ।। १०१ ।।

यह सुनकर राजा यह वाक्य बोला—हे महेश्वर ! आप धन्य हैं । यही मेरी पहले मृत हुई पत्नी है ।। १०२ ।।

हे शंकर भगवान् ! आपके प्रसाद से मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया हूँ । निश्चित ही प्राणों को प्रदान करने वाली वैसी ही पत्नी मुझे प्राप्त हो गई है ।। १०३ ।।

हमेशा जन्म-जन्मान्तर में आपके प्रति भक्ति मेरे में बनी रहे और यहाँ भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाले आपका निवास बना रहे ।। १०४ ।।

इस प्रकार के राजा के वचनों को सुनकर "ऐसा ही हो" कहकर शिव वहीं अन्तर्धान हो गये । उस राजा ने अपना पुनर्जन्म हुआ माना ।। १०५ ।।

फिर उस राजा ने यथा अभिलषित राज्य आदि भोगों का भोग करके अन्त में परम सुन्दर विमान में बैठकर शिवलोक को प्राप्त किया ।। १०६ ।।

इस क्षेत्र से बढ़कर भूमण्डल में कोई अन्य क्षेत्र नहीं है । जहाँ शंकर भगवान् साक्षात् उमा देवी के साथ विद्यमान रहते हैं ।। १०७ ।।

जिसके दर्शन मात्र से ही मनुष्य दुर्लभ गति का लाभ प्राप्त करते हैं । हे महाभागे ! इस क्षेत्र में एक महा अद्भुत शिवलिंग है ।। १०८ ।।

जो जलेश्वर शिवलिंग नाम से विख्यात है और दर्शनों से मोक्ष देने वाला है । वहीं एक देवी है, जो जलेश्वरी नाम से ख्यात है ।। १०९ ।।

उनके पूजन तथा दर्शन से मनुष्य महान् ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है । वह देवी समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाली तथा शीघ्र ही ज्ञान देने वाली है ।। ११० ।।

वह देवी बलिदान से सन्तुष्ट होती है, अन्य पूजा से नहीं । इसलिए परमैश्वर्य प्राप्ति की इच्छा वाले लोगों को चाहिए कि वे इस शक्ति को अवश्य बलि दें ।। १११ ।।

देवीस्थानादधोभागे सर्वेप्सितफलप्रदम् ।
अन्यच्च देवतापीठं जपेश्वर्याः शुचिस्मिते ॥ ११२ ॥

सकृन्नत्वापि तां देवीं देवीलोके महीयते ।
आश्विनस्य सिते पक्षे योऽर्च्चयेदम्बिकामिह ॥ ११३ ॥

कुबेर इव द्रव्याढ्यो भवत्येव न संशयः ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो भुक्त्वा भोगानशेषतः : ११४ ॥

देवीसायुज्यमाप्नोति सत्यमेतच्छिवोदितम् ।
अस्मिन् क्षेत्रे महाभागे सर्वे पुण्यतमाश्रमाः ॥ ११५ ॥

यत्र धारा अनेकाश्च सर्वास्ता गंगया समाः ।
जलानि च समस्तानि भवमुक्तिप्रदानि हि ॥ ११६ ॥

देवीपीठात्पूर्वभागे गव्यूतिद्वयमात्रके ।
तत्रैवान्यत्परं स्थानं वेणुकायाः सुमुक्तिदम् ॥ ११७ ॥

यत्र वै नहुषस्यासौ दुहिता समतप्यत ।
प्रापेप्सितं पतिं दिव्यं सुंदरांगं सुशोभनम् ॥ ११८ ॥

ततः ख्यातं तु तन्नाम्ना क्षेत्रमेतत्सुपुण्यदम् ।
यत्र पादप्रचारेण लभते चेप्सितं फलम् ॥ ११९ ॥

तत्रास्ते च नदी रम्या सर्वपापप्रणाशिनी ।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या शिव एव भवेद् ध्रुवम् ॥ १२० ॥

देव्याः पूर्वोत्तरे भागे ढुंढीश्वर इति स्मृतः ।
महागणपतिश्चैष सर्वविघ्ननिवारणः ॥ १२१ ॥

रक्षिता तस्य क्षेत्रस्य सर्वाभीष्टप्रदायकः ।
यन्नामस्मरणादेव भवेद्विघ्नविनाशनम् ॥ १२२ ॥

तस्येशानदिगंशे हि भैरवो भीषणाननः ।
यस्य स्मरणमात्रेण पलायंते महापदः ॥ १२३ ॥

देवी स्थान के नीचे के भाग में समस्त कामनाओं को देने वाली एक अन्य देवी जपेश्वरी का सिद्ध पीठ है ।। ११२ ।।

एक बार भी जो मनुष्य उस देवी को प्रणाम करता है, वह देवीलोक में जाता है । आश्विन महीने के शुक्ल पक्ष में जो यहां शक्ति अम्बिका की पूजा करता है ।। ११३ ।।

वह कुबेर के समान धनाढ्य हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है । पुत्र और पौत्रों से समन्वित होकर वह समस्त भोगों का उपभोग करता है ।। ११४ ।।

अन्त में उसे देवी का सायुज्य मिलता है । यह सत्य है, इसे शिव जी ने कहा है । हे महाभागे ! इस क्षेत्र में समस्त पुण्यतम आश्रम हैं ।। ११५ ।।

यहाँ अनेक जल धारायें गंगा की धारा के समान पवित्र हैं । वहाँ जितने भी जलस्रोत हैं, वे सब संसार से मुक्ति को दिलाने वाले हैं ।। ११६ ।।

देवी सिद्ध पीठ के पूर्वभाग में चार कोस की दूरी पर वहीं उत्तम मुक्ति को देने वाला वेणुका का एक परमोत्तम स्थान है ।। ११७ ।।

यहाँ नहुष की पुत्री ने तप किया था और अपने ईप्सित वर, सुन्दर शरीर वाले दिव्य स्वरूप सुन्दर पति को प्राप्त किया ।। ११८ ।।

तब से उसी के नाम से पुण्यों को देने वाला यह क्षेत्र विख्यात हुआ । जहाँ पैदल चलने से मनुष्य ईप्सित फल प्राप्त करता है ।। ११९ ।।

वहाँ समस्त पापों का प्रक्षालन करने वाली एक सुरम्य नदी विद्यमान है । उसमें स्नान करने से मनुष्य निश्चय से शिवत्व को प्राप्त कर लेता है ।। १२० ।।

देवी के पूर्वोत्तर (ईशान) भाग में ढुंढीश्वर नाम का समस्त विघ्नों का नाश करने वाला महागणपति स्थित है ।। १२१ ।।

वह उस क्षेत्र का रक्षक है तथा समस्त अभीष्टों को देने वाला है । जिसके केवल नाम का स्मरण करने से विघ्नों का विनाश हो जाता है ।। १२२ ।।

उसके ईशान दिशा में एक भीषणानन नाम का भैरव निवास करता है, जिसके स्मरण मात्र से बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ दूर भाग जाती हैं ।। १२३ ।।

क्षेत्रद्वाराधिपतिश्च विघ्नास्तदवहेलनात् ।
जायन्ते विधिनानर्थास्तस्मात्पूजा परो भवेत् ।। १२४ ।।

आदौ क्षेत्रप्रवेशे तु दूरतः प्रणमेत्तु तम् ।
पश्चात्क्षेत्रं विशेन्मर्त्यः स्वेष्टसिद्धिपरो यदि ।। १२५ ।।

धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः पूजयेत्क्षेत्रनायकम् ।
सकलां सिद्धिमाप्नोति तत्पूजानिरतो नरः ।। १२६ ।।

इति पुष्करशैलस्य माहात्म्यं कथितं तव ।
इदं गोप्यतमं गोप्यं शौचाचार विवर्जितः ।। १२७ ।।

शृणुयादपि यो मर्त्यो माहात्म्यं हिमवद्गिरेः ।
ख्यातं पुष्करशैलस्य सोऽपि याति परं पदम् ।। १२८ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नानातीर्थमाहात्म्ये पुष्कर
पर्वतमाहात्म्यं नामाशीतितमोऽध्यायः ।।

एकाशीतितमोऽध्यायः

गोविन्दतीर्थवीरेशानीनन्दाभगवतीगङ्गावर्णनपुरस्सरं कपिलेश्वर-योगीश्वरकर्णप्रयागपाण्डवीयमहाक्षेत्रादीनां वर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

ब्रह्मपुत्रतपःस्थानादाग्नेयाश्रितभागके ।
स्थानं परमरम्यं हि शिवलोकप्रदायकम् ।। १ ।।

सेवितं सिद्धमुनिभिर्वेदघोषनिनादितम् ।
तत्र गोविन्दतीर्थं तु यत्र भानुर्महानदी ।। २ ।।

पिंडारकां तु सम्प्राप्ता तत्तीर्थं शिवदायकम् ।
वीरेशानी तथा देवी सद्यः प्रत्ययकारिका ।। ३ ।।

यह भैरव क्षेत्र के द्वार का अधिपति है। उनकी अवहेलना करने से अनेक विघ्न होते हैं और अनेक अनर्थ होते हैं। अतः उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिये ।। १२४ ।।

पहले क्षेत्र में प्रवेश के समय दूर से ही उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर मनुष्य अपनी इष्ट सिद्धियों को मन में धारण करके तीर्थ में प्रवेश करे ।। १२५ ।।

धूप-दीप तथा सुन्दर नैवेद्य से क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिये। भैरव पूजा में निरत मनुष्य समस्त इष्ट-सिद्धियों को प्राप्त करता है ।। १२६ ।।

इस प्रकार पुष्कर पर्वत के माहात्म्य को आप से कहा है। यह स्थान अत्यन्त गोपनीय है। पवित्र आचार से रहित ।। १२७ ।।

भी जो मनुष्य हिमालय में स्थित पुष्कर पर्वत के माहात्म्य को सुनता है, वह भी परम पद को पाता है ।। १२८ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्द पुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नानातीर्थ माहात्म्य में पुष्कर पर्वत माहात्म्य नाम का अस्सीवां अध्याय पूरा हुआ ।।

इकासी अध्याय

गोविन्दतीर्थ, वीरेशानी, नन्दा और भगवती गङ्गा का वर्णन, कपिलेश्वर, योगेश्वर, कर्णप्रयाग, पाण्डवीय महाक्षेत्र आदि का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा—

ब्रह्मपुत्र के तपस्या-स्थल से आग्नेय दिशा की ओर एक शिवलोक को प्रदान करने वाला सुरम्य स्थान है ।। १ ।।

वह स्थान सिद्धों तथा मुनियों द्वारा सेवित है। वहाँ वेद-ध्वनि होती है। वहाँ गोविन्द तीर्थ है और भानु नाम की महानदी है ।। २ ।।

वह भानु नदी पिंडारका में मिलती है। वह तीर्थ शिवलोक को देने वाला है। वहाँ शीघ्र ही ज्ञान को देने वाली वीरेशानी नाम की देवी निवास करती है ।। ३ ।।

यस्तत्र व्याधितो मूढो दरिद्रो देवतागृहे ।
इमं मंत्रं समुच्चार्य देवीशरणमागतः ।
तस्य स्यात्सकलाभीष्टसिद्धिर्निश्चयतः प्रिये ॥ ४ ॥

नमो नमस्ते देवेशि सर्वदुःखविनाशिनि ।
विनाशय महादुःखं कृपया भक्तवत्सले ॥ ५ ॥

तत ईशानकोणे वै विनतेश्वरनामकः ।
शिवो नित्यं महाभागे वर्त्तते भक्तवत्सलः ॥ ६ ॥

अस्मिन्नपि महाक्षेत्रे त्रीणि लक्षाणि रक्षसाम् ।
स्वर्गं गतानि वामांगि दिव्यदेहानि निश्चयात् ॥ ७ ॥

इति ते कथितं क्षेत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
तत एवेशदिक्कोणे क्षेत्रं त्रैलोक्यमंगलम् ॥ ८ ॥

नाम्ना विश्वमिति ख्यातं शिवलिंगं विराजितम् ।
नातातीर्थसमायुक्तं नानामुनिजनान्वितम् ॥ ९ ॥

तत्र विश्वेश्वरो देवो लिंगरूपी सदाशिवः ।
तद्दर्शनान्महाभागे कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ १० ॥

तत्रैव शिवकुंडं तु शिवभक्तिप्रदायकम् ।
दिनानां पञ्चकं तत्र स्नात्वा शिवपरायणः ॥ ११ ॥

कौतुकं पश्यते तत्र दिव्यं वापि सुदुर्ल्लभम् ।
शिवलोकं समाप्नोति सत्यमेव न संशयः ॥ १२ ॥

गणकुंडं ततः ख्यातं सौम्ये सौम्येश्वरः शिवः ।
पुत्रकामफलनिधिः सर्वकामफलप्रदः ॥ १३ ॥

रम्भाकुंडं ततः ख्यातं सर्वैश्वर्य्यप्रदायकम् ।
यत्र रम्भा महादेवमाराधितवती पुरा ॥ १४ ॥

देवता के इस मन्दिर में जो वहाँ रोगी, मूर्ख अथवा दरिद्र इस मन्त्र का उच्चारण करके देवी के शरण में आता है, हे प्रिये ! उसको समस्त अभीष्ट सिद्धियाँ निश्चित प्राप्त हो जाती हैं ॥ ४ ॥

समस्त दुःखों का नाश करने वाली हे देवेशि ! आपको बार-बार नमस्कार है। हे भक्तवत्सले ! कृपा करके आप महादुःखों को नाश करो ॥ ५ ॥

हे महाभागे ! उससे ईशान कोण में विनतेश्वर नाम के भक्तवत्सल शिव नित्य विद्यमान रहते हैं ॥ ६ ॥

इसी महाक्षेत्र में तीन लाख राक्षस दिव्यदेह को धारण करके, हे वामाँगि ! निश्चय ही स्वर्ग को गये थे ॥ ७ ॥

इस प्रकार आपसे मैंने उस क्षेत्र का वर्णन किया जो शीघ्र ज्ञान को देने वाला है। उसी से ईशान कोण में तीनों लोकों में मंगल देने वाला एक क्षेत्र है ॥ ८ ॥

वह क्षेत्र विश्वक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध है और शिवलिंगों से वह शोभित है। अनेक तीर्थ उसमें विद्यमान हैं, तथा अनेक मुनिजनों से वह भरा है ॥ ९ ॥

वहाँ विश्वेश्वर नाम से लिंगरूप में देव शंकर भगवान् निवास करते हैं। हे महाभागे ! उनके दर्शनों से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥ १० ॥

वहीं एक शिवकुण्ड है, जो शिवभक्ति को प्रदान करता है। इस शिवकुण्ड में जो शिव में मन लगाकर पाँच दिन तक ध्यान करता है ॥ ११ ॥

वह वहाँ परम दुर्लभ दिव्य कौतुक का अवलोकन करता है। तदनन्तर वह शिवलोक को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥

हे सौम्ये ! एक गणकुण्ड है। वहाँ सौम्येश्वर नाम के शिव स्थित रहते हैं। वह शिव पुत्ररूप फल को देने वाले तथा अन्य समस्त मनोवांछित कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥ १३ ॥

वहीं एक रम्भाकुण्ड विख्यात है, जो समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला है। यहाँ रम्भा ने पहले महादेव की आराधना की थी ॥ १४ ॥

अस्मिन् द्वादशलक्षाणि मुक्तिं प्राप्तानि रक्षसाम् ।
अन्यतीर्थं शृणु प्राज्ञे दशमौलितपःस्थलम् ।। १५ ।।

दशमौलिः पुरा तत्र तपस्तेपे महात्मवान् ।
दशवर्षसहस्राणि त्यक्ताहारविहारकः ।। १६ ।।

परिपूर्त्तिर्यदा याति शिरो वर्षसहस्रकम् ।
छित्वार्प्यपति भक्त्या वै शिवायामिततेजसे ।। १७ ।।

एवं नवसहस्राणि वर्षाणां प्रवरानने ।
व्यतीयुर्धर्मशीलस्य शिवसंन्यस्तकर्मणः ।। १८ ।।

ततो दशमसाहस्रे शिरोऽर्पयति रावणे ।
शिवः प्रत्यक्षतस्तस्य जगाद मधुरं वचः ।। १९ ।।

वरं वृणीश्व भद्रं ते धन्यस्त्वमसि रावण ।
यतस्त्वया महाभाग मौलिनां दशकं प्रियम् ।। २० ।।

अर्पितं च तपस्तप्तं तीव्रं त्रैलोक्यतापनम् ।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये देवो वा मानुषोऽपि वा ।। २१ ।।

रावण उवाच—

धन्योऽस्मि देवदेवेश कृपया ते महेश्वर ।
अद्य मे सफलं जन्म सफलं मे तपः परम् ।। २२ ।।

भक्तानुकंपी भगवान् यन्मे प्रत्यक्षमागतः ।
वरत्रयमहं याचे वरार्हो यद्यहं शिव ।। २३ ।।

इदं स्थानं परं पुण्यं न त्याज्यं भवता शिव ।
धन्यो भवतु लोकेषु य इदं क्षेत्रमुत्तमम् ।। २४ ।।

सेविष्यति च विश्वात्मा स्वहितं प्राप्नुयात्परम् ।
अजेयत्वं तथा सर्वैः सदेवासुरयक्षकैः ।। २५ ।।

इस तीर्थ में बारह लाख ब्रह्मराक्षसों ने मुक्ति प्राप्त की थी। हे प्राज्ञे ! अब एक अन्य तीर्थ दशमौलि (रावण) के तपस्या स्थल का वर्णन सुनो ।। १५ ।।

वहाँ पहले महात्मा दशमौलि ने आहार-विहार का परित्याग करके दस हजार वर्षों तक तपस्या की थी ।। १६ ।।

एक हजार वर्ष की तपस्या पूरी हो जाने पर उस रावण ने अपने सिर को काटकर अमित तेजस्वी शिव जी को भक्तिपूर्वक अर्पित किया था ।। १७ ।।

हे सुन्दर मुख वाली ! इस प्रकार शिव के प्रति सब कर्मों को समर्पित करके उस धर्मशील रावण के नौ हजार वर्ष बीत गये ।। १८ ।।

तदनन्तर दस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर जब रावण अपना दसवां सिर शंकर को अर्पित करने के लिये उद्यत हुआ, तब शंकर भगवान् ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर मधुर वचन कहे ।। १९ ।।

हे रावण ! तुम धन्य हो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर माँगो। हे महा-भाग ! क्योंकि तुमने अपने प्रिय दस मस्तकों को ।। २० ।।

मेरे लिये अर्पित किया है। तुमने तीनों लोकों को अपने उग्र तप से सन्तप्त कर दिया है। तीनों लोकों में तुम्हारे समान न कोई देवता और न मनुष्य है ।। २१ ।।

रावण ने कहा—

हे महेश्वर ! देवदेवेश ! आपकी कृपा से मैं धन्य हो गया हूँ। आज मेरा जन्म सफल हो गया है तथा मेरी तपस्या भी सफल हो गई है ।। २२ ।।

हे भगवन् ! क्योंकि भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले आपने मुझे दर्शन दिया है। हे शिव ! यदि मैं वर प्राप्ति के योग्य हूँ तो मैं तीन वर माँगना चाहता हूँ ।। २३ ।।

इस परम पुण्य स्थान को आप कभी न छोड़ें तथा यह उत्तम क्षेत्र तीनों लोकों में धन्य हो ।। २४ ।।

और जो इस स्थान में विश्व की आत्मा परमात्मा की सेवा करे, उन्हें परमपद का लाभ हो। समस्त देवता, असुर और यक्ष कोई मुझ पर विजय प्राप्त न कर सके ।। २५ ।।

अन्यैश्च प्राणिभिर्देव विना मनुजवानरैः।
सर्वज्ञत्वं च विद्यानामेतत्त्रयमुमापते ॥ २६ ॥

वसिष्ठ उवाच—

तथेत्युक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तर्दधे ततः।
सोऽपि रावणको नाम दशमौलिः प्रतापवान् ॥ २७ ॥

ययौ पुरवरे स्वीये प्रसन्नोऽसुरसंवृतः।
इदं क्षेत्रं ततो जातं महादेवाश्रितं प्रिये ॥ २८ ॥

नंदादेवी परं गोप्या तत्रैवास्ति सुरार्चिता।
सर्वकामप्रदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥ २९ ॥

सौदामिनीदक्षतीरे सुकामेश्वरसंज्ञकः।
शिवस्तद्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

नंदाया उत्तरे शैले गणेशो देवपूजितः।
त्रिरात्रं यः परं मंत्रं गणेशस्य जपेन्नरः ॥ ३१ ॥

परं धाम समाप्नोति न विघ्नं जायते क्वचित्।
नंदगंगासुमाहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो नरः ॥ ३२ ॥

परं यथामति परमुच्यते ह्यवधारय।
दर्शनात्सर्वपापानि नश्यन्ते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

स्नानात्सर्वमवाप्नोति यद्यदिच्छति मानवः।
दुरुक्तं च तथा देवि दुर्भुक्तं जलपानतः।
नश्यते क्षिप्रमेवेह परत्र च परा गतिः ॥ ३४ ॥

पितॄन्सन्तर्प्पयेद्यस्तु पितरो मुक्तिमाप्नुयुः।
अपात्रायापि यद्दत्तं जलेनास्याः समन्वितम्।
अक्षयं तद्भवेद्देवि सत्यमेव न संशयः ॥ ३५ ॥

हे देव ! मनुष्य और वानरों को छोड़ अन्य प्राणी भी मुझ पर विजय न पा सकें। सभी विद्याओं को मैं जान लूं। इन्हीं तीन वरों की मैं याचना करता हूँ ॥२६॥

बसिष्ठ ने कहा—

"ऐसा ही हो" यह कहकर महादेव वहीं अन्तर्धान हो गये। उसके बाद दस सिरों वाला प्रतापी वह रावण भी ॥ २७ ॥

असुरों से घिरा हुआ प्रसन्न हो अपने उत्तम नगर को चला गया। हे प्रिये! यह क्षेत्र उसी दिन से महादेव जी का निवास स्थान बना ॥ २८ ॥

वहीं एक परम गोपनीय देवताओं द्वारा अभिवन्दित नन्दा नाम की देवी हैं। नित्य वह समस्त कामनाओं को देने वाली तथा समस्त कामनाओं को फलीभूत करने वाली हैं ॥ २६ ॥

सौदामिनी नदी के दक्षिण तट पर सुकामेश्वर नाम का शिवलिंग है जिसके दर्शन करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है ॥ ३० ॥

नन्दा देवी के उत्तर भाग में पर्वत पर देवताओं द्वारा पूजित गणेश निवास करते हैं। जो मनुष्य तीन रात्रि तक उस स्थान में गणेश का मन्त्र जपता है ॥ ३१ ॥

वह परम धाम को प्राप्त करता है। उसके कार्य में कोई विघ्न नहीं होते। नन्दगंगा के सुमाहात्म्य को वर्णित करने के लिये कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है।३२।

तथापि हम अपनी मति के अनुसार उसे कहते हैं, आप सुनिये। उसके दर्शनों से समस्त पाप राशियाँ विनष्ट हो जाती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥

इसमें स्नान करने से मनुष्य जो कुछ चाहता है, वही प्राप्त कर लेता है। हे देवि ! दुष्ट वचनों एवं दुष्ट भोजन से उत्पन्न पाप इस नन्दगंगा के जलपान से शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के बाद परम गति मिलती है ॥ ३४ ॥

जो यहाँ पितरों का तर्पण करता है उसके पितर-मोक्ष के भागी हो जाते हैं। इस नंदगंगा के जल से मिश्रित करके जो वस्तु किसी अपात्र को भी दी जाती है, वह, हे देवि ! अक्षय पुण्य के फल को देने वाली होती है। यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥

इत्युद्देशेन संप्रोक्तं माहात्म्यं तव सुन्दरि।
दशमौलितपःक्षेत्रवैभवं तव कीर्त्तितम् ॥ ३६ ॥

अस्मिन्नेव परे स्थाने संख्यया नवलक्षकाः।
प्रभावाद्देवदेवस्य निर्मुक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३७ ॥

तथा च नवलक्षं तु रथप्रायामरुन्धति।
बहूनि तत्र तीर्थानि स्वर्गमोक्षप्रदानि च ॥ ३८ ॥

तथा कपिलकं तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
कपिलेश्वरो महेशोऽत्र सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ३९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता स्मृतिमात्रतः।
तथा योगेश्वरं लिंगं महापातकनाशनम् ॥ ४० ॥

तत्तीर्थं परमं ख्यातं सर्वत्र भुवि दुर्ल्लभम्।
नियुतानां त्रयं तत्र निर्मुक्तं ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ४१ ॥

तथा वागीश्वरं लिंगं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
सरस्वत्या पुरा यत्राराधितो भगवाञ्छिवः ॥ ४२ ॥

अनन्तान्यत्र तीर्थानि सर्वकामप्रदानि च।
चतुर्लक्षं तत्र मुक्तं यत्र योगिगणो बहुः ॥ ४३ ॥

अन्यद् ब्रह्मसरो नाम तीर्थं सर्वत्र दुर्ल्लभम्।
तत्र ब्रह्मेश्वरो नाम शिवोऽस्ति परपुण्यदः ॥ ४४ ॥

तद्दर्शनान्नरो याति शिवतां योगिदुर्ल्लभाम्।
तत्र वै पञ्चलक्षाणि निर्मुक्तानि तु रक्षसाम् ॥ ४५ ॥

अन्यच्च तव वक्ष्येऽहं तीर्थं परमदुर्ल्लभम्।
यत्र कर्णः पुरा तन्वि तपस्तेपे यतात्मवान् ॥ ४६ ॥

तत्रासंस्त्रीणि लक्षाणि मुक्तानि ब्रह्मरक्षसाम्।
क्षेत्रं तच्छृणु कैलासे निकटे नंदपर्वतात् ॥ ४७ ॥

इस उद्देश्य से हे सुन्दरि ! इस माहात्म्य का वर्णन आपसे किया गया। रावण के तपस्यास्थल के वैभव का वर्णन मैंने आपसे किया ॥ ३६ ॥

इसी परम स्थान में महादेव जी के प्रभाव से नौ लाख ब्रह्मराक्षस मुक्ति को प्राप्त हुये थे ॥ ३७ ॥

और नौ लाख ब्रह्मराक्षस रथप्रा नामक स्थान में मुक्ति को प्राप्त हुये थे। हे अरुन्धति ! वहाँ अनेक तीर्थ विद्यमान हैं, जो स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले हैं ॥ ३८ ॥

वहाँ कपिल नाम का तीर्थ समस्त तीर्थों में उत्तम है। समस्त देवताओं द्वारा पूजित कपिलेश्वर महादेव यहाँ विराजमान हैं ॥ ३६ ॥

वह कपिलेश्वर केवल स्मरण मात्र से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चतुर्वर्ग के फलों को प्रदान करते हैं। वहाँ योगेश्वर नाम का शिवलिंग है, जो महापातकों का नाश करने वाला है ॥ ४० ॥

परम विख्यात वह तीर्थ समस्त भूमि में दुर्लभ है। इस स्थान में दस लाख ब्रह्मराक्षस राक्षस योनि से मुक्त हुये हैं ॥ ४१ ॥

शीघ्र ज्ञान को देने वाला वहाँ वागीश्वर लिंग है, जहाँ सरस्वती ने पहले भगवान् शिव की आराधना की थी ॥ ४२ ॥

यहाँ समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले असंख्य तीर्थ हैं, जहाँ बहुसंख्यक योगी निवास करते हैं। वहाँ भी चार लाख ब्रह्मराक्षसों ने मुक्ति प्राप्त की थी ॥ ४३ ॥

अन्य एक ब्रह्मसर नामक परम दुर्ल्लभ तीर्थ है। वहाँ परम पुण्य को देने वाला ब्रह्मेश्वर नाम का शिवलिंग है ॥ ४४ ॥

उसके दर्शन से योगियों को भी दुर्ल्लभ शिवत्त्व की प्राप्ति होती है। वहाँ भी पाँच लाख ब्रह्मराक्षस मुक्ति को प्राप्त हुये थे ॥ ४५ ॥

हे तन्वि ! आपसे मैं एक अन्य परम दुर्ल्लभ तीर्थ का वर्णन करता हूँ, जहाँ पहले संयमी कर्ण ने तपस्या की थी ॥ ४६ ।

उस स्थान में तीन लाख ब्रह्मराक्षसों को मुक्ति मिली थी। नन्दपर्वत से चलकर कैलास के निकट एक क्षेत्र है उसे सुनो ॥ ४७ ॥

गंगापिंडारकासंगे शिवक्षेत्रे सुरालये।
कर्णो नाम महाराजो महादीक्षां समाश्रितः॥ ४८॥

तप्त्वा जप्त्वा परं देवं देवीभवनमाश्रितः।
अहं च वामदेवश्च व्यासदेवस्तथा शुकः॥ ४९॥

पैलो वैशम्पायनश्च नारदस्तुंबुरुर्भृगुः।
अश्वत्थामा सुदेवश्च रंतिदेवो महाहनुः॥ ५०॥

कश्यपश्च तथानन्दो गालवो दलभक्षकः।
पर्णाशनो महानादः कुम्भधान्यस्तपोनिधिः॥ ५१॥

शुनःशेफो भरद्वाजो गौतमो गणरात्रिपः।
एते चान्ये च बहवो मुनयो ब्रह्मवादिनः॥ ५२॥

कर्णयज्ञे समायाताः शतशो वरवर्णिनि।
सूर्यमाराधयामास यज्वा यज्ञे स भूमिपः॥ ५३॥

ततः कतिपयाहैस्तु वरं प्रादान्महात्मने।
कवचं च तथाऽभेद्यं तूणीरं च तथाक्षयम्॥ ५४॥

अजेयत्वं महावीरैः क्षेत्रनाम तथा ददौ।
कर्णप्रयागनाम्ना वै क्षेत्रं तदवधि स्मृतम्॥ ५५॥

प्रशशंसुस्तथा सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः।
स्थितिमत्र तथा चक्रुः स्वस्य स्वस्य वरानने॥ ५६॥

तत्तन्नामभिरत्रापि कुंडान्यासन्महांति च।
तत्र तत्र नरः स्नात्वा सूर्य्यलोके महीयते॥ ५७॥

सूर्यकुंडं च तत्रास्ति चतुर्वर्गफलप्रदम्।
उमानाम्नी तथा देवी तत्रैवास्ति महेश्वरी॥ ५८॥

बलिदानादिभिर्यो वै पूजयेत्तां सुरार्चिताम्।
प्रयच्छति वरान् कामानन्ते स्वपुरवासिताम्॥ ५९॥

गंगा और पिडर नदी के संगम पर देवताओं के स्थान शिव के क्षेत्र में कर्ण नाम के महाराजा ने महादीक्षा ली थी ।। ४८ ।।

देवी-मन्दिर में आश्रय लेकर उन्होंने परम देव शिव का जप तथा तप किया । मैं (वसिष्ठ), वामदेव, व्यासदेव, शुकदेव ।। ४९ ।।

पैल, वैशम्पायन, नारद, तुम्बरु, भृगु, अश्वत्थामा, सुदेव, रन्तिदेव, महाहनु ।। ५० ।।

कश्यप, आनन्द, गालव, दलभक्षक, पर्णाशन, महानाद, कुम्भधान्य, तपोनिधि ।। ५१ ।।

शुनःशेफ, भारद्वाज, गौतम, गणरात्रिप, और अन्य बहुत से ब्रह्मवादी मुनि ।। ५२ ।।

हे वरवर्णिनि ! सैंकड़ों उस कर्ण के यज्ञ में आये । उस यज्ञ में हवन करके उस राजा ने सूर्य की आराधना की ।। ५३ ।।

तदनन्तर कुछ दिन बाद उस महात्मा के लिये सूर्य भगवान् ने अभेद्य कवच तथा अक्षय तूणीर देकर वर प्रदान किया कि ।। ५४ ।।

वीरों के द्वारा तुम अजेय होओगे । भगवान सूर्य ने उस क्षेत्र का नाम भी उन्हीं के नाम से रखा । अतः उस दिन से उस क्षेत्र का नाम कर्णप्रयाग हो गया ।। ५५ ।।

समस्त ब्रह्मवेत्ता मुनियों ने उस क्षेत्र की प्रशंसा की । हे वरानने ! अपनी-अपनी स्थिति सबने उस क्षेत्र में की ।। ५६ ।।

उन मुनियों के नामों से वहाँ अनेक बढ़े-बड़े कुण्ड हैं, जिनमें स्नान करने से मनुष्य सूर्यलोक को जाता है ।। ५७ ।।

वहाँ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को देने वाला एक सूर्यकुण्ड हैं । वहीं एक उमा नाम की महेश्वरी भी निवास करती है ।। ५८ ।।

जो देवताओं द्वारा पूजित इस देवी की बलिदान आदि से पूजा करता है, उसको वह अनेक कामनाओं के पूर्ण होने का वर देती है तथा अपने पुर में निवास देती है ।। ५९ ।।

उमेश्वरो महादेवः सर्वयज्ञफलप्रदः ।
शिव[1] आराधितो देवि कर्णेन सुमहात्मना ।। ६० ।।

तत्कर्णेश्वरतां प्राप्तः शतयज्ञफलप्रदः ।
वैनायकी शिला तत्र रक्तवर्णा विचित्रिता ।। ६१ ।।

तां स्पृष्ट्वा च परिक्रम्य विघ्नानां नाशनं भवेत् ।
इति पुण्यतमं स्थानं सर्वकामदमुत्तमम् ।। ६२ ।।
अत्र यो मृतिमाप्नोति कल्पैश्शिवपुरे वसेत् ।। ६३ ।।

कर्णप्रयागे यो मर्त्यो माषमात्रं सुवर्णकम् ।
विप्राय वेदविदुषे ददाति स्वर्गभाग्भवेत् ।। ६४ ।।

ततः शृणु परं क्षेत्रं पांडवीयं महार्तिहृत् ।
पांडवा यत्र दुःखस्य नाशाय वरवर्णिनि ।
शिवमाराधयामासुर्भक्तिमन्तो महाव्रताः ।। ६५ ।।

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्तपोभिः स्तोत्रपाठकैः ।
सन्तुष्टश्च शिवः प्रादाद् दुःखहंत्रीं महाबलाम् ।। ६६ ।।

इदं च क्षेत्रकं पुण्यं महापुण्यतमं मतम् ।
लक्षगोदानफलदो महेशः पांडवेश्वरः ।। ६७ ।।

तत्र धनञ्जयो नाम नागः परमसुन्दरः ।
स्वर्णवर्णो रत्नयुक्तो नित्यं वसति सर्प्पपः ।। ६८ ।।

तत्र रत्नभवं लिंगं स्वर्णयोनिसुवेष्टितम् ।
तस्य वै दक्षिणे पार्श्वे गुह्यस्थानं वदामि ते ।। ६९ ।।

न वदेद्यस्य कस्यापि वेदनिन्दारताय च ।
पंचविंशतिमानेन दयिते करसम्मिते ।। ७० ।।

रत्नानां निकरस्तत्र महाभाग्यवतागमः ।
लक्षमेकं तत्र गतं स्वर्गे वै ब्रह्मरक्षसाम् ।। ७१ ।।

---

१. शिवः ·· फलप्रदः'' पाठ इसमें नहीं है ।

उस स्थान में उमेश्वर नाम के महादेव समस्त यज्ञों के फल को प्रदान करने वाले हैं। हे देवि ! यहाँ श्रेष्ठ महात्मा कर्ण ने शिव की आराधना की थी ॥ ६० ॥

इससे वे शिव कर्णेश्वर कहलाये, जो सौ यज्ञों का फल देने वाले हैं। वहाँ एक लाल रंग की अतिविचित्र वैनायकी शिला विद्यमान है ॥ ६१ ॥

उसके स्पर्श करने से तथा परिक्रमा करने से समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है। इस प्रकार पुण्यतम यह स्थान समस्त उत्तम कामों को देने वाला है ॥ ६२ ॥

यहाँ जो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, वह एक कल्प पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है ॥ ६३ ॥

कर्णप्रयाग तीर्थ में जो मनुष्य माशा भर सोने को वेदविद् ब्राह्मण को दान करता है, वह स्वर्ग का भागी होता है ॥ ६४ ॥

इसके बाद आप परम पवित्र, कष्टों को नष्ट करने वाले पांडवीय महाक्षेत्र का वर्णन सुनो। हे सुन्दरि ! महान् व्रत धारण करने वाले पांडवों ने दुःख के विनाश के लिए यहाँ भक्ति युक्त होकर शिव की आराधना की थी ॥ ६५ ॥

धूप, दीप, नैवेद्य, तप और स्तोत्र पाठ से सन्तुष्ट होकर शिवजी ने पांडवों के दुःखों का नाश करने वाली महाबला विद्या को प्रदान किया था ॥ ६६ ॥

यह क्षेत्र पवित्र है और पवित्रतम है। यहाँ एक लाख गायों के दान का फल देने वाले महादेव पांडवेश्वर नाम से निवास करते हैं ॥ ६७ ॥

वहाँ धनञ्जय नाम का नाग परमसुन्दर सर्पों का राजा नित्य बसता है। वह रत्नों से जटित है और सुवर्ण के समान उसका स्वरूप है ॥ ६८ ॥

वहाँ सुवर्णयोनि से परिवृत एक रत्नमय लिंग है। उसके दक्षिण भाग में एक गोपनीय स्थान है। उसे में आपसे कहता हूँ ॥ ६९ ॥

हर किसी से तथा वेदों की निन्दा करने वालों से इसे नहीं कहना चाहिये। हे प्रिये ! यहाँ पच्चीस हाथ प्रमाण के स्थान में··· ॥ ७० ॥

रत्नों के समुदाय विद्यमान हैं। वहाँ भाग्यशाली लोग जा सकते हैं। एक लाख ब्रह्मराक्षसों को उस स्थान से स्वर्ग में वास मिला ॥ ७१ ॥

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि तीर्थं सर्वसुदुर्लभम्।
मेनकाक्षेत्रमाख्यातं शिवो नित्यं समाश्रितः॥ ७२॥

पुरा मेनकया यत्र पूजितो भक्तितः प्रिये।
ददौ तस्यै महादेवो रूपैश्वर्य्यं महत्तरम्॥ ७३॥

मेनकेश्वरनामा च स्थितस्तत्र स्वयं प्रभुः।
हरिणी च नदी ख्याता सर्वपापविमोचनी :। ७४॥

अन्यच्च शिवलिंगं तु पुलहेश्वरनामकम्।
दृष्ट्वा च तं महाघोराद्दुःखान्मुच्येत तत्क्षणात्॥ ७५॥

तत्र ब्रह्मशिला पुण्या दर्शनात्पापनाशिनी।
तत्र लक्षं तथा देवि निर्मुक्तं ब्रह्मरक्षसाम्॥ ७६॥

अथान्यदपि कैलासे प्रवक्ष्यामि समासतः।
मणिभद्रपुरं दिव्यं सेवितं यक्षकिन्नरैः॥ ७७॥

यत्र यक्षेश्वरो देवो वर्त्तते भक्तवत्सलः।
यक्षकुंडं च तत्रापि शिवलोकप्रदायकम्॥ ७८॥

तत्र दिव्या मणिमती नदी परमपुण्यदा।
भौमेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः॥ ७९॥

तत्र यो वै त्रिरात्रं तु निराहारो जितेन्द्रियः।
संस्थितः स हि रम्भोरु यक्षं पश्यति तत्र हि॥ ८०॥

यद्यद्याचयते सोऽत्र तत्तत्प्राप्नोति निश्चितम्।
तत्र दिव्यसरो नाम नानाकुमुदमंडितम्।
तत्र देवेश्वरो नाम महादेवोऽस्त्यरुन्धति॥ ८१॥

तत्र कुञ्जलिका वृक्षो वर्त्तते पुण्यमण्डितः।
एतच्चिह्नं [1]समालक्ष्य ज्ञेयं तत्क्षेत्रमुत्तमम्॥ ८२॥

---

१. चित्रं।

सब तीर्थों में दुर्ल्लभ एक अन्य तीर्थ का मैं तुम से वर्णन करूँगा। नित्य शिव जी का निवास स्थान वह मेनका क्षेत्र नाम से विख्यात है ॥ ७२ ॥

हे प्रिये ! पहले मेनका अप्सरा ने यहाँ भगवान् शंकर की भक्तिपूर्वक पूजा की थी। उसके लिए महादेव ने परमोत्कृष्ट रूप एवं ऐश्वर्य को प्रदान किया था ॥ ७३ ॥

स्वयं भगयान शंकर वहाँ मेनकेश्वर नाम से स्थित रहते हैं। वहीं एक हरिणी नाभ की नदी है, जो समस्त पापों का नाश करने वाली है ॥ ७४ ॥

एक अन्य शिवलिंग वहां पुलहेश्वर नाम से प्रसिद्ध है, उसके दर्शनों से उसी क्षण परम कठिन दुःखों का नाश होता है ॥ ७५ ॥

वहाँ एक ब्रह्मशिला परम पुण्य को देने वाली विद्यमान है। दर्शनों से वह समस्त पापों का नाश करने वाली है। हे देवि ! वहाँ एक लाख ब्रह्मराक्षसों को मुक्ति मिली थी ॥ ७६ ॥

अब मैं कैलास में स्थित अन्य तीर्थों का संक्षेप में वर्णन करूँगा। एक परम सुन्दर मणिभद्र नामक नगर है, जो यक्षों तथा किन्नरों द्वारा सेवित है ॥ ७७ ॥

जहाँ यक्षेश्वर नाम से भक्तवत्सल शिव विद्यगान रहते हैं। यहाँ यक्षकुण्ड शिवलोक को प्रदान करने वाला है ॥ ७८ ।:

वहाँ सुरम्य परम पवित्र पुण्यों को देने वाली मणिमती नाम की नदी है। भौमेश्वर नाम के महादेव वहाँ समस्त कामों को फलीभूत करने वाले हैं ॥ ७९ ॥

हे रम्भोरु ! वहाँ जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर निराहार रहकर तीन रात्रि तक स्थित रहता है, वह व्यक्ति वहाँ यक्ष को देखता है ॥ ८० ॥

उस यक्ष से वह जो-जो वस्तु माँगता है, वह उससे उन वस्तुओं को निश्चित प्राप्त करता है। वहाँ अनेक कुमुदों से सुसज्जित एक दिव्यसर नाम का तालाब है। हे अरुन्धति ! वहाँ देवेश्वर नाम के महादेव निवास करते हैं ॥ ८१ ॥

वहाँ एक फूलों से सुशोभित कुञ्जलिका पेड़ है। इन लक्षणों को देखकर उस उत्तम क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है ॥ ८२ ॥

स्वर्णाकारं तत्र वामे तत्र स्वर्णेश्वरः शिवः ।
तमाराध्य महादेवं लभते तन्न संशयः ।। ८३ ।।

लक्षाणि त्रीणि चाप्यत्र निर्मुक्तानि कुयोनितः ।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि क्षेत्रराजं वरानने ।। ८४ ।।

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
यत्रेन्द्रः कालरूपेण भैरवेण वरानने ।। ८५ ।।

स्तम्भितः सहसा क्रोधान्महादेवात्मना विभुः ।
गतमानो महेन्द्रस्तु तुष्टाव वृषभध्वजम् ।। ८६ ।।

प्रसन्नश्च ददौ मुक्ति महेन्द्राय शुभानने ।
तस्मात्तत्र च विख्यात इन्द्रेशश्च सदाशिवः ।। ८७ ।।

निर्मितं च सदा तत्र सरः परमसुन्दरम् ।
महत्पुण्यतमं जातं महादेवेन भाषितम् ।। ८८ ।।

तत्र ये स्नानकर्त्तार इन्द्रलोकं सदाप्नुयुः ।
त एव धन्याः पुरुषा येऽत्र तीर्थे समागताः ।। ८९ ।।

तेषां च दर्शनात्सद्यः पूतात्मा जायते नरः ।
तत्र कालेश्वरो भर्गश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ।। ९० ।।

त्रिशूली च कराली च धन्यदर्शनदायकः ।
तत्रापि त्रीणि लक्षाणि निर्मुक्तानी कुयोनितः ।। ९१ ।।

अथाऽन्यदपि भीमस्य तथा हनुमतः स्थलम् ।
यत्र भीमः पुरा पांडुसुतो वायुसमुद्भवः ।। ९२ ।।

संगतो वै हनुमता तत्क्षेत्रं परमं मतम् ।
तत्र भीमशिला नाम स्पर्शनात्पापनाशिनी ।। ९३ ।।

समीपं च ततो देवि शिला हनुमतः स्थिता ।
योजनत्रयविस्तीर्णा महाभाग्येन दृश्यते ।। ९४ ।।

वहां वाम भाग में सुवर्ण की आकृति का स्वर्णेश्वर शिवलिंग है। उस महादेव को पूजने से निःसन्देह शिव के सायुज्य की प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥

कुयोनि में पड़े तीन लाख राक्षसों को इस स्थान में मुक्ति मिली थी। हे वरानने ! अब अन्य एक क्षेत्रराज का वर्णन करता हूँ ॥ ८४ ॥

समस्त तीर्थों में उत्तम एक इन्द्रतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है। हे वरानने ! यहां इन्द्र को कालरूप भैरव ने ॥ ८५ ॥

महादेव के क्रोध के कारण सहसा स्तम्भित कर दिया था। तब देवराज इन्द्र ने नम्र होकर भगवान् शंकर की स्तुति की ॥ ८६ ॥

हे शुभानने ! तब प्रसन्न होकर शिव ने देवराज इन्द्र के लिए मुक्ति प्रदान की। इसलिए वहां वे इन्द्रेश नाम से विख्यात हुये ॥ ८७ ॥

वहां एक परम सुन्दर तालाब निर्मित किया गया। महादेव ने इसे परम-पवित्र कहा है ॥ ८८ ॥

वहां जो लोग स्नान करते हैं, वे सदा इन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। वे ही पुरुष धन्य हैं, जो इस तीर्थ में आते हैं ॥ ८९ ॥

वहां के दर्शन से मनुष्य शीघ्र पवित्र आत्मा हो जाते हैं। वहां चन्द्रार्द्ध को शिरोभूषण बनाने वाले कालेश्वर नाम के शिव विराजमान हैं ॥ ९० ॥

वे त्रिशूल और कपाल को धारण करते हैं तथा दर्शनों से परम ऐश्वर्य देते हैं। वहां भी तीन लाख राक्षसों को मुक्ति मिली थी ॥ ९१ ॥

अब एक और पुण्यस्थल भीम का तथा हनुमान का है, जहां पहले वायु से उत्पन्न पांडुपुत्र भीम ॥ ९२ ॥

हनुमान से मिले थे। इसलिए वह परम पवित्र क्षेत्र माना गया है। वहां एक भीमशिला है, जो स्पर्शमात्र से पापों का नाश करने वाली है ॥ ९३ ॥

समीप में ही वहां हनुमान की शिला स्थित है। वह तीन योजन विस्तृत है। महाभाग्यशाली ही उसको देख सकते हैं ॥ ९४ ॥

माहात्म्यं तच्छिलायास्तु को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥
तस्या वै स्पर्शमात्रेण धातवः स्वर्णतां प्रिये ।
गच्छन्ति किं पुनर्देवि दुर्लभं भुवि मानवैः ॥ ९५ ॥

तदधः पंचदंडेन रन्ध्रं परमदुर्लभम् ।
तत्राधः क्रोशखंडार्द्धे बिल्ववृक्षोऽतिसुन्दरः ॥ ९६ ॥

फलानि तस्य दिव्यानि दुर्लभानि दुरात्मनाम् ।
गन्धाघ्राणेन दिव्यं स्याज्ज्ञानं परमदुर्लभम् ॥ ९७ ॥

भक्ष्यते च फलं किंचिदजरामरतां लभेत् ।
तस्य मूलेन सर्वेऽपि धातवः स्वर्णतां प्रिये ॥ ९८ ॥

गच्छेयुर्नैव सन्देहो द्विलक्षं ब्रह्मराक्षसाः ।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्ययुः परमिकां गतिम् ॥ ९९ ॥

अन्यच्चापि प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं पुण्यतमं प्रिये ।
भीमतीर्थं समाख्यातं यत्र भीमो महाबलः ॥ १०० ॥

तपश्चक्रे महादेवं संस्मरन् मनसा सुधीः ।
तत्र भीमेश्वरो नाम महादेवः शुभानने ॥ १०१ ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदो देवि देवदेवः सनातनः ।
तद्दर्शनात्पुरा लक्षसंख्यकाः ब्रह्मराक्षसाः ॥ १०२ ॥

कुयोनितो विनिर्मुक्ता दिव्यदेहान् समाश्रिताः ।
बदरीनाथविभवमुक्तमेवं मया तव ॥ १०३ ॥

पंचलक्षाणि तत्रापि दर्शनान्मुक्तिमागताः ।
तथा केदारभवने चतुर्लक्षं हि राक्षसाः ॥ १०४ ॥

लक्षं तुंगे तथा लक्षं मध्यमेश्वरपीठके ।
रुद्रालये च पादोनं सपादं कल्पतीर्थके ॥ १०५ ॥

उस शिला के माहात्म्य का वर्णन करने में किसकी शक्ति हो सकती है। हे प्रिये ! उसके स्पर्शमात्र से धातुयें सुवर्ण बन जाती है। हे देवि ! इस भूमि में मनुष्यों का उस स्थान पर पहुँचना दुर्ल्लभ है ॥ ९५ ॥

उसके पाँच दण्ड नीचे की ओर एक परम दुर्ल्लभ छिद्र है। उसके नीचे आधा-कोस दूर एक परम सुन्दर विल्ववृक्ष है ॥ ९६ ॥

उसके परम दिव्य फलों की प्राप्ति दुरात्माओं को दुर्ल्लभ है। उनकी सुगन्ध को सूँघने से परम दुर्ल्लभ दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥ ९७ ॥

जो किञ्चित् मात्र भी उसके फल का भक्षण करता है, वह अजर एवं अमर हो जाता है। हे प्रिये ! उसके मूल से समस्त धातुयें सुवर्ण ॥ ९८ ॥

बन जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं है। दो लाख ब्रह्मराक्षस उस क्षेत्र के माहात्म्य से परम गति को प्राप्त हो गये ॥ ९९ ॥

हे प्रिये ! मैं अन्य पुण्यतम क्षेत्र का वर्णन करता हूँ। एक सुविख्यात भीम नाम का तीर्थ है, जहां महाबलवान् भीमसेन ने ॥ १०० ॥

परम विशुद्ध मन से महादेव का स्मरण करके तप किया था। हे शुभानने ! वहां भीमेश्वर नाम के महादेव ॥ १०१ ॥

हे देवि ! भुक्ति तथा मुक्ति को देने वाले सनातन देवाधिदेव निवास करते हैं। उनके दर्शन से, पहले एक समय में एक लाख ब्रह्मराक्षस ॥ १०२ ॥

कुयोनि से मुक्त होकर दिव्य स्वरूप को प्राप्त हुये थे। इस प्रकार मैंने बदरीनाथ के बैभव का वर्णन आपसे किया है ॥ १०३ ॥

वहां भी पाँच लाख राक्षसों ने दर्शनों से मुक्ति प्राप्त की थी। केदारनाथ मन्दिर में चार लाख ब्रह्मराक्षसों ने मुक्ति प्राप्त की थी ॥ १०४ ॥

तुंगेश्वर क्षेत्र में एक लाख, मध्यमेश्वर पीठ में एक लाख, रुद्रालय क्षेत्र में पचत्तर हजार एवं कल्पतीर्थ में एक लाख पचीस हजार ब्रह्मराक्षसों ने मुक्ति प्राप्त की थी ॥ १०५ ॥

कालीगृहे तथा लक्षं निर्मुक्ता ब्रह्मराक्षसाः ।
यत्र काली पुरा देवी रक्तबीजवधाय च ।
आराधिता प्रिये दैवैरिन्द्राद्यैर्दैत्यतापितैः ॥ १०६ ॥

अरुन्धत्युवाच—

आराधिता कथं देवैः रक्तबीजवधाय च ।
को वाऽयं रक्तबीजोऽभूत्किंबलः किं पराक्रमः ॥ १०७ ॥

देवानां किं कृतं तेन सर्वं कथय सुव्रत ।
कथं च निहतो दैत्यः सर्वदेवविमर्दनः ॥ १०८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासमाहात्म्ये नानातीर्थकथनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

पितामहप्राप्तवरबृप्तयुयुत्सुरक्तबीजसकाशमिन्द्रेण दूतप्रेषणम्

वसिष्ठ उवाच—

श्रृणु प्रिये समासेन रक्तबीजवधाश्रिताम् ।
पुण्यां पवित्रीमायुष्यां कथां दिव्यां मनोहराम् ॥ १ ॥

पुरा शंकुशिरा नाम दानवेन्द्रो महाबलः ।
तस्य पुत्रो महाभागे अस्थिबीजो महासुरः ॥ २ ॥

[1]तस्य पुत्रो महातेजा रक्तबीजो महाबलः ।
एकदा निहतो देवि सोऽस्थिबीजो महासुरः ॥ ३ ॥

अस्थीनि चर्वयामास तस्य देवी हि भैरवी ।
निहते दानवे तस्मिन् देवैः परमकोपितैः ॥ ४ ॥

---

१. "तस्य ······ महासुरः" पाठ इसमें नहीं है ।

कालीमठ में एक लाख ब्रह्मराक्षस पापों से निर्मुक्त हुये थे। यहां पहले रक्तबीज का नाश करने के लिए दैत्यों से संतापित इन्द्र ने देवताओं के साथ काली देवी की आराधना की थी ।। १०६ ।।

अरुन्धती ने कहा—

रक्तबीज के वध के लिए किस प्रकार देवताओं ने काली की आराधना की ? यह रक्तबीज कौन था ? यह कितना बलवान् था ? तथा इसका पराक्रम कैसा था ।। १०७ ।।

उस दैत्य ने देवताओं का क्या किया ? समस्त देवताओं को कष्ट पहुँचाने वाला यह दैत्य कैसे मारा गया ? हे सुव्रत ! यह सब मुझ से कहो ।। १०८ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कैलास-माहात्म्य में
नानातीर्थ कथन नाम का इकासीवां अध्याय पूरा हुआ ।।

बयासीवां अध्याय

पितामह ब्रह्मा से वर प्राप्त करके घमण्ड में भरकर युद्ध करने की इच्छा वाले रक्तबीज के पास इन्द्र द्वारा दूत भेजना

वसिष्ठ ने कहा—

हे प्रिये ! रक्तबीज के वध से सम्बन्धित पुण्य को देने वाली दीर्घायु देने वाली, परम पवित्र मनोहर दिव्य कथा को आप संक्षेप से सुनो ।। १ ।।

पहले शंकुशिरा नाम का एक महा वलिष्ठ दानवराज हुआ था। हे महाभाग्य-शालिनि ! उसका पुत्र अस्थिबीज नाम का एक महाराक्षस हुआ ।। २ ।।

उसका पुत्र महाबलशाली महातेजस्वी रक्तबीज था। हे देवि ! एक दिन वह महान् असुर अस्थिबीज मारा गया ।। ३ ।।

परम कुपित देवताओं ने जब उस दानव को मार डाला तब भैरवी देवी ने उसकी हड्डियों को चबा लिया ।। ४ ।।

श्रुत्वा तत्कर्म देवानां रक्तबीजो महामतिः ।
तपश्चक्रे महातेजा ब्रह्मक्षेत्रे वरानने ॥ ५ ॥

पंचलक्षाणि वर्षाणां व्यतीयुस्तपतः प्रिये ।
त्यक्ताहारविहारस्य परब्रह्मरतात्मनः ॥ ६ ॥

तस्य वै तप्यमानस्य बल्मीकमुपरि ध्रुवम् ।
बभूव सर्वतश्चैव शैलराज इव स्थितः ॥ ७ ॥

ब्रह्माऽपि प्रययौ तत्र विमानेनार्कतेजसा ।
उवाच परमं तुष्टो रक्तबीजं महासुरम् ॥ ८ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दनुज महद्वै तप उत्तमम् ।
कृतं त्वया महाभाग सन्तुष्टोऽस्मि तरां त्वयि ॥ ९ ॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ।
दुर्ल्लभं नास्ति त्रैलोक्ये दानवेन्द्र महामते ॥ १० ॥

रक्तबीजोऽपि तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मणेरितम् ।
उन्मील्य नयने देवि जलैरानन्दसंभवैः ॥ ११ ॥

संमृज्योवाच ब्रह्माणं विमानास्थितमंजसा ।
भगवंस्त्वं सर्वकर्त्ता सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ १२ ॥

त्वत्त एव वयं जाता देवाश्च तव सम्भवाः ।
समास्त्वया रक्षणीया यतस्त्वं प्रपितामहः ॥ १३ ॥

वरार्होऽहं यदि विभो वरदोऽस्ति भवान्यदि ।
न वध्योऽहं सुरैर्दैत्यैर्न गन्धर्वैर्न मानुषैः ॥ १४ ॥

न यक्षैर्न पिशाचैश्च पशुभिर्न च पक्षिभिः ।
नान्यैश्च जीवजातीभिर्न दिवा न निशि प्रभो ॥ १५ ॥

यत्र मे रक्तबिन्दुर्वै पतेत्तत्र महासुरः ।
मद्रूपो मद्बलो देव तथास्तु च मदाकृतिः ॥ १६ ॥

हे वरानने ! तब देवताओं के उस कर्म को सुनकर महाबुद्धिशाली महातेजस्वी रक्तबीज दैत्य ने ब्रह्मक्षेत्र में तपस्या की ।। ५ ।।

हे प्रिये ! आहार-विहार का परित्याग करके तथा परमात्मा में निरत मन होकर तपस्या करते हुये उसको पाँच लाख वर्ष व्यतीत हो गये ।। ६ ।।

तपस्या करने पर उसके शरीर के ऊपर निश्चय से बाँबी बन गई और चारों ओर मानो पर्वतराज स्थित हो गया ।। ७ ।।

ब्रह्म जी भी वहां सूर्य के समान तेजोमय विमान द्वारा गये । परम सन्तुष्ट होकर वे उस रक्तबीज महादैत्य से कहने लगे ।। ८ ।।

हे दनु के पुत्र ! उठो, उठो । हे महाभाग ! तुमने बहुत बड़ा उत्तम तप किया है, जिससे मैं आप पर बहुत संतुष्ट हूँ ।। ९ ।।

तुम्हारा कल्याण हो । जो तुम्हारे मन में हो, तुम वर मांगो । हे महामते ! दानवेन्द्र ! तुम्हारे लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।। १० ।।

हे देवि ! रक्तबीज ने भी जब ब्रह्मा के द्वारा कहे गये उन वचनों को सुना, तब उसने आनन्दजल से भरी अपनी आंखों को खोला ।। ११ ।।

आंखों को पोंछ कर उस रक्तबीज ने विमान में स्थित ब्रह्मा से शीघ्र कहा । हे भगवन् ! आप समस्त सृष्टि के कर्त्ता हैं, और आप सबके ईश्वर तथा प्रभु हैं ।। १२ ।।

हमारी उत्पत्ति आपसे हुई है तथा देवता भी आप ही से उत्पन्न हुये हैं । आप सबके पितामह हैं । अतः आपको समान भाव से सबकी रक्षा करनी चाहिए ।। १३ ।।

हे विभो ! यदि मैं वर मांगने के योग्य हूँ और आप यदि वर देते हैं, तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरा वध किन्हीं देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों तथा मनुष्यों द्वारा न हो सके ।। १४ ।।

हे प्रभो ! न तो यक्ष, न पिशाच, न पशु, न पक्षी तथा न अन्य जीवजातियां मुझे मार सकें । न दिन में तथा न रात में मेरी मृत्यु हो ।। १५ ।।

जहां मेरे खून की बिन्दु गिरे, वहां तत्काल मेरे स्वरूप तथा आकृति का अति बलिष्ठ महादैत्य उत्पन्न हो जावे ।। १६ ।।

यावन्तश्च शरीरे मे भवेयू रक्तबिन्दवः ।
पतेयुश्च तथा भूमौ भवन्तु मत्पराक्रमाः ॥ १७ ॥

एवमेव परं याचे वरं यद्दातुमिच्छसि ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा सर्वपितामहः ।
उवाच वचनं प्रीतो रक्तबीजं महासुरम् ॥ १८ ॥

भविष्यसि तथव त्वमीप्सितं यत्त्वयाऽसुर ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि पुंभिर्मृत्युं न चाप्स्यसि ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा द्रुहिणो देवि तत्रैवान्तरधीयत ।
वरान्प्राप्य महातेजाः प्रमत्तोऽभून्महासुरः ॥ २० ॥

निशुंभशुंभसहितो राज्यं सर्वांगसुन्दरि ।
चकार विपुलान्दुर्गान् बलानि च महान्ति च ॥ २१ ॥

स्मृत्वा वैरं निर्ज्जराणां पितुश्च वधमासुरः ।
दूतान्सम्प्रेषयामास वासवाय महासुरः ॥ २२ ॥

त्यज राज्यं च स्वर्लोकमस्माकं जगती च वै ।
अन्यायेन पुरा देवैर्निर्जिताः सर्वदानवाः ॥ २३ ॥

इदानीं बलसम्पन्ना वयं युद्धविनिश्चयाः ।
अवलेपो न कर्तव्यो युष्माभिः सर्वदैवतैः ॥ २४ ॥

युद्धेप्सवो यदि सुरा यद्धाय कृतनिश्चयाः ।
आगच्छन्तु भवन्तश्च साहाय्येन युतास्तथा ॥ २५ ॥

यो वै जेष्यति नो देवाः स वै राज्यं करिष्यति ।
इति दूतमुखेभ्यश्च श्रुत्वा वाचोऽसुरेरिताः ॥ २६ ॥

इन्द्र आज्ञापयामास सर्वान् देवान् वरानने ।
सन्नद्धकवचास्त्राश्च वरनिस्त्रिंशपाणयः ।
समेत्य सर्वे त्रिदशा आगच्छंत्वाज्ञया मम ॥ २७ ॥

जितने रक्त बिन्दु मेरे शरीर से भूमि पर गिरें, उतने ही मेरे सदृश पराक्रम वाले बीर उत्पन्न हो जायें ॥ १७ ॥

यदि आप वर देने के इच्छुक हैं तो इसी उत्तम वर की मैं याचना करता हूँ। इन वचनों को सुन कर लोकपितामह ब्रह्मा ने रक्तबीज महासुर को प्रीतियुक्त वचन कहे ॥ १८ ॥

हे असुर ! जो तुमने इच्छित वर मांगा है, वही तुमको प्राप्त होगा । तुम्हारा कल्याण हो । मैं जाता हूँ । किन्ही पुरुषों द्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ॥ १९ ॥

हे देवि ! यह कहकर ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान हो गये । वह तेजस्वी महा असुर वरों को प्राप्त करके प्रमत्त हो गया ॥ २० ॥

हे सर्वांगसुन्दरि ! उसने शुंभ तथा निशुंभ सहित राज्य का शासन किया और बड़े-बड़े दुर्ग बनाये तथा बड़ी सेनाओं का उसने संगठन किया ॥ २१ ॥

उस असुर ने अपने पिता का वध करने वाले देवताओं की शत्रुता का स्मरण किया और देवराज इन्द्र के पास उसने असुर दूतों को भेजा ॥ २२ ॥

तुम राज्य और स्वर्गलोक को छोड़ दो, क्योंकि समस्त संसार हमारा है । पहले अन्याय से देवताओं ने सब दानवों को जीत लिया था ॥ २३ ॥

इस समय हम बल-सम्पन्न हैं तथा युद्ध के लिए निश्चय किये हुये हैं । तुम समस्त देवताओं को अब अभिमान नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥

यदि देवता भी युद्ध करने के इच्छुक है तथा युद्ध करने के लिए निश्चय किये हुये हैं तो आप अपने सहायकों के साथ युद्ध के लिए आ जाओ ॥ २५ ॥

हे देवताओ ! जो हमे जीतेगा वही राज्य करेगा । इस प्रकार दूतों के मुखों से दैत्य के वचनों को सुन कर ॥ २६ ॥

हे वरानने ! इन्द्र ने समस्त देवताओं को आज्ञा दी । सब देवता कवच धारण करके और खड्ग हाथ में लेकर मेरी आज्ञा से यहां उपस्थित होवें ॥ २७ ॥

नागमिष्यति यो देवस्स मे वध्यो भविष्यति।
इत्युक्त्वा दैवतान्सर्वान्दूतांश्चोवाच देवराट्॥ २८॥

गच्छध्वं रक्तबीजाय सशुंभाय वदन्तु वै।
भवन्तो हतकाः सर्वे कार्यो नो ह्यवलेपकः॥ २९॥

युद्धे जिताः सुरैः पूर्वमस्थिबीजो यथा हतः।
निशुम्भशुम्भसहितः शयिष्यसि रणांगणे॥ ३०॥

तथा त्वं सर्वदेवेष नावलेपे मतिं कुरु।
दूताश्चैव तथा श्रुत्वा वासवात्त्वरया युताः।
रक्तबीजं तथा प्राप्य समाचक्षुर्वचोऽखिलम्॥ ३१॥

रक्तबीजोऽपि तच्छ्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः।
सर्वदेवविनाशार्थं मतिं चक्रे रणाय वै॥ ३२॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे
दूतप्रेषणं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

इन्द्रादिदेवैः साकं युद्धे रक्तबीजस्य जयवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

आज्ञप्तास्तु ततो देवा वासवेन महात्मना।
सन्नद्धकवचास्सर्वे आययुः सर्वतो दिशः॥ १॥

तोमरान् परशूंश्चैव शक्तींश्च मुसलांस्तथा।
खड्गान्शरान् सतूणीरान्यष्टीन्दष्टीन्समुद्गरान्॥ २॥

संगृह्य देवताः सर्वे जयमूचुः पुरन्दरम्।
इन्द्रोऽपि मातलिं सूतमुवाच भगवान् प्रिये॥ ३॥

जो देवता नहीं आवेगा, उसका मेरे द्वारा वध किया जायेगा। इस प्रकार समस्त देवताओं को देवराज ने आज्ञा देकर उन दूतों से कहा... ॥ २८ ॥

हे दूतो ! आप अब जाओ और शुंभ सहित रक्तबीज को कहना कि घमण्ड करना अच्छा नहीं है ॥ २९ ॥

पहले देवताओं ने युद्ध में जीतकर जिस प्रकार अस्थिबीज दैत्य को मारा था, उसी प्रकार शुंभ-निशुंभ सहित तुमको भी रणभूमि में सुलाया जायेगा ॥ ३० ॥

इसलिए तुम्हें सब देवों के प्रति घमण्ड नहीं करना चाहिए। इन्द्र द्वारा कथित इन वचनों को सुनकर दूतों ने शीघ्र ही रक्तबीज के पास जाकर सारा वृत्तान्त कह दिया ॥ ३१ ॥

इन्द्र के उन वचनों को सुनकर क्रोध से रक्तबीज की आंखें लाल हो गईं। उसने समस्त देवताओं के विनाश के लिए युद्ध करने का विचार किया ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालीतीर्थ माहात्म्य में रक्तबीज वध में बयासीवां अध्याय पूरा हुआ।

तिरासीवां अध्याय

युद्ध में इन्द्र आदि देवताओं पर रक्तबीज की विजय का वर्णन।

वसिष्ठ ने कहा—

महात्मा इन्द्र का आदेश पाकर वे समस्त देवता कवच धारण करके सब दिशाओं से इन्द्र के पास आये ॥ १ ॥

तोमर, फरसे, शक्ति, मूसल, खड्ग, बाण, तूणीर, लाठियां, दृष्टि तथा मुद्गरों को ॥ २ ॥

लेकर समस्त देवता देवराज इन्द्र की जयकार कहने लगे। हे प्रिये ! भगवान् इन्द्र ने भी अपने सारथि मातलि से कहा ॥ ३ ॥

रथं साधय मे शीघ्रं साधितश्च तथा रथः ।
आरुह्य सहसा देवः सर्वदेवसमन्वितः ।। ४ ।।

सोऽपि प्रिये रक्तबीजोऽसुरैर्दैत्यैः समन्वितः ।
तथा सर्वास्त्रसम्पन्नो दैत्यदानवपूजितः ।। ५ ।।

शंखश्च कालनाभश्च वज्रशीर्षो महाहनुः ।
दुर्नेत्रो रक्तवर्णश्च तीक्ष्णदंष्ट्रो वृषाकृतिः ।। ६ ।।

दर्दु रो धनुषश्चैव कोलनामा तथाऽसुरः ।
महानास्यो बृहद्दंष्ट्रो वृषतेजा वृकोदरः ।। ७ ।।

खड्गरोमा कालदंष्ट्रो देवारिर्बल एव च ।
एते चान्ये च बहवो दानवा युद्धदुर्मदाः ।। ८ ।।

शरान् खड्गांस्तथा कुंतांस्त्रिशूलानि वरानने ।
एवमादीनि शस्त्राणि गृहीत्वा वरपाणिभिः ।। ९ ।।

संदष्टौष्ठपुटा दैत्याः क्वेति क्वेति च देवताः ।
इत्युक्तवन्तः प्रययुर्वीरं रसमुपाश्रिताः ।। १० ।।

शंखान्भेरीस्तथा दध्मुर्जय दैत्यारिमर्द्दन ।
वदन्तश्चैव जेष्यामो वासवं वसुभिर्युतम् ।। ११ ।।

सुमेरुश्रृंगमास्थाय देवाश्चापि पृथक्-पृथक् ।
मृदंगान्पटहान्ढक्कान्भेरीः शंखान् सतालकान् ।। १२ ।।

प्रदध्मुः शतशो देवाः रक्तबीजवधैषिणः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समरः समपद्यत ।। १३ ।।

शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्घोरैर्निर्जघ्नुः शतशोऽसुरान् ।
दैत्याश्चापि तथा देवान् शस्त्रास्त्रैर्नियुतायुतैः ।
निजघ्नुर्वीरमापन्नाः संदष्टदशनच्छदाः ।। १४ ।।

मेरे रथ को शीघ्र तैयार करो तथा सारथि ने रथ को तैयार कर दिया। समस्त देवताओं से युक्त इन्द्र ने सहसा उस रथ पर आरोहण किया ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! रक्तबीज भी असुरों तथा दैत्यों के साथ था। वह समस्त अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न और दैत्यों तथा दानवों से पूजित था ॥ ५ ॥

शंख, कालनाभ, वज्रशीर्ष, महाहनु, दुर्नेत्र, रक्तवर्ण, तीक्ष्णदंष्ट्र, वृषाकृति ॥ ६ ॥

दर्दुर, धनुष, कोलनाम असुर, महानास्य, वृहद्दंष्ट्र वृषतेज, वृकोदर ॥ ७ ॥

खड्गरोम, कालदंष्ट्र, देवारि और बल ये तथा अन्य बहुत से युद्ध विशारद दानव ॥ ८ ॥

हे वरानने ! बाण, खड्ग, कुन्त, त्रिशूल आदि शस्त्रों को उत्तम हाथों से ग्रहण करके ॥ ९ ॥

दैत्य लोग अपने अधरों को काटने लगे और कहने लगे कि वे देवता कहां हैं ? कहां हैं ? यह कह कर वे दैत्य वीर रस से भर गये ॥ १० ॥

वे शंखों तथा भेरियों का नाद करके कहने लगे कि दैत्यों के दुश्मनों को मारने वाले दैत्यराज की जय हो। यह भी कहने लगे कि वसुओं सहित इन्द्र को जीतेंगे ॥ ११ ॥

देवता भी सुमेरु पर्वत की चोटी पर पृथक्-पृथक् स्थानों पर स्थित होकर मृदंग, पटह, ढक्का, भेरी, शंख तथा ताल आदि को ॥ १२ ॥

रक्तबीज दैत्य के बध के इच्छुक सैकड़ों देवता बजाने लगे। इसी समय वहां युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥ १३ ॥

अनेक भयानक शस्त्रों से देवताओं ने सैंकड़ों असुरों पर प्रहार किया। दैत्यों ने भी असंख्य शस्त्रों से देवताओं पर प्रहार किया। वीर रस से भरे दोनों पक्ष अपने अधरों को काटने लगे ॥ १४ ॥

देवासुरं तथा घोरं समरं समपद्यत ।
केचिद्भल्लांस्तथा शक्तींस्तोमरान् परशूंस्तथा ॥ १५ ॥

गदाश्च मुसलान्वज्रान्कुठारान् बहुसायकान् ।
चिक्षिपुः शतशोऽरीणां परस्परजयैषिणः ॥ १६ ॥

युयुधुः परिघैः केचिन्मुष्टिभिर्वज्रनिःस्वनैः ।
परस्परमयुध्यन्त दानवाश्च तथा सुराः ॥ १७ ॥

शुशुभुः सर्वतस्तत्र किंशुका इव पुष्पिताः ।
अश्वानां चैव नागानां निहतानां रणाजिरे ॥ १८ ॥

गात्रेभ्यो निःसरुर्धारा रुधिरस्य वरानने ।
गिरीणामिव पार्श्वेभ्यो गैरिरक्ता इवापगाः ॥ १९ ॥

छिंधि छिंधि भिंदि भिंदि तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ।
श्रूयन्ते स्म तथा वाचो विविधाः सुभटेरिताः ॥ २० ॥

मेघा इव भटा रेजुः सन्नद्धकवचास्तथा ।
वाणवर्षं विमुञ्चन्तो विस्फुरद्बहुचंचलाः ॥ २१ ॥

तिष्ठतिष्ठेति गर्जंतः कीर्त्तिवल्लीजयैषिणः ।
निर्ययुः शतशो नद्यः केशशष्पविभूषिताः ॥ २२ ॥

अस्थिग्रावा रक्तजलास्तथा मस्तिष्ककर्द्दमाः ।
इति वै तुमुले युद्धे सम्बभूव भटक्षयः ॥ २३ ॥

जयन्तश्चैव शुंभश्च निशुम्भश्च जयस्तथा ।
कुबेरो वज्रमुष्टिश्च वह्निर्देवारिरेव च ॥ २४ ॥

वायुश्च खड्गरोमा च रुद्रश्चैव वृषाकृतिः ।
धरश्चैवाथ दुर्नेत्रोऽनिलश्चैव महाहनुः ॥ २५ ॥

प्रत्यूषश्चैव शंखश्च प्रभासश्च वृकोदरः ।
द्रविणस्तीक्ष्णदंष्ट्रश्च परस्परजयैषिणौ ॥ २६ ॥

देवताओं तथा दैत्यों का घोर संग्राम आरम्भ हो गया। कोई भाले, शक्ति, तोमर, परशु ॥ १५ ॥

गदा, मूसल, वज्र, कुठार और अन्य बहुत से शस्त्रों से सैकड़ों दुश्मनों के ऊपर परस्पर विजय के इच्छुक होकर प्रहार करने लगे ॥ १६ ॥

कोई परिघों से, कोई मुष्टि से, कोई वज्र से देवता और दानव परस्पर घोर युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥

सर्वत्र उस युद्ध-मैदान में मारे गये घोड़े और हाथी ऐसे शोभित हुये जैसे टेसू के फूलों से लदे वृक्ष शोभित होते हैं ॥ १८ ॥

हे वरानने ! शरीरों से खून की धारायें इस प्रकार से निःसरित होने लगीं, जैसे पर्वतों के पार्श्वभाग से गेरु से लाल स्वरूप वाली नदियों की धारा बहती हैं ॥ १९ ॥

काटो काटो, मारो मारो, रुको रुको, बार-बार निरन्तर कहे जाने वाले अनेक वीरों के ये शब्द वहां सुनाई देते थे ॥ २० ॥

कवचों को धारण किये हुये वीर मेघ के समान शोभायमान हो रहे थे। अत्यन्त चंचलता और चपलता से छोड़े गये बाणों की वर्षा वे कर रहे थे ॥ २१ ॥

कीर्ति रूपी लताओं और यिजय की इच्छा करते हुये वे ठहरो-ठहरो, ये गर्जनायें करने लगे। केश रूपी घास से विभूषित सैकड़ों नदियां बहने लगीं ॥ २२ ॥

उक्त नदियों में हड्डियें पाषाण के समान, खून जल के समान तथा मस्तिष्क कीचड़ के समान हुये। इस प्रकार उस भयंकर युद्ध में वीरों का विनाश होने लगा ॥ २३ ॥

जयन्त-शुंभ, निशुंभ-जय, कुबेर-वज्रमुष्टि, वह्नि-देवारि ॥ २४ ॥

वायु-खड्गरोमा, रुद्र-वृषाकृति, धर-दुर्नेत्र, अनिल-महाहनु ॥ २५ ॥

प्रत्यूष-शंख, प्रभास-वृकोदर, द्रविण-तीक्ष्णदंष्ट्र आदि परस्पर विजय की कामनां वाले ॥ २६ ॥

चक्रतुर्द्वन्द्वयुद्धं तु तथाऽन्ये देवदानवाः ।
इति युद्धं सममभूत्तथा वर्पसहस्रकम् ।। २७ ।।

देवानां दानवानां च भीरूणां भयवर्द्धनम् ।
द्वन्द्वयुद्धे प्रिये देवा निर्जिता दनुपुत्रकैः ।। २८ ।।

तत इन्द्रो रक्तबीजं द्वन्द्वयुद्धे समागतः ।
विव्याध शतशो बाणैश्चिच्छेद च तथाऽसुरम् ।। २९ ।।

रक्तबीजोऽपि तं बाणैर्ववर्ष घनराडिव ।
अनागतांस्ततो बाणांश्चिच्छेद शतशो वृषा ।। ३० ।।

इति वै तुसुलं युद्धं रक्तबीजेन्द्रयोरभूत् ।
अंधीभूतं जगत्सर्वं बाणजालैरितस्ततः ।। ३१ ।।

नालक्ष्यते तथा सूर्य्यश्चन्द्रमाश्च तथा ग्रहाः ।
उल्काश्च शतशः पेतुः समुद्राश्च चकम्पिरे ।। ३२ ।।

इन्द्रेण निहतस्यापि रक्तबीजस्य सुन्दरि ।
भूमौ पतन्ति कणिकाः शोणितस्य शरीरतः ।। ३३ ।।

तावन्त एव पुरुषास्तद्वीर्य्यास्तित्पराक्रमाः ।
युयुधुर्देवनाथेन शस्त्रास्त्रैर्नियुतायुतैः ।। ३४ ।।

एतस्मिन्नन्तरे देवि वागुवाचाशरीरिणी ।
भो भो इन्द्र त्वया वध्यो नायं दैत्यारिमर्द्दन ।। ३५ ।।

ब्रह्मणो वरदानेन नायं वध्यः सुरासुरैः ।
इति श्रुत्वा वचस्तद्वै संत्रस्तश्च तथाऽसुरैः ।। ३६ ।।

स्वं स्वं स्थानं त्यज्य देवा जग्मुर्वै त्रिदिवौकसः ।
दिशो दश बरापांगि संलीनास्त्रिदिवौकसः ।
सोऽपि प्रिये रक्तबीजो जयशब्देन पूजितः ।। ३७ ।।

तथा अन्य देवता-दानवों ने भयंकर द्वन्द्व युद्ध किया। इस प्रकार का यह देव-दानव युद्ध एक हजार वर्ष तक हुआ ॥ २७ ॥

हे प्रिये ! भीरुओं के भय को बढ़ानेवाले इस देव-दानव द्वन्द युद्ध में दानवों ने देवताओं पर विजय प्राप्त कर ली ॥ २८ ॥

तदनन्तर उस द्वन्द्व युद्ध में आये देवराज इन्द्र ने उस रक्तवीज असुर को सैकड़ों बाणों से विद्ध करके छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ २९ ॥

रक्तवीज ने भी उस इन्द्र पर मेघराज के समान बाणों की वर्षा की। किन्तु इन्द्र ने अपने पास पहुँचने से पहले ही उन बाणों को काट डाला ॥ ३० ॥

इस प्रकार रक्तवीज एवं इन्द्र का भयंकर युद्ध हुआ। उनके द्वारा चलाये गये बाणों से समस्त संसार में अन्धकार छा गया ॥ ३१ ॥

उस समय सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रह दिखाई नहीं देते थे। सैकड़ों उल्कापात होने लगे एवं समुद्र कांप गये ॥ ३२ ॥

हे देवि ! इन्द्र के द्वारा मारे गये रक्तवीज के शरीर से रक्त के जितने कण भूमि पर पड़े ॥ ३३ ॥

उनसे उतने ही उसी के समान बलवान् एवं पराक्रमी वीर लाखों-करोड़ों शस्त्रों तथा अस्त्रों से समन्वित हो देवराज के साथ युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

हे देवि ! इसी काल में अशरीरिणी आकाशवाणी ने कहा – हे दैत्य रूपी शत्रुओं को मारने वाले इन्द्र ! तुम इस दैत्य का वध नहीं कर सकते ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा के वरदान से देवताओं और दैत्यों द्वारा इसका वध नहीं हो सकता। यह सुनकर असुरों के द्वारा देवराज संत्रस्त हो गया ॥ ३६ ॥

सुन्दर अपांगों वाली हे प्रिये ! स्वर्ग में निवास करने वाले देवता अपने-अपने स्थान को छोड़ कर दसों दिशाओं में चले गये। हे प्रिये ! तब उस रक्तवीज का जय ध्वनि से पूजन होने लगा ॥ ३७ ॥

उपास्यमानस्त्वसुरैः प्रययौ त्वमरावतीम् ।
पालयामास धर्मेण राज्यं निहतकंटकम् ।। ३८ ।।

देवाधिकारान् सर्वांश्च स्वयं चक्रे महासुरः ।। ३९ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे इन्द्रपराजयो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

रक्तबीजवधार्थं देवैर्विष्णुस्तुतिस्तस्य च तैः सार्धं कैलासे श्रीभवानीप्रार्थनार्थं गमनम्

वसिष्ठ उवाच—

निर्जितास्ते ततो देवा दानवैस्तैर्महाबलैः ।
इन्द्रादयो महाभागे संचेरुर्गिरिकन्दरे ।। १ ।।

लीनानामथ देवानां वर्षाणां नियुतं ययौ ।
मानवा इव दुःखार्त्ताः संचेरुः पृथिवीमिमाम् ।। २ ।।

रक्तबीजवधाक्रान्तास्तथा शुंभनिशुम्भयोः ।
हृताधिकारास्त्रिदशाश्चेष्टितं च विचक्रमुः ।। ३ ।।

एकदा वासवाद्यास्ते विबुधा वसवस्तथा ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः स्रष्टारं प्रपितामहम् ।। ४ ।।

बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे निर्जरा भयविह्वलाः ।
ऊचुस्ते भक्तिसम्पन्ना ब्रह्माणं जलजोद्भवम् ।। ५ ।।

देवा ऊचुः —

प्रजापते नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे ज्ञानचक्षुषे ।
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं निर्गुणाय महात्मने ।। ६ ।।

असुरों द्वारा पूजित होकर वह रक्तबीज अमरावती गया। धर्म से प्रजा का पालन करके वह निष्कंटक राज्य करने लगा ॥ ३८ ॥

उस महा-असुर रक्तबीज ने देवताओं के समस्त अधिकारों को स्वयं ग्रहण कर लिया ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में काली तीर्थमाहात्म्य
में रक्तबीज वध में इन्द्र-पराजय नाम का तिरासीवां अध्याय
पूरा हुआ।

चौरासीवां अध्याय

रक्तबीज का वध करने के लिये देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति, देवताओं के साथ विष्णु का श्री भवानी से प्रार्थना करने के लिये कैलास पर्वत पर जाना।

वसिष्ठ ने कहा—

उन वलिष्ठ दानवों ने जब देवताओं को जीत लिया, तब हे महाभागे ! इन्द्र आदि देवता पर्वतों की कन्दराओं में विचरण करने लगे ॥ १ ॥

जब पर्वतों की कन्दराओं में गुप्त रूप से विचरण करते हुये देवताओं को दस करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये। तब दुःख से पीड़ित होकर मनुष्यों की भांति वे देवता इस भूमण्डल पर विचरण करने लगे ॥ २ ॥

रक्तबीज के प्रहारों से आक्रान्त होकर तथा शुंभ-निशुंभ द्वारा राज्य का अधिकार छीन लिये जाने पर देवता कुछ चेष्टा करने का विचार करने लगे। ॥ ३ ॥

एक दिन इन्द्र आदि देवता तथा वसु सृष्टि को रचने वाले प्रपितामह ब्रह्मा की शरण में गये ॥ ४ ॥

दैत्यों के भय से आक्रान्त वे सारे देवता हाथ जोड़कर भक्तिभावना से कमलयोनि ब्रह्मा से कहने लगे ॥ ५ ॥

देवताओं ने कहा—

हे प्रजाओं के पति, ज्ञानरूपी चक्षुओं को धारण करने वाले, ब्रह्मा आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीनों मूर्तियों को धारण करने वाले हैं, अतः गुण रहित महातमा आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥

रक्तबीजभयोद्विग्ना हृतराज्या वयं प्रभो।
पृथिव्यामपि प्रत्यक्षं न चरामो भयात्प्रभो ॥ ७ ॥

इन्द्रः स एव भगवन् स वह्निर्यम एव च।
निऋतिर्वरुणश्चैव वायुश्च धनदस्तथा ॥ ८ ॥

ईशश्चैव स एवास्ति हृतयज्ञा वयं प्रभो।
त्वमेव जगतां स्रष्टा प्रमत्तो वरदानतः ॥ ९ ॥

उत्साद्यंते दानवेन सृष्टयस्त्वत्कृता इमाः।
वधं चिन्तय तस्यापि कारणेन प्रजापते ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच—

गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे देवदेवं सनातनम्।
अनादिमध्यनिधनं वासुदेवं मया सह ॥ ११ ॥

स ज्ञास्यति वधोपायं रक्तबीजस्य निर्जराः।
अहं चैवागमिष्यामि यत्र विष्णुः सनातनः ॥ १२ ॥

वसिष्ठ उवाच--

इत्युक्त्वा तान् समाश्वास्य ययौ देवसमन्वितः।
क्षीराम्भोधौ यत्र सुप्तो नारदादिभिरर्चितः ॥ १३ ॥

भगवान् वासुदेवो हि रमया सहितः प्रभुः।
देवैरपि ततो ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच—

नमो देवाधिदेवाय वासुदेवाय ब्रह्मणे।
यस्येच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम् ॥ १५ ॥

लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं दानवारे नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमस्त्रिजगतां पते ॥ १६ ॥

त्रिगुणव्यतिरेकाय त्रिगुणाय गुणात्मने।
निरंजनाय निर्द्वन्द्व तेऽच्युताय नमो नमः ॥ १७ ॥

हे प्रभो ! हमारा राज्य राक्षसों के द्वारा अपहृत किया गया है, रक्तबीज के भय से हम उद्विग्न हैं। हे प्रभो ! भय से पृथिवी पर भी प्रत्यक्ष रूप से विचरण नहीं कर सकते ।। ७ ।।

हे भगवन् ! वह रक्तबीज ही इस समय इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर है और ।। ८ ।।

वह सबका स्वामी ही है। हे प्रभो ! उसने हमारे यज्ञों का अपहरण कर लिया है। आप ही जगत् के कर्त्ता हैं। वह दैत्य आपके ही वरदान से प्रमत्त हुआ है ।। ९ ।।

वह दानव आपकी रची इन सृष्टियों का उन्मूलन कर रहा है। हे प्रजापते ! अतः आप उसके वध करने का उपाय सोचिये ।। १० ।।

ब्रह्मा ने कहा—

समस्त देवता मेरे साथ देवाधिदेव, सनातन, सृष्टि के आदि, मध्य तथा अन्त भगवान् वासुदेव की शरण में चलो ।। ११ ।।

हे देवताओ ! वे ही रक्तबीज के वध का उपाय जानते हैं। और मैं भी वहां आऊँगा जहां सनातन भगवान् विष्णु विराजमान हैं ।। १२ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

यह कह कर तथा देवताओं को आश्वासन देकर देवताओं के साथ ब्रह्मा क्षीरसागर में गये, जहां कि नारद आदि ऋषियों से अभिवन्दित विष्णु शयन कर रहे थे ।। १३ ।।

वहां लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु विद्यमान थे। तदनन्तर देवताओं के साथ ब्रह्मा ने परमेश्वर विष्णु की स्तुति की ।। १४ ।।

ब्रह्मा ने कहा—

ब्रह्मस्वरूप वासुदेव, देवों के अधिदेव आपको नमस्कार है, जिनकी इच्छा से समस्त चराचर जगत् उत्पन्न होता है ।। १५ ।।

लक्ष्मी के पति तथा दानवों के शत्रु आपको वारम्वार नमस्कार है। आप तीनों लोकों के नाथ एवं तीनों लोकों के अधिपति हैं। आपको नमस्कार है ।। १६ ।।

आप सत्त्व, रज एवं तम इन तीनों गुणों से अलग हैं, जिससे आप निर्गुण हैं। ये तीनों गुण आप में निवास करते हैं, जिससे आप सगुण कहे जाते हैं। आप निरंजन हैं। द्वन्द्वों से रहित हे अच्युत ! आपको बार-बार नमस्कार है ।। १७ ।।

ब्रह्मरूपेण सृजते हरिरूपेण रक्षते।
अन्ते नाशयते देव रुद्ररूपेण ते नमः ॥ १८ ॥

अच्छेद्याय महेशाय निर्भेद्याय महात्मने।
अदाह्याय सुरेशाय ह्यक्लेद्याय महात्मने ॥ १९ ॥

एकः सर्वस्य जगतः पालको नाशकस्तथा।
एकोऽप्यनेकधा भासि पल्वलेषु यथा रविः ॥ २० ॥

त्वत्तो नान्यं प्रपश्यामि भिन्नं परमया धिया।
यस्यांशाश्च वयं सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २१ ॥

आदिं न ते न चैवान्तं न मध्यं भगवन्विदुः।
नमस्ते शतशो देव भक्तिगम्याय वेधसे ॥ २२ ॥

पुरा त्वया महेशान मत्स्यरूपेण सर्वतः।
रक्षितं श्रृंगके बद्ध्वा नौरूपां पृथिवीमिमाम् ॥ २३ ॥

मनुना संस्तुतश्चासि निहतः शंखकासुरः।
ततः कमठरूपेण धृता भूमिस्त्वया प्रभो ॥ २४ ॥

पुनर्वराहरूपेण वारम्वारं धृता धरा।
हिरण्याक्षस्त्वया देव निहतो दितिजेश्वरः ॥ २५ ॥

नारसिंहवपुः कृत्वा वरदृप्तो महासुरः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नखास्त्रेण हतस्त्वया ॥ २६ ॥

अदित्याः गर्भसम्भूतो वामनत्त्वमुपागतः।
इन्द्रराज्यमभिप्सन्यो बलिर्वै छलितस्त्वया ॥ २७ ॥

भार्गवोऽपि पुरा देव भूत्वा त्वं जमदग्निजः।
रामनामा महेशान निहता दानवांशजाः ॥ २८ ॥

क्षत्रियाः कार्तवीर्याद्याः निहता रक्षणे त्वया।
पौलस्त्याद्याः महात्मानो निहता राममूर्त्तिना ॥ २९ ॥

ब्रह्मा रूप से आप सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णु रूप से आप उसका पालन करते हैं और रुद्र रूप से आप सृष्टि का नाश करने वाले हैं। हे देव ! आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥

आपका कोई छेदन नहीं कर सकता, आपका कोई भेदन नहीं कर सकता। आप महेश्वर महात्मा के लिए नमस्कार है। आप जलाये नहीं जा सकते। कोई आपको किसी प्रकार गला नहीं सकता। आप सुरेश महात्मा के लिए नमस्कार है ॥ १९ ॥

समस्त संसार के आप एक ही पालनकर्त्ता तथा विनाशकर्त्ता हैं। किन्तु जिस प्रकार सूर्य पृथक्-पृथक् तालाबों में पृथक्-पृथक् बिम्ब रूप में प्रकाशित दिखाई देता है उसी प्रकार संसार में आप एक होने पर भी अनेक रूपों में दिखाई देते हैं ॥ २० ॥

परम पवित्र बुद्धि के विचार से मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं देखता हूँ। आपके अंश से ही हम सब ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर उत्पन्न हुये हैं ॥ २१ ॥

हम आपके आदि, मध्य तथा अन्त को नहीं जानते हैं। हे देव ! आप भक्ति-भाव से जाने जा सकते हैं। आपको सैकड़ों बार नमस्कार है ॥ २२ ॥

हे महेशान ! पहले आपने मत्स्य रूप के द्वारा चारों ओर से नौकारूप में इस भूमि की अपने सींग में बांध करके रक्षा की थी ॥ २३ ॥

मनु के द्वारा स्तुति किये जाने पर आपने शंखकासुर का वध किया था। हे प्रभो ! तदनन्तर कमठ रूप के द्वारा आपने भूमि का उद्धार किया था ॥ २४ ॥

हे देव ! फिर वराह रूप धारण करके आपने दैत्यों के राजा हिरण्याक्ष का वध किया था। इस प्रकार आपने वारम्वार भूमि का उद्धार किया ॥ २५ ॥

वर प्राप्त करके गर्व करने वाले महादैत्य हिरण्यकशिपु का आपने नरसिंह अवतार धारण करके अपने नखरूप अस्त्रों से विनाश किया था ॥ २६ ॥

अदिति माता के गर्भ से उत्पन्न होकर वामन अवतार धारण करके आपने इन्द्र के राज्य के अभिलाषी राजा बलि को छला था ॥ २७ ॥

हे महेशान ! हे देव ! पहले भार्गव वेश में भी जमदग्नि से उत्पन्न होकर, परशुराम अवतार धारण करके आपने बहुत दैत्यों का मारा था ॥ २८ ॥

आपने संसार की रक्षा के लिए कार्तवीर्य आदि क्षत्रियों का नाश किया। राम अवतार धारण करके आपने पुलस्त्यपुत्र रावण आदि महाबलशाली राक्षसों का वध किया ॥ २९ ॥

पुनः कंसादयो भूपाः पापाचारा महेश्वर ।
कृष्णनाम्ना त्वया देव हता रक्षणहेतवे ।। ३० ।।

युगान्ते म्लेच्छजातीयान्वेदधर्मविनिंदकान् ।
क्षयं नयसि भो देब कल्किरूपी भवान् हरे ।। ३१ ।।

त्वदंशभूता ब्रह्माद्याः सृष्टिकर्मादि कुर्वते ।
त्वमेव सर्वजगतः स्थितिकर्ता कृतान्तकः ।। ३२ ।।

कोटिसूर्यप्रतीकाशो नानाभरणदीप्तिकः[1] ।
शंखं चक्रं गदां पद्मं धारयन्वै चतुर्भुजः ।। ३३ ।।

संस्तूयमानो मुनिभिर्महद्भिः सनकादिभिः ।
रमया हृतवामांगो घनश्यामो विपासनः ।। ३४ ।।

ददृशे सर्वदेवैस्तु ब्रह्मादिभिरकल्मषैः ।
दृष्ट्वा तान् दुःखसम्पन्नान् स्तुवतो मनसा गिरा ।
उवाच भक्तिसम्पन्नान् ब्रह्मादींस्त्रिदिवौकसः ।। ३५ ।।

श्रीभगवानुवाच—

ज्ञातं मे भवतां दुःखं रक्तबीजो महासुरः ।
ब्रह्मणो वरदानेन दृप्तोऽस्ति सुरसत्तमाः ।। ३६ ।।

देवेन मनुजेनापि पशुपक्षिसरीसृपैः ।
अन्यैश्च प्राणिभिश्चापि न वध्योऽयं सुरासुरैः ।। ३७ ।।

अन्वीक्षितं मया तस्य विचार्य्यं बहुधा सुराः ।
तद्वोऽहं सम्प्रक्ष्यामि शृणुध्वं कारणं महत् ।। ३८ ।।

प्रकृतिर्या परा नित्या ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
इच्छया या जगत्सर्वं सृजते सचराचरम् ।। ३९ ।।

तस्या एव वयं देवा अंशभूता महौजसः ।
न देवः सा न गन्धर्वो न यक्षो न च राक्षसः ।। ४० ।।

१. दीपितः ।

फिर हे महेश्वर देव ! कृष्ण अवतार में आपने सृष्टि की रक्षा के लिये दुराचारी कंस आदियों का वध किया ।। ३० ।।

हे देव ! हरे ! कलियुग के अन्तिम काल में वेद तथा धर्म की निन्दा करने वाले म्लेच्छ जनों का आप कल्किरूप धारण करके विनाश करेंगे ।। ३१ ।।

आपके अंश से उत्पन्न होकर ब्रह्मा आदि देवता सृष्टि कर्म में प्रवृत्त होते हैं । आप ही समस्त जगत् के कर्त्ता एवं विनाशकर्त्ता हैं ।। ३२ ।।

अनेक अलंकारों से अलंकृत होने से प्रकाशमान तथा करोड़ों सूर्यों के तेज को धारण करने वाले आप चार भुजाओं से शंख-चक्र-गदा एवं पद्म को धारण करते हैं ।। ३३ ।।

मेघ के सदृश श्याम वर्ण वाले आपके वामांग में लक्ष्मी विराजमान हैं । सनक आदि महामुनि आपकी स्तुति करते हैं ।। ३४ ।।

पाप रहित ब्रह्मा आदि सब देवताओं ने भगवान् विष्णु के दर्शन किये । मन से और वाणी से स्तुति करते हुये, परन्तु दुःखी तथा भक्ति से भरे उन देवताओं से विष्णु ने कहा ।। ३५ ।।

श्री भगवान् बोले—

हे श्रेष्ठ देवताओ ! आपके दुःख को मैंने जान लिया है । रक्तबीज महादैत्य ब्रह्मा से वर प्राप्त करके बड़ा अभिमानी हो गया है ।। ३६ ।।

देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप और अन्य किसी भी प्राणी से तथा देवताओं एवं राक्षसों से इसका वध नहीं हो सकता ।। ३७ ।।

अनेक प्रकार से विचार करके मैंने उसका कारण जान लिया है । हे देवताओ ! आपसे मैं उस महान् कारण को बताता हूँ, आप सुनिये ।। ३८ ।।

वह नित्य प्रकृति रूप परा शक्ति ब्रह्मा-बिष्णु तथा शिव स्वरूप है । वही अपनी इच्छा से इस समस्त चर-अचर जगत् की रचना करती है ।। ३९ ।।

उसी के अंश से हम सब महातेजस्वी देवता उत्पन्न हुये हैं । वह न तो देवता है, न गन्धर्व है, न यक्ष है, और न राक्षस है ।। ४० ।।

गुह्यको न पिशाचोऽस्ति न नरो न मृगादिकः ।
सेयं परा महामाया हनिष्यति महासुरम् ।। ४१ ।।

गच्छध्वं च मया सार्द्धं कैलासे शिवमंदिरे ।
स्तुता सा भवतां दुःखं हनिष्यति विनिश्चयात्[1] ।। ४२ ।।

पूर्वं च महिषो दैत्यो निहतश्च तथैव हि ।
मधुकैटभनामानौ तत्प्रसादेन मे हतौ ।। ४३ ।।

तस्या एव कृपादृष्ट्या सर्वं संपाद्यते सुखम् ।
तामाराध्य महेशानीं सुखिताः संभविष्यथ ।। ४४ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति ते सम्मतिं कृत्वा वासुदेवादयः सुराः ।
जग्मुः कैलासनिलये यत्र देवो महेश्वरः ।। ४५ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे कैलासगमने चतुरशीतितमोऽध्यायः ।

पंचाशीतितमोऽध्यायः

रक्तबीजवधार्थं विष्ण्वादिदेवैः कालीस्तुतिः

वसिष्ठ उवाच—

केदारमंडले दिव्ये मन्दाकिन्याः परे तटे ।
सरस्वत्यास्तटे सौम्ये कालीतीर्थमिति स्मृतम् ।। १ ।।

तत्र गत्वा प्रिये देवा रक्तबीजवधैषिणः ।
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं मायायाः परमात्मनः ।। २ ।।

१, महासुरस् ।

वह न तो गुह्यक है, न पिशाच है, न मनुष्य है और न मृग आदि है। वही पराशक्ति महामाया इस महादैत्य को मारेगी ॥ ४१ ॥

आप सब देवता मेरे साथ कैलास पर्वत पर शंकर के स्थान में चलो। स्तुति करने से वह शक्ति आपके दुःख रूप रक्तबीज का निश्चय से वध करेगी ॥ ४२ ॥

पहले उन्हीं शक्ति ने महिषासुर नाम के दैत्य को मारा था। उसी शक्ति के के प्रसाद से मैंने मधु-कैटभ दैत्यों का वध किया था ॥ ४३ ॥

उसी शक्ति की कृपा दृष्टि से समस्त सुख सम्पादित होते हैं। आप उस महेश्वरी शक्ति की आराधना करके ही भविष्य में सुखी होओगे ॥ ४४ ॥

बसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार सम्मति करके विष्णु भगवान् आदि समस्त देवता उस कैलास पर्वत पर गये, जहां महादेव जी विराजमान थे ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालीतीर्थमाहात्म्य
में रक्तबीज वध में कैलास गमन के प्रसग में चौरासीवां
अध्याय पूरा हुआ।

पिचासीवां अध्याय

रक्तबीज का वध करने के लिये विष्णु आदि देवताओं द्वारा काली की स्तुति।

वसिष्ठ ने कहा—

दिव्य केदार क्षेत्र में मन्दाकिनी के दूसरे तट पर सरस्वती के सौम्य तट पर कालीतीर्थ विख्यात है ॥ १ ॥

हे प्रिये ! वहां जाकर रक्तबीज को मारने के इच्छुक देवताओं ने परमात्मा की माया की स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ २ ॥

देवा ऊचुः —

नताः स्म इन्दीवरनीलशोभां रक्ताम्बरां रक्तसुगन्धभूषाम् ।
रक्ताननां रक्तविवीटिकां च श्रोरक्तदन्तामनिशं भजामः ।। ३ ।।

नारायणीं नारदसेवितां च दुःखापहां दनुजदैत्यविनाशिनीञ्च ।
धन्यां च धन्यधनदादिसुसेवितां च श्रीकालिकां कनकचक्षुधरां भजामः ।। ४ ।।

चण्डाट्टहासकरिणीं करिचर्म्मवस्त्रां भीमां महादनुजभैरविकां महेशीम् ।
कंकालजालविलसद्गृहभूषितांगीं नुर्मुण्डमालविलसद्धृदयां भजामः ।। ५ ।।

नेत्रत्रयां भगवतीं भवभाविनीं तां भूमाक्षिकां ज्वलितकाञ्चनरूपनेत्राम् ।
जिह्वाशतज्वलितसृक्किणिकां महेशीं नासापुटान्तरमिलज्ज्वलनां भजामः ।।६।।

यस्या महेशहरिब्रह्मसुरेशकाद्याः कर्तुं स्तुतिं भगवति प्रभवो वयं न ।
तां देवतां दनुजरक्तविलिप्तवक्त्रां स्मेराननां भवविमुक्तिकरां भजामः ।।७।।

स्त्रीरूपिभिः शिवगणैर्गगनावरूपैर्नृत्यद्भिरम्ब गिरिराज अधित्यकायाम् ।
गायद्भिरेव भवतीं भवभूषणां तां श्रीदक्षिणां धनदधेनुमरं भजामः ।। ८ ।।

शिवः परोऽपारगुणो निरातमा निरञ्जनो यो निरुपद्रवश्च ।
यदिच्छया सर्वमिदं चराचरं करोति तां देवनुतां भजामः ।। ९ ।।

लक्ष्मीवपुर्धृतवतीं मुरनाशनस्य गेहे वपुर्धृतवतीं द्रुहिणस्य वाचम् ।
श्रीपार्वतीति कथितां पुरनाशनस्य तां देवतां निखिलरूपधरां भजामः ।।:१० ।।

देवताओं ने कहा—

नीलकमल के सहश नील शोभा को धारण करनेवाली, लाल वस्त्रों से अलंकृत, लाल सुगन्ध द्रव्यों से विभूषित, लाल मुख वाली, लाल रंग के पान को मुख में रखे हुये, लाल दांतों से सुशोभित देवी की हम दिनरात उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

जो साक्षात् नारायण की शक्ति है, जिसकी नारद सेवा करते हैं, जो दुःखों का नाश करने वाली है, जो दानवों और दैत्यों को मारने वाली है, जो धन्य है तथा जो कुबेर आदि प्रशंसनीय जनों से पूजित हुई है, सुवर्ण के समान जिसके नेत्र हैं, ऐसी श्रीकाली का हम भजन करते हैं ॥ ४ ॥

परम उत्कट हास करने वाली, हस्तिचर्म के वस्त्रों को धारण करने वाली, भयानक स्वरूप वाली, महान दानवों को भी अत्यन्त भय देने वाली, जो स्वयं भैरवी तथा महेश्वरी है । अनेक कपाल जिनके घर और शरीर में शोभायमान हैं, जिसने नरों की मुण्डमालाएं धारण की हुई हैं, ऐसी शक्ति का हम हृदय से भजन करते हैं ॥ ५ ॥

जिस भगवती के तीन नेत्र हैं, जो शिव की भावना करने वाली है, जिसके लिये पृथिवी मक्खी के समान है, जिसकी आंखें तपाये गये सुवर्ण के समान हैं, लपलपाती अपनी सैकड़ों जिह्वाओं से जिसके अधरों के कोण जलते रहते हैं, नासिका पुटों में जिसकी लपटें निकलती हैं, ऐसी महेश्वरी का हम भजन करते हैं ॥ ६ ॥

हे भगवति ! जिसकी स्तुति करने के लिए शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता तथा हम लोग भी सामर्थ्य नहीं रखते, जिनका मुख दानवों के रक्त से संलिप्त है, जो स्मितमुखवाली देवी है, जो संसारबन्धन से मुक्ति देने वाली है, ऐसी तुम्हारा हम भजन करते हैं ॥ ७ ॥

हिमालय की अधित्यकाओं में स्त्री रूप धारी, आकाश के समान स्वरूप वाले, नाचते हुये शिवगणों के द्वारा किये गये गान को गाते हुये हम सौभाग्य को देने वाली कामधेनु रूपा श्रीदक्षिणा भगवती का भजन करते हैं ॥ ८ ॥

जिसकी इच्छा से अनन्त गुणों वाले, अनात्मा, निरञ्जन, उपद्रव रहित, परम शिव समस्त इस चराचर का निर्माण करते हैं, उस देवताओं द्वारा स्तुति की गई देवी का हम भजन करते हैं ॥ ९ ॥

मुर नाम के दैत्य को मारने वाले विष्णु के लिए जिसने लक्ष्मी रूप धारण किया था, ब्रह्मा के घर में जिसने वाणी (सरस्वती) का शरीर धारण किया था, तथा पुर नामक दैत्य को मारने वाले शिव के लिए जिसने पार्वती रूप धारण किया था, इस प्रकार अनेक रूप धारण करने वाली उस शक्ति को हम भजते हैं ॥ १० ॥

श्रीकामरूपनिलयां वरविंध्यवासां जालन्धरे ज्वलनरूपधरां भवानीम् ।
कालीतिनामविभवां गिरिराजपीठे तां कालिकां कलिहरां सततं भजामः ।।११।।

कोटीनभासुरमहत्कनकप्रपीठे सिंहासने मणिगणांचितसर्वधाम्नि ।
भास्वत्कलाधरवरांचितशेखरां तां नारायणीं सुरवरार्चितकां भजामः ।।१२।।

संसारसागरसुतारणपादपोतां भक्तार्तिनाशनधृतावतरां महेशीम् ।
वेदान्तशास्त्रपरिगम्यतरां भवानीं भावेन सेवनगमां सुतरां भजामः ।। १३ ।।

देवि त्वया भगवति प्रलयान्तकाले संमोह्यते हरिरसावुदधि प्रसुप्तः ।
तन्नाभिजातसरसीरुहजन्मनस्त्वां दुःखस्य नाशनकरीं भवतीं भजामः ।।१४।।

यथा त्वया महिषनाशनहेतुभूतं सर्वात्मकं वपुररं हि धृतं भवान्या ।
सिंहोपरिप्रविलसत्कनकाभिरामं मत्तं मदारुणदशं भवतीं भजामः ।। १५ ।।

भूयः पुरा भगवती भवतीह लोकान् दुर्भिक्षपीडितत राञ्छतवार्षिकीये ।
दृष्ट्वा शतेन नयनांबुरुहां सुमातः सर्वान् हि रक्षितवतीं भवतीं भजामः ।। १६।।

वसिष्ठ उवाच—
इति स्तुता सा गिरिशस्य पत्नी ब्रह्मादिभिर्देवगणैर्नतांसैः ।
आविर्बभूवाथ हिमालयस्य श्रृंगे यथा प्रातरिनोऽवभासे ।। १७ ।।

तेजोराशिं तां तु दृष्ट्वा तदानीं नेमुर्भूमौ भक्तियुक्ता नतांसाः ।
वारम्वारं रक्तबीजेन तप्ता दृष्ट्वा देवीं तोषमापुः शुभांगीम् ।। १८ ।।

१. यथा ... भजामः" पाठ इसमें नहीं है ।

जिसका कामरूप देश तथा विन्ध्याचल पर्वत पर निवास स्थान है, जिस भवानी ने जालन्धर में ज्वालारूप धारण किया है, हिमालय के पृष्ठभाग पर जो कालीरूप से विख्यात है, कलि का हरण करने वाली उस कालिका का हम भजन करते हैं।। ११ ।।

कनकपीठ में जिसकी करोड़ों सूर्यों के सदृश तेजोमय कान्ति है, जो उत्तम मणियों से विभूषित सिंहासन पर विराजमान है, जिसने अपने मस्तक के ऊपर प्रकाशमान चन्द्रमा की कला को धारण किया है, देवगुणों से पूजित ऐसी नारायणी भगवती का हम भजन करते हैं ।। १२ ।।

संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए जो समुद्री यान है, जो महेश्वरी भक्तों के दुःखों का नाश करने वाली है, जिसका ज्ञान वेदान्तशास्त्र के ज्ञान से सम्भव है, जिसकी सेवा भाव-भक्ति से ही हो सकती है, ऐसी भवानी का हम भजन करते हैं ।। १३ ।।

हे देवि ! भगवति ! प्रलयकाल के अन्त में क्षीर समुद्र में शयन करते हुये विष्णु को तुम ही मोहित करती हो, भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा के दुःखों का भी तुम ही नाश करती हो। अतः आप भवानी का हम भजन करते हैं ।। १४।।

जिस प्रकार तुम भवानी ने महिषासुर का वध करने के लिये शक्तिशाली शरीर को धारण किया था, जो शरीर स्वर्ण के समान कान्तिमान्, मदिरा के मद से मस्त दशा वाला तथा सिंह के ऊपर शोभायमान था, ऐसी तुम्हारा हम भजन करते हैं ।। १५ ।।

हे श्रेष्ठ माता ! पहले जब सौ वर्षों तक का दुर्भिक्ष पड़ा था, तब आपने ही अपने कमलरूपी सैकड़ों नेत्रों से दुर्भिक्ष पीड़ित लोकों को देखकर उनकी रक्षा की थी । अतः हम आपका भजन करते हैं ।। १६ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा जब शिवपत्नी पार्वती की स्तुति की गई, तब वह हिमालय के शिखर पर इस प्रकार प्रादुर्भूत हुई, जिस प्रकार प्रातःकाल सूर्य का उदय होता है ।। १७ ।।

उस तेजोराशि शक्ति को देखकर उस समय भक्तियुक्त होकर भूमि में नत मस्तक होकर देवताओं ने शक्ति को प्रणाम किया । रक्तबीज से संतप्त देवताओं ने शक्ति के दर्शन करके उस शुभ श्रीभगवती देवी की वार-बार स्तुति की ।। १८ ।।

दृष्ट्वा तान्वै भक्तियुक्तांस्तदार्त्तान्देवान्सर्वान् विष्णुब्रह्मादिकांश्च ।
तुष्टोवाच दैत्यनाशस्य हेतुर्नो भेतव्यं दैत्यराजादिदानीम् ॥ १९ ॥

सन्तुष्टाऽस्मि प्रेमतो भक्तितश्च स्त्युत्या देवाश्चानया ध्यानमूर्त्त्या ।
अस्मिन्स्थाने ये करिष्यन्ति पूजां स्नानं दानं स्तोत्रमेतच्च काले ।
तेषां यद्यन्मानसे दैवतं स्यात्तत्सर्वे मे ते लभेयुः प्रसादात् ॥ २० ॥

कालीतीर्थं नामतश्चेदमत्र तुष्टा वोऽहं मुक्तिदं भावगम्यम् ।
यूयं देवा निर्भया रक्तबीजात्स्वं स्वं स्थानं गच्छत ब्रह्मपूर्वाः ॥ २१ ॥

कालेनाहं रक्तबीजं वधिष्ये धन्याश्चैवं देवतास्ते भवन्तु ।
कृत्वा चेदं भाषितं ते भवान्याः स्वं स्वं स्थानं कालमन्वेषयन्तः ॥ २२ ॥

आगस्तस्याः कारितुं रक्तबीजाद्देवर्बिं ते नारदं प्राप्य प्रोचुः ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे
श्रीकालीस्तोत्रं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

षडशीतितमोऽध्यायः

**देवप्रार्थितेन नारदेन रक्तबीजस्य काल्या युद्धाय प्रेरणं, युद्धोद्योगः
रक्तदंष्ट्रादीनां ससैन्यं युद्धाय प्रयाणं समराङ्गणाच्च पलायनम्**

वसिष्ठ उवाच—

ततो देवाः समागत्य नारदं जगदुर्मुनिम् ।
देवकार्य्यं कुरु प्राज्ञ गच्छ दानवमन्दिरे ॥ १ ॥

उन दुःखी भक्तियुक्त ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवताओं को देखकर सन्तुष्ट मन हो वह शक्ति दैत्यों के नाश के लिए देवताओं से बोली कि इस समय आप लोगों को उस दैत्यराज रक्तबीज से भय नहीं करना चाहिए ।। १९ ।।

मैं आपकी भक्ति, प्रेम, स्तुति और इस प्रकार की ध्यानमूर्ति से सन्तुष्ट हूँ। इस स्थान में जो लोग पूजन, स्नान, दान और स्तोत्रपाठ करेंगे, उनके मन में जिस जिस काम की अभिलाषा होगी वह मेरे प्रसाद से परिपूर्ण हो जावेगी ।। २० ।।

इस स्थान का नाम कालीतीर्थ होगा। मैं तुमसे प्रसन्न हो गई हूँ। मुक्ति को देनेवाला यह स्थान भक्तिभावना से ही प्राप्त हो सकेगा। ब्रह्मा आदि आप समस्त देवता रक्तबीज से निर्भय होकर अपने-अपने स्थान को चले जाओ ।। २१ ।।

उचित समय पाकर मैं रक्तबीज को मारूँगी, आप सब देवता लोग धन्य हो। देवताओं ने शक्ति के कथनानुसार वैसा ही किया और अपने-अपने स्थान को जाकर समय की प्रतीक्षा करने लगे ।। २२ ।।

तथा भगवती का अपराध रक्तबीज से कराने के लिए देवताओं ने देव ऋषि नारद जी से कहा ।। २३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालीतीर्थमाहात्म्य में रक्तबीज वध में श्रीकालीस्तोत्र नाम का अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ८६

देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर नारद द्वारा रक्तबीज को काली के साथ युद्ध करने की प्रेरणा देना, युद्ध का उद्योग, सेनाओं को साथ लेकर रक्तदंष्ट्र आदि का युद्ध के लिये जाना और युद्ध क्षेत्र से पलायन करना

वसिष्ठ ने कहा—

उसके बाद देवताओं ने नारदमुनि को बुलाकर उनसे कहा हे प्राज्ञ ! आप दानवों के घर जाकर देवकार्य का सम्पादन कीजिये ।। १ ।।

कुर्य्याद्यथा महादेव्या अपराधं मुनीश्वर।
रक्तबीजवधार्थाय यतस्व मतिमुत्तमाम् ॥ २ ॥

इति तेषां तु विज्ञप्तिं श्रुत्वा मुनिवरस्तदा।
ययौ ह्याकाशमार्गेण जटामुकुटमण्डितः ॥ ३ ॥

रक्तबीजपुरं रम्यं नानाकौतुकमण्डितम्।
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ४ ॥

विविधैरप्सरोभिश्च पन्नगैर्गुह्यकैस्तथा।
सेवितं मुनिवर्य्यैश्च ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥

स्वर्णप्राकारवप्राढ्यं रथ्यापणविराजितम्।
मणिप्रकरपुष्पाढ्यं पताकाध्वजमालिनम् ॥ ६ ॥

प्रसन्ननरनारीकं गवाक्षाट्टालकान्वितम्।
सुमेरुश्शृंगसदृशैर्गृहैश्च परिशोभितस् ॥ ७ ॥

ददर्श भगवान्विप्रवर्य्यो नारदनामकः।
ऐरावतो वासवस्य तथा चोच्चैःश्रवा हयः ॥ ८ ॥

पारिजातादयो वृक्षा अन्यद्वस्तु न किञ्चन।
अग्नेरजस्त्रिशूलं च तथाग्नेयं च द्रव्यकम् ॥ ९ ॥

यमस्य महिषं चैव दंडशक्ती तथा प्रिये।
वरुणस्य तथा पाशः कच्छपश्च तथा हृतः ॥ १० ॥

वायवीयं च कौवेरं ऐशं ब्राह्ममथाऽपि वा।
सर्वं ददर्श तत्रैव ह्याहृतं वै बलीयसा ॥ ११ ॥

आगतं नारदं दृष्ट्वा रक्तबीजो महासुरः।
उत्थाय कृतवान्सर्वं पाद्यमाचमनीयकम् ॥ १२ ॥

अर्घ्यं च विधिवद्दत्त्वा वेशयामास स्वासनम्।
उवाच प्रांजली राजा रक्तबीजो महासुरः ॥ १३ ॥

हे मुनीश्वर ! आप रक्तबीज का वध करने के लिये इस प्रकार की उत्तम मति कीजिये जिससे कि वे महादेवी के साथ अपराध करने के लिए उद्यत हो सके ॥ २ ॥

इस प्रकार उन देवताओं के निवेदन को सुनकर श्रेष्ठमुनि नारद ने तब जट-मुकुट से सुशोभित हो आकाशमार्ग से प्रस्थान किया ॥ ३ ॥

रक्तबीज का नगर अनेक कौतुकों से समन्वित था। देवता, दानव, गन्धर्ब, यक्ष, राक्षस और किन्नरों से ॥ ४ ॥

तथा अनेक अप्सराओं से और नागगण, गुह्यक एवं हजारों श्रेष्ठ मुनियों और ब्राह्मणों से सेवित था ॥ ५ ॥

उस नगर का परकोका सुवर्ण द्वारा निर्मित था तथा वह सुन्दर गलियों और दुकानों से सुशोभित हो रहा था। मणियों के समुदाय रूप सुन्दर पुष्पों से वह समृद्ध था तथा ध्वज।ओं और पताकाओं की माला को धारण किये हुये था ॥ ६ ॥

प्रसन्न नरनारियों से वह नगर व्याप्त था, उसमें झरोखे और अटारियां थीं। सुमेरु पर्वत के शिखर के समान ऊंचे भवनों से वह नगर सुशोभित हो रहा था॥ ७ ॥

ब्राह्मण श्रेष्ठ भगवान् नारद ने उस नगर में इन्द्र के ऐरावत हाथी तथा उच्चैःश्रवा नाम के घोड़े को देखा ॥ ८ ॥

पारिजात आदि वृक्षों को भी नारद ने वहां देखा। उस नगर में नारद ने अन्य कोई सामान्य वस्तु नहीं देखी। तथा अग्नि के अजु, त्रिशूल और आग्नेयास्त्र की भी उन्होंने देखा ॥ ९ ॥

हे प्रिये ! यम का महिष, दण्ड और शक्ति भी उन्होंने वहां देखे। वरुण के अपहरण किये गये पाश और कच्छप को भी नारद ने वहां देखा ॥ १० ॥

वलवान् रक्तबीज द्वारा अपहरण की गई वायु, कुबेर, ब्रह्मा तथा शिव की समस्त वस्तुयें उन्होंने वहां देखी ॥ ११ ॥

नारद को अपने घर में आये देखकर महा असुर रक्तबीज ने उठकर उन्हें पानी एवं आचमन आदि देकर समस्त शिष्टाचार का पालन किया ॥ १२ ॥

अर्घ्य आदि को विधिपूर्वक देकर महासुर रक्तबीज ने उस नारद को अपने सिंहासन पर बिठाया और हाथ जोड़कर कहा ॥ १३ ॥

स्वागतं ते महाभाग कुशलं तव सुव्रत।
किमागमनकृत्यं ते धन्योऽस्मि दर्शनात्तव ॥ १४ ॥

नारद उवाच—

ब्रह्मलोकं गतः पूर्वं ततः कैलासमभ्यगाम्।
यानीन्द्रादिषु लोकेषु रत्नभूतानि दानव।
सर्वाणि तानि रत्नानि तव गेहे वसन्ति वै ॥ १५ ॥

सर्वाधिकं तथैश्वर्य्यं दृष्टं तव महामते।
त्वादृशो न बभूवापि नास्ति नो भविताऽसुरः ॥ १६ ॥

वशीकृता त्रिलोकी वै येन दानवसत्तम।
वरं चैव तथा प्राप्तं सर्वेभ्योऽभयमेव च ॥ १७ ॥

तपश्चैव तथा तप्तं त्वया सर्वोत्तमं प्रभो ॥ १८ ॥

रक्तबीज उवाच—

भगवन्मुनिशार्दूल सर्वगोऽसि यतो मुने।
पृच्छामि त्वां महाभाग तद्वदस्व मम प्रभो ॥ १९ ॥

क्वचिद्दृष्टं त्वया विप्र जनितं यन्मया पुरम्।
यो मदाज्ञाकरो नास्ति देवो वा दानवोऽपि वा ॥ २० ॥

एतादृक् च तथैश्वर्य्यं मदीयं वै यथा स्थितम्।
तन्मे वद महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामुने ॥ २१ ॥

नारद उवाच—

सम्यक्पृष्टं त्वया साधो गतः सर्वत्र वै ह्ययम्।
त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे देवा वाऽप्यथ दानवाः ॥ २२ ॥

परमेकत्र कैलासे शिवोऽस्ति परदुर्ज्जयः।
किं वदामि तदैश्वर्य्यं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ॥ २३ ॥

सहस्रयोजनायामं कल्पपादपकाननम्।
यत्र सर्वाधिका तन्वी रत्नभूता त्रिलोकके ॥ २४ ॥

तस्य धैर्य्यस्य माहात्म्यादजेयः स सुरासुरैः।
यस्येच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम् ॥ २५ ॥

हे महाभाग ! आपका स्वागत है। हे सुव्रत ! आपकी कुशल होवे। आपके दर्शनों से मैं धन्य हो गया हूँ। अब आप बताइये कि आपका यहां आना कैसे हुआ ? मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया हूँ ॥ १४ ॥

नारद ने कहा—

मैं पहले ब्रह्मलोक में गया। उसके बाद कैलास पर गया। हे दानव ! जो रत्न इन्द्र आदि लोकों में विद्यमान थे वे समस्त रत्न आपके घर पर निवास कर रहे हैं ॥ १५ ॥

हे महामते असुर ! आप सबसे अधिक ऐश्वर्य्यशाली हैं, आपके समान न कोई पहले हुआ है और न कोई भविष्य में होगा ही ॥ १६ ॥

हे दैत्यप्रवर ! आपने तीनों लोकों को वश में कर लिया हैं और आपने सबसे अभय देने वाले वरों को प्राप्त किया है ॥ १७ ॥

हे प्रभो ! आपने सबसे श्रेष्ठ तप किया है ॥ १८ ॥

रक्तबीज ने कहा—

हे भगवान् ! श्रेष्ठमुनि ! नारद ! आप सर्वत्र विचरण करते हो। हे मुने ! महाभाग ! मैं आपसे कुछ प्रश्नों को पूछता हूँ, आप उनको कहिये ॥ १९ ॥

हे विप्र ! आपने मेरे पुर के समान कहीं कोई पुर देखा है। तथा जो मेरी आज्ञा का पालन न करता हो ऐसा देवता या दानव आपने कहीं देखा है ॥ २० ॥

और मेरे समान ऐश्वर्य का यदि आपने कहीं अवलोकन किया है ? तो हे महामुने ! आप सर्वज्ञ हैं। हे महाभाग ! उसे आप मुझे बताइये ॥ २१ ॥

नारद ने कहा—

हे सज्जन ! आपने उचित ही कहा है कि आप सर्वत्र जाते हैं। समस्त देवता तथा दैत्य आपकी आज्ञा का पालन करते हैं ॥ २२ ॥

किन्तु एक तो कैलास पर परम अजेय शिव हैं। उनके ऐश्वर्य का आपसे किस प्रकार से वर्णन करूँ, क्योंकि उनका ऐश्वर्य तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥ २३ ॥

हजार योजन प्रमाण का जो कल्पवृक्षों का कानन है, वहां सबसे उत्तम रूपवती तीनों लोकों की रत्नभूत युवती नारी विद्यमान हैं ॥ २४ ॥

उसके धैर्य के माहात्म्य से वे शंकर, देवता तथा दैत्यों से अजेय हैं तथा उसकी इच्छा से समस्त चराचर का निर्माण होता है ॥ २५ ॥

रक्तबीज उवाच—

कथं शिवो महाभाग ह्यजेयोऽस्ति सुरासुरैः ।
किं कारणं विप्रवर्य्यं तद्वदस्व महामते ।। २६ ।।

नारद उवाच—

[2]ऊर्ध्वद्धरेता यतो देवो [3]यस्य नास्ति त्रिलोकके ।
अत एव स दुर्जेयः ससुरासुरपन्नगैः ।। २७ ।।
तं चेत्ते जेतुमिच्छास्ति पूर्वं तद्वैर्य्यनाशने ।
कुरु बुद्धिं महाभाग सर्वं ते सम्भविष्यति ।। २८ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति तस्य मुनेर्वाक्यं श्रुत्वा दनुसुतस्तदा ।
चकार विजये बुद्धिं श्रीशिवस्य परात्मनः ।। २९ ।।
नारदोऽपि ययौ स्वर्गं दानवैः प्रतिपूजितः ।
स्त्रीवेषं च तदा कृत्वा रक्तबीजो महासुरः ।। ३० ।।
त्रैलोक्यदुर्लभं रूपं कृत्वा रुद्रसमीपतः ।
ययौ वेगेन कैलासे तन्मनो मोहनाय वै ।। ३१ ।।
दृष्ट्वा शिवश्च तां नारीं रूपयौवनशालिनीम् ।
पार्वतीरूपिणीं तन्वीं किञ्चिन्मोहवशं गतः ।। ३२ ।।
तावत्पार्वत्यपि कैश्चिदागता शिवसन्निधिम् ।
तां च दृष्ट्वा स्ववामांगीं मनो द्वैविध्यमागतम् ।। ३३ ।।
विचार्य्यं दानवं तं तु शशाप च महासुरम् ।
पार्वतीछद्मना दुष्ट यन्मां मोहितुमागतः ।
हनिष्यति ततस्त्वां हि पार्वत्येव महेश्वरी ।। ३४ ।।
इति तद्वचनं श्रुत्वाऽवहेल्य[4] हि च तद्वचः ।
ययौ स्वीये तथा धाम्नि मंत्रिवर्गेण [5]संगतः ।। ३५ ।।
मंत्रयामास दनुजो महादेवजयाय च ।
कथं सा पार्वती मह्यं भवेद्रागयुताऽसुराः ।। ३६ ।।
वामदेवजयेनाहं[6] बहु सम्पाद्यते मम ।
आकर्षणीया प्रथमं गृहिणी प्राणवल्लभा ।। ३७ ।।

---

१ ह्यहम् २. उर्द्धरेता ३. यतो ४. प्रहेल्य ५. संमतः ६. नेहं ।

रक्तबीज ने कहा—

हे महाभाग ! किस प्रकार शंकर देवताओं और दैत्यों से अजेय हैं ? हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! महामते ! वह क्या कारण है, आप मुझ से बोलिये ।। २६ ।।

नारद ने कहा—

तीनों लोकों में उनसे महान् ऊर्ध्वरेता कोई नहीं है । अतएव वे देवताओं, दानवों तथा नागों से अजेय हैं ।। २७ ।।

यदि उनको जीतने की आपकी इच्छा हो तो पहले उनके धैर्य-नाश के लिए अपनी बुद्धि बनाओ । हे महाभाग ! तब ही तुम्हारे लिये सब सम्भव हो सकेगा ।। २८ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार नारद मुनि के वाक्य सुनकर दनु के पुत्र उस दानव रक्तबीज ने परमात्मा शिव पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी बुद्धि बनाई ।। २९ ।।

नारद भी दानवों से सत्कृत होकर स्वर्गलोक को चले गये । तब महा असुर रक्तबीज ने स्त्री का वेश बनाकर ।। ३० ।।

तीनों लोकों में दुर्लभ रूप को धारण कर वह शंकर के समीप उनके मन को मोहित करने के लिए अति वेग से कैलास पर्वत पर गया ।। ३१ ।।

पार्वती का रूप धारण करने वाली उस रूपवती नवयुवती तन्वी स्त्री को देखकर शंकर कुछ देर के लिए मोहित हो गये ।। ३२ ।।

तब तक पार्वती देवी भी शिव के समीप आ गई । उस अपनी वामांगी को देखकर शंकर के मन में द्विविधा उत्पन्न हो गई ।। ३३ ।।

उन्होंने विचार किया कि यह तो दानव है । तब उस महा असुर को शिव ने शाप दिया कि हे दुष्ट ! पार्वती का वेश बनाकर मुझे छलने के लिए तू यहां आया है, इसलिए पार्वती महेश्वरी ही तेरा बध करेगी ।। ३४ ।।

इस प्रकार महादेव के वचन सुनकर वह उन बचनों की उपेक्षा करके अपने निवास स्थान को चला गया तथा अपने मन्त्रिमंडल के साथ ।। ३५ ।।

वह दनु का पुत्र महादेव पर विजय प्राप्ति के लिये मन्त्रणा करने लगा कि हे असुरो ! उस पार्वती का मुझ पर अनुराग कैसे हो ।। ३६ ।।

शंकर पर विजय से हमारे अनेक कार्य सम्पादित हो सकेंगे किन्तु सर्वप्रथम उनकी प्राणप्रिया गृहिणी पार्वती को आर्कषित करना चाहिए ।। ३७ ।।

धैर्य्यनाशञ्च तस्यापि स्वयमेव भविष्यति।
स्त्रिया मे मरणं केन भाव्यते तत्त्वदर्शिना ।। ३८ ।।

इन्द्राद्याः सकला देवा नाशं यस्य रणांगणे।
संमुखं किं पुनः स्त्रीयं भ्रान्त्या तेन प्रभाषितम् ।। ३९ ।।

गच्छध्वं यत्र सा देवी संस्थिता परसुन्दरी।
साम्नाऽऽनेया प्रथमतो नो चेदाकृष्य सत्त्वरम् ।। ४० ।।

ततस्तमपि कैलासे शिवमेकाकिनं वयम्।
जेष्यामो धर्मनिर्मुक्तं ततः श्रेयो लभामहे ।। ४१ ।।

पार्वतीविरहेणासौ निर्विचेष्टो भविष्यति ।। ४२ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इत्याज्ञप्ता दानवेन रक्तबीजेन तेऽसुराः।
धूम्राक्षचण्डमुण्डाद्या महत्सैन्येन वारिताः ।। ४३ ।।

ययुः कैलासभवनं यत्र देवी प्रतिष्ठिता।
कैलासशृंगमासीनां नानालंकारदोपिताम् ।। ४४ ।।

शतचन्द्रसमोद्योतां मोहयन्तीं जगत्त्रयम्।
तें तु दृष्ट्वा महादेवीं निपेतुर्धरणीतले ।। ४५ ।।

मोहस्य वशमापन्नाश्चिरात्संज्ञां प्रलभ्य च।
ऊचुस्त्राससमायुक्ताः प्रभोर्वचनगौरवात् ।। ४६ ।।

ऐन्द्रे याम्ये वारुणे च पाताले ब्रह्मलोकके।
न दृष्टा त्वादृशी नारी देवी वा मानवी हि वा ।। ४७ ।।

धिक्कर्मणो विधेर्देवि या त्वं विपिनसंगता।
निर्धनाय महेशाय व्याघ्रचर्माम्बराय च ।। ४८ ।।

भूतवेतालयुक्ताय व्यालयज्ञोपवीतिने।
भस्मप्रलिप्तदेहाय न कुलाय कपालिने ।। ४९ ।।

इससे उनके धैर्य का नाश स्वयं ही हो जायेगा। स्त्री द्वारा मेरे मरने की सम्भावना कौन विचारशील व्यक्ति कर सकता है ।। ३८ ।।

युद्ध स्थल में जिसके सामने इन्द्र आदि समस्त देवता नष्ट हो गये, उसके सामने स्त्री क्या कर सकेगी, अतः "स्त्री के द्वारा तेरी मृत्यु होगी" यह बात महादेव के द्वारा भ्रान्ति से कही हुई प्रतीत होती है ।। ३९ ।।

आप लोग उस स्थान पर जाओ जहां परम सुन्दरी वह देवी विद्यमान है। पहले तो शालीनता से ही उसे यहां लाना। यदि ऐसे में वह न आये तो बलात् खींचकर जल्दी उसे यहां लाना ।। ४० ।।

तदनन्तर धर्म से रहित, कैलास पर्वत पर अकेले रहने वाले उस शिव को भी हम जीत लेंगे, तब हमारा कल्याण होगा ।। ४१ ।।

पार्वती के विरह से वह महादेव भी चेष्टारहित हो जायगा ।। ४२ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

दानव रक्तबीज से इस प्रकार की आज्ञा पाकर धूम्राक्ष, चण्ड तथा मुण्ड आदि असुर अपनी महती सेना के साथ ।। ४३ ।।

कैलास भवन गये, जहां कैलासपर्वत की चोटी पर बैठी हुई अनेक अलंकारों से उज्जवल देवी पार्वती प्रतिष्ठित थीं ।। ४४ ।।

वह देवी सैकड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्ति वाली थी, अतः वह देवी तीनों लोकों को मोहित कर रही थी। उस महादेवी को देखकर वे असुर भूमि पर गिर पड़े ।। ४५ ।।

पहले वे मोहित हो गये और पुनः जब वे चैतन्य अवस्था में आये तब वे अपने राजा के वचन के गौरव से भयभीत हुये बोलने लगे ।। ४६ ।।

इन्द्रलोक में, यमलोक में, वरुण लोक में, पाताल लोक में और ब्रह्मलोक में आपके समान कोई स्त्री देवी अथवा मानुषी नहीं देखी ।। ४७ ।।

अतः हे देवि ! विधाता के कार्य को धिक्कार है, जिसने तुमको निर्धन व्याघ्र चर्म को धारण करने वाले महेश्वर के लिए (दिया) और जो तुम जंगल में पड़ गईं ।। ४८ ।।

जो महेश्वर भूतों तथा वेतालों से युक्त है, जो सर्पों के यज्ञोपवीत को धारण करने वाला है, जिनकी देह राख से प्रलिप्त रहती है, जिनका कोई कुल नहीं है, जो कपालपात्र को धारण करने वाला है ।। ४९ ।।

भिक्षाशिने करालाय त्रिनेत्राय वराय च।
एकाकिने हि जटिने नरमुंडीयमालिने ॥ ५० ॥

दत्ता त्वं त्रिषु लोकेषु सुन्दरीं भवतीं तथा।
रक्तबीजो महाराजस्त्वामिच्छति त्रिलोकपः ॥ ५१ ॥

इन्द्राद्याः लोकपालाश्च करदास्तस्य सर्वतः।
धन्यः स एव लोकेषु गीयते देवदानवैः ॥ ५२ ॥

त्वयि प्रेम परं चास्ति रक्तबीजस्य नित्यशः।
यदुक्तं प्राञ्जलिर्भूत्वा महाराजेन तच्छृणु ॥ ५३ ॥

त्रैलोक्यमखिलं चेदं सर्वे वै देवदानवाः।
मद्वशे सन्ति संहृष्टाः करदा मम साम्प्रतम् ॥ ५४ ॥

रत्नानि यानि देवानां तानि मे सन्ति सुन्दरि।
नागकन्या यक्षकन्या देवकन्यास्तथैव च।
तासां त्वमुत्तमा देवि भवितासि न संशयः ॥ ५५ ॥

योगिनं तं परित्यज्य समागच्छ ममान्तिके।
एतद्रूपस्य ते देवि साफल्यं सम्भविष्यति ॥ ५६ ॥

जन्मनश्चैव साफल्यं तव देवि भविष्यति।
इति निश्चित्य भो देवि रक्तबीजस्य धीमतः।
वचनं कुरु कल्याणि भव कल्याणिनी शुभा ॥ ५७ ॥

वसिष्ठ उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तेषां विहस्य च पुनः पुनः।
प्रकाशयन्ती बहुलं गिरिगह्वरकाननम् ॥ ५८ ॥

उवाच गतसंत्रासा चण्डमुण्डपुरोगमान्।
क्रुद्धेन मनसा चैव मदसंरक्तलोचना ॥ ५९ ॥

श्रीदेव्युवाच—

रे रे दैत्या दुराचारा दुर्म्मदाश्च विहिंसकाः।
मत्त एव हि युष्माकं रक्तबीजानुयायिनाम् ॥ ६० ॥

रक्तबीजस्य वै शीघ्रं वधो हि प्रभविष्यति।
शिवा मे भवतामस्रं पास्यन्ति च समुत्सुकाः ॥ ६१ ॥

जो भिक्षा मांग कर भोजन करने वाला है, जिसके तीन नेत्र हैं, जिसकी आकृति भयानक है, जो एकान्त में निवास करने वाला है, जिसने जटा धारण की हुई है, नरमुण्ड माला को जो धारण किये हुये हैं ऐसे वर को ॥ ५० ॥

तुम्हें दिया गया है। आप तीनों लोकों में परम सुन्दरी हो, अतः तीनों लोकों का पालन करने वाले महाराज रक्तबीज आपको चाहते हैं ॥ ५१ ॥

इन्द्र आदि देवता और समस्त लोकपाल उसको कर देते हैं। वे तीनों लोकों में धन्य हैं, जिनके यश का गान देवता तथा दानव करते हैं ॥ ५२ ॥

उन रक्तबीज का आप पर नित्य ही परम प्रेम है। हाथ जोड़कर आपसे उस महाराज ने जो निवेदन किया है, आप उसे सुनिये ॥ ५३ ॥

ये सम्पूर्ण तीनों लोक तथा समस्त देवता और दानव मेरे वश में हैं। इस समय प्रसन्नता पूर्वक वे मुझे कर प्रदान करते हैं ॥ ५४ ॥

हे सुन्दरि ! देवताओं के जितने रत्न हैं, वे सब तथा नागकन्यायें यक्षकन्यायें और देवकन्यायें समस्त मेरे यहां निवास करती हैं। हे देवि ! उन सबसे उत्तम (प्रधान) आप बनेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥

हे देवि ! उस योगी शंकर का परित्याग करके आप मेरे पास आइये, जिससे आपका रूप जो परम सुन्दर है, सफल हो सकेगा ॥ ५६ ॥

हे देवि ! तब ही आपका जन्म सफल हो सकेगा। हे देवि ! कल्याणि ! यह निश्चय करके आप बुद्धिमान् रक्तबीज की बात मान लें, जिससे आप कल्याणदायिनी और शुभ होगी ॥ ५७ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार उनके बचनों को सुनकर और पुनः पुनः हँसकर वे देवी पर्वत की कन्दराओं को और वन को प्रकाशित करने लगीं ॥ ५८ ॥

मद से लाल-लाल नेत्रों वाली देवी ने निर्भय होकर चण्ड, मुण्ड आदि दैत्यों से क्रोधित मन से कहा ॥ ५६ ॥

श्री देवी ने कहा—

अरे दुराचारियो ! तुम असुर दुष्ट और हिंसक हो। मेरे ही द्वारा रक्तबीज के अनुयायी तुम्हारा ॥ ६० ॥

और रक्तबीज का शीघ्र वध होगा। और मेरी गीदड़ियां अति उत्सुकता पूर्वक आपके रुधिर का पान करेंगी ॥ ६१ ॥

दानवा ऊचुः —

सावलेपा च तरुणि मदमत्तासि भामिनि ।
निःशंकं वदसि प्रौढं यथा वै प्राकृतं जनम् ।। ६२ ।।

एवं मा वद सर्वेषां रक्तबीजं प्रभुं क्वचित् ।
इन्द्रादयो लोकपाला येनैकेन पराजिताः ।। ६३ ।।

तस्य त्वं सम्मुखे स्थातुं स्त्री त्वं किमु भविष्यसि ।
अबलासि परं देवि सौकुमार्य्ययुता परा ।। ६४ ।।

तथा विधेयं हि यथा क्रुद्ध्येन्नो रक्तबीजकः ।
नो चेत्त्वां शुभसर्वांगीं बद्ध्वा केशेषु सत्त्वरम् ।। ६५ ।।

बलात्कारेण चाकृष्य नयिष्यत्येव दानवः ।
सामपूर्वं भजस्वाद्य रक्तबीजं महाबलम् ।। ६६ ।।

वसिष्ठ उवाच—

इति तन्निष्ठुरं श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचना ।
विज्ञप्तिं चैव देवानां स्मृत्वा वधपरायणा ।। ६७ ।।

हुंकारेण बलं तद्वै दाहयामास च क्षणात् ।
दग्धे सैन्ये ततो धूम्रलोचनाद्यास्तु दानवाः ।
परिखायुधनिर्स्त्रिशैर्ववृषुर्जगदम्बिकाम् ।। ६८ ।।

महामेघा यथा काले पृथिवीं वरवर्णिनि ।
शस्त्राण्यस्त्राणि तेषां वै वारयामास हुंकृतैः ।। ६९ ।।

भस्मीभूतानि सर्वत्र पेतुर्वै धरणीतले ।
केचिद् वृक्षान्पर्वतांश्च प्रस्तरान् पर्वतोपमान् ।
ववृषुः शतशस्तत्र क्रोधसंरक्तलोचनाः ।। ७० ।।

ततः[1] क्रुद्धा महादेवी खण्डशश्च चकार तान् ।
ललाटदेशात् क्रुद्धाया निश्चक्राम भयानका ।
काली करालवदना भीमा रक्तविलोचना ।। ७१ ।।

---

१. ततः ...विलोचना" पाठ इसमें नहीं है ।

दानवों ने कहा—

हे तरुणि ! भामिनि ! तुम घमण्ड से भरी मद से मत्त हो, जो कि निःशंक होकर ऐसा कह रही हो, जैसा कि सामान्य जन के लिए कहा जा सकता है ।। ६२ ।।

सबके स्वामी रक्तबीज के लिए आप को ऐसा कुछ नहीं कहना चाहिए । जिसके द्वारा इन्द्र आदि देवता एवं लोकपाल पराजित किये गये हैं ।। ६३ ।।

उसके सामने तुम जैसी स्त्री कैसे ठहर सकती है । क्योंकि तुम स्त्री हो और तुम्हारा अंग परम कोमल है ।। ६४ ।।

इसलिए आपको चाहिए कि आप उन्हें क्रोधित न करें । उनकी सेवा स्वीकार करलें । अन्यथा वह रक्तबीज शुभद सब अंगों वाली आपके केश खींचकर अभी आपको बांधकर ।। ६५ ।।

वह दानव बलात् घसीट कर ले जायेगा । आपको चाहिए कि आप शालीनता से महा असुर रक्तबीज की सेवा स्वीकार करलें ।। ६६ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार उन निष्ठुर वचनों को सुनकर क्रोध से लाल नेत्रों वाली वह देवी देवताओं की प्रार्थना का स्मरण करके दैत्यों के वध के लिए उद्यत हो गई ।। ६७ ।।

और क्षणभर में ही अपने मात्र हुंकार से उस असुर सेना का विनाश कर दिया । तदनन्तर धूम्रलोचन आदि दानवों ने जब अपनी सेना को भस्म हुआ देखा तब वे देवी पर अति तीक्ष्ण आयुधों को बरसाने लगे ।। ६८ ।।

हे सुन्दरि ! वर्षा ऋतु में जिस प्रकार पृथिवी पर मेघ बरसते हैं, ठीक उसी प्रकार से देवी के ऊपर शस्त्र बरसने लगे । किन्तु देवी ने अपने हुंकार से ही उन्हें रोक दिया ।। ६९ ।।

और वे शस्त्र भस्म होकर पृथिवी के ऊपर सर्वत्र बिखर गये । तब वहां क्रोध से भरे नेत्रों वाले वे दैत्य कोई वृक्षों के ऊपर चढ़कर, कोई पर्वतश्रेणियों में चढ़कर पर्वतों के समान बड़े-बड़े सैकड़ों पत्थरों की वर्षा करने लगे ।। ७० ।।

तदनन्तर क्रुद्ध महादेवी ने उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये । क्रुद्ध पार्वती के माथे से भयानक, काली, भयानक मुख वाली, भयावह और लाल आँखों वाली काली निकलीं ।। ७१ ।।

क्रशा प्रत्यक्षधमनी भीमनादा करालिका।
कालांजनचयाभा सा भैरवी कालिका परा ॥ ७२ ॥

खट्वांगवरहस्ता च नरमुण्डविभूषणा।
खादन्ती च करैकेण हस्तिनं महिषं तथा ॥ ७३ ॥

स्रवदस्रेभचर्मा च जिह्वाललनभीषणा।
महानादान्प्रमुञ्चन्ती योगिनीकोटिसम्वृता ॥ ७४ ॥

मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा संकटा च ह्यष्टौ योगिनिवृन्दपाः ॥ ७५ ॥

कपालान्यस्रपूर्णानि गृहीत्वा ननृतुश्च ताः।
शंखनादान्प्रमुञ्चन्त्यो भेरीपणवनिःस्वनान् ॥ ७६ ॥

इति तद्भीषणं सैन्यं दृष्ट्वा कालीमयं तथा।
शशंशू रक्तबीजाय सर्वं वृत्तं वरानने।
रक्तबीजोऽपि तच्छ्रुत्वा महाक्रोधवशं गतः ॥ ७७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे कालिकोत्पत्तिर्नाम षडशीतितमोऽध्यायः।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

युद्धे देवी द्वारा चण्डमुण्डादिवधः

वसिष्ठ उवाच—

मंत्रिवर्य्यान् समाहूय वचनं चेदमब्रवीत्।
रक्तबीजो रक्तनेत्रः संदष्टदशनच्छदः ॥ १ ॥

स्त्रीभ्य एते दुरात्मानः पलायात्र समागताः।
नयध्वं निगडैर्बद्ध्वा शीघ्रं कारागृहेषु च ॥ २ ॥

कृश अंगों वाली, उभरी धमनियों वाली, भयानक शब्द करने वाली, भयानक आकृति की और काले अंजन के ढेर के समान कान्तिवाली वह भैरवी दूसरी कालिका ही थी ॥ ७२ ॥

जो उत्तम खट्वांग आयुध को हाथ में धारण करने वाली है, नरमुण्ड माल जिनका भूषण है, और एक हाथ से जो महिष और हाथी को खा रही है ॥ ७३ ॥

जिसने खून से सने हस्तिचर्म का वस्त्र धारण किया हुआ है, जिसकी लप-लपाती जिह्वा अनि भीषण है, जो अति गर्जना कर रही है और जो करोड़ों योगिनियों से आवृत है ॥ ७४ ॥

मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रमरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा और संकटा इन आठ योगिनियों के समूह से वह घिरी है ॥ ७५ ॥

वे सब योगिनियां रुधिर से भरे कपालों को लेकर नृत्य करने लगीं। शंख, भेरी तथा पणवों के शब्दों को वे करने लगीं ॥ ७६ ॥

हे सुन्दर मुख वाली अरुन्धति ! काली शक्ति की इस प्रकार भयानक सेना को देखकर यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्होंने रक्तबीज से कह दिया। रक्तबीज भी यह वृत्तान्त सुनकर बड़ा क्रोध करने लगा ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालीतीर्थ माहात्म्य में रक्तबीज-वध में कालिका उत्पत्ति नाम का छियासीवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ८७

युद्ध में देवी द्वारा चण्ड-मुण्ड आदि का वध

वसिष्ठ ने कहा—

लाल नेत्रों वाले रक्तबीज ने अपने दान्तों को काटते हुये अपने श्रेष्ठ मंत्रियों को बुलाकर उनसे यह वचन कहा ॥ १ ॥

ये दुराचारी दानव स्त्री से हार कर भागकर यहां आये हैं, अतः इन्हें बेड़ियों से बांधकर शीघ्र कारागृहों में ले जाओ ॥ २ ॥

इति तच्छासनं श्रुत्वा ह्युग्रदंडस्य भूपतेः ।
सर्वे प्राञ्जलयः प्रोचुर्वेपमाना वरानने ॥ ३ ॥

नास्माभिस्तद्भयादत्र ह्यागतं तव सन्निधिम् ।
किं तु विज्ञापनार्थाय भवन्तं दनुजाधिपम् ॥ ४ ॥

सामपूर्वं महाराज नायाता तव मंदिरे ।
निर्दग्धं बलमस्माकं युद्धाय च समागता ॥ ५ ॥

मारयित्वाऽथ वा तां वै जीवंतीं वा तवान्तिके ।
नयामो दनुशार्दूल त्वं जेतासि सुवर्चसा ॥ ६ ॥

अस्माकमेकस्तां देवीं बद्ध्वाऽऽनयतु किं भवान् ।
त्वत्प्रसादाद्वयं सर्वे त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७ ॥

न पश्यामो महाभाग प्रतियोद्धारमात्मनः[1] ।
किमु स्त्रीयं महाभाग संयुगे स्थास्यति क्वचित् ॥ ८ ॥

केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा क्षणादत्र नयामहे ।
सन्देहो वै न कर्तव्यो मा खिदो दनुजाधिप ॥ ९ ॥

इति तद्भाषितं श्रुत्वा रक्तबीजो महासुरः ।
प्रहृष्टचेताः सहसा जगाद दनुजान्प्रिये ॥ १० ॥

भो भो घूम्राक्षचण्डाद्या यदि प्रियचिकीर्षवः ।
गच्छध्वं यत्र सा देवी योगिनीगणसंवृता ॥ ११ ॥

तत्र गत्वा च तां बद्ध्वा शीघ्रमत्र महासुराः ।
नयध्वं यदि साम्ना वै तथा कुरुत चाथ वा ॥ १२ ॥

एवं श्रुत्वा तदाज्ञप्तं रक्तबीजस्य मत्प्रिये ।
धूम्राक्षचण्डमुण्डाद्याः संदष्टदशनच्छदाः ।
ययुर्यथा वह्निशिखां पतंगा इव सर्वतः ॥ १३ ॥

---

१. आत्मना ।

हे वरानने ! इस प्रकार कठिन सजा देनेवाले उस राजा के आदेश को सुन कर समस्त दैत्य कांपने लगे तथा हाथ जोड़कर उस राजा से बोलने लगे ॥ ३ ॥

हे राजन् ! हम उस स्त्री के सामने से यहां भय से भाग कर नहीं आये वरन् हम आपसे निवेदन करने के लिये यहां आये हैं ॥ ४ ॥

हे महाराज ! शालीनता से वह शक्ति आपके घर पर नहीं आयेगी । जब वह हमारे साथ युद्ध के लिए आयी तब हमारी सेना भस्मसात् हो गई ॥ ५ ॥

अब हम उसे मारकर अथवा जीवित ही पकड़ कर आपके सामने लावेंगे । हे नृप ! तब आप अपने पराक्रम से उस पर विजय प्राप्त कर लेना ॥ ६ ॥

हे देव ! आप कहें तो हम में से कोई एक ही उसको बांध कर ला सकता है । आपके प्रसाद से हम सब चराचर तीनों लोकों में ॥ ७ ॥

हे महाभाग ! अपने प्रतिद्वन्द्वी योद्धा को नहीं देख रहे हैं । हे महाभाग ! तो क्या यह स्त्री हमारे साथ युद्ध में थोड़ा भी ठहर सकती है ॥ ८ ॥

केशों को पकड़कर, खींचकर अथवा बांधकर इस क्षण भर में उसे यहां ले आवेंगे । हे दनु के पुत्र राजन् ! आप सन्देह मत कीजिये और दुःखी मत होइये ॥ ९ ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार उनके द्वारा कहे गये वाक्यों को सुनकर महा असुर रक्तबीज ने प्रसन्न मन होकर उन दानवों से सहसा कहना आरम्भ किया ॥ १० ॥

हे धूम्राक्ष, चण्ड आदि दानवो ! यदि तुम मेरा प्रिय चाहते हो तो आप लोग वहां जाओ, जहां योगिनी गणों से आवृत वह देवी विद्यमान है ॥ ११ ॥

हे बलवान् असुरो ! वहां जाकर उस देवी को बांध कर शीघ्र यहां लाओ । यदि वह शान्ति से आना चाहती है तो ऐसा ही करो ॥ १२ ॥

हे प्रिये ! इस प्रकार उस रक्तबीज की आज्ञा पाकर धूम्राक्ष चण्ड और मुण्ड आदि दैत्य अपने ओठों को चबा-चबाकर इस प्रकार गये, जिस प्रकार चारों ओर से पतंग अग्निशिखा की ओर आते हैं ॥ १३ ॥

सप्तकोट्यो दानवानां कैलासेऽथ समाययः ।
भीमनादान्प्रकुर्वन्तो दिशो दश महाभटाः ॥ १४ ॥

आरुह्य गिरिश्रृंगाणि समुत्पाट्य तरून्स्तथा ।
आययुः क्रमशस्तत्र यत्र देवी समास्थिता ॥ १५ ॥

हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे ददर्शुर्गिरिकन्यकाम् ।
योगिनीशतकोटीभिरावृतां सुमहाप्रभाम् ॥ १६ ॥

स्तूयमानां मुनिवरैर्देवैर्यक्षैः सकिन्नरैः ।
अप्सरोभिः समाकीर्णां दीपस्य कलिकामिव ॥ १७ ॥

तां दृष्ट्वा सहसा दूरात्प्रोचुर्विगतबुद्धयः ।
रे रे देवि महावीर्य्यो रक्तबीजो भयंकरः ॥ १८ ॥

देवानां दानवानां च तथा गन्धर्वरक्षसाम् ।
जेता वै शत्रुसैन्यानां क्रोधस्य वशमागतः ॥ १९ ॥

हनिष्यत्येव त्वां दुष्टां नो चेत्तं भज सत्वरम् ।
यासां त्वं बलमाश्रित्य निश्चितासि हि सांप्रतम् ॥ २० ॥

पश्यंत्यास्ते क्षणादेता वातेनाभ्रगणा यथा ।
क्षयं खलु गमिष्यन्ति त्वं च केशेषु सत्त्वरम् ।
बद्धा गमिष्यसे नूनं रक्तबीजस्य सन्निधिम् ॥ २१ ॥

इति श्रुत्वा बृंहितं च दानवेभ्यो महेश्वरी ।
नेत्रसंज्ञां चकाराशु तां कालीं विकृताननाम् ॥ २२ ॥

तदिंगितं तदालक्ष्य महाकाली हि भैरवी ।
खट्वांगं च तदा पाशं कर्त्तरीं चांकुशं तथा ।
गृहीत्वा पाणिभिः काली संचचार बलान्तरे ॥ २३ ॥

यथा दावानलज्वाला निदाघे गहनं वनम् ।
संचरंती महाकाली कांश्चिद्द्वे निजगाल ह ॥ २४ ॥

भयंकरशब्द करते हुये दस दिशाओं में अति बलिष्ठ सैनिक सात करोड़ दानव कैलास पर्वत के ऊपर गये ॥ १४ ॥

पर्वत शिखरों पर चढ़ कर वृक्षों को उखाड़ते हुये वे दैत्य क्रमशः वहां आये, जहां देवी स्थित थीं ॥ १५ ॥

उन्होने सैकड़ों करोड़ योगिनियों से घिरी हुई परम कान्तिशालिनी पर्वतपुत्री पार्वती को हिमालय के दक्षिण भाग में देखा ॥ १६ ॥

श्रेष्ठमुनियों, देवताओं, यक्षों तथा किन्नरों के द्वारा स्तुति की जाती हुई, अप्सराओं से परिवृत दीपशिखा के समान कान्तिमती ॥ १७ ॥

उस देवी को दूर से ही देखकर सहसा उनकी बुद्धि विनष्ट हो गई । वे कहने लगे— हे देवि ! महाबलिष्ठ रक्तबीज अति भयंकर व्यक्ति है ॥ १८ ॥

जिसने देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस आदि शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है । वे इस समय क्रोधित हुये हैं ॥ १९ ॥

अतः तुम उनकी सेवा शीघ्र स्वीकार करलो । अन्यथा तुम दुष्टा को वह मार डालेगा । इस समय जिनके बल के भरोसे तुम बैठी हो ॥ २० ॥

वे सब तुम्हारे देखते-देखते निश्चय ही इस प्रकार नष्ट हो जावेंगी, जिस प्रकार वायु के द्वारा मेघों का विनाश हो जाता है । शीघ्र ही बाल पकड़कर तथा वांध कर निश्चय ही हम रक्तबीज के समीप तुम्हें ले जायेंगे ॥ २१ ॥

शक्ति ने दानवों के इन वचनों को सुनकर करालमुखवाली कालीदेवी की ओर नेत्रों से इशारा किया ॥ २२ ॥

भैरवी महाकाली ने शक्ति के इशारे को समझकर खट्वांग, पाश, कर्त्तरी तथा अंकुश को हाथों में ले लिया और वह काली शत्रुओं की सेना के मध्य विचरने लगी ॥ २३ ॥

जिस प्रकार अग्नि की ज्वाला ग्रीष्म ऋतु में गहन वन को निगल लेती है, उसी प्रकार महाकाली ने उस सेना के बीच विचरण करते हुये किन्हीं असुरों को निगल लिया ॥ २४ ॥

कांश्चिद्धि चर्बयामास प्रेक्षयामास कानपि ।
रथं रथेन संयोज्य हस्तिनं हस्तिना तथा ।
चूर्णयामास बहुशो दानवान् रणकोविदान् ।। २५ ।।

लेलिह्यमाना रसनां बृहद्दंष्ट्रा भयंकरी ।
कदनं दानवानां वै चकार वहुधा प्रिये ।। २६ ।।

कांश्चिज्जग्राह केशेषु चिक्षेपाम्बरमंडले ।
पोथयामास पादेन खट्वांगेनापि कानपि ।। २७ ।।

अंकुशेन तथाऽऽकृष्य निष्पिपेष रणांगणे ।
इति सैन्यं क्षणान्नष्टं महाकक्षमिवाग्निना ।। २८ ।।

ततः क्रुद्धो धूम्रनेत्रो गदया तां जघान ह ।
गदया ताडिता देवी न च क्लेशमवाप सा ।। २९ ।।

क्रुद्धा च तं धूम्रनेत्रं खट्वांगेन जघान हि ।
पपात विगतप्राणो भूमौ खट्वांगपेषितः ।। ३० ।।

ततश्चण्डश्च मुण्डश्च जघ्नतुः कालिकां शरैः ।
अनेकैश्च तथा चक्रैस्सूर्यबिम्बसमप्रभैः ।। ३१ ।।

निजगाल शरान्देवी चक्राणि च महेश्वरी ।
विविशुश्चक्रबिम्बानि सूर्य्या इव घनोदरम् ।। ३२ ।।

क्रुद्धा संपीड्य बाहुभ्यां चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
खड्गेन शितधारेण जघान शिरसी तयोः ।। ३३ ।।

तीक्ष्णदंष्ट्रं मुष्टिनासौ निष्पिपेष महाबलम् ।
कालनाभं महावीरं खट्वांगेन जघान ह ।। ३४ ।।

अन्ये च बहवो वीरा निहता दानवास्तथा ।
क्षणेन तद्बलं सर्वं नष्टं तद्वै वरानने ।। ३५ ।।

पलायनपराः शेषाः भेजुर्देवि दिशो दश ।
अट्टहासं ततः काली कृत्वा देव्यन्तिके ययौ ।। ३६ ।।

किन्हीं को वह चबाने लगी, तथा किन्हीं दैत्यों को वह देखने लगी। रथ से रथ तथा हाथी से हाथी मिलाकर बहुत से दानव योद्धाओं को वह काली चकनाचूर करने लगी ॥ २५ ॥

वह जिह्वा को लपलपा रही थी। उसकी दाढ़ें बड़ी तथा भयंकर थीं। हे प्रिये ! उसने अनेक प्रकार से दैत्यों का वध किया ॥ २६ ॥

किन्हीं के बाल पकड़ कर उन्हें आकाश मंडल की ओर फेंक दिया और किन्हीं को खड्ङांग से मार डाला तथा किन्हीं को पैरों से कुचल डाला ॥ २७ ॥

किन्हीं को युद्धस्थल पर अंकुश से खींचकर वह नष्ट करने लगी। इस प्रकार दानवों की सेना क्षणभर में ही ऐसे नष्ट हो गई जैसे महान् कक्ष को अग्नि भस्म कर देती है ॥ २८ ॥

तदनन्तर क्रोधित धूम्रानेत्र ने गदा से उस शक्ति पर प्रहार किया। किन्तु गदा के लगने पर भी उस देवी ने कोई दुःख का अनुभव नहीं किया ॥ २९ ॥

क्रोधित होकर उस धूम्राक्ष पर देवी ने खट्वांग से प्रहार किया। खट्वांग के प्रहार से वह भूमि में गिरकर निष्प्राण हो गया ॥ ३० ॥

उसके बाद चण्ड और मुण्ड आदि दैत्यों ने कालीदेवी के ऊपर अनेक बाणों के द्वारा तथा सूर्यबिम्ब के समान चक्रों के द्वारा प्रहार किया ॥ ३१ ॥

किन्तु वह महेश्वरी उन बाणों और चक्रों का निगल गई। शक्ति के चक्र उन दैत्यों की देह में इस प्रकार प्रविष्ट होते थे। जैसे बादलों के बीच में सूर्य प्रवेश करते हैं ॥ ३२ ॥

क्रोधित होकर महाअसुर उन चण्ड तथा मुंण्ड को हाथों से मसल कर खड्ग की पैनी धार से उन असुरों के शिरों को उस शक्ति ने काट डाला ॥ ३३ ॥

महा बलिष्ठ तीक्ष्णदंस्ट्र को मुष्टियों से मसल डाला तथा महा बलवान् कालनाभ का खड्ग से वध कर डाला ॥ ३४ ॥

और अन्य बहुत से दानव योद्धाओं का निधन किया। हे वरानने ! क्षण भर में ही सम्पूर्ण दैत्य सेना नष्ट हो गई ॥ ३५ ॥

शेष जो बचे हुये दानव थे, वे विभिन्न दिशाओं में भाग गये। तदनन्तर वह काली देवी भयंकर अट्टहास शब्द करती हुई देवी के पास गई ॥ ३६ ॥

चामुण्डा च ततो नाम्ना जाता तदवधि प्रिये।
हतशेषा दानबाश्च शशंसू रक्तबीजकम्।
चण्डमुण्डवधं श्रुत्वा परं क्रोधवशं गतः ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधे चण्डमुण्डादिवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः।

अष्टाशीतितमोध्यायः

युद्धे पीडितसुरे रक्तबीजे ब्रह्मणो वरप्रभावादस्य सायंसमये रक्तक्षयं विना न वधः सुकर इति देव्याऽभिहितया काल्या तस्य रुधिरपानं निहननञ्च

वसिष्ठ उवाच—

इति तन्निधनं श्रुत्वा रक्तबीजोऽतिविस्मितः।
जगाद सर्वान् दनुजान् हन्त हन्तेति चासकृत् ॥ १ ॥

किमेतन्महदाश्चर्य्यमेकाकिन्या क्षणाद् बलम्।
निहतं दानवेन्द्राणामुचितं किं च साम्प्रतम् ॥ २ ॥

मदाज्ञापालका ये च सप्तद्वीपेषु दानवाः।
पातालेषु तथा सन्ति दानवाश्चान्तरिक्षगाः ॥ ३ ॥

दैत्या शुम्भनिशुम्भाद्या आनयध्वं महासुरान्।
ते च वध्या भविष्यन्ति मच्छासनपराङ्मुखाः ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच—

इत्याज्ञाप्य दानवेन्द्रो जगाम सौधमन्दिरम्।
तेऽपि शीघ्रं वायुवेगादानयामासुरंजसा ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! उस समय से शक्ति का नाम चामुण्डा प्रसिद्ध हुआ। शेष बचे दानवों ने यह सब वृत्तान्त रक्तबीज से कहा। चण्ड और मुण्ड का वध सुनकर रक्तबीज को बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालीतीर्थ माहात्म्य में रक्तबीज वध में चण्ड मुण्ड आदि वध नाम का सतासीवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ८८

युद्ध में रक्तबीज द्वारा देवताओं को पीड़ित करना, ब्रह्मा के वर के प्रभाव से सायं समय में इसके रक्तक्षय के बिना इसका वध सरल नहीं है, इस प्रकार देवी के कहने पर श्रीकाली द्वारा रक्तबीज के रुधिर का पान करना और उसका वध करना

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार चण्ड-मुण्ड के वध को सुनकर रक्तबीज को बड़ा ही विस्मय हुआ और वह सब दानवों से बार-बार कहने लगा कि हाय, बड़ा अनर्थ हो गया है ॥ १ ॥

यह महान् आश्चर्य क्या हुआ है कि अकेली स्त्री ने क्षणभर में ही प्रधान दानवों की सेना का नाश कर डाला है और अब हमारे लिए इस समय क्या कार्य समुचित होगा ॥ २ ॥

मेरी आज्ञा का पालन करने वाले जो सात द्वीपों में निवास करने वाले तथा पाताल एवं आकाश में विचरने वाले दानव हैं ॥ ३ ॥

उन महा असुर शुंभ तथा निशुंभ आदि दैत्यों को यहाँ लाओ। जो कोई मेरे आदेश की अवहेलना करेंगे वे मारे जायेंगे ॥ ४ ॥

वसिष्ठ बोले—

इस प्रकार आज्ञा देकर वह दैत्यराज अपने प्रासाय में चला गया। वे सेवक भी शीघ्र वायुवेग से उन दैत्यों को ले आये ॥ ५ ॥

दानवान् युद्धदुर्द्धर्षान्महाबलपराक्रमान् ।
ते च सिंहैर्गजैरश्वैर्गर्द्दभैरुष्ट्रकैस्तथा ।
रथैर्मृगैर्वराहैश्च मेषैर्गोभिः कलिंजरैः ॥ ६ ॥

केचिदश्वमुखाश्चान्ये गजवक्त्रास्तथाऽपरे ।
सिंहानना बृहद्दंष्ट्रा महाघोरा भयानकाः ॥ ७ ॥

कृकलासमुखाः केचित्केचिद् भल्लमुखास्तथा ।
बिडालवदनाः केचित्केचिद्यूकमुखाः परे ॥ ८ ॥

केचिन्मत्स्यमुखा दैत्याः सर्पदेहास्तथाऽपरे ।
तथाञ्जनचयाभासास्तथा स्तनितनिःस्वनाः ॥ ९ ॥
घोरास्या घोरनयना द्विमुखा बहुपादकाः ।
छिन्नग्रीवाः करिमुखा वृकवक्त्रास्तथाऽपरे ।
आगताः कोटिशस्तत्र रक्तबीजस्य शासनात् ॥ १० ॥

शतकोटिसहस्राणि रथानां हस्तिनां[1] तथा ।
हयानां पंचपंचाशत्कोटिलक्षाणि दानवाः ॥ ११ ॥

यूथपाश्च तथा पद्मपद्मानि चागमंस्ततः ।
पृथिवीं छादयन्तस्ते सपर्वतवनद्रुमाम् ॥ १२ ॥

चन्द्रसूर्यग्रहादीनां मार्गं रुरुधुरम्बरे ।
कैलासं च तथासाद्य पूर्वपश्चिमगामिनम् ॥ १३ ॥

आगताश्च तथा वीरा नानाशस्त्रास्त्रसंयुताः ।
सन्दष्टौष्ठपुटाः क्रूराश्चण्डवेगा महास्वनाः ॥ १४ ॥

अनेकतूर्यसन्नादास्तथा पणवगोमुखाः ।
शंखाः कंका नंदनाद्या विनेदुश्च महद्बले[2] ॥ १५ ॥

१.दन्तिनां २. महाबले ।

वे दैत्य युद्ध में अजेय, महान् बलिष्ठ एवं पराक्रमी थे। वे शेरों, घोड़ों, हाथियों, गधों, ऊँटों, रथों, मृगों, बराहों, मैंढों, कालिंगरों तथा बैलों के साथ उपस्थित हुये ॥ ६ ॥

उन दैत्यों में किसी का मुख घोड़े के मुख जैसा, किसी का मुख हाथी के मुख जैसा और किसी का मुख सिंह के मुख के समान था। उनकी दाढ़ें बड़ी-बड़ी थीं तथा उनकी आकृति अत्यन्त भयानक थी ॥ ७ ॥

किसी का मुख गिरगिट के समान, किसी का मुख रीछ के मुख के समान, किसी का मुख बिडाल के मुख के समान, और किसी का जूँ के मुख के समान था ॥ ८ ॥

कोई दैत्य मछली के समान मुखवाले, कोई सर्पों के समान देहवाले थे। किसी की आभा अंजन के तुल्य थी तथा किसी का शब्द बिजली के कड़कड़ाहट के सदृश था ॥ ९ ॥

कोई भयानक मुख वाले और भयानक आँखों वाले थे, कोई दो मुख वाले तथा कोई बहुत पैरों वाले थे। किसी का गला कटा हुआ था, किसी का मुख हाथी के मुख के समान था तथा कोई भेड़िये के समान मुख वाले थे। रक्तबीज के आदेश से करोड़ों दैत्य वहां आये ॥ १०

सौ करोड़ तथा हजार रथ, इतने ही हाथी, पचपन करोड़ घोड़े और लाखों दानव वहां थे ॥ ११ ॥

और अरबों की संख्या में वहां यूथपति आये। वे पर्वत, वन और वृक्षों से समन्वित भूमि को आच्छादित किये हुये थे ॥ १२ ॥

आकाश में उन दैत्यों ने चन्द्रमा, सूर्य एवं ग्रहों के मार्ग को अवरुद्ध कर लिया था। पूर्व से पश्चिम पर्यन्त जाने वाले वे कैलास पर भी पहुँच गये थे ॥ १३ ॥

अनेक अस्त्र-शस्त्रों से समन्वित वीर वहां आये। उनका स्वभाव क्रूर था। वे क्रोध से अपने अधरों को काट रहे थे। उनका वेग प्रचण्ड था तथा शब्द भयंकर था ॥ १४ ॥

वहां अनेक तुरहियों के शब्द व्याप्त थे। वे पणव और गोमुख को बजाते थे और उस महती सेना में शंख, कंक तथा नन्दन आदि बाधों के नाद होने लगे ॥ १५ ॥

इति तद्वै महासैन्यं दृष्ट्वा देवाश्चकम्पिरे ।
स्वां स्वां शक्तिं ददुः सर्वे इन्द्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।। १६ ।।

ऐन्द्री गजसमारूढा तच्छस्त्रास्त्रविभूषणा ।
ब्राह्मी व्यक्तिस्तथाऽऽयाता हंसयानसमास्थिता ।। १७ ।।

अक्षसूत्रं च दधती करैकेण कमण्डलुम् ।
माहेश्वरी तथा देवी महावृषभमास्थिता ।
त्रिशूलपट्टिशधरा व्याघ्रचर्माम्बरा सती ।। १८ ।।

तथाऽऽययौ क्रौंचहर्त्तुः शक्तिः परमकोपिता ।
मयूरस्था शक्तिहस्ता वैष्णवी च समागता ।। १९ ।।

गरुडस्था महामाया शंखचक्रगदाम्बुजा ।
वाराही च बृहद्दंष्ट्राधृतविश्वम्भरा परा ।
गदा परिघनिर्स्त्रिशचर्म्महस्ता तथाऽययौ ।। २० ।।

नारसिंही महामाया नृसिंहस्य तनूधरी ।
तत्कंधरासटाक्षेपभिन्ननक्षत्रमण्डला ।। २१ ।।

ये ये देवास्तत्र गताः सर्वे स्त्रीरूपधारिणः ।। २२ ।।

योगिन्यश्च तथा चाष्टौ स्वस्वरूपं समाश्रिताः ।
चामुण्डा च महाशक्तिश्चण्डरूपा महोन्नता ।। २३ ।।

समाययौ महादेवी तादृशी कोटिसंवृता ।
सिंहोपरि समासीना भुजाऽष्टपरिमंडिता ।। २४ ।।

नानाशस्त्रप्रहरणा मदमत्तविलोचना ।
शक्तिसैन्यं तथा तन्वि कोटिकोटिकसंख्यकम् ।। २५ ।।

इस प्रकार उस महती दैत्य सेना को देखकर देवता कांपने लगे। उन सब इन्द्र आदि देवताओं ने अपनी-अपनी शक्तियों को प्रदान किया ॥ १६ ॥

इन्द्र की शक्ति हाथी पर बैठकर उन्हीं के अस्त्र-शस्त्रों से विभूषित होकर तथा ब्रह्मा की शक्ति हंस-वाहन में बैठकर वहाँ आयी ॥ १७ ॥

वह एक हाथ में अक्षसूत्र तथा एक हाथ में कमण्डल को धारण किये थी। महादेव की माहेश्वरी शक्ति बढ़े बैल पर बैठकर त्रिशूल तथा पट्टिश को धारण करके ओर व्याघ्रचर्म को पहन कर आयी ॥ १८ ॥

परम प्रकुपित स्वामी कार्तिकेय की शक्ति मयूर पर बैठकर शक्ति को हाथ में लिये वहां आयी। बैष्णवी (विष्णु की) शक्ति भी वहां आयी ॥ १९ ॥

यह महामाया गरुड़ पर बैठी हुई थी तथा शंख, चक्र गदा और पद्म से विभूषित थी। भगवान् वराह की वाराही शक्ति ने बड़ी-बड़ी दाढ़ों के ऊपर भूमि को धारण किया हुआ था। वह गदा, परिघ, खड्ग और ढाल को हाथ में लेकर वहां आयी ॥ २० ॥

नृसिंह भगवान् की शक्ति महामाया नृसिंह का ही रूप धारण करके वहां आयी। उसकी कन्धरा केसरों के विस्तार से नक्षत्र मण्डल को ढक रहीं थीं ॥ २१ ॥

जो जो देवता वहां गये, वे सब स्त्री रूप धारण किये हुये थे ॥ २२ ॥

तथा आठ योगिनियों भी अपने-अपने स्वरूप को धारण करके वहां उपस्थित हुईं। विशाल स्वरूप को धारण करके चण्डरूपा महाशक्ति चामुण्डा भी वहां उपस्थित हुईं ॥ २३ ॥

आठ भुजाओं से शोभित महादेवी करोड़ों शक्तियों से घिरी हुई सिंह के ऊपर बैठकर वहां आयीं ॥ २४ ॥

वे शक्तियाँ अनेक शस्त्रों से प्रहार करने वाली थीं। उनकी आँखें मद से उन्मत्त हो रही थीं। हे तन्वि ! वह शक्ति की सेना कई करोड़ संख्यक थी ॥ २५ ॥

गंगाद्वारमभिवाप्य काश्मीरं च तथा परम् ।
नीलकण्ठेश्वरं पीठं मानसं च तथा सरः ।। २६ ।।

कुम्भोदकं तथा तीर्थं कुरुवर्षं च गण्डकीम् ।
अभिवाप्य महासैन्यं तस्थावद्रिरिवाचलः ।। २७ ।।

अप्सरोगणसंकीर्णं देवगन्धर्वमंडितम् ।
आकाशं प्रबभूवाथ विमानैश्च सुशोभितम् ।। २८ ।।

अथ युद्धं समभवद्दानवानां बलेन हि ।
शक्तिभिश्चापि तुमुलं रोमहर्षणकारकम् ।। २९ ।।

गदाभिः परिघैश्चापि शक्तितोमरसायकैः ।
खट्वांगैर्मुसलैश्चैव क्षेपणीयैस्त्रिशूलकैः ।
शतघ्नीभिश्च युयुधुः शक्तिभिश्चैव दानवाः ।। ३० ।।

प्रवहुश्च तथा नद्यो रुधिरस्य शरीरिणाम् ।
मांसकर्द्दमिलास्तत्र ह्यगाधा बहुशः प्रिये ।। ३१ ।।

करिकच्छपकल्लोलाश्छिन्नहस्तविहंगमाः ।
निहता दानवाः कैश्चिच्छिवाभिर्भक्षिताः परे ।। ३२ ।।

वज्रेण निहता ऐन्द्र्या तथा केचिद् द्विधाकृताः ।
कमंडलुजलेनापि ब्राह्म्या संमार्ज्जिता मृताः ।। ३३ ।।

माहेश्वर्य्यास्त्रिशूलेन कौमार्य्याः शक्तिना हताः ।
चक्रेण विष्णुशक्त्या वै वाराह्या दंष्ट्रया हताः ।। ३४ ।।

नखैर्विदारयामास नारसिंही तथाऽपरान् ।
महाकाली संचचार हसंती दानवे बले ।। ३५ ।।

इति तत्परमं युद्धं लोमहर्षणकारकम् ।
भीरूणां भयदं तत्र कैलासे महदायते ।। ३६ ।।

गंगाद्वार से लेकर काश्मीर, नीलकण्ठेश्वर पीठ, मानसरोवर ॥ २६ ॥

कुम्भोदक तीर्थ, कुरुवर्ष, गण्डकी आदि स्थानों तक वह महा सेना अचल पर्वत के समान स्थित हुई ॥ २७ ॥

उस समय अप्सराओं से आकीर्ण, देवताओं तथा गन्धर्वों से सुसज्जित, विमानों द्वारा सुशोभित आकाश की प्रभूत शोभा थी ॥ २८ ॥

उसके बाद दानवों की सेना के साथ शक्तियों का अतिभयंकर एवं लोमहर्षणकारी संग्राम होने लगा ॥ २६ ॥

गदाओं, परिघों, शक्तियों, तोमरों, बाणों, खट्वांगों, मूसलों, क्षेपणीयों, त्रिशूलों, शतघ्निनयों और शक्तियों से दानवों ने प्रहार करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

हे प्रिये ! उस युद्ध में शरीरधारियों के खून से बहुत सी अगाध नदियें बन गईं। वे मांस के कीचड़ से पूर्ण थीं ॥ ३१ ॥

उनमें हाथी कच्छप जैसे प्रतीत होते थे तथा कटे हाथ पक्षियों के समान प्रतीत होते थे। मृत दानव कहीं गीदड़ियों द्वारा खाये जा रहे थे ॥ ३२ ॥

किसी दैत्य को इन्द्र शक्ति के वज्र से मार डाला था और किसी को दो टुकड़े कर दिया था। ब्राह्मी शक्ति द्वारा कमण्डलु से जल छिड़कते ही कई दानव विनष्ट हो गये हैं ॥ ३३ ॥

कोई दैत्य माहेश्वरी के त्रिशूल से, कोई कौमारी की शक्ति से मारे गये। किसी को वैष्णवी शक्ति ने चक्र से और किसी को वाराही शक्ति ने दांतों से मार डाला ॥ ३४ ॥

कहीं नारसिंही शक्ति ने दानवों को अपने नखों द्वारा विदीर्ण कर दिया। महाकाली दानवों की हताहत सेना के बीच हँसती हुई विचरण करने लगी ॥ ३५ ॥

इस प्रकार वह लोमहर्षणकारी, भीरुओं को भय देने वाला भयंकर युद्ध उस विशाल कैलास पर्वत के ऊपर होने लगा ॥ ३६ ॥

गजानां गर्ज्जनैश्चैव हयानां ह्रेषितैस्तथा ।
रथानां चैव चीत्कारैर्भटानां चैव गर्ज्जितैः ॥ ३७ ॥

[1]शब्दं तं बहुशस्तत्र धरणीगगनान्तरम् ।
धनुष्टंकारशब्देन नाराचनिःस्वनैस्तथा ॥ ३८ ॥

भिंदि भिंदि छिंधि छिंधि तिष्ठ तिष्ठ क्व यास्यसि ।
इति तत्परमे युद्धे दैत्यमातृगणस्य च ॥ ३९ ॥

निपातनं पर्वतानां वृक्षाणां दृषदां तथा ।
बभूव सततं तत्र मातृदानवमंडले ॥ ४० ॥

एवं क्रमेण तत्रापि जातो वै रुधिरार्णवः ।
विनेदुः शतशस्तत्र शिवाः श्येनाश्च वायसाः ॥ ४१ ॥

गगनं च तथा रेजे पताका शतपंक्तिभिः ।
पालाशकुसुमैर्देवि माधवे विपिनं यथा ॥ ४२ ॥

निहता दानवा रेजुः पर्वता इव संगरे ।
ऊर्द्ध्वरोममहावृक्षाः स्रवद्रक्तजलास्तथा ॥ ४३ ॥

पताकाश्च तथा रेजुः सन्ध्यामेघगणा इव ।
निहता दानवा केचिद् भक्षिताश्च तथापरे ॥ ॥ ४४ ॥

अर्द्धविच्छिन्नचरणा [2]निकृतांसकराः परे ।
कबन्धाश्चैव शतश उत्थितास्तत्र संगरे ॥ ४५ ॥

योगिन्यश्च तथा घंटनादोऽभूत्किंकिणीस्वनः ।
हन्यमानं मातृगणैर्दानवानां वनं महत् ।
विननाश यथा बह्नेस्तृणकाष्ठवनं महत् ॥ ४६ ॥

---

१. शब्दं त २. निकृतंक ।

हाथियों की चिंघाड़ों से, घोड़ों की हिनहिनाहटों से, रथों के चीत्कार से तथा वीरों के गरजने से ।। ३७ ।।

पृथिवी और आकाश के बीच बहुत शब्द होने लगा । धनुषों की टंकार और निरन्तर वरसाये गये बाणों के शब्दों से ।। ३८ ।।

मारो-मारो, काटो-काटो, ठहरो-ठहरो, कहां जा रहे हो, इस प्रकार देवियों तथा दानवों के भयंकर युद्ध में विविध भांति के शब्द होने लगे ।। ३९ ।।

वहां उन देवी और दानव सेनाओं के बीच निरन्तर पर्वतों, वृक्षों और पत्थरों की वर्षा होने लगी ।। ४० ।।

इस प्रकार से वहां भी रक्त-समुद्र निर्मित हो गया और वहां सैकड़ों गीदड़ियां, बाज तथा कौवे शब्द करने लगे ।। ४१ ।।

सैकड़ों ध्वजाओं की पंक्तियों से आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसे बसन्त में वन पलाश-पुष्पों से सुशोभित रहते हैं ।। ४२ ।।

रण में मरे हुये दैत्य पर्वतों के समान विराजमान दिखाई देते थे । उनके खड़े हुये रोम वृक्षों के समान थे तथा रक्त रूपी जल बह रहा था ।। ४३ ।।

ध्वजायें इस प्रकार विराजमान हो रही थीं जैसे सन्ध्याकाल में मेघ सुशोभित रहते हैं । कोई राक्षस मारे गये थे और कोई खालिये गये थे ।। ४४ ।।

किन्हीं के आधे पैर और किन्हीं के एक-एक हाथ काटे गये थे । उस रण-भूमि में सैकड़ी कबन्ध उठ रहे थे ।। ४५ ।।

योगिनियों का किंकिणी का शब्द और घंटानाद होने लगा । मातृ देवियों के द्वारा दानवों की महती सेना का विनाश उस युद्ध में ऐसा होने लगा जैसे अग्नि तृण और लकड़ी के वन को भस्म कर डालती है ।। ४६ ।।

भेजिरे पर्वतान्केचिदन्तरिक्षे तथा गताः ।
समुद्रेषु तथा सुप्ता गता दश दिशो परे ।। ४७ ।।

पराङ्मुखं च तत्सैन्यं दृष्ट्वा च परविस्मयम् ।
जगाम रक्तबीजोऽपि शुम्भादिपरिवारितः ।। ४८ ।।

कम्पयन् वसुधां दैत्यैः सशैलपुरकाननाम् ।
सन्दष्टौष्ठपुटः क्रोधात्परं विस्मयमागतः ।। ४६ ।।

गच्छतस्तस्य संग्रामे विनेदुः शतशः शिवाः ।
गृध्रः पपात तस्याशु रथे ध्वजविराजिते ।। ५० ।।

शुम्भश्चैव निशुम्भश्च कालवक्त्रो महाहनुः ।
त्रिशीर्षो द्विशिराश्चैव चण्डरोचिः सुरान्तकः ।। ५१ ।।

विडालवदनश्चैव शंकुरोमा महोदरः ।
एवमाद्या महावीरा युयुधुस्तद्रणाजिरे ।। ५२ ।।

गदाभिः परिघैश्चैव शरैराशीविषोपमैः ।
शतघ्नीभिः परशुभिर्निस्त्रिंशैर्ऋष्टिभिस्तथा ।। ५३ ।।

कुठारैश्च करालाभिः खट्वांगैर्मुशलैस्तथा ।
हलै पाषाणकैस्तत्र पर्व्वतैः पादपैस्तथा ।। ५४ ।।

युयुधुः शतशो वीरा मुष्टिभिर्नखरैस्तथा ।
इति तत्तुमुलं युद्धं बभूव वीरहर्षणम् ।। ५५ ।।

पुनः पुनः शरैर्भग्ना मातरश्च तथा हताः ।
पलायनपरा जाता दिशो दश वरानने ।। ५६ ।।

इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा देव्यतिविस्मिता ।
त्रिशूलखड्नेमुशलधनुस्तोमरपट्टिशान् ।
नाराचं चैव खट्वांगं दधती बाहुभिस्तथा ।। ५७ ।।

कोई दैत्य उस भय से पर्वतों में भाग गये, कोई दैत्य आकाश में उड़ गये तथा कोई समुद्र में सो गये और कोई दस दिशाओं में निकल भागे ।। ४७ ।।

उस सेना को युद्ध से पराङ्मुख देखकर परम विस्मित रक्तबीज भी शुंभ आदि दैत्यों के साथ युद्ध में गया ।। ४८ ।।

परम विस्मित होकर वह क्रोध से अपने दांतों से अधरों को काट रहा था । दैत्यों से उस समय पर्वत वन और नगरों सहित समस्त पृथिवी कांप रही थी ।। ४९ ।।

उस रक्तबीज के रण-स्थल पर जाते समय सैकड़ों गीदड़ियाँ शब्द करने लगीं । ध्वजा से शोभित उसके रथ पर शीघ्रता से गिद्ध टूट पड़े ।। ५० ।।

शुंभ, निशुंभ, कालवक्त्र, महाहनु, त्रिशीर्स, द्विशिरा, चंडरोचि, सुरान्तक ।। ५१ ।।

विडालवदन, शंकुरोमा, महोदर आदि बलिष्ठ दैत्य भी उस रण-भूमि में युद्ध करने लगे ।। ५२ ।।

गदा, परिध, सर्प के समान विष युक्त बाण, शतघ्नी, परशे, खड्ग भृष्टि ।। ५३ ।।

कुठार, वरछे, खट्वांग, मुसल, हल, पाषाण, पर्वत, वृक्ष ।। ५४ ।।

मुष्टि और नखों के द्वारा उस युद्ध स्थल में सैकड़ों वीर युद्ध करने लगे । इस प्रकार वह घोर संग्राम वीरों को प्रसन्न करने वाला हुआ ।। ५५ ।।

हे वरानने ! उन दैत्यों के द्वारा बार-बार चलाये गये बाणों से आहत और घायल वे मातृ देवियाँ दसों दिशाओं में भाग निकलीं ।। ५६ ।।

इस प्रकार उस परम आश्चर्य को देखकर देवी अति विस्मित हुईं । त्रिशूल, खड्ग, मुशल, धनुष, तोमर पट्टिश, बाण और खट्वांग को हाथों में धारण करके ।। ५७ ।।

गौरी सिंहसमासीना मदिरारक्तलोचना ।
युयुधे संयुगे तघ योगिनीभिः परावृता ।। ५८ ।।

निजघ्नुः शतशो वीरान् नानाप्रहरणैस्ततः ।
देवी क्रुद्धा गदापार्तः पोथयामास दानवान् ।। ५९ ।।

खड्गेन सितधारेण दानवेशा द्विधा कृताः ।
चूर्णिता मुशलेनापि तोमरेण द्विधा कृताः ।। ६० ।।

नाराचनिकरैर्भिन्नाः खटवांगेन विदारिताः ।
पट्टिशेन तथा देव्या खंडिता दानवाः परे ।। ६१ ।।

हाहाकाररवं चक्रस्त्राहि त्राहीति चाऽसकृत् ।
बव्रुर्वैदानवा केचित्तच्चूर्णीकृतमस्तकाः ।। ६२ ।।

माहेश्वर्य्यास्त्रिशूलेन हता निपतिता भुवि ।
ययुर्दश दिशो भग्ना मातृभिः परिपीडिताः ।। ६३ ।।

तथा शुम्भनिशुम्भाद्या विक्षता रणमूर्द्धनि ।
केचिद्वै रुरुहुर्गोत्रान्केचिदन्तर्गतास्तथा ।। ६४ ।।

पलायमानं स्वं सैन्यं रक्तबीजो महासुरः ।
विवृत्य नयने क्रोधात्परावृत्य बलं स्वकम् ।
पतंग इव दीप्तेऽग्नौ ययौ यौद्धुं तया सह ।। ६५ ।।

गदया ताडयामास सिंहं तस्याः सुवाहनम् ।
ताडिते च ततः सिंहे क्रोधनिष्पीडिताधरा ।
त्रिशूलेन जघानाशु रक्तबीजं महासुरम् ।। ६६ ।।

त्रिशूलनिहतस्यापि सुस्राव रुधिरं तु यत् ।
यावन्तो रक्तबीजोत्थाः पतिता रक्तबिन्दवः ।
तावन्त[1] एव सहसा जातास्ते रक्तबीजकाः ।। ६७ ।।

---

१. तावन्तः सहसा जाता पतस्ते ।

वह गौरी शक्ति जिस समय सिंह पर आरूढ़ हुई उस समय उनकी आंखें मदिरा के समान लालवर्ण की हो गई थीं। वह शक्ति योगिनियों को साथ लिये युद्ध करने लगी ॥ ५८ ॥

देवी ने सैकड़ों वीरों को अपने अनेक प्रहारों से मार डाला। उस क्रोधित देवी ने बहुत से दानवों को गदा के प्रहारों से कुचल डाला ॥ ५६ ॥

तेज धार वाले अपने खड्ग से दानव सेनापतियों के दो टुकड़े कर डाले। किसी को मूसल से चूर-चूर कर डाला तथा किसी को तोमर से काट डाला ॥ ६० ॥

किसी को बाणों से मार डाला, किसी को खट्वांग से विदलित कर दिया और किन्हीं दानवों को देवी ने पट्टिश से खंडित कर डाला ॥ ६१ ॥

जिनके मस्तक शक्ति के द्वारा चूर्ण किये जा रहे थे वे दानव पुनः पुनः त्राहि त्राहि करने लगे। उस घोर संग्राम में दैत्यों का हाहाकार शब्द निरन्तर होने लगा ॥ ६२ ॥

अनेक दैत्य महेश्वरी के त्रिशूल से मर कर भूमि पर गिर पड़े। बहुत से दैत्य योगिनियों के द्वारा परिपीड़ित होकर दसों दिशाओं में निकल भागे ॥ ६३ ॥

शुंभ-निशुंभ आदि दैत्य आहत होकर रणभूमि में गिर पड़े। कोई दैत्य पहाड़ों पर चढ़ गये तथा भाग कर अन्दर छिप गये ॥ ६४ ॥

महान् असुर रक्तबीज ने अपनी सेना को युद्ध स्थल से भागते देखा। क्रोध से नेत्रों को फाड़कर उसने अपनी सेना को वापिस लौटाया और शक्ति के साथ इस प्रकार युद्ध करने गया जिस प्रकार पतंग अग्नि में प्रवेश करता है ॥ ६५ ॥

रक्तबीज ने गदा से देवी के वाहन सिंह पर प्रहार किया। सिंह को ताड़ित हुआ देखकर देवी के अधर क्रोध से कांपने लगे। उसने त्रिशूल से रक्तबीज पर प्रहार किया ॥ ६६ ॥

त्रिशूल के प्रहार से रक्तबीज के शरीर से जो खून की बूँदे निकलीं। जितनी वे खून की बूँदे रक्तबीज के शरीर से निकलकर भूमि पर गिरती थीं उतने ही रक्तबीज के समान दैत्य सहसा उत्पन्न हो जाते थे ॥ ६७ ॥

निजघ्नुर्देवतानीकं त्रिशूलैः परिघैस्तथा।
असिभिर्मुशलैश्चैव शक्तितोमरसायकैः॥ ६८॥

यथायथा रक्तबीजं निजघ्नुर्देवताः शरैः।
तथा तथा रक्तबीजास्तद्वलास्तत्पराक्रमाः।
ववृधू रक्तबीजानां सहस्राणि शतानि च॥ ६९॥

देवतानीकमखिलं पीडयामासुरंजसा।
वाणवर्षैः शूलवर्षैर्ववृषुर्गिरिजां ततः॥ ७०॥

त्रैलोक्यं नु तथा व्याप्तं वाणैराशीविषोपमैः।
दानवैश्च तथा व्याप्तं रुरुधुर्गगनं ततः॥ ७१॥

ग्रहनक्षग्रताराद्या न शेकुश्चलितुं क्वचित्।
अंधीभूता त्रिलोकी च संत्रस्ता देवतागणाः॥ ७२॥

चचाल वसुधा चेलुः पर्वताश्च वरानने।
संक्षोभमापुः सरितां पतयोऽऽकालकाके॥ ७३॥

उल्कापातास्तथा पेतुर्विक्षिप्तं ग्रहमण्डलम्।
शरैरस्त्रैश्च संव्याप्तां देवीं सिंहोपरिस्थिताम्॥ ७४॥

दृष्ट्वा वै भयमापन्ना देवास्सेन्द्रास्तदद्भुतम्।
मनोभिर्देवता जग्मुस्त्राहि त्राहीति चाऽसकृत्॥ ७५॥

यथा यथा तस्य देहान्निस्ससृ रुधिरापगाः।
तथा तथा रक्तबीजवृन्दानि ववृधू रणे॥ ७६॥

व्याप्तमासीच्च त्रैलोक्यं सदेवासुरमानुषम्।
एतस्मिन्नन्तरे देवी क्रोधसंरक्तलोचना।
उवाच वचनं चण्डीं चण्डमुण्डविनाशिनीम्॥ ७७॥

वे देवताओं की सेना को त्रिशूलों, परिधों, खड्गों, मुसलों, शक्तियों और तोमरों और बाणों से मारने लगे ।। ६८ ।।

जैसे-जैसे देवता अपने बाणों से उस रक्तबीज को मारते थे। वैसे ही रक्त-बीज के समान बल और पराक्रम वाले हजारों तथा सैकड़ों रक्तबीजों की वृद्धि होती थी ।। ६९ ।।

देवताओं को सारी सेना को ये दैत्य दुःखी करने लगे और बाण तथा त्रिशूलों की वर्षा वे पार्वती पर करने लगे ।। ७० ।।

तीनों लोक सर्पों के समान बाणों से व्याप्त हो गये। दानवों ने आकाश को व्याप्त करके अवरुद्ध कर दिया ।। ७१ ।।

ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि को थोड़ा भी चलने की शक्ति न रही। तीनों लोकों में अन्धकार छा गया और देवता लोग संत्रस्त हो गये ।। ७२ ।।

हे वरानने ! समस्त पर्वत चलायमान होने लगे, और भूमि काँपने लगी। उस असमय में नदियों के पति समुद्र भी क्षुब्ध हो गये ।। ७३ ।।

उल्कापात होने लगे और ग्रहमंडल विक्षिप्त हो गया। सिंह पर आरूढ़ शक्ति को दैत्यों के बाणों और अस्त्रों से व्याप्त देखकर ।। ७४ ।।

इस अद्भुत दशा को देखकर इन्द्र सहित देवता भयभीत हुये। वे मन ही मन पुनः पुनः त्राहि-त्राहि कहने लगे ।। ७५ ।।

जैसे-जैसे उस युद्ध में रक्तबीज के शरीर से खून की धारा बहती थी, उसी क्रम से रणक्षेत्र में अनेक रक्तबीज बढ़ जाते थे ।। ७६ ।।

तीनों लोक देवताओं, असुरों और मनुष्यों से व्याप्त हो गये। इसके बाद क्रोध से लाल आँखों वाली देवी ने चण्डमुण्ड का नाश करने वाली चामुण्डा से यह वचन कहा ।। ७७ ।।

दानवोऽयं महामायी ब्रह्मणो वरदानतः ।
प्रमत्तश्चापि चामुण्डे अवध्योऽयं सुरादिभिः ।। ७८ ।।

न दिवा मरणं ह्यस्य न रात्रौ ब्रह्मणेरितम् ।
निहन्तव्यो महादेव्या त्वया चण्डविनाशिनि ।। ७९ ।।

विस्तारय मुखं शीघ्रं रक्तं पिब तदीयकम् ।
नोत्पत्स्यन्ति तदा वीरा रक्तबीजसमुद्भवाः ।। ८० ।।

सन्ध्यायां निधनं यस्य भविष्यति विनिश्चितम् ।
इदत्युक्त्वा वचनं देवी युयुधे दानवैः सह ।। ८१ ।।

साऽपि देवी महाकाली चकार वदनं बहु ।
विस्तीर्णं कालदंष्ट्राभमधरं पृथिवीतले ।। ८२ ।।

उत्तरोष्ठं महर्ल्लोके कृत्वा सर्वविनाशनम् ।
निजगाल महाकाली शतशोऽथ सहस्रः ।। ८३ ।।

दानवान्युद्धदुर्धर्षान् रक्तबीजशरीरजान् ।
साऽपि देवी त्रिशूलेन गदया रक्तबीजकम् ।
ताडयामास रुधिरं सुस्राव तच्छरीरतः ।। ८४ ।।

उत्पत्स्यमानान्दनुजान्निजगाल महेश्वरी ।
यावच्छरीरे रुधिरं पपौ भीमकलेवरा ।
इति क्रमेण नीरक्तो रक्तबीजोऽभवत्तदा ।। ८५ ।।

निपपात महीपृष्ठे अंजनाद्रिरिवापरः ।
निहता दानवाः केचिद् भक्षिताश्चापरे तथा ।। ८६ ।।

केचित्पातालसंलीनाः कुहरेषु गतास्तथा ।
सिंहेनापि तथा केचिद्भक्षिता दानवा रणे ।। ८७ ।।

हे चामुण्डे ! यह मायावी दानव ब्रह्मा जी के वर से प्रमत्त हुआ है। इसका वध देवता आदि द्वारा नहीं हो सकता है ।। ७८ ।।

इसका वध दिन में तथा रात्रि में नहीं होगा। यह ब्रह्मा ने इसे वर दिया है। चण्ड को नष्ट करने वाली हे महादेवि ! तुम ही इसको मारोगी ।। ७९ ।।

आप अपने मुख को खूब फैला लो और शीघ्र उस रक्तबीज के खून को पी डालो। तब रक्तबीज से किसी अन्य वीर की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी ।। ८० ।।

इसका वध निश्चित ही सन्ध्याकाल में होगा। यह कह कर देवी दानवों के साथ युद्ध करने लगी ।। ८१ ।।

उस महाकाली देवी ने भी अपने मुख को बहुत फैला लिया। काल की दाढ़ के समान इसका अधर पृथिवीतल पर फैल गया ।। ८२ ।।

सबका विनाश करने वाले ऊपर के होठ को महर्लोक तक फैला कर वह देवी महाकाली हजारों दैत्यों को निगलने लगी ।। ८३ ।।

युद्ध में रक्तबीज के शरीर से जितने दुर्द्धर्ष दैत्य उत्पन्न हुये थे, उनको तथा रक्तबीज को देवी ने त्रिशूल तथा गदा से मार डाला। उनके देह से खून बहने लगा ।। ८४ ।।

उससे जितने भी दैत्य उत्पन्न हुये, उनको महाकाली ने निगल दिया। उस महाकाली ने रक्तबीज के शरीर में जितना खून था उसे पी डाला। इस प्रकार क्रमशः वह रक्तबीज रक्तहीन हो गया ।। ८५ ।।

तब वह अंजनपर्वत के समान पृथिवी पर गिर पड़ा। काली के द्वारा अनेक दैत्य मारे गये तथा कई दैत्य खा लिये गये ।। ८६ ।।

कोई दैत्य पाताल में जाकर छिप गये और कोई पर्वत की कन्दराओं में जा छिपे। उस युद्ध में कुछ दैत्यों को शक्ति के सिंह ने खा लिया ।। ८७ ।।

ब्राह्म्यादिभिर्हता केचिदन्तरिक्षगताः परे ।
निहते रक्तबीजे तु प्रसन्नं चाऽभवज्जगत् ।। ८८ ।।

देवाः सेन्द्रास्तुष्टुवुस्तां स्तोत्रैर्नानाविधैः पराम् ।
सरितो मार्गवाहिन्यो निर्मलं चाभवन्नभः ।। ८९ ।।

स्वं स्वं स्थानं तथा प्रापुर्लोकपाला वरानने ।
दिव्यभौमान्तरिक्षाश्च महोत्पाताश्शमं ययुः ।। ९० ।।

पातालं विविशुर्दैत्या देवा यज्ञांशभागिनः ।
बभूवुः सुप्रसन्नाभाः सूर्यचन्द्रादयो ग्रहाः ।। ९१ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीतीर्थमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

एकोननवतितमोऽध्यायः

सरस्वतीतटस्थितानेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं, कालीश्वर-सिद्धेश्वर-कोटिमाहेश्वर्यादिमाहात्म्यप्रनिरूपणञ्च

वसिष्ठ उवाच—

इति ते कथितो देवि रक्तबीजवधो मया ।
यं श्रुत्वाऽपि नरः पापान्मुच्यते कोटिजन्मजात् ।। १ ।।

अथ ते कथयिष्यामि कालिकायाः सुदुर्ल्लभम् ।
माहात्म्यं परमं गोप्यं कलौ दुर्ज्जनमानुषे[1] ।। २ ।।

काली प्रत्यक्षफलदा पूजनात्स्मरणादपि ।
यः कश्चिन्मानवो भक्त्या पूजयेत्परमां शिवाम् ।
स याति रुद्रभवनं यावदाभूतसंप्लवम् ।। ३ ।।

१. साधुषः ।

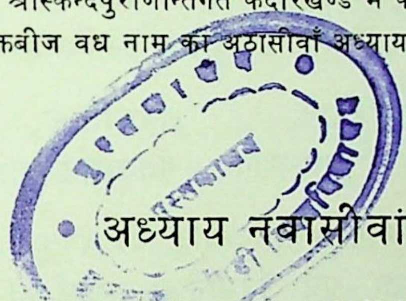
कुछ दैत्यों को ब्राह्मी शक्ति ने मार डाला । बहुत से दैत्य आकाश में उड़कर भाग गये । रक्तबीज के मारे जाने पर समस्त जगत् प्रसन्न हुआ ॥ ८८ ॥

देवी की प्रसन्नता के लिए इन्द्र सहित सब देवता अनेक स्तोत्र पाठ करने लगे । नदियां ठीक मार्गों से जाने लगीं तथा आकाश निर्मल हो गया ॥ ८९ ॥

हे वरानने ! समस्त लोकपालों को अपने-अपने लोक प्राप्त हो गये । देवलोक, भूमण्डल तथा आकाशमंडल के समस्त महाविघ्न शान्त हो गये ॥ ९० ॥

दैत्य पाताल में प्रवेश करने लगे, देवताओं को यज्ञभाग मिलने लगा । तूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों की प्रभा निर्मल हो गई ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कालीतीर्थ-माहात्म्य में रक्तबीज वध नाम का अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ।



अध्याय नवासीवां

सरस्वती के तट पर स्थित अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन, कालीश्वर-सिद्धेश्वर-कोटिमाहेश्वरी आदि के माहात्म्य का निरूपण

वसिष्ठ ने कहा—

हे देवि ! इस प्रकार से मैंने रक्तबीज वध का उपाख्यान आपसे कहा है, जिसको सुनकर मनुष्य करोड़ों जन्मों के पापों से विमुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

अब मैं कालिका देवी के परम दुर्ल्लभ माहात्म्य को आपसे कहूँगा । कलियुग में दुर्जन मनुष्य से इस माहात्म्य को नितान्त गुप्त रखना चाहिये ॥ २ ॥

कालीदेवी पूजन एवं स्मरण से प्रत्यक्ष फल देने वाली है । जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक शक्ति का पूजन करता है वह प्रलय पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है ॥ ३ ॥

कृते यत्प्राप्यते पुण्यं वर्षकोटिशतैरपि ।
तत्पुण्यं प्राप्यतेऽत्रैव त्रिरात्रान्नाऽत्र संशयः ।। ४ ।।

माषमात्रं सुवर्णं तु कालिकायै तु यो ददेत् ।
तत्स्यात्कोटिगुणं पुण्वं वर्द्धमानं दिने दिने ।। ५ ।।

कालीयं दर्शनेनापि कैवल्यफलदायिनी ।
अस्यै भूमिं तु यो दद्यादपि गोचर्म्ममात्रिकाम् । ६ ।।

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम् ।
तस्य नैव कत्राचित्तु पतनं विष्णुलोकतः ।। ७ ।।

तिलधेनुं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ।
ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ।। ८ ।।

कोटिसूर्य्यप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः ।
मोदते सुचिरं कालमक्षयं वृतशासनम् ।। ९ ।।

पक्षिणो महिषाञ्छागान्मृगान्दिव्यैर्हि यो ददेत् ।
स तु गन्धर्वगीतः सन् विमानैर्भास्वरप्रभैः ।। १० ।।

देवीलोके वसेन्नित्यं ततो भूमौ समागतः ।
राजा स्याद्धार्म्मिकः सत्यवक्ता पुत्रसमन्वितः ।। ११ ।।

इह लोके सुखं भुक्त्वा परमं मोदते शिवे ।
स सिद्धीश्वरतामेति यः कुमारीं प्रपूजयेत् ।
गन्धाक्षतप्रसूनाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ।। १२ ।।

सरस्वत्यास्तटे रम्ये नानामुनिगणान्विते ।
नानातीर्थानि रम्याणि मुक्तिमार्गप्रदानि च ।
तानि सर्वाणि तन्वङ्गि वदामि भवमुक्तये ।। १३ ।।

संक्षेपेण शृणु प्राज्ञे यच्छ्रुतं शिवतो मया ।
इदं क्षेत्रं परं गुह्यं यस्य कस्य न वाचयेत् ।। १४ ।।

सैकड़ों करोड़ों वर्षों तक किये गये पुण्य का जो फल मिलता है, वह पुण्य यहाँ तीन रात्रि के निवास से ही प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४॥

जो व्यक्ति कालिका के लिये केवल माशा भर भी सोने का दान करता है, उसका पुण्य प्रतिदिन बढ़ता हुआ करोड़ों गुणा फल को देनेवाला हो जाता है ॥ ५ ॥

मात्र दर्शन करने से भी यह काली मोक्ष को देने वाली है । जो व्यक्ति गौ के चर्म के बराबर भी भूमि को इस काली के निमित्त से दान करता है ॥ ६ ॥

उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है । उसे ग्रह-नक्षत्र, तारों आदि के पतन का भय नहीं रहता । उसका विष्णुलोक से कभी पतन नहीं होता है ॥ ७ ॥

जो व्यक्ति इस स्थान पर वेदों में पारंगत ब्राह्मण को तिल एवं गाय दान देता है, उसने मानों सागर, वन, द्वीप सहित, भूमि दान की है ॥ ८ ॥

वह व्यक्ति करोड़ों सूर्यों के सदृश दीप्तिमान् विमानों में आरूढ़ हो, चिरकाल पर्यन्त अक्षय लोकों में आनन्दपूर्वक निवास करता है ॥ ९ ॥

जो व्यक्ति देवी के लिए पक्षियों, महिषों, बकरों एवं दिव्य मृगों की बलि देता है, वह गन्धर्वों के समान गानशक्ति से सम्पन्न होकर दीप्तिमान् विमानों के द्वारा ॥ १० ॥

देवी-लोक में नित्य निवास करता है । जब वह पुनः भूमि में जन्म धारण करता है तो वह धार्मिक सत्य बोलने वाला पुत्रवान् राजा होता है ॥ ११ ॥

वह इस लोक में सुख भोगकर अन्त में परमानन्द शिव के आनन्द का अनुभव करता है । जो व्यक्ति गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य आदि अनेक पूजन-सामग्री से कुमारी का पूजन करता है, वह सिद्धियों का स्वामित्व प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

अनेक मुनिगणों से आकीर्ण सरस्वती नदी के सुरम्य तटपर मुक्तिमार्ग को देने वाले अनेक सुरम्य तीर्थ हैं । हे तन्वङ्गि ! उन सबका वर्णन मैं संसार से मुक्ति के लिए तुमसे करता हूँ ॥ १३ ॥

हे प्राज्ञे ! जो मैंने महादेव जी से सुना है, उसे संक्षेप से सुनिये । यह क्षेत्र परम गोपनीय है । इसका वर्णन जिस-किसी से नहीं करना चाहिये ॥ १४ ॥

अत्र ब्रह्मादयो देवाः परमां सिद्धिमागताः ।
अत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषीन्यस्तर्पयेन्नरः ॥ १५ ॥

तेन सन्तर्पितं सर्वं जगच्च सचराचरम् ।
पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥ १६ ॥

यः स्नानमाचरेदस्यां भक्त्या परमया मुदा ।
स याति परमं स्थानमृषीणां यत्सुदुर्लभम् ॥ १७ ॥

भूमिदानं यः करोति महापातकवानपि ।
सोऽपि पापैर्वर्जितात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १८ ॥

योऽत्र प्राणान्विमुच्येत क्षेत्रे देवगणावृते ।
मरणेन हि किं काश्यां किं गयायां हि श्राद्धतः ॥ १९ ॥

स तु मुक्तो विशुद्धात्मा पुनरावृत्तिदुर्ल्लभः ।
सरस्वतीन्दीवरयोः संगमो यत्र वै भवेत् ।
तत्र स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २० ॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि शिवलिंगं सुपुण्यदम् ।
कालीक्षेत्रे महालिंगं केदारादपि पुण्यदम् ॥ २१ ॥

यत्पूजनान्महाभागे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।
स्वं स्वं पदं समालेभुः पुनरावृत्तिदुर्ल्लभम् ॥ २२ ॥

यः पूजयति तल्लिगं स गच्छेत्परमं पदम् ।
यद्दर्शनादपि ध्यानाद्यन्नामस्मरणादपि ॥ २३ ॥

अपि पापसमाक्रान्ता निर्मुक्ता पापकंचुकात् ।
प्रयान्ति शिवसालोक्यं यावदाचन्द्रतारकम् ॥ २४ ॥

नाम्ना कालीश्वरः ख्यातस्तत्समीपे जलं शुभम् ।
यत्पानाद् ब्रह्मसदनं याति[1] मर्त्यो न संशयः ॥ २५ ॥

---

1. यान्ति मर्त्याः ।

इस स्थान में ब्रह्मा आदि देवताओं को परम सिद्धि मिली थी। यहाँ जो मनुष्य स्नान करके पितरों, देवताओं एवं ऋषियों का तर्पण करता है ॥ १५ ॥

तब मानो उसने समस्त चराचर को तृप्त कर दिया है। उसके पितर चौदह इन्द्रों के राज्य काल तक तृप्त हो जाते हैं ॥ १६ ॥

परम प्रसन्न हो भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति इस नदी में स्नान करता है। वह उस परम उत्तम स्थान को प्राप्त करता है, जो ऋषियों के लिए भी प्राप्त करना कठिन है ॥ १७ ॥

जो व्यक्ति इस स्थान में भूमि-दान करता है, चाहे वह कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, पापकर्मों से रहित होकर वह परम ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥ १८ ॥

देवताओं द्वारा आकीर्ण इस क्षेत्र में जो व्यक्ति प्राणों का त्याग करता है, उसके लिए काशी में मरण तथा गया में श्राद्धकर्म करने से क्या लाभ है ॥ १९ ॥

वह विशुद्ध आत्मा हो संसार में पुनर्जन्म धारण नहीं करता। सरस्वती और इन्दीवर नदियों के संगम पर स्नान करके मनुष्य सनातन ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है ॥ २० ॥

अब मैं अन्य एक परम पुण्य को देने वाले शिवलिंग का वर्णन आपसे कहूँगा। काली क्षेत्र में एक महालिंग है जो केदारनाथ से भी अधिक पुण्यों को देने वाला है ॥ २१ ॥

हे महाभाग्यशालिनि ! जिसके पूजन करने से ब्रह्मा आदि देवताओं ने अपने उन पदों को प्राप्त किया था, जिनसे वापिस लौटाना कठिन है ॥ २२ ॥

जो इस लिंग की पूजा करता है वह परम पद को प्राप्त करता है। जिसके दर्शन से, ध्यान से, नामोच्चारण से भी ॥ २३ ॥

पापों से आक्रान्त मनुष्य पापजाल से मुक्त हो जाते हैं। उसका निवास जब तक आकाश में चन्द्रमा एवं तारे हैं तब तक शिवलोक में रहता है ॥ २४ ॥

कालीश्वर नाम से विख्यात इस शिवलिंग के निकट शुभ देनेवाला जलस्रोत है, जिसके पान करने से मनुष्य ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥

कालीक्षेत्रं समादिष्टं प्रत्यक्षफलदायकम् ।
श्रूयन्तेऽद्यापि निर्घोषाः शंखभेरीमृदंगजाः ॥ २६ ॥

कदाचित्तु सुनीनां हि वेदघोषो महाद्भुतः ।
गायन्ति यत्र गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः ॥ २७ ॥

सिंहव्याघ्राः समायान्ति नित्यं यद्दर्शनेप्सवः ।
विहाय वैरं सर्वेषु दृश्यन्तेऽद्यापि धार्मिकैः ॥ २८ ॥

सिद्धा मुनिगणा देवा इन्द्राद्याः सर्वदैव हि ।
पूजयन्ति महाकालीं कलौ पापप्रणाशिनीम् ॥ २९ ॥

कलौ नास्त्येव नास्त्येव विना कालीं विमुक्तिदाम् ।
भुक्तिदा मुक्तिदा नॄणां सर्वथैव मम प्रिये ॥ ३० ॥

एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं सप्तरात्रकम् ।
यश्चैकाग्रमना भूत्वा यः कश्चिद्देवतामनुम् ।
प्रजपेत्तस्य प्रत्यक्षा देवी स्याद्वरदायिनी ॥ ३१ ॥

मासमात्रं फलाहारः सरस्वत्या मनुं जपेत् ।
स भवेच्छास्त्रवित्प्राज्ञो देवानां च यथा गुरुः ॥ ३२ ॥

तत्रैव वर्त्तते वृक्षो विशुद्धाग्निजसम्भवः ।
पूजयन्ति सुरा देवीं तत्पुष्पैः स्वर्णसम्भवैः ॥ ३३ ॥

यदि भाग्यवशाद्वृक्षो दृश्यते मानुषैः शुभैः ।
त एव पुण्या[1] लोकेषु विमुक्तास्ते न संशयः ॥ ६४ ॥

श्रृणु देवि प्रिये दिव्यमाश्चर्य्यं बल्लमे मम ।
देव्या पश्चिमभागे तु समीपे लिंगमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

---

१. पुण्य ।

प्रत्यक्ष फल देने वाले इस क्षेत्र का नाम काली क्षेत्र है। आज भी इस क्षेत्र में शंख, मृदंग आदि के शब्द सुनने में आते हैं ॥ २६ ॥

कभी-कभी मुनियों की बड़ी अद्‌भुत वेदध्वनि श्रवण गोचर होती है। वहां गन्धर्व गान करते और अप्सरायें नाचती हैं ॥ २७ ॥

वैरभाव को छोड़कर नित्य यहाँ दर्शन के इच्छुक सिंह और व्याघ्र आदि आते हैं। ये सब धार्मिकों के द्वारा देखे जा सकते हैं ॥ २८ ॥

सिद्ध, मुनिजन, इन्द्र आदि देवता हमेशा कलियुग के पापों को नाश करने वाली महाकाली की पूजा करते हैं ॥ २९ ॥

हे प्रिये ! कलियुग में विना काली पूजन के मुक्ति नहीं हो सकती, नहीं हो सकती। सर्वथा काली ही मनुष्यों को भुक्ति एवं मुक्ति देने वाली है ॥ ३० ॥

एक रात्रि, दो रात्रि, तीन रात्रि अथवा सात रात्रि तक जो मनुष्य एकाग्रमन होकर देवी का जप करता है उसके समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थित होकर देवी वर प्रदान करती है ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य फलाहार करके एक मास तक इस स्थान में स्वरस्वती के मंत्र का जाप करता है। वह देवगुरु बृहस्पति के समान बुद्धिमान् तथा शास्त्रों का ज्ञाता होता है ॥ ३२ ॥

वहाँ ही विशुद्ध अग्नि से उत्पन्न एक वृक्ष विद्यमान है। उसके सुवर्ण के समान पुण्यों से देवता देवी की पूजा करते हैं ॥ ३३ ॥

यदि भाग्यवश पुण्यात्मा जन इस वृक्ष का दर्शन कर लें तो वे ही संसार में पुण्यशील एवं मोक्ष प्राप्त करने वाले होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥

हे देवि ! प्रिये ! मेरी बल्लभे ! सुनो। दिव्य एवं परमाश्चर्य का वर्णन करते हैं। देवी के पश्चिम भाग में, समीप ही एक उत्तम लिंग है ॥ ३५ ॥

तेजोरूपं महादेव्याः समीपे फलदायकम् ।
नाम्ना सिद्धेश्वरं ख्यातं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ।। ३६ ।।

मतंगाख्या शिला तत्र परमस्थानदायिनी ।
मतंगमुनिना यत्र तपस्तप्तं सुदारुणम् ।। ३७ ।।

सदैव निलयं देव्या यत्रास्ते वरर्वाणिनि ।
पश्वादिबलिभिः प्रीता ददाति च मनोरथान् ।। ३८ ।।

पितॄनुद्दिश्य ये श्राद्धं तत्र कुर्वन्ति मानवाः ।
विमुक्ताः पितरस्तेषां पितरस्ते तु पुत्रिणः ।। ३९ ।।

ततो देव्याः पूर्वभागे गिरौ गव्यूतिमात्रके ।
आस्ते तत्र महादेवी नाम्ना तु रणमंडना ।। ४० ।।

यत्र गत्वा नरो याति देवीलोकमनामयम् ।
शरद्वसन्तयोः काले बलिपूज्ञोपहारकैः ।
पूजयेद् भक्तिभावेन पूजयन्त्येव तं सुराः ।। ४१ ।।

विमानवरमारुह्य किंकिणीजालमालिनम् ।
परितोऽप्सरसां वृन्दैर्गन्धर्वैः सिद्धकिन्नरैः ।। ४२ ।।

शोभमानं प्रयात्येव भित्वा सूर्यस्य मण्डलम् ।
ब्रह्मलोकं मुनिवरैरीप्सितं दुःखवर्जितम् ।। ४३ ।।

अत्र यं कुरुते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
समस्तैश्वर्य्यदं पुंसां नित्यं दानविधा[1]यिनाम् ।। ४४ ।।

अस्मिन् गिरौ महाकाली समाप्लुत्य नमस्तलम् ।
कराभ्यां सुदृढाभ्यां तु पृथिवीं समताडयत् ।। ४५ ।।

---

१. यिवी ।

उत्तम फलों को देने वाला प्रकाशस्वरूप वह लिंग देवी के समीप ही है। उसका सिद्धेश्वरलिंग नाम विख्यात है। दर्शन मात्र से वह मोक्ष को देने वाला है ॥ ३६ ॥

वहां परम उत्तम स्थान को देनेवाली मतंग नाम की शिला विद्यमान है। यहाँ मतंग मुनि ने कठिन तप किया था ॥ ३७ ॥

हे सुन्दरि ! नित्य सदैव वहाँ देवी निवास करती है। जो व्यक्ति पशु आदि की बलियों से यहाँ देवी का पूजन करता है, प्रसन्न होकर देवी उसके मनोरथों को सिद्ध कर देती है ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य पितरों के उद्देश्य से वहाँ श्राद्धकर्म करते हैं, उनके पितर मोक्ष को प्राप्त होते हैं और वे श्राद्धकर्त्ता पुत्रवान् होते हैं ॥ ३९ ॥

देवी के पूर्वभाग में दो कोस की दूरी पर पर्वत के ऊपर एक रणमण्डना नाम की देवी निवास करती है ॥ ४० ॥

यहाँ की यात्रा से मनुष्य दुःख रहित देवीलोक को प्राप्त करता है। शरद ऋतु, एवं वसन्त ऋतु में बलि-पूजा और उपहारों द्वारा जो व्यक्ति भक्तिभावना से देवी की पूजा करता है, उसकी पूजा देवता भी करते हैं ॥ ४१ ॥

और वह व्यक्ति किंकणियों की मालाओं से सुसज्जित उत्तम विमान में आरूढ़ होकर, अप्सराओं के समूहों, गन्धर्वों, और किन्नरों द्वारा चारों ओर से ॥ ४२ ॥

शोभायमान होता हुआ, सूर्यमण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक को जाता है। इसकी प्राप्ति के लिए श्रेष्ठमुनि भी अभिलाषा करते हैं और यहाँ दुःख नहीं होता ॥ ४३ ॥

इस स्थान में जो भी कामना की जाय, वह पूर्ण हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। नित्य दान करने वालों के लिये यह स्थान समस्त पापों को नाश करने वाला, समस्त उपद्रवों का विनाशक एवं मनुष्यों को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है ॥ ४४ ॥

इसी पर्वत के ऊपर महाकाली ने आकाश की ओर उछल कर अपने सुदृढ़ हाथों से पृथिवी का ताडन किया था ॥ ४५ ॥

अद्यापि दृश्यते तत्र करचिह्नं सुनिर्मलम् ।
इदमेव परं स्थानं तपःसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४६ ॥

पर्वतेऽस्मिन्महाभागे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
विचरन्ति सुखं देव्याः दृश्यन्तेऽद्यापि कैश्चन ॥ ४७ ॥

काल्याश्चोत्तरभागे तु योजनार्द्धेन सम्मिते ।
तत्र स्थानं महादेव्याः सर्वपीठोत्तमोत्तमम् ॥ ४८ ॥

कोटिमाहेश्वरी देवी वसते नित्यमेव हि ।
सर्वपापहरा सर्वसुखभोगप्रदायिनी ॥ ४९ ॥

यद्दर्शनादपि नरो जातिस्मरणमाप्नयात् ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कालीक्षेत्रतीर्थाभिधानं
नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।

नवतितमोऽध्यायः

**रक्तबीजवधानन्तरं दनुजवधार्थं भगवत्या कोटिमायाश्रयणात्
कोटिमायेश्वरीति नाम्ना प्रसिद्धिः । तस्मिन् क्षेत्रे
व्रतदानतपसामनन्तफलाभिधानम्**

अरुन्धत्युवाच—

मुनिसेवितपादाब्ज प्राणवल्लभ मत्पते ।
या त्वया सूचिता मह्यं कोटिमायेश्वरीति वै ॥ १ ॥

कथं तस्याः समुत्पत्तिः कथं नाम बभूव हि ।
कथं तस्याः स्थितिस्तत्र दुर्गमे हिमपर्वते ॥ २ ॥

आज भी वहाँ शक्ति के हाथों के परम निर्मल (स्पष्ट) चिह्न दिखाई देते हैं। यह परम उत्तम स्थान तपस्या को सिद्ध करने वाला है ॥ ४६ ॥

हे महाभागे ! इस पर्वत के ऊपर सिद्ध गन्धर्व और किन्नर सुख से विचरण करते हैं और किसी-किसी को देवी के दर्शन भी होते हैं ॥ ४७ ॥

काली के उत्तरभाग में आधा योजन की दूरी पर एक महादेवी का स्थान है, जो देवी के समस्त सिद्धपीठों से उत्तम है ॥ ४८ ॥

वहाँ कोटिमाहेश्वरी नाम की देवी नित्य निवास करती है। वह समस्त पापों को हरण करनेवाली तथा समस्त सुख-भोगों को देनेवाली है ॥ ४९ ॥

इसके दर्शन मात्र से जातिस्मरण का फल मनुष्य प्राप्त करता है ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में काली क्षेत्रतीर्थ-अभिधान नाम का नवासीवां अध्याय पूरा हुआ।

नब्बेवां अध्याय

रक्तबीज का वध करने के अनन्तर दानवों का वध करने के लिये देवी द्वारा करोड़ों मायाओं का आश्रय लेने से कोटिमायेश्वरी नाम प्रसिद्ध होना, उस क्षेत्र में व्रत-दान-तप के अनन्त फल का कथन करना

अरुन्धती बोली—

हे प्राणवल्लभ ! मेरे पति ! आपके पैरों की मुनियों द्वारा सेवा की जाती है। मुझसे आपने जो कोटिमायेश्वरी का वर्णन किया है ॥ १ ॥

उसकी उत्पत्ति कैसी हुई ? कैसे उसका नाम कोटिमायेश्वरी हुआ ? उस दुर्गम हिमालय पर्वत पर कैसे उसकी स्थिति हुई ॥ २ ॥

वसिष्ठ उवाच—

श्रृणु प्रिये वरारोहे सुन्दरि प्राणवल्लभे।
धन्यासि कृतपुण्यासि यस्यास्ते मतिरीदृशी ॥ ३ ॥

अनादिनिधना देवी न वाङ्मनसगोचरा।
सैव सत्त्वादिसंयोगात्सृष्ट्यादीन् कुरुते भृशम् ॥ ४ ॥

नित्या शुद्धा निर्विकारा निराकारा निरत्यया।
कथं तस्याः समुत्पत्ति वदामि सुन्दरानने ॥ ५ ॥

परं तु त्वद्गतप्रीत्या वक्ष्यामि तज्जनि शुभाम्।
यदा यदा हि बाधा स्याद्देवानामासुरी प्रिये ॥ ६ ॥

तदा तच्छमनार्थाय ह्याविर्भूता महेश्वरी।
लोके सा तु तदोत्पन्नेत्येवं वादो भवत्यथ ॥ ७ ॥

देवानुग्रहणार्थाय महिषासुरघातने।
तथा शुम्भनिशुम्भस्य दैत्ययोर्विनिघातने ॥ ८ ॥

रक्तबीजादिदैत्यानां मारणे सा महात्मिका।
चकार विविधा माया असुराणां भयप्रदाः ॥ ९ ॥

क्वचिच्च सिंहरूपेण नारसिंहेन च क्वचित्।
क्वचित्कांश्चिज्जघानासौ वाराहं रूपमाश्रिता ॥ १० ॥

कांश्चिद् वै ब्रह्मणः शक्त्या इन्द्रशक्त्या तथापरान्।
वाणरूपेण खड्गेन शस्त्रशास्त्रस्वरूपिणी ॥ ११ ॥

क्वचिच्च विंशतिभुजा शतहस्ता तथा क्वचित्।
क्वचित्सहस्रहस्ता च विशास्या शुभतुंडधृक् ॥ १२ ॥

एकपादा द्विपादा च नियुतांघ्रिः परार्द्धपात्।
कांश्चिद् खड्गेन चिच्छेद निजगाल तथाऽपरान् ॥ १३ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे प्रिये ! वरारोहे ! सुन्दरि ! प्राणवल्लभे ! सुनो । तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो, जो तुम्हारी मति इस प्रकार की हुई है ।। ३ ।।

उस देवी के आदि-अन्त पता नहीं चल सकता । वह वाणी तथा मन से अगोचर है । वह ही सत्त्व आदि गुणों के संयोग से सृष्टि आदि की रचना करती है ।। ४ ।।

वह नित्य शुद्ध, निर्विकार, और आकार रहित है । उसका कभी नाश नहीं होता । हे सुमुखि ! किस प्रकार मैं उसकी उत्पत्ति का वर्णन आपसे कर सकता हूँ ।। ५ ।।

परन्तु आपके प्रेम के कारण मैं उस देवी की शुभ देनेवाली जन्म-कथा का वर्णन करूँगा । हे प्रिये ! जब-जब देवताओं के ऊपर असुरों की बाधा उपस्थित होती है ।। ६ ।।

तब उस बाधा की शान्ति के लिए महेश्वरी प्रादुर्भूत होती है । लोक में उस समय यह कथन उत्पन्न हो जाता है कि वह देवी उत्पन्न हो गई है ।। ७ ।।

देवताओं के ऊपर कृपा करने के लिए, महिषासुर को मारने के लिए, तथा शुंभ और निशुंभ दैत्यों को मारने के लिए ।। ८ ।।

रक्तवीज आदि दैत्यों को मारने के लिए उस महादेवी ने असुरों को भय देने वाली अनेक मायायें की हैं ।। ९ ।।

कहीं सिंहरूप धारण करके, कहीं नरसिंहरूप धारण करके और कहीं वराहरूप धारण करके उस देवी ने दैत्यों का वध किया ।। १० ।।

किन्हीं दैत्यों का ब्रह्मा की शक्ति से, किन्हीं का देवराज इन्द्र की शक्ति से, किसी का वाण से तथा किसी का खड्ग से उस शस्त्र और शास्त्र स्वरूपिणी शक्ति ने वध किया ।। ११ ।।

देवी ने कहीं बीस, कहीं सौ और कहीं हजार भुजाओं को धारण किया । कहीं शुभ शरीर को धारण करने वाली उन्होंने बीस मुखों को धारण किया ।। १२ ।।

देवी ने कभी एक पाद, कभी दो पाद और कभी लाख पाद और कभी पचास लाख पाद धारण करके किसी का खड्ग से नाश किया तथा किसी को निगल लिया ।। १३ ।।

काश्चिच्छूलेन भित्वा च चिक्षेप गगनान्तरे।
क्वचिद्दर्शनयोग्याभूत्क्वचिद्दृश्या न कैश्चन ॥ १४ ॥

अरूपा बहुरूपा च क्वचिदिन्द्रादिरूपिणी।
एवं चक्रे यतो मायाः कोटीः प्राणस्य वल्लभे ॥ १५ ॥

अतस्तस्याः बभूवैतत्कोटिमायेश्वरीति च।
नाम विख्यातिमायातं स्वर्गाधिकफलप्रदम् ॥ १६ ॥

हिमवत्पर्वते रम्ये देवैराराधिता सती।
तत्रैव वसतिं चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ १७ ॥

यः कुर्य्याद्दर्शनं तस्या मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
देवीं प्रतिसमायान्तं दृष्ट्वा तत्प्रपितामहाः।
नृत्यन्ति हर्षिताः सर्वे व्रजामो लोकमव्ययम् ॥ १८ ॥

इत्येवं वादिनो भद्रे वदन्ति च रमन्ति च।
यैः कृतं पिण्डदानं हि स्नानतर्पणपूर्वकम्।
तारितं तैः सुपुत्रैस्तु कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ १९ ॥

गगायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं लभते ह्यत्र पिंडदाने कृते सति ॥ २० ॥

कोटिमायेश्वरीं देवीं यः पूजयति भक्तितः।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ २१ ॥

यः कश्चित्कपिलामेकामस्मिंस्तीर्थे प्रयच्छति।
अहीनांगो ह्यरोगश्च पंचेन्द्रियसमन्वितः ॥ २२ ॥

यावन्ति रोचकूपानि तस्य गात्रेषु सन्ति वै।
तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २३ ॥

किसी को त्रिशूल से खंडित किया और किसी को आकाश में फेंक दिया। किसी को देवी ने दर्शन दिये और कहीं वह अदृश्य हो गई ॥ १४ ॥

कहीं वह रूपरहित रही, कहीं उन्होंने अनेक रूप बनाये और कहीं इन्द्र आदि रूपिणी बनीं। हे प्राणप्रिये ! इस प्रकार देवी ने करोड़ों मायायों की रचना की ॥ १५ ॥

इसीलिए उनका कोटिमायेश्वरी नाम जगत् में विख्यात हुआ, जो स्वर्ग से भी अधिक फल देने वाला है ॥ १६ ॥

सुरम्य हिमालय पर्वत में देवताओं ने देवी की आराधना की थी। इसलिए वहीं देवी ने लोकों के हित की कामना से निवास किया ॥ १७ ॥

जो उस शक्ति का दर्शन करता है, मुक्ति उसके हाथ में स्थित हो जाती है। उसे देवी की यात्रा के लिए आते देख कर उसके पितामह आदि पितर हर्षित होकर नाचने लगते हैं, कि अब हम अव्यय लोक में प्रवेश करेंगे ॥ १८ ॥

हे भद्रे ! यह कहते हुये वे बोलते हैं और रमण करते हैं। जो यहाँ स्नान एवं तर्पण करके पिण्डदान करते हैं, वे सुपुत्र अपने एक सौ एक कुल का उद्धार करते हैं ॥ १६ ॥

गंगा में पिण्डदान से मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है, उस फल को यहाँ पिण्डदान करने से वह प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥

कोटिमायेश्वरी देवी की जो भक्ति-भावना से पूजा करता है, उसकी सैकडों करोड़ कल्पों तक भी इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती ॥ २१ ॥

जो मनुष्य इस तीर्थ में एक कपिला गाय का दान करता है, वह पुष्ट शरीरवाला, रोगहीन तथा पंचेन्द्रियों से सुसम्पन्न रहता है ॥ २२ ॥

उस गाय के शरीर में जितने रोम है, उतने ही हजार युगों तक वह मनुष्य स्वर्गलोक में निवास करता है ॥ २६ ॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजराजो भवेदिह ।
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्मत्तीर्थे मरणं भवेत् ॥ २४ ॥

अस्मिंस्तीर्थे महाभागे यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।
देवीसायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २५ ॥

यस्तु भूमिं प्रयच्छेत हस्तमात्रामपि द्विजे ।
तेन दत्ता वेत्पृथ्वी सशैलवनकानना ॥ २६ ॥

यं मंत्रं प्रजपेदत्र चैकरात्रोषितो नरः ।
स मंत्रसिद्धितां याति शत्रुमंत्रोऽपि बल्लभे ॥ २७ ॥

इति ते कथितं दिव्यं माहात्म्यं मुक्तिदायकम् ।
कोटिमायेश्वरीदेव्या यैः श्रुतं ते विकल्मषाः ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कोटिमायेश्वरीमाहात्म्यकथनं
नाम नवतितमोऽध्यायः ।

एकनवतितमोऽध्यायः

राकेश्वरीमहिमावर्णनम् । गुरुपत्नीव्यभिचारदोषाद् गुरुणा चन्द्राय राजयक्ष्मरोगशापप्रदानम् राकेश्वरीमाहात्म्याभिधानञ्च

वसिष्ठ उवाच—

कालीक्षेत्रात्सौम्यभागे योजनद्वयसंमिते ।
राकेश्वर्य्या महादेव्याः स्थानं दिव्यसुखप्रदम् ॥ १ ॥

यद्दर्शनादपि नरो महापातककोटिभिः ।
मुच्यते परमं धाम प्राप्नोति मुनिवंदितम् ॥ २ ॥

तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर इस मनुष्य लोक में जन्मधारण करके वह राजराजेश्वर होता है। वह अनेक भोगों का भोग करके मेरे उत्तम तीर्थ में मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

हे महाभाग्यशालिनि ! इस तीर्थ में जो प्राणों का परित्याग करता है, उसे देवी का सायुज्य प्राप्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, यह सत्य है ॥ २५ ॥

जो इस तीर्थ में ब्राह्मण को एक हाथ भूमि भी दान देता है, उसने मानो सकल पर्वतों, और वनों सहित पृथिवी का दान किया है ॥ २६ ॥

जो मनुष्य एक रात्रि का भी उपवास रखकर इस तीर्थ में मंत्र-जप करता है, उसका वह मंत्र सिद्ध होता है। हे प्रिये ! चाहे वह मंत्र शत्रुमंत्र ही क्यों न हो ॥ २७ ॥

इस प्रकार मैंने आपसे कोटिमायेश्वरी देवी के मुक्ति देनेवाले दिव्य माहात्म्य को कह दिया है। इसको सुनने वाला भी निष्पाप हो जाता है ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कोटिमायेश्वरी माहात्म्य कथन नाम का नब्बेवां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय इकानवेवां

राकेश्वरी की महिमा का वर्णन, गुरु की पत्नी के साथ व्यभिचार करने के कारण गुरु द्वारा चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग होने का शाप, राकेश्वरी के माहात्म्य का कथन

वसिष्ठ ने कहा—

कालीक्षेत्र से सौम्य (पूर्व) दिशा में दो योजन दूर राकेश्वरी महादेवी का दिव्य सुख देने वाला स्थान है ॥ १ ॥

इसके दर्शन से ही मनुष्य करोड़ों महापातकों से मुक्त हो जाता है और मुनियों से वन्दित परम धाम को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

यत्र प्राप गुरोः शापाद्विमुक्ति शशलांछनः।
तस्य तीर्थस्थ माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥ ३ ॥

यद्दर्शनादपि नरः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

अरुन्धत्युवाच—

कथं वै प्राप्तवाञ्छापं चन्द्रो दाक्षायणीपतिः।
कथं च मुक्तवाञ्छापादिति मे शंस जीवन ॥ ५ ॥

वशिष्ठ उवाच—

एकदा नंदने रम्ये समाह्लादकरे शुभे।
नानाद्रुमलताकीर्णे कल्पवृक्षोपशोभिते ॥ ६ ॥

अनेकमणिसंयुक्ते नानौषधिप्रभान्विते।
कौतुकदर्शनार्थाय राज्ञो वै दर्शनाय च ॥ ७ ॥

समागतो विधुः सौम्यः कामदेव इवापरः।
ददर्श तारां मृद्वंगीं वाप्यां रतिमिवापराम् ॥ ८ ॥

तां दृष्ट्वा कामसंतप्तो बभूव रजनीपतिः।
सापि चन्द्रं विलोक्यैव कामबाणप्रपीडिता।
आसीत्संमूच्छिता सोऽपि पपात धरणीतले ॥ ९ ॥

एवं मिथस्तयोः प्रीतिः समजायत शुश्रुवे।
मूच्छितश्चिन्तयामास चन्द्रो मे का गतिर्भवेत् ॥ १० ॥

तया विना न जीवामि मोक्ष्ये प्राणान्न संशयः।
इति प्राणान्परित्यक्तुं निश्चयं कृतवान्यदा ॥ ११ ॥

सापि तं तदवस्थं तु दृष्ट्वाऽत्यंतं प्रदुःखिता।
आययौ निकटं तस्योत्तिष्ठ प्रियेतिभाषिणी ॥ १२ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सुधाधारोपमं मुदा।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने तद्द्विजराट् तदा ॥ १३ ॥

जिस तीर्थ में चन्द्रमा ने गुरु के शाप से मुक्ति प्राप्त की थी, उस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ है ।। ३ ।।

इसका दर्शन करने से भी मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। ४ ।।

अरुन्धती ने कहा—

हे मेरे जीवन मुने ! दाक्षायणी के पति चन्द्रमा को कैसे शाप मिला और उसने शाप से कैसे मुक्ति पाई, इस बात को मुझे बताइये ।। ५ ।।

वसिष्ठ ने कहा—

एक दिन आह्लादित करने वाले, शुभ, रमणीय, अनेक वृक्षों एवं लताओं से भरे हुये तथा कल्पवृक्षों से सुशोभित नन्दन वन में... ।। ६ ।।

जो अनेक मणियों से युक्त था और विविध औषधियों की कान्ति से अन्वित था, कौतुकों को देखने और देवराज का दर्शन करने के लिये... ।। ७ ।।

मानों दूसरा कामदेव हो, ऐसा सौम्य चन्द्रमा आया । वहाँ उसने बावड़ी में कोमल अंगों वाली तारा को देखा, जो मानो दूसरी रति थी ।। ८ ।।

उसको देखकर चन्द्रमा काम से सन्तप्त हो गया । वह तारा भी चन्द्रमा को देखकर काम के बाणों से पीड़ित होकर मूर्छित हो गई । वह चन्द्रमा भी भूमितल पर गिर गया ।। ९ ।।

सुना जाता है कि इस प्रकार उन दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया । मूर्छित होकर चन्द्रमा विचार करने लगा कि मेरी कौनसी गति होगी ।। १० ।।

मैं उसके विना जीवित नहीं रहूँगा और निस्सन्देह प्राणों को छोड़ दूँगा । इस प्रकार उसने जब प्राणों का परित्याग करने का निश्चय किया... ।। ११ ।।

तो उसकी इस अवस्था को देखकर वह तारा अत्यधिक दु:खी हुई । वह उसके समीप आई । हे प्रिय ! उठो, यह उसने कहा ।। १२ ।।

तब उस चन्द्रमा ने अमृत की धारा के समान उस तारा के वचन को सुनकर प्रसन्नता से अपने आपको पुनः उत्पन्न हुआ समझा ।। १३ ।।

सोऽपि तामालिलिंगाऽथ साऽपि पंचशराहता ।
आलिलिंग सुधांशुं सा चुचुम्बेन्दुश्च तन्मुखम् ॥ १४ ॥

उभौ कामशराक्रांतौ तत्र तत्समये प्रिये ।
नापश्यतां च कांश्चिद्वै स्थितानपि च निर्ज्जरान् ॥ १५ ॥

अथ रेमे तया सार्द्धं चन्द्रमा लक्षवर्षकम् ।
निमेषार्द्धमिवापश्यल्लक्षवर्षाणि मोहितः ॥ १६ ॥

गतानि बहुवर्षाणि तयोश्च रममाणयोः ।
रात्रौ तारा गुरुगृहे तेनैव परिमोदते ॥ १७ ॥

दिवा चन्द्रेण सार्द्धं तु रेमे साहर्निशं प्रिये ।
ततो बहुतिथे काले ज्ञातवान्स बृहस्पतिः ॥ १८ ॥

तज्ज्ञात्वा क्रोधसंतप्तो बभूव धिषणस्तदा ।
आगत्य चन्द्रं प्रोवाच क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १९ ॥

धिक्चन्द्र तव पापिष्ठ यस्मात्त्वं कृतवानसि ।
मज्जायाया धर्षणं हि तस्मात्त्वं क्षयवान्भव ॥ २० ॥

वसिष्ठ उवाच—

इति चंद्राय शापं तु दत्त्वा चन्द्रोऽभ्यजायत ।
राजयक्ष्मग्रस्तदेहो नानारोगातुरो भृशम् ॥ २१ ॥

क्षुत्क्षामः क्षामदेहो वै मषीवर्णद्युतिः कृशः ।
चंद्रोऽपि स्वं वपुर्दृष्ट्वा रोगग्रस्तं शुचिस्मिते ।
ययौ कैलासभवनं यत्र देवः सदाशिवः ॥ २२ ॥

तत्र गत्वा शिवं नत्वा पूजयित्वा यथाविधि ।
श्रीशिवं स्तोतुमारेभे राजयक्ष्मापनुत्तये ॥ २३ ॥

चन्द्रमा ने उसका आलिङ्गन किया। कामदेव के बाणों से आहत उस तारा ने भी चन्द्रमा का आलिङ्गन किया। चन्द्रमा ने उसके मुख का चुम्बन किया॥ १४॥

हे प्रिये ! उस समय काम के बाणों से आक्रान्त उन दोनों ने वहाँ स्थित किन्हीं देवताओं को भी नहीं देखा॥ १५॥

तदनन्तर चन्द्रमा ने उसके साथ एक लाख वर्ष तक रमण किया। मोहित हुये उसने एक लाख वर्षों को आधे निमेष के समान देखा॥ १६॥

उन दोनों को रमण करते हुये बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। रात्रि में तारा गुरु बृहस्पति के घर में रहकर भी उसी चन्द्रमा के साथ आनन्द करती थी॥ १७॥

हे प्रिये ! दिन में भी वह तारा चन्द्रमा के साथ रमण करती थी। इस प्रकार वह दिन-रात उसके साथ रमण करती थी। तदनन्तर बहुत समय बीत जाने पर बृहस्पति ने इस बात को जान लिया॥ १८॥

तब उस बात को जानकर बृहस्पति क्रोध से सन्तप्त हो गया। क्रोध से लाल आँखों वाला वह आकर चन्द्रमा से बोला॥ १९॥

हे पापिष्ठ चन्द्र ! तुमको धिक्कार है। क्योंकि तुमने मेरी पत्नी को धर्षित किया है, अतः तुम क्षय के रोगी हो जाओ॥ २०॥

वसिष्ठ ने कहा—

चन्द्रमा को इस प्रकार शाप दिया। चन्द्रमा का शरीर भी राजयक्ष्मा रोग से ग्रस्त होकर अनेक रोगों से बहुत अधिक पीड़ित हुआ॥ २१॥

हे शुचिस्मिते ! भूख से पीड़ित, सूखे शरीर वाले, स्याही के समान वर्ण कान्ति वाले, कृश चन्द्रमा ने भी अपने रोग से ग्रस्त शरीर को देखा। वह कैलास पर्वत पर गया, जहाँ देव सदाशिव हैं॥ २२॥

वहाँ जाकर शिव को प्रणाम करके और उनका यथाविधि पूजन करके उसने राजयक्ष्मा रोग के निवारण के लिये श्रीशिव की स्तुति करना आरम्भ किया॥ २३॥

चन्द्र उवाच—
हे देवदेवेश शिवेश भक्तप्रदत्तपुण्याब्धिजल त्रिनेत्र ।
सदैव ते पादवरे निवासो भवेन्महादेव मम प्रभो भो ।। २४ ।।

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थौ यस्मादन्यन्नापरं किंचिदस्ति ।
यस्माद्रुद्रान्नो भविष्यन्न भूतं तं वै सेवे सारभूतं नितांतम् ।। २५ ।।

तारस्त्वमेव भजतां जनिनाशभीतिसंसारबन्धनमपाकुरुषे त्वमेव ।
सूक्ष्मं त्वमेव सकलस्य जनस्य चित्ते ।
ज्योतिर्महेश भवतो न हि किञ्चिदन्यत् ।। २६ ।।

त्वमेव विष्णुर्निखिलस्य भर्त्ता त्वन्नाभिपद्मप्रभवो विरंचिः ।
सृष्टिस्वरूपेण चराचरं हि सृजस्यहो अत्सि च सर्वविश्वम् ।। २७ ।।

निखिलदेवगणैः स्तुतपादकं प्रबलभैरवदण्डनिपातितैः ।
सकलभूतगणैः पारिवारितं शिवमहं शरणं हि परिव्रजे ।। २८ ।।

भवगहने पतितस्य जनस्य मे तव चरणं शरणं भवति प्रभो ।
स्मरमदमानकुवृक्षघनावृते विषयवराहतरक्षुसमन्विते ।। २९ ।।

वसिष्ठ उवाच—
इति स्तुतः शिवः प्राह विनयावनतं विधुम् ।
यदर्थं तु त्वया वत्स स्तुतोऽहं भक्तवत्सलः ।
तत्सर्वं ते विधास्यामि नैवात्र संशयं कुरु ।। ३० ।।

सहस्रं प्रपढेत्स्तोत्रमेतद्राजगदार्द्दितः ।
मुच्यते सहसा रोगादन्ते शिवपुरे वसेत् ।। ३१ ।।

गच्छ तत्र महाभाग यत्र देवोस्थलं गिरी ।
अहं वसामि तत्रैव देव्यासह महामते ।। ३२ ।।

चन्द्रमा ने कहा—

हे देवदेवेश, शिवेश, भक्तों के लिये पुण्यरूपी समुद्र के जल को देने वाले, तीन नेत्रों वाले, प्रभो, महादेव, मेरा निवास सदा ही तुम्हारे श्रेष्ठ चरण में हो ॥ २४ ॥

रुद्र एक ही है, वह किसी दूसरे के लिये स्थित नहीं रहता । जिससे परे संसार में और कुछ नहीं है । जिस रुद्र की अपेक्षा से न तो भविष्यत् काल है और न भूतकाल है । सारभूत उस रुद्र की ही मैं नितान्त सेवा करता हूँ ॥ २५ ॥

भजन करने वालों को तुम ही तराते हो । जन्म और मृत्यु के भय से युक्त संसार के बन्धन को तुम ही दूर करते हो । सम्पूर्ण मनुष्यों के मन में तुम ही सूक्ष्म ज्योति हो । हे महेश ! तुमसे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ॥ २६ ॥

सम्पूर्ण जगत् का भरण करने वाले तुम ही विष्णु हो । ब्रह्मा तुम्हारी ही नाभि के कमल से उत्पन्न हुये थे । तुम सृष्टि के स्वरूप से चर-अचर जगत् का सर्जन करते हो । तुम ही सम्पूर्ण विश्व का भक्षण भी करते हो ॥ २७ ॥

प्रबल भैरव के दण्डों से गिराये गये सारे देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम सारे भूतगणों से घिरे रहते हो । मैं तुम शिव की ही शरण में आया हूँ ॥ २८ ॥

भवरूपी गहन वन में गिरे हुये मुझ जन का, हे प्रभो ! तुम्हारा ही चरण शरण है । यहाँ कामदेव से मदमाते बुरे वृक्षों से घने रूप में आवृत इस गहन संसार में विषयरूपी सूअर और चीते भरे हुये हैं ॥ २९ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

इस प्रकार स्तुति किये गये शिव ने विनय से अवनत चन्द्रमा से कहा—हे वत्स ! जिस उद्देश्य से तुमने मुझ भक्तवत्सल की स्तुति की है, वह सब मैं तुम्हारे लिये करूँगा । तुम इस विषय में संशय मत करो ॥ ३० ॥

इस राजयक्ष्मा राजरोग से पीड़ित जो मनुष्य इस स्तोत्र का हजार बार पाठ करता है, वह इस रोग से सहसा मुक्त हो जाता है और मृत्यु होने पर शिवलोक में निवास करता है ॥ ३१ ॥

हे महाभाग ! तुम वहाँ जाओ, जहाँ पर्वत पर देवी का स्थल है । हे महामते ! मैं देवी के साथ वहीं निवास करता हूँ ॥ ३२ ॥

तत्क्षेत्रवगमनात्ते वै राजयक्ष्मा विनश्यति ।
विलंबं मा कुरु प्राज्ञ गच्छ शीघ्रं विनिश्चितः ।। ३३ ।।

इत्युक्तः प्रययौ तत्र यत्र देवी प्रतिष्ठिता ।
तत्क्षेत्रदर्शनादेव विमुक्तो राजयक्ष्मणा ।। ३४ ।।

बभूव परिपूर्णाङ्गो पूर्णिमायां विशेषतः ।
एवं शापाद्विनिर्मुक्तो गुरोश्चन्द्रः प्रभावतः ।। ३५ ।।

तत आरभ्य नामाभूद्देव्या राकेश्वरीति वै ।
प्रसिद्धिं चागमल्लोके तत्क्षेत्रं मुक्तिदायकम् ।। ३६ ।।

यतो राका पूर्णिमाभूत्ततो राकेश्वरी मता ।
यस्याः स्मरणमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते ।। ३७ ।।

पूजनाल्लभते मोक्षं दर्शनात्पापनाशनम् ।
भक्त्या करोति यः स्पर्शं कैवल्यं तत्करे स्थितम् ।। ३८ ।।

यद्यत्करोति तत्क्षेत्रे पुण्यं वा पापमेव वा ।
तत्सर्वं जायते कोटिगुणं भद्रे दिने दिने ।। ३९ ।।

धर्ममेवाचरेत्तत्र पापं नैव समाचरेत् ।
पूजयेद्भक्तिभावेन नानाबल्युपहारकैः ।। ४० ।।

विमानवरमारुह्य स याति परमं पदम् ।
भित्त्वा रवेर्मंडलं तु यत्र गत्वा न शोचति ।। ४१ ।।

अद्यापि तत्र वसते चन्द्रः स्वांशेन सुव्रते ।
तारया सह विप्रेन्द्रस्तस्य पुत्रो बुधोऽभवत् ।। ४२ ।।

तत्रैव वर्त्तते शैवं लिंगमुत्तमलोकदम् ।
यद्दर्शनान्नरो याति शिवलोकमनामयम् ।। ४३ ।।

इस क्षेत्र में जाने से तुम्हारा राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जायेगा। हे बुद्धिमान् चन्द्र ! विलम्ब मत करो। निश्चिन्त होकर शीघ्र वहाँ जाओ ॥ ३३ ॥

इस प्रकार कहे जाने पर वह वहाँ गया, जहाँ देवी प्रतिष्ठित थीं। उस क्षेत्र के दर्शन से ही वह राजयक्ष्मा से मुक्त हो गया ॥ ३४ ॥

वह पूर्ण अङ्गों वाला हो गया। विशेष रूप से पूर्णिमा में वह पूर्ण अङ्गों वाला होता है। इस प्रकार वह चन्द्रमा इस क्षेत्र के प्रभाव से गुरु के शाप से मुक्त हुआ ॥ ३५ ॥

तब से लेकर देवी का नाम राकेश्वरी प्रसिद्ध हुआ। वह क्षेत्र भी लोक में मुक्तिदायक प्रसिद्ध हुआ ॥ ३६ ॥

क्योंकि राका ही पूर्णिमा थी, अतः उस देवी को राकेश्वरी कहा गया। उसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

उसकी अर्चना करने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है और दर्शन करने से पाप नष्ट होते है। जो मनुष्य भक्ति-भाव से उसका स्पर्श करता है, कैवल्य उसके हाथ में स्थित है ॥ ३८ ॥

हे भद्रे ! मनुष्य उस क्षेत्र में जो भी पाप या पुण्य करता है, वह उसका प्रतिदिन करोड़ गुना हो जाता है ॥ ३९ ॥

वहाँ धर्म का ही आचरण करें; पाप का आचरण न करें। वहाँ भक्ति-भाव से विविध उपहारों द्वारा देवी का पूजन करें ॥ ४० ॥

वह उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर, रवि मंडल को भेद कर परमपद को प्राप्त करता है, जहाँ जाकर शोक नहीं रहता ॥ ४१ ॥

हे सुव्रते ! आज भी वहाँ चण्द्रमा अपने अंश से रहता है। तारा के साथ समागम ये उसका पुत्र विप्रेन्द्र बुध हुआ ॥ ४२ ॥

वहीं पर उत्तम लोकों को देने वाला शिवलिंग है। इसका दर्शन करने से मनुष्य रोगों और कष्टों से रहित शिवलोक में जाता है ॥ ४३ ॥

इति ते कथितं दिव्यं क्षेत्रराजस्य वैभवम् ।
यच्छ्रुत्वाऽपि नरः पापैः सद्य एव विमुच्यते ।। ४४ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे राकेश्वरीमाहात्म्यकथनं
नामैकनवतितमोध्यायः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

चन्द्रवंशवर्णनम्

अरुन्धत्युवाच—

भगवन्वद मे चांद्रमन्वयं तत्त्वतः प्रभो ।
यत्र जाताः महीपालाः शतशो हरितत्पराः ।। १ ।।

राजपुत्रा प्रजाताश्च कथं हि श्रेष्ठत्तां गताः ।
केन कर्मविपाकेन प्राप्तवंतः परां गतिम् ।। २ ।।

केषु केषु च तीर्थेषु तपस्तप्तं महात्मभिः ।
एतत्सर्वं समासेन भक्तायै वद सुव्रत ।। ३ ।।

सूत उवाच—

इत्युक्तो मुनिराड् दध्यावरुन्धत्या धृतव्रतः ।
विज्ञाय तन्महद् वृत्तं स्कन्दनारदयोस्तदा ।
उवाच सर्वं यत्पृष्टं प्रियया प्रियकाम्यया ।। ४ ।।

उक्त्वा तत्सर्ववृत्तान्तं पत्न्या कैलासमाययौ ।। ५ ।।

ऋषयः ऊचुः —

सूत सूत महाबाहो वदाग्रे कथितं तु यत् ।
अरुन्धत्यै वसिष्ठेन स्कन्दोक्तं नारदे मुनौ ।। ६ ।।

इस प्रकार मैंने तुमसे इस क्षेत्रराज के वैभव को कह दिया है। इसका वर्णन सुनकर भी मनुष्य तत्काल पापों से मुक्त हो जाता है ।। ४४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में राकेश्वरी-
माहात्म्य कथननाम का बावबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ।।

बानवेवां अध्याय

चन्द्रवंश का वर्णन

अरुन्धती ने कहा—

हे भगवन् प्रभो ! मुझसे चन्द्रवंश का ठीक-ठीक वर्णन करो, जिसमें कि विष्णु के भक्त सैंकड़ों राजा हुये हैं ।। १ ।।

उसमें कौन से राजपुत्र हुये और उन्होंने श्रेष्ठता कैसे प्राप्त की ! उन्होंने किन कर्मों के कारण परम गति प्राप्त की ।। २ ।।

उन महात्माओं ने किन-किन तीर्थों में तपस्या की थी ? हे सुव्रत ! इन सब बातों को संक्षेप से मुझ भक्त से कहो ।। ३ ।।

सूत ने कहा—

अरुन्धती द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर व्रत को धारण करने वाले मुनिराज वसिष्ठ ने ध्यान किया। तब स्कन्द और नारद के उस महान् वृत्तान्त को जानकर प्रिय की कामना से प्रिया ने जो कुछ पूछा था, वह सब कहा ।। ४ ।।

उस सारे वृत्तान्त को कहकर वे पत्नी के साथ कैलास पर आ गये ।। ५ ।।

ऋषियों ने कहा—

हे महाबाहो सूत ! स्कन्द ने नारद के लिये जो कुछ कहा था, और उसको वसिष्ठ ने अरुन्धती से कहा था, उस वृत्तान्त को आगे कहो ।। ६ ।।

सूत उवाच—

एकदा सुखमासीनं नारदो मुनिसत्तमः ।
विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ गिरिशात्मजम् ॥ ७ ॥

नारद उवाच—

भगवन् सर्वधर्म्मज्ञ गौरीशंकरयोः सुत ।
उक्तं यद् भवता पूर्वं तीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥

यत्र वै तपसा प्राप बुधो वै वंशमक्षयम् ।
यस्मिन्वंशे समुत्पन्ना महांतः पृथिवीभुजः ॥ ९ ॥

जाता धर्मपरा देवा जेतारोऽपि दिवौकसाम् ।
केषु केषु च तीर्थेषु केदारे शिवमंदिरे ॥ १० ॥

तपस्तप्तं च प्राप्तं च फलं लोकेषु दुर्ल्लभम् ।
वंशं च तीर्थमाहात्म्यं वद विस्तरतो मम ॥ ११ ॥

स्कन्द उवाच—

साधु पृष्टं त्वया विप्र तीर्थानां फलवैभवम् ।
पुण्यानां च महीपानां वंशं श्रोतुः सुखप्रदम् ॥ १२ ॥

पुरा चन्द्रो महातेजा रूपेणाप्रतिमांस्त्रिषु ।
ददर्श गुरु पत्नींतां तारां ताराधिपाननाम् ॥ १३ ॥

धर्मज्ञोऽपि च तां दृष्ट्वा भवितव्यवशं गतः ।
कामेषुगणबिद्धांगः पपात धरणीतले ॥ १४ ॥

ततः कालेन महता दुःखितः शशलाञ्छनः ।
अधर्षयद्वनायातामेकांते वरवर्णिनीम् ॥ १५ ॥

एवं तयोस्तत्र कालो भूयाद्वै रममाणयोः ।
गतः क्षणमिव क्षिप्रं मत्तयोश्चंद्रतारयोः ॥ १६ ॥

सूत ने कहा—

एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारद ने सुख से बैठे हुये शिव-पुत्र स्कन्द से विनयावनत होकर पूछा ।। ७ ।।

नारद ने कहा—

हे भगवन्, सब धर्मों को जानने वाले, गौरी-शंकर के पुत्र ! आपने पहले तीर्थों के उत्तम माहात्म्य को कहा था ।। ८ ।।

जहां कि बुध ने तपस्या से अक्षय वंश को पाया था और जिस वंश में महान् राजा उत्पन्न हुये थे ।। ९ ।।

देवताओं को भी जीतने वाले देवरूप, धर्म-परायण उन राजाओं ने शिव के निवास केदार क्षेत्र में किन-किन तीर्थों में···।। १० ।।

तप किया था और लोकों में दुर्लभ फल को प्राप्त किया था, उनके वंश को और तीर्थों के माहात्म्य को मुझे विस्तार से बताइये ।। ११ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र ! तुमने तीर्थों के फल के वैभव को और पुण्यशाली राजाओं के वंश को अच्छा पूछा है । यह सुनने वाले को सुख देता है ।। १२ ।।

पूर्व समय में तीनों लोकों में सौन्दर्य में अप्रतिम महातेजस्वी चन्द्र हुआ था । उसने चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली, गुरु की पत्नी तारा को देखा ।। १३ ।।

धर्म को जानने वाला होते हुये भी वह भवितव्यता के वशीभूत हो गया । कामदेव के बाणों से अंगों में बींधा जाकर वह पृथिवी तल पर गिर गया ।। १४ ।।

तदनन्तर बहुत समय तक वह चन्द्रमा दुःखी रहा । तदनन्तर उसने एकान्त में वन में आयी हुई उस सुन्दरी को पकड लिया ।। १५ ।।

इस प्रकार रमण करते हुए उन दोनों को बहुत समय बीत गया । वासना में रत चन्द्र और तारा का समय शीघ्र ही क्षण के समान बीत गया ।। १६ ।।

एकस्मिन्समये वाचां पतिः पत्नीं ददर्श ह ।
अन्तर्वत्नीं महाभागः क्रुद्धः प्रोवाच तां[1] प्रियाम् ।। १७ ।।

यस्मात्त्वया कृतं चण्डि दुष्कृतं शशिना सह ।
कर्मणः फलमावश्यं प्राप्स्यत्वेवाशु पापकृत् ।। १८ ।।

क्षयरोगात्क्षीणदेहो भविष्यति न संशयः ।
तवापि सन्ततिर्जारजाताग्रे संभविष्यति ।। १९ ।।

इति शप्त्वा गुरुः क्रोधाज्जगाम स्वाश्रमे तदा ।
चन्द्रोऽपि क्षयक्षीणाङ्गो भूत्वा तुष्टाव शंकरम् ।। २० ।।

तत्प्रोक्तवर्त्मनात्सोऽपि क्षयरोगान्मुमोच ह ।
तारायां जनयामास पुत्रं वैश्वानरप्रभम् ।। २१ ।।

नाम्ना बुधमिति ख्यातं नाम्ना सोऽपि महामतिः ।
श्रीक्षेत्रांतर्गते क्षीरपुत्राद्रेर्निकटे ययौ ।। २२ ।।

तपसे तत्र सुमहत्तताप तप उत्तमम् ।
तपसश्च प्रभावेण ग्रहतां प्राप दुर्ल्लभाम् ।। २३ ।।

अथ कालेन महता स बुधो वै सुबुद्धिमान् ।
इलायां जनयामास यः पुरूरवसं सुतम् ।। २४ ।।

पुरूरवा अपि तथा चोर्वश्या सह संगतः ।
अजीजनत्सुतानष्टौ नामतस्तन्निबोधत ।। २५ ।।

आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान्वसुः ।
दिविजातः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः ।। २६ ।।

केदारमण्डले सर्वे तेपुस्ते परमं तपः ।
तेषां नाम्ना तु ख्यातानि तीर्थानि हिमपर्व्वते ।। २७ ।।

---

१. तं प्रियम् ।

एक समय बृहस्पति ने पत्नी को गर्भ की अवस्था में देख लिया। वह महाभाग क्रुद्ध होकर उस प्रिय पत्नी से बोला ॥ १७ ॥

हे चण्डि ! क्योंकि तुमने चन्द्रमा के साथ बुरा काम किया है, अतः वह पापी इस कर्म का फल शीघ्र ही अवश्य पायेगा ॥ १८ ॥

वह क्षय रोग से क्षीण देह वाला होगा इसमें संशय नहीं है। आगे तुम्हारी सन्तान भी जार से उत्पन्न होगी ॥ १९ ॥

इस प्रकार क्रोध से शाप देकर गुरु बृहस्पति अपने आश्रम में चले गये। क्षय से क्षीण अंगों वाले होकर चन्द्रमा ने भी शंकर की स्तुति की ॥ २० ॥

उनके बताये गये मार्ग से वह क्षय रोग से मुक्त हुआ। चन्द्रमा ने तारा में अग्नि के समान कान्तिमान् पुत्र को उत्पन्न किया ॥ २१ ॥

वह बुद्धिमान् पुत्र बुध के नाम से विख्यात हुआ। वह श्रीक्षेत्र के अन्तर्गत क्षीरपुत्र पर्वत के निकट गया ॥ २२ ॥

वहाँ वह सुमहान् तप के लिये गया था। उसने उत्तम तप किया। तपस्या के प्रभाव से वह दुर्लभ नक्षत्र बना ॥ २३ ॥

तदनन्तर बहुत समय बीतने पर उस अति बुद्धिमान् बुध ने इला नाम की पत्नी में पुरूरवा नाम के पुत्र को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

पुरूरवा का भी उर्वशी के साथ मिलन हुआ। उसने आठ पुत्र उत्पन्न किये। उनके नामों को जान लो ॥ २५ ॥

आयु, दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और शतायु। ये सब दिव्य बल से सम्पन्न ओजस्वी थे ॥ २६ ॥

उन सबने केदारमण्डल में परम तप किया। हिमालय पर्वत पर इनके नाम से तीर्थ प्रसिद्ध हुए ॥२७ ॥

प्रापुश्च परमं स्थानं यस्मान्न च्यवते क्वचित् ।
आयुषस्तु सुताः पंच ख्याता बहुपराक्रमाः ॥ २८ ॥

नहुषो वृद्धशर्म्मा च विपाप्मा रजिदर्भकौ ।
ततापं नहुषो राजा श्रीक्षेत्रे मृतमुक्तिदे ॥ २९ ॥

रजेः पुत्रशतं यज्ञे राजेयमिति विश्रुतम् ।
रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम् ॥ ३० ॥

केदारमण्डले पुण्ये नराणां मुक्तिदायके ।
तपसा तोषितो विष्णुर्वरान्प्रादात्सुदुर्ल्लभान् ॥ ३१ ॥

देवासुरमनुष्याणामभूत्स विजयी तथा ।
अथ देवासुरे युद्धे स रर्जिर्निजघान तान् ॥ ३२ ॥

राक्षसान्सुमहावीर्य्यांस्तस्य पुत्राः महौजसः ।
इन्द्रेण निहताः सर्वे कुलिशेन क्षयं गताः ॥ ३३ ॥

नहुषस्य सुताः सप्त महाबलपराक्रमाः ।
यतिर्ययातिः संयातिरुद्भवः पश्चिदेव च ।
शर्यातिर्मेघयातिश्च सप्तैते वंशवर्द्धनाः ॥ ३४ ॥

ययातेः पंच दायादास्तांश्च वक्ष्यामि नामतः ।
देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत् ॥ ३५ ॥

तथा द्रुह्युं मनुं पूरुं शर्मिष्ठाऽजनयत्सुतान् ।
यदोः पुत्रोऽभवज्ज्येष्ठो नामतस्तु सहस्रजित् ॥ ३६ ॥

सहस्रजितः शतंजिच्च तत्सुतो रेणुसंज्ञकः ।
तत्सुतो हैहयः ख्यातो धर्मनेत्रोऽपि तत्सुतः ॥ ३७ ॥

तद्दायादः संहनस्तु तत्सुतो भद्रसेनक ।
दुर्मदश्च तत्सतोऽभूद्दुर्मदात्कनकोऽभवत् ॥ ३८ ॥

इन्होंने वह परम स्थान प्राप्त किया जहाँ से कोई च्युत नहीं होता। आयु के अति पराक्रमी पाँच प्रसिद्ध पुत्र हुए ।। २८ ।।

नहुष, वृद्धशर्मा, विपाप्मा, रजि और दर्भक। राजा नहुष ने मृतकों को मुक्ति देने वाले श्रीक्षेत्र में तप किया ।। २९ ।।

रजि के सौ पुत्र यज्ञ में शोभित होते थे यह प्रसिद्ध है। रजि ने अकल्मष नारायण की आराधना की ।। ३० ।।

उसने मनुष्यों को मुक्ति देने वाले पुण्य केदारमण्डल में तपस्या करके विष्णु को प्रसन्न किया। विष्णु ने उसको अति दुर्लभ वर दिये ।। ३१ ।।

तब वह रजि देवताओं, असुरों और मनुष्यों को जीतने वाला हुआ। इसके बाद देवासुर युद्ध में उस रजि ने उन असुरों को मार डारा ।। ३२ ।।

रजि ने महापराक्रमी राक्षसों को मारा था। उसके पुत्र महातेजस्वी हुए। इन्द्र द्वारा वज्र से मारे गये वे सब नष्ट हो गये ।। ३३ ।।

नहुष के सात महाबली पराक्रमी पुत्र हुए—यति, ययाति, संयाति, उद्भव, पश्चिदेव, शर्याति और मेघयाति। ये सातों वंश की वृद्धि करने वाले हुए ।। ३४ ।।

ययाति के पांच पुत्र हुए। उनके नाम यताता हूँ। देवयानी ने यदु और तुर्वसु नाम के पुत्र उत्पन्न किये ।। ३५ ।।

शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, मनु और पूरु नाम के पुत्रों को उत्पन्न किया। यदु के ज्येष्ठ पुत्र का नाम सहस्रजित् था ।। ३६ ।।

सहस्रजित् का पुत्र शतञ्जित् और उसका पुत्र रेणु नाम का था। उसका पुत्र हैहय हुआ, उसका पुत्र धर्मनेत्र था ।। ३७ ।।

उसका पुत्र संहन और उसका पुत्र भद्रसेनक हुआ। भद्रसेनक का पुत्र दुर्मद और दुर्मद का पुत्र कनक हुआ ।। ३८ ।।

कनकात्कृतवीर्य्योऽभूत्कार्त्तवीर्यस्तु तत्सुतः ।
तपसा तोषयामास शिवं कैलासपर्वते ॥ ३९ ॥

एकपर्णाशनो भूत्वा मनसा संस्मारञ्छिवम् ।
तुष्टः शिवोऽद्रिद्वीपानामाधिपत्यं ददौ मुदा ॥ ४० ॥

ददौ बाहुसहस्रं च ह्यजेयत्वं रणेऽरितः ।
दश यज्ञसहस्राणि सोऽर्ज्जुनः कृतवान्नृपः ॥ ४१ ॥

अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे तस्य संस्मरणादभूत् ।
न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यंति वै नृपाः ॥ ४२ ॥

दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च विक्रमेण सुतेन च ।
यस्य स्मरणमात्रेण चौरा नश्यंति तत्क्षणात् ॥ ४३ ॥

मार्गे च दुर्गमे व्याघ्रभये मातङ्गजे भये[1] ।
अरण्ये वापि संस्मृत्य सद्यो नश्यंति चापदः ॥ ४४ ॥

महाभये समुत्पन्ने नृपादीनां विशेषतः ।
ग्रहबाधासु चोग्रासु स्मरणादिष्टलाभदः ॥ ४५ ॥

शशबिन्दुस्तु संजज्ञे तत्कुले चातिवीर्य्यवान् ।
तत्कुले वसुदेवोऽभूत्पूर्वजन्मनि यो विभुम् ॥ ४६ ॥

तुषाराद्रौ महापुण्ये गंगाया निकटे शुभे ।
तपसा तोषितो विष्णुर्वरं प्रादात् सुदुर्लभम् ॥ ४७ ॥

वरप्रदानाद्देवेशो बभूव तत्सुतो मुने ।
भूभारमहरद्देवो पांडवानां सहायकृत् ॥ ४८ ॥

पुरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि सुतं प्राणप्रणाशनम् ।
पुरोर्जनमेजयश्चाभूत्प्राचीनुत्तस्तु तत्सुतः ॥ ४९ ॥

---

१. भया ।

कनक का पुत्र कृतवीर्य और उसका पुत्र कार्तवीर्य हुआ । उसने कैलास पर्वत पर तपस्या करके शिव को प्रसन्न किया ।। ३६ ।।

प्रतिदिन भोजन में एक पत्ता लेता हुआ वह मन से शिव का स्मरण करता रहा । प्रसन्न होकर शिव ने उसे प्रसन्नता से पर्वतों और द्वीपों का आधिपत्य प्रदान किया ।। ४० ।।

शिव ने उसे हजार भुजायें दीं और युद्ध में शत्रुओं से अजेय होने का वर दिया । उस राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने दस हजार यज्ञ किये ।। ४१ ।।

राष्ट्र में उस राजा का स्मरण करने से द्रव्य नष्ट नहीं होते । कार्तवीर्य की गति को अन्य राजा निश्चय से प्राप्त नहीं करेंगे ।। ४२ ।।

जो कि उसने दान, यज्ञ, तप, विक्रम और पुत्र के रूप में प्राप्त की थी । जिसका स्मरण मात्र करने से चोर तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ।। ४३ ।।

दुर्गम मार्गों में, व्याघ्र का भय होने पर, चाण्डालों का भय होने पर और जंगल में भी उसका स्मरण करने पर आपत्तियाँ तत्काल नष्ट होती हैं ।। ४४ ।।

महान् भय के उत्पन्न होने पर और विशेष रूप से राजाओं का भय उत्पन्न होने पर तथा उग्र ग्रह-बाधाओं के होने पर उसके स्मरण से इष्ट-लाभ होता है ।। ४५ ।।

उसके कुल में अति पराक्रमी शशविन्दु उत्पन्न हुआ था । उसके कुल में वसुदेव उत्पन्न हुए, जिन्होंने पूर्व जन्म में विभु (परमेश्वर) को प्रसन्न किया ।। ४६ ।।

हिमालय पर्वत पर, महापुण्यशाली गंगा के शुभ निकट तपस्या से विष्णु को प्रसन्न किया । विष्णु ने उसको अति दुर्लभ वर दिया ।। ४७ ।।

हे मुने ! इस वर देने से देवेश विष्णु उनके पुत्र हुए । वे देव पाण्डवों के सहायक हुए और उन्होंने भूमि के भार को दूर किया ।। ४८ ।।

अब मैं पुरु के वंश का वर्णन करूँगा । इसके सुनने से पाप नष्ट होते हैं । पुरु का पुत्र जनमेजय और जनमेजय का पुत्र प्राचीनुत् हुआ ।। ४६ ।।

प्राचीनुत्तान्मलायुस्तु तस्माद्वीतभयो नृपः ।
तद्वंशे शंतनुरभून्महाबलपराक्रमः ॥ ५० ॥

विचित्रवीर्य्यस्तद्दायस्तस्मातपाण्डुरभून्नृपः ।
तत्पुत्राः पंच विख्याताः युधिष्ठिरोऽर्ज्जुनस्तथा ।
भीमश्च नकुलश्चैव सहदेवस्तथापरः ॥ ५१ ॥

द्रौपदी पांडवानां च प्रिया तस्यां युधिष्ठिरात् ।
प्रतिविंध्योऽभवत् पुत्रो श्रुतकीर्तिधनंजयात् ॥ ५२ ॥

सहदेवाच्छ्रुतकर्मा शतानीकस्तु नाकुलिः ।
भीमसेनाद्वीजिवायस्तस्यासीच्च घटोत्कचः ॥ ५३ ॥

एते भूता भविष्याश्च नृपाः संख्या न विद्यते ।
सर्वे पुण्यतमात्मानः समभूवन्मुनीश्वर ॥ ५४ ॥

केदारदर्शनात्सद्यः सर्वे प्रापुः परं पदम् ।
इति चांद्रो मया वंशः संक्षेपात्तव कीर्त्तितः ।
यं श्रुत्वाऽपि नरो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ५५ ॥

सूत उवाच—

इति वः कथितो दिव्यश्चांद्रो वंशः समासतः ।
हिमवच्छैलमाहात्म्यं केदारमंडलाश्रितम् ॥ ५६ ॥

गंगोतपत्तिस्तथा नानातीर्थानां वै भवो मया ।
सम्यक्तया मुनिगणाः भूयः किं श्रोतुमिच्छथ ॥ ५७ ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखण्डे चांद्रवंशकथनं नाम
द्विनवतितमोऽध्यायः ।

प्राचीनुत् का पुत्र मलायु और उसका पुत्र राजा वीतभय हुआ। उसके वंश में महाबली पराक्रमी शन्तनु हुए ॥ ५० ॥

उसका पुत्र विचित्रवीर्य हुआ और उसका पुत्र राजा पाण्डु हुआ। पाण्डु के पांच प्रसिद्ध पुत्र, युधिष्ठर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव हुए ॥ ५१ ॥

द्रौपदी पांचों पाण्डवों की प्रिया थी। उसमें युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, नाम का पुत्र हुआ। अर्जुन से श्रुतकीर्ति हुआ ॥ ५२ ॥

सहदेव से श्रुतकर्मा हुआ और नकुल का पुत्र शतानीक था। भीमसेन का पुत्र वीजिवाय था। उसका पुत्र घटोत्कच हुआ ॥ ५३ ॥

ये जो राजा हुए और जो भविष्य में होंगे उनकी कोई संख्या नहीं है। हे मुनीश्वर ! ये सब राजा पुण्यात्मा हुए थे ॥ ५४ ॥

केदारक्षेत्र का दर्शन करके उन सबने परम पद प्राप्त किया था। इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेप से चन्द्रवंश का कथन कर दिया है। इसको सुन कर भी मनुष्य सनातन ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥

सूत ने कहा—

इस प्रकार संक्षेप में दिव्य चन्द्रवंश का वृत्तान्त कहा गया और केदारमण्डल को आश्रय देने वाले हिमालय पर्वत के माहात्म्य को कहा गया है ॥ ५६ ॥

हे मुनियो ! मैंने गंगा की उत्पत्ति और अनेक तीर्थों के वैभव का वर्णन टीक-ठीक कर दिया है। तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में चान्द्रवंश-कथन
नाम क बानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

वारणावतपर्वतोत्तरकाशीगङ्गोत्तरीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषयः ऊचुः —

सूत सर्वपुराणानां वक्ता त्वं हि महाशय।
शप्ताञ्छ्रुत्वा च निर्मुक्तान्कोटिशो ब्रह्मराक्षसान् ।। १ ।।

गंगोत्पत्तिं विशेषेण तथा राज्ञां महान्वयम्।
तीर्थानां चैव माहात्म्यं किमपृच्छत्पुनर्मुनिः ।। २ ।।

सूत उवाच—

श्रुत्वा कैलासमाहात्म्यं संक्षेपेण पुनर्द्विजाः।
विशेषतः प्रष्टुकामः स्कंदं सोवाच नारदः ।। ३ ।।

नारदः उवाच—

कृष्णवर्त्मज देवेश जगज्जनकसेवक।
निर्गतं त्वन्मुखांभोजात्पिबतो वचनामृतम्।
तृप्तिर्न जायते स्वामिन्पिपासा वर्द्धतेऽधुना ।। ४ ।।

क्षेत्राणां सुबहूनां च वैभवः कथितः श्रुतः।
अधुना श्रोतुमिच्छामि सुसारं हिमवद्गिरौ ।। ५ ।।

तथाकथितक्षेत्रेभ्योऽधिकं क्षेत्रं वदस्व मे।
यन्न कस्मैचिदाख्यातं कलौ मुक्तिप्रदायकम् ।। ६ ।।

न यज्ञैर्न तपोभिश्च नैवोपोषणकव्रतैः।
महादानैर्न चायासैः पुण्यं यद्भवति प्रभो ।। ७ ।।

तिरानवेवां अध्याय

वारणावत पर्वत, उत्तरकाशी और गङ्गोत्तरी के माहात्म्य का वर्णन

ऋषियों ने कहा—

हे सूत महाशय ! तुम सब पुराणों के वक्ता हो। करोड़ों ब्रह्मराक्षसों को शाप मिलने और उससे मुक्त होने की कथा को सुनकर ॥ १ ॥

विशेष रूप से गंगा की उत्पत्ति, राजाओं के महान् वंश और तीर्थों के माहात्म्य को सुनकर मुनि नारद ने स्कन्द से क्या पूछा था ? ॥ २ ॥

सूत ने कहा—

हे ब्राह्मणो ! कैलास के माहात्म्य को संक्षेप से सुनकर, पुनः विशेष रूप से पूछने की इच्छा वाले नारद ने स्कन्द से कहा ॥ ३ ॥

नारद ने कहा—

हे अग्नि से उत्पन्न, देवेश, सांसारिक जनों के जनक के सेवक स्कन्द स्वामिन् ! आपके मुखरूपी कमल से निकले हुए वचनरूपी अमृत का पान करते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही। अब मेरी पिपासा बढ़ रही है ॥ ४ ॥

आपने बहुत से क्षेत्रों का वैभव कहा है और मैंने सुना है। अब मैं हिमालय पर्वत पर उत्तम साररूप श्रेष्ठ क्षेत्र को सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

जोकि अब तक कहे गये क्षेत्रों से अधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हो, जिसे कि किसी को न बताया गया हो और कलियुग में मुक्ति देने वाला हो, उसे मुझे बताओ ॥ ६ ॥

न तो यज्ञों से न तपस्याओं से न उपवास युक्त व्रतों से, न महान् दानों से और नाहीं कष्ट उठाने से है प्रभो ! यह पुण्य होता है ॥ ७ ॥

स्वल्पायासेन मुक्तिश्च सर्वैश्वर्य्यं भवेत्पुनः ।
रहस्यातिरहस्यं च तत्क्षेत्रं वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

स्कन्द उवाच—

अस्ति गुह्यतमं क्षेत्रं सारात्सारतरं परम् ।
परं गोप्यं परं तत्त्वं तुषारवच्छिलोच्चये ॥ ९ ॥

सर्वतीर्थमयं सर्वदेवजुष्टं सुपुण्यदम् ।
यत्र भागीरथी पुण्या गंगा चोत्तरवाहिनी ॥ १० ॥

सौम्यकाशीति विख्याता गिरौ वै वारणावते ।
असी च वरुणा चैव द्वे नद्यौ पुण्यगोचरे ॥ ११ ॥

यत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च महेशश्चेति ते त्रयः ।
नित्यं संनिहिता यत्र मुक्तिक्षेत्रे तथोत्तरे ॥ १२ ॥

यत्रर्षीणां च स्थानानि आश्रमाश्च तथा शुभाः ।
यत्र मारकतीं भासं बिभ्रत्येव सदा शिवः ॥ १३ ॥

निक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि संगरे देवताऽसुरैः ।
अत्रापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयो शुभा ॥ १४ ॥

[1]जमदग्निसुतो यत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् ।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं सावधानोऽवधारय ॥ १५ ॥

यत्र पुण्यानि तीर्थानि सर्वकामप्रदानि हि ।
येषां संदर्शनादेव न च भूयोऽभिजायते ॥ १६ ॥

इयमुत्तरकाशी हि प्राणिनां मुक्तिदायिनी ।
धन्या लोके महाभाग कलौ येषामिह स्थितिः ॥ १७ ॥

यत्र सर्वांशभावेन वसन्ते सर्वदेवताः ॥ १८ ॥

---

१. य ।

मुझको उस रहस्य के भी अति रहस्य क्षेत्र को बताइये, जहाँ कि स्वल्प आयास से ही मुक्ति हो और पुनः सब ऐश्वर्य प्राप्त हो जायें ॥ ८ ॥

स्कन्द ने कहा—

एक गुह्यतम क्षेत्र सार से भी परम सार है। हिमालय पर्वत पर यह परम गोप्य परम तत्त्व है ॥ ९ ॥

इसमें सब तीर्थ हैं। सब देवता इसका सेवन करते हैं। यह उत्तम पुण्य को देने वाला है। यहां पुण्य गंगा उत्तरवाहिनी हो जाती है ॥ १० ॥

यह तीर्थ वारणावत पर्वत पर है और इसका नाम सौम्यकाशी (उत्तरकाशी) प्रसिद्ध है। यहाँ असी और वरुणा दो पुण्यशालिनी नदियां दृष्टिगोचर होती हैं ॥ ११ ॥

जिस उत्तरवर्ती मुक्ति क्षेत्र में ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता नित्य सन्निहित रहते हैं ॥ १२ ॥

जहांकि ऋषियों के स्थान और शुभ आश्रम हैं और जहाँ शिव सदा मरकत मणि की कानि को धारण करते हैं ॥ १३ ॥

जहांकि पहले समय में युद्ध में देवताओं और असुरों ने शक्ति को स्थापित किया था और जहाँ धातु की बनी हुई वह शुभ शक्ति आज भी दिखाई देती है ॥ १४ ॥

जहांकि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अति दुष्कर तप किया था, उस क्षेत्र के माहात्म्य को सावधान होकर सुनो ॥ १५ ॥

जहांकि सब कामनाओं को प्रदान करने वाले पुण्य तीर्थ विद्यमान हैं और जिनके दर्शन से ही मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १६ ॥

यह उत्तरकाशी प्राणियों को मुक्ति देने वाली है। हे महाभाग ! कलियुग में इस संसार में वे धन्य हैं, जिनकी यहाँ स्थिति है ॥ १७ ॥

यहाँ सब देवता अपने सम्पूण अंशों से निवास करते हैं ॥ १८ ॥

नारद उवाच—

अतिपुण्यतमं स्थानं पापिनामपि मुक्तिदम्।
हिमालयतटे पुण्ये प्रोक्तं यद्वै त्वयाऽनघ ॥ १९ ॥

तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं देव विस्तरतो वद।
कथं काशीति संजाता पुरा देवपुरोपमा ॥ २० ॥

केन केन तपस्तप्तं के के पुण्यतमाश्रमाः।
कथं परशुरामेण तपस्तप्तं हिमाचले ॥ २१ ॥

महाकाल्याः कथं देव पतिता शक्तिरुत्तमा।
कुत्र मारकतं लिंगं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ २२ ॥

एतत्सर्वं विस्तरेण पुण्यान्यायतनानि च।
ब्रूहि स्कंद विशेषेण माहात्म्यं वारणावतः ॥ २३ ॥

धन्योऽस्मि नाथ भगवन्यच्छृणोमि मुखाच्च्युतम्।
वाक्पीयूषमिदं पुण्यं तृप्तिर्मे न हि जायते ॥ २४ ॥

त्वत्तः श्रुत्वा परं ज्ञानं सिद्धाः मुक्ति समाययः ॥ २५ ॥

स्कंद उवाच—

श्रृणु नारद वृत्तान्तं पापघ्नं सर्वकामदम्।
यथोत्तरस्थिता काशी जातेयं मुक्तिदा नृणाम् ॥ २६ ॥

वक्ष्ये तद्विस्तरेणाहं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।
शप्तां श्रुत्वा पुरा काशीं सर्वे देवाः सवासवाः ॥ २७ ॥

कलावंतर्हिता काशी भविष्यति इति स्फुटम्।
मुनयश्च महाभागाः संत्रस्ताः मुक्तिलालसाः ॥ २८ ॥

उमेशं शरणं जग्मुर्हिमवंतं नगेश्वरम्।
शतयोजनविस्तीर्णा सभा यत्र विराजते ॥ २९ ॥

नारद ने कहा—

हे निष्पाप स्कन्द ! हिमालय के तट पर, जिस अति पुण्यतम स्थान के लिए तुमने कहा है, वह पापियों को भी मुक्ति देता है ।। १६ ।।

हे देव ! इस क्षेत्र के माहात्म्य को मुझे विस्तार से बताओ । पहले समय में यह स्वर्ग के समान काशी कैसे उत्पन्न हुई ।।२० ।।

यहाँ किस-किसने तप किया है और कौन-कौन से पुण्यतम आश्रम हैं । परशुराम ने हिमालय पर किसलिए तप किया था ? ।। २१ ।।

हे देव ! यहाँ महाकाली की उत्तम शक्ति कैसे गिरी थी ? परमात्मा श्री शिव का मरकत मणि निर्मित लिङ्ग कहां है ? ।। २२ ।।

हे स्कन्द ! इस सबको, पुण्य स्थानों को और विशेष रूप से वारणावत के माहात्म्य को विस्तार से कहिये ।। २३ ।।

हे नाथ भगवन् ! मैं धन्य हूँ, जो आपके मुख से निकले हुए इस वाणी रूपी पुण्य अमृत को सुन रहा हूँ । मुझको तृप्ति नहीं हो रही है ।। २४ ।।

तुमसे इस परम ज्ञान को सुनकर सिद्धजन मुक्ति को प्राप्त हुए थे ।। २५ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! जिस प्रकार कि यह मनुष्यों को मुक्ति देने वाली काशी उत्तर में स्थित हो गयी, उस वृत्तान्त को सुनो । यह वृत्तान्त पापों को नष्ट करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है ।। २६ ।।

मैं उस बात को विस्तार से कहूँगा, जिसको जानकर मोक्ष प्राप्त होता है । प्राचीनकाल में इन्द्र सहित सब देवताओं ने काशी के लिये यह सुना कि···।। २७ ।।

कलियुग में यह काशी स्पष्ट ही अदृश्य हो जायेगी । वे तथा मुक्ति की लालसा करने वाले महाभाग मुनि संत्रस्त हो गये ।। २८ ।।

वे पर्वतराज हिमालय पर उमेश (शिव) की शरण में गये । वहाँ सौ योजन विस्तीर्ण सभा विराजमान है ।। २६ ।।

प्रमथैः सेव्यमाना च नंद्यादिभिरनुष्टुता ।
सर्वकामफलोपेता देवकिन्नरसेविता ।। ३० ।।

अप्सरोभिर्गीयमाना पुण्यकृद्भिः सुगोचरा ।
यत्रास्ते भगवाञ्छंभुः पार्वत्या सहितः प्रभुः ।। ३१ ।।

यत्र सर्वे महानागा वासुक्याद्याः प्रतिष्ठिताः ।
चरणौ सेवितुं शंभोर्भूषणत्वमुपागताः ।। ३२ ।।

जटाजूटतटाद्यत्र जाह्नवी निर्गता शुभा ।
भगीरथनृपाराध्या तच्चक्रपरिगोचरा ।। ३३ ।।

तत्र नत्वा महेशानं दृष्ट्वा देवमुमापतिम् ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः सर्वभूतविमुक्तये ।। ३४ ।।

ऋषयः ऊचुः —

शंभवे विभवे तुभ्यं व्यापकाय परात्मने ।
भव्याय भव्यरूपाय विरूपाय निरात्मने ।। ३५ ।।

निरंजनाय शुद्धाय ज्ञानरत्नप्रदायिने ।
नमो देवाधिदेवाय देवसेव्याय ते नमः ।। ३६ ।।

नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ।
सर्वशक्तिस्वरूपाय निखिलेशाय ते नमः ।। ३७ ।।

पार्वतीपतये तुभ्यं निराभासाय ते नमः ।
निरध्यासाय सूक्ष्माय सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराय ते ।। ३८ ।।

स्थूलात्स्थूलतरायेश नमस्ते जगतीपते ।
जगन्नाथाय जगतां संहारपरिकारिणे ।
विकारिणे निरीशाय निरीहाय नमोऽस्तु ते ।। ३९ ।।

वह सभा प्रमथों से सेवित थी, नन्दी आदि वहाँ स्तुति कर रहे थे, सब कामनाओं के फलों से युक्त थी और देवों तथा किन्नरों से सेवित थी ॥ ३० ॥

अप्सरायें वहाँ गान कर रही थीं और पुण्य करने वाले ही उसको देख सकते थे । यहाँ भगवान् प्रभु शिव पार्वती के साथ विराजमान थे ॥ ३१ ॥

यहाँ वासुकि आदि सब महानाग प्रतिष्ठित थे, जो शिव के चरणों की सेवा करने के लिये उसके आभूषण बन गये थे ॥ ३२ ॥

वहाँ शिव के जटाजूट से शुभ भागीरथी बाहर निकल रही थी । वह राजा भगीरथ की आराध्य थी और उसके रथ के पहिये के पीछे दृष्टिगोचर होती थी ॥ ३३ ॥

वहाँ उमा के पति देव महेशान को देखकर और प्रणाम करके उन्होंने सभी प्राणियों की मुक्ति के लिये उनकी उत्तम वाणियों से स्तुति की ॥ ३४ ॥

ऋषियों ने कहा—

तुझ शम्भु, विभव, व्यापक, परमात्मा, भव्य, भव्यरूप, विरूप और निरात्मा के लिये···॥ ३५ ॥

निरञ्जन, शुद्ध, ज्ञानरूपी दीपक को देने वाले देवाधिदेव के लिये नमस्कार है । देवों से सेव्य तुमको नमस्कार है ॥ ३६ ॥

तीनों लोकों के नाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है । तीनों लोकों के स्वरूप ! तुमको नमस्कार है । सर्वशक्तिस्वरूप और सबके ईश ! तुमको नमस्कार है ॥ ३७ ॥

पार्वती के पति और निराभास तुमको नमस्कार है । निरध्यास, सूक्ष्म और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तुमको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

स्थूल से भी स्थूल, ईश, जगतीपति तुमको नमस्कार है । जगत् के नाथ, संसार का संहार करने वाले, विकारी, निरीश, निरीह तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥

भस्मभूषितदेहाय हिमाद्रिपतये नमः।
नमः काशीनिवासाय निराधाराय ते नमः ॥ ४० ॥

विरुद्धचर्महीनाय नीलकंठाय वेधसे।
सृजते पालयते च सर्वतत्त्वस्वरूपिणे।
योगिने योगरूढाय योगिनां पतये नमः ॥ ४१ ॥

स्कंद उवाच—

इति तेषां स्तुतिं श्रुत्वा दिव्यां वै वेदसंमिताम्।
प्रोवाच संतुष्टमनाः सर्वानृषिगणाञ्छिवः ॥ ४२ ॥

ईश्वर उवाच—

भो तापसाः किं युष्माकमभीष्टं वदत द्रुतम्।
किमर्थमागता ह्यत्र मां स्तोतुं भक्तितत्पराः ॥ ४३ ॥

युष्माकमीप्सितं सर्वं पूरयिष्याम्यसंशयम्।
सत्यं वदत मे क्षिप्रं यद्वा मनसि संस्थितम् ॥ ४४ ॥

ऋषयः ऊचः —

भगवन् सर्वभूतेश कृतार्थाः स्मो वयं किल।
यैर्भवान् दृष्टिमार्गं हि प्रापितो भक्तवत्सलः ॥ ४५ ॥

कलावंतर्हिता काशी इति शप्ता किलाधुना।
तद्वेदश्रवणात्प्राप्तपीडा ह्यत्र समागताः ॥ ४६ ॥

कलौ पापसमाविष्टे सर्वधर्म्मविवर्जिते।
कथं काशीं विना देव गतिर्नृणां भविष्यति ॥ ४७ ॥

कथं संसारपाशस्य समुच्छेदो भविष्यति।
कलौ येषां गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ ४८ ॥

तस्यामंतर्हितायां तु कुत्र स्थानं तव प्रभो।
एतन्नः संशयं छिंधि यतस्त्वं करुणानिधिः ॥ ४९ ॥

ईश्वर उवाच—

यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रांतभूतलम्।
भविष्यति तदा विप्रा निवासं हिमवद्गिरौ ॥ ५० ॥

भस्म से विभूषित शरीर वाले और हिमालय के स्वामी तुमको नमस्कार है। काशी में निवास करने वाले तुमको नमस्कार है। निराधार तुमको नमस्कार है ॥ ४० ॥

विरुद्ध चर्म से हीन, नीलकण्ठ, वेधा, सृजन करने वाले, पालन करने वाले, सर्वतत्त्वस्वरूप, योगी, योगरूढ़ और योगियों के स्वामी तुमको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार वेद से सम्मित उनकी दिव्य स्तुति को सुनकर सन्तुष्ट मन वाले शिव ने सब ऋषियों से कहा ॥ ४२ ॥

ईश्वर ने कहा—

हे तपस्वियो ! तुम्हारा क्या अभीष्ट है, इसे शीघ्र कहो। तुम भक्ति से भरकर मेरी स्तुति करने के लिये किसलिये आये हो ? ॥ ४३ ॥

मैं तुम्हारे ईप्सित को निस्सन्देह पूरा करूँगा। जो कुछ तुम्हारे मन में है, उसको मुझसे शीघ्र कहो ॥ ४४ ॥

ऋषियों ने कहा—

हे भगवन् सर्वभूतेश ! हम सब कृतार्थ हो गये हैं, जो भक्तवत्सल आपको देख लिया है ॥ ४५ ॥

अब काशी को शाप मिला है कि वह कलियुग में अदृश्य हो जायेगी। इसको जानकर सुनकर पीड़ित हुए हम यहाँ आये हैं ॥ ४६ ॥

पाप से समाविष्ट और सब धर्मों से रहित कलियुग में, हे देव ! काशी के बिना मनुष्यों की गति कैसे होगी ॥ ४७ ॥

संसार के पाश का छेदन कैसे होगा ? कलियुग में जिनकी अन्य गति नहीं है, उनकी गति वाराणसी है ॥ ४८ ॥

उस काशी के अदृश्य हो जाने पर, हे प्रभो ! तुम्हारा स्थान कहाँ होगा ? हमारे इस संशय को दूर करो, क्योंकि तुम करुणा के निधि हो ॥ ४९ ॥

ईश्वर ने कहा—

जब पापों का बाहुल्य होगा और भूतल यवनों से आक्रान्त होगा, हे विप्रो ! तब मेरा निवास हिमालय पर्वत पर होगा ॥ ५० ॥

काश्या सह करिष्यामि सर्वतीर्थैः समन्वितः ।
अनादिसिद्धं मे स्थानं वर्त्तते सर्वदैव हि ।। ५१ ।।

यत्र[1] भागीरथीगंगा उत्तराश्वेतवाहिनी ।
असी च वरुणा तत्र सन्निधाने सदैव हि ।
काश्यां हि यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि तत्र हि ।। ५२ ।।

वर्त्तन्ते सर्वदा नूनं भुक्तिमुक्तिकराणि च ।। ५३ ।।

अन्येषु तीर्थराजेषु काश्यामपि द्विजोत्तमाः ।
अंशांशभावतो विप्रा निवसामि सदाऽनघाः ।। ५४ ।।

केदारमंडले ह्यत्र साकल्येन स्थितिर्मम ।
अस्यास्तु दर्शनादेव मुक्तो भवति मानुषः ।। ५५ ।।

यदि स्यात्पुण्यवशतो मृतिरत्र तु कस्यचित् ।
कृमिकीटपतंगादेः सोऽपि मुक्तो न संशयः ।। ५६ ।।

यथा काशी तथा ह्येषा मत्पुरं भेदवर्ज्जिता ।
यः कश्चिद् भेदकृल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ।। ५७ ।।

अत्र स्नानं तु यो मर्त्यः करोति यदि भाग्यतः ।
अयुतार्कभयानेन स गच्छेन्नः पदं ध्रुवम् ।। ५८ ।।

अस्मिन्क्षेत्रे विलीयंते पापान्यन्यत्र मानवैः ।
कृतानि स्पर्शमात्रेण महांत्यपि च सुव्रताः ।। ५९ ।।

अस्मिन्क्षेत्रे तु यः पापं करोति मनुजाधमः ।
भ्रमन्पिशाचैः सार्द्धं तु न भूयः पुरुषो भवेत् ।। ६० ।।

अत्र स्वल्पं च यत्पापं करोति मनुजः क्वचित् ।
तद्वर्द्धते प्रतिफलं कोटिकोटिगुणं तथा ।। ६१ ।।

---

१. यत्र भागीरथी······तत्र हि" पाठ इसमें नहीं है ।

काशी के साथ मैं सब तीर्थों से युक्त होकर यहाँ निवास करूँगा। मेरा यह स्थान सदा ही अनादिसिद्ध है ॥ ५१ ॥

यहाँ भागीरथी गंगा उत्तरवाहिती हो जाती है। वहाँ असी और वरुणा सदा समीप रहती हैं। काशी में जितने भी तीर्थ हैं, वे सब यहाँ भी हैं ॥ ५२ ॥

यहाँ के तीर्थ सदा भोग और मोक्ष देने वाले हैं ॥ ५३ ॥

हे द्विजो में उत्तम निष्पाप ब्राह्मणो ! अन्य तीर्थराजों में और काशी में भी अंशरूप में मैं निवास करूँगा ॥ ५४ ॥

यहाँ केदारमण्डल में मेरी सम्पूर्ण रूप से स्थिति है। इसका दर्शन करने से ही मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

यदि पुण्यों के कारण यहां किसी कृमि, कीट, पतङ्ग आदि की भी मृत्यु होती है, तो भी वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार काशी है, उसी प्रकार यह उत्तरकाशी है। इनमें भेद नहीं है। जो कोई इनमें भेद करता है, वह निश्चय से नरक में जाता है ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य भाग्यवश यहाँ स्नान करता है, दह दस हजार सूर्यों के समान कान्तिमान् विमान द्वारा निश्चय से हमारे लोक में जाता है ॥ ५८ ॥

उत्तम व्रत धारण करने वाले हे मुनियो ! अन्य स्थानों पर मनुष्यों द्वारा किये गये महान् पाप भी इस क्षेत्र में स्पर्श मात्र से विलीन हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

जो नीच मनुष्य इस क्षेत्र में पाप करता है, वह पिशाचों के साथ भ्रमण करता हुआ पुनः पुरुषयोनि में नहीं आता ॥ ६० ॥

जो कोई मनुष्य यहाँ स्वल्प भी पाप करता है। उसका वह पाप करोड़-करोड़ गुना प्रतिफलित होकर बढ़ता है ॥ ६१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत् ।
अत्र यो मासमेकं तु ह्यविच्छेदं दृढ़व्रतः ।
गंगायां स्नाति यत्पुण्यं वदामि शृणु त द्विजाः ।। ६२ ।।

इह लोके चिरं स्थित्वा भुक्त्वा भोगानशेषतः ।
कल्पं मदीयलोके तु स्थित्वा भूमौ नृपो भवेत् ।। ६३ ।।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धर्मज्ञो बहुदानदः ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो धर्मभुग्जायते तथा ।
अंते काश्यां समागत्य मय्येव परिलीयते ।। ६४ ।।

त्रिरात्रमत्रोषित्वा तु पूजयित्वा शिवं द्विजाः ।
यत्र कुत्रापि म्रियते स शैवं लोकमाप्नुयात् ।। ६५ ।।

अन्यजन्मनि सोऽप्यत्र प्राप्नोत्येव मृतिं शुभाम् ।
तारकं ब्रह्म ह्यत्रैव उपदिश्यामि मानुषम् ।। ६६ ।।

प्राणेषूत्क्रममाणेषु येन मुक्तो भवेन्नरः ।
जीवमात्रोऽपि यत्किंचिदत्र प्राणान्विमुंचति ।। ६७ ।।

स एव जायते लीनो मद्देहे सकलाश्रये ।
विप्रक्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
जप्तं दत्तं हुतं तप्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ।। ६८ ।।

अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशीं न हि त्यजेत् ।
गुह्यानां परमं गुह्यमेतत् क्षेत्रं परं मम ।। ६९ ।।

वरुणा च नदी चासी तयोर्मध्ये वराणसी ।
अत्रं स्नानं जपो होमो मरणं हरपूजनम् ।
श्राद्धं दानं निवासश्च यज्ञः स्याद भक्तिमुक्तिदः ।। ७० ।।

मणिकर्णिकायां स्नात्वा यः पितॄन्संतर्पयेज्जलैः ।
पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावत्कल्पशतं शतम् ।। ७१ ।।

इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करके इस स्थान पर पाप का आचरण न करे। यहां जो मनुष्य एक मास तक अविच्छिन्न रूप से दृढ़ ब्रत धारण करके गंगा में स्नान करता है। उसका जो पुण्य है, हे ब्राह्मणो ! उमको कहता हूँ। सुनो ॥ ६२ ॥

वह इस लोक में चिरकाल तक रहकर, सम्पूर्ण रूप से भोगों का उपभोग करके, कल्पपर्यन्त मेरे लोक में स्थित रहकर, पुनः भूमि पर आकर राजा बनता है ॥ ६३ ॥

वह सब शास्त्रों के अर्थों के तत्त्व को जानने वाला, धर्म को जानने वाला, बहुत दान देने वाला, पुत्र-पौत्रों से घिरा हुआ, धर्म के अनुसार भोग करने वाला होता है। अन्त में काशी में आकर मुझमें ही विलीन हो जाता है ॥ ६४ ॥

हे ब्राह्मणो ! जो व्यक्ति यहाँ तीन रात तक रहकर और शिव का पूजन करके, जहां कहीं भी मरता है, वह शिवलोक को प्राप्त करता है ॥ ६५ ॥

अन्य जन्म में भी वह यहीं आकर शुभ मृत्यु को प्राप्त करता है। संसार से तराने वाला ब्रह्म यहीं है। मनुष्य को मैं यही उपदेश देता हूँ ॥ ६६ ॥

जिससे कि प्राणों के निकलने पर मनुष्य मुक्त हो जावे। जो कोई प्राणिमात्र भी यहां प्राणों को छोड़ता है··· ॥ ६७ ॥

वह सबको आश्रय देने वाले मेरे शरीर में विलीन हो जाता है। यह विप्रों का क्षेत्र है, जोकि स्वयं कभी मुक्त नहीं होता, इसलिये इसको अविमुक्त कहते हैं। इस अविमुक्त क्षेत्र में किये गये जप, दान, हवन और तप निश्चय से अक्षय होते हैं ॥ ६८ ॥

पत्थरों से पैरों के आहत होने पर भी इस काशी में निवास करे, उसको न छोड़े। यह मेरा गुप्त क्षेत्रों में भी परम गुप्त क्षेत्र है ॥ ६९ ॥

वरुणा और असी नदियों के मध्य में वाराणसी है। यहां स्नान, जप, हवन, मरण, शिव का पूजन, श्राद्ध, दान, निवास और यज्ञ सब भोगों को तथा मुक्ति को देने वाले हैं ॥ ७० ॥

मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके जो मनुष्य जलों से पितरों को तृप्त करता है, उसके पितर सैकड़ों कल्पों तक तृप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

पिंडदानं च ये कुर्य्युर्विधिवत्पितृतत्पराः ।
उद्धृताः पितरस्तैस्तु कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ ७२ ॥

यः कश्चिदेतत्क्षेत्रं तु ह्यवज्ञाय कुबुद्धिमान् ।
अन्यतीर्थं व्रजेत्सोऽपि रमते कौणपैः सह ॥ ७३ ॥

येनकेनाप्युपायेन मृतिमिच्छेच्च तत्र वै ।
अमंगलं जीवितं तु मरणं यत्र मंगलम् ॥ ७४ ॥

इतः प्रभृति भो विप्रास्तत्रैव संवसाम्यहम् ।
यावन्ति काश्यां तीर्थानि तानि तत्रैव संति हि ॥ ७५ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन सा मुक्तेः कारणं परम् ।
तत्वज्ञानं विनान्यत्र मुक्तिर्नैवास्ति दुर्ल्लभा ॥ ७६ ॥

अत्र सा प्राप्यते देहत्यागेनैव महाव्रताः ।
तस्मादस्मात्पुण्यतममन्यन्नास्तीह भूतले ॥ ७७ ॥

केदारमंडले सारात्सारमेषैव मत्पुरी ।
इयमेव कलौ म्लेच्छजनसंकुलके ध्रुवम् ।
काशीति ख्यातिं यात्येव नान्यथा मम भाषितम् ॥ ७८ ॥

कलावंतर्हिता काशी यवन[1]प्रबलोद्रुता ।
भविष्यति तदा ह्यस्यां काशीसंज्ञा सुमुक्तिदा ॥ ७९ ॥

इदं मत्परमं गोप्यं स्थानमस्ति सुनिर्मितम् ।
पापिष्ठास्तन्न जानन्ति मम मायाविमोहिताः ॥ ८० ॥

धर्मज्ञाश्च सदाचाराः सुशीलाः सत्यवादिनः ।
तेषामेव भवेदेषा नयनांतरगोचरा ॥ ८१ ॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यदि तप्तं महत्तपः ।
तदैव प्राप्यते नूनं मत्पुरी नान्यथा द्विजाः ॥ ८२ ॥

---

१. प्रबलाधना ।

जो मनुष्य पितरों के प्रति भक्त होकर विधिवत् पिण्ड दान करते हैं, वे कुल के १०१ पितरों का उद्धार कर देते हैं ॥ ७२ ॥

जो कोई दुष्ट बुद्धि वाला इस क्षेत्र की अवहेलना करके अन्य तीर्थ में चला जाता है, वह राक्षसों के साथ रमण करता है ॥ ७३ ॥

जिस किसी उपाय से यहां मृत्यु की इच्छा करे। यहां जीवित रहना अमंगल है और मरना मंगल है ॥ ७४ ॥

हे विप्रो ! इसके पश्चात् मैं वहीं निवास करूँगा। काशी में जितने तीर्थ हैं, उतने ही यहाँ उत्तरकाशी में हैं ॥ ७५ ॥

बहुत कहने से क्या लाभ ? यह उत्तरकाशी मुक्ति का परम कारण है। अन्य स्थानों पर तो तत्त्वज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती, वह दुर्लभ है ॥ ७६ ॥

हे महाव्रतो ! यहां शरीर का त्याग करने से ही वह मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिये इससे अधिक पुण्यतम स्थान अन्यत्र पृथिवी पर दुर्लभ है ॥ ७७ ॥

केदारखण्ड में यह मेरी नगरी सारों का भी सार है। कलियुग में काशी के म्लेच्छों से भर जाने पर यह नगरी ही निश्चय से काशी के नाम से प्रसिद्ध होगी। मेरा कथन अन्यथा नहीं होगा ॥ ७८ ॥

कलियुग में अदृश्य हुई काशी जब यवनों के प्रबल उपद्रवों से ग्रस्त होगी, तो उत्तम मुक्ति देने वाली इस नगरी का नाम ही काशी होगा ॥ ७९ ॥

यह मेरा परम गोप्य स्थान सुनिर्मित है। मेरी माया से विमोहित पापी इसको नहीं जानते ॥ ८० ॥

जो धर्मज्ञ हैं, सदाचारी हैं, सत्यवादी हैं, उनके ही नयनों को यह गोचर होती है ॥ ८१ ॥

हे ब्राह्मणो ! हजारों जन्म-जन्मान्तरों में यदि महान् तप किया है, तो वही पुण्य इस पुरी को भी प्राप्त करता है। यह बात अन्यथा नहीं है ॥ ८२ ॥

पंचक्रोशात्मकं क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतस्तथा ।
दक्षिणोत्तरतश्चैव मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥

तदैव वर्त्तते लिंगं मम मारकतप्रभम् ।
तत्र यत्क्रियते कर्म तदक्षय्याय कल्पते ॥ ८४ ॥

महारुद्रविधानेन अभिषेकं करोति यः ।
ममानुचरतां प्राप्य मयैव सह मोदते ॥ ८५ ॥

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ।
येन नालोकितं लिंगं स शोच्यो नात्र संशयः ॥ ८६ ॥

पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी लभते धनम् ।
कामार्थी लभते कामान् सत्यमेव न संशयः ॥ ८७ ॥

स्कन्द उवाच –

इत्युक्त्वा विससर्ज्जाथ सर्वानृषिगणान्मुदा ।
समाययौ स्वभवने वारणावतसंज्ञके ॥ ८८ ॥

ततः प्रभृति देवोऽसौ तत्रैव वसति ध्रुवम् ।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि यथा तप्तं पुरा तपः ।
जामदग्न्येन रामेण सावधानोऽवधारय ॥ ८९ ॥

पुरा परशुरामो वै वारणावतसंज्ञके ।
क्षेत्रे मुनिगणैर्जुष्टे गंगाम्भोभिर्विराजिते ॥ ९० ॥

नानालताद्रुमाकीर्णे नानामुनिगणान्विते ।
नानारत्नमये दिव्ये नानापक्षिगणावृते । ९१ ॥

गंगातटे महादेवं भूतिभूषितविग्रहम् ।
त्रिनेत्रं वृषभारूढं नंदिभृंग्यादिभिर्गणैः ॥ ९२ ॥

सेवितं दण्डहस्तेन द्वारपालेन सेवितम् ।
सुरासुरगणाराध्यं व्याघ्रचर्मासनस्थितम् ॥ ९३ ॥

उत्तरकाशी का यह क्षेत्र पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण पांच कोस तक हैं। यहां मरने से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ ८३ ॥

वहाँ मेरा वही मरकत की कान्ति वाला लिंग है। यहाँ जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है ॥ ८४ ॥

महारुद्र के विधान से जो इस लिग की अर्चमा करता है, वह मेरा अनुचर होकर मेरे साथ आनन्द करता है ॥ ८५ ॥

वह मनुष्य जिस-जिस कामना की प्रार्थना करता है, उस-उसको अवश्य प्राप्त करता हैं। जिसने उस लिंग को नहीं देखा, वह यहाँ निस्सन्देह शोचनीय होता है ॥ ८६ ॥

यहाँ पुत्र की इच्छा करने वाला पुत्र को प्राप्त करता है। धन की इच्छा करने वाला धन को पाता है और काम की इच्छा करने वाला काम को प्राप्त करता है ॥ ८७ ॥

स्कन्द ने कहा—

यह कहकर शिव ने सब ऋषियों को प्रसन्नता से बिदा कर दिया। तदनन्तर वे वारणावत नाम के अपने भवन में आ गये ॥ ८८ ॥

और भी वृत्तान्त कहूँगा, जिस प्रकार कि यहाँ जमदग्नि-पुत्र राम (परशुराम) ने प्राचीनकाल में तप किया था। सावधान होकर सुनो ॥ ८९ ॥

पहले समय में परशुराम ने वारणावत नाम के क्षेत्र में, जो मुनियों से सेवित था, गंगा के जलों से शोभायमान था,··· ॥ ९० ॥

अनेक वृक्षों ओर लताओं से भरा था, अनेक मुनियों से अन्वित था, विविध रत्नों से जटित था, दिव्य था, अनेक प्रकार के पक्षियों से आवृत था··· ॥ ९१ ॥

वहां गंगा के तट पर भस्म से विभूषित शरीर वाले, तीन नेत्रों वाले, वृषभ पर आरूढ़, नन्दी-मृंगी आदि गणों से ॥ ९२ ॥

सेवित, दण्ड को साथ में लिये द्वारपाल से सेवित, देवताओं और राक्षसों के आराध्य और व्याघ्र के चर्म पर आसीन ॥ ९३ ॥

द्वीपिकृत्तिवसानं च चद्रार्द्धशोभिभालकम् ।
ध्यायन् सदाशिवं देवं निश्चलो निर्मलो मुनिः ।। ९४ ।।

जितेन्द्रियो जितक्रोधः स्थितः स्थाणुरिवापरः ।
एवं तपः कुर्वतश्च प्ररुरुहुर्लता द्रुमाः ।
तस्यांगे धीमतश्चित्रं बभूव मुनिवन्दितः ।। ९५ ।।

एवं प्रतपतस्तस्य संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ।
उवाच वचनं रम्यं मेघगंभीरया गिरा ।। ९६ ।।

श्री शिव उवाच—

वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ।
तत्तुभ्यं सर्वथा दास्ये मा कुरुष्वात्र संशयम् ।। ९७ ।।

स्कन्द उवाच—

इत्युक्तस्तु शिवेनासौ ययाचे वरमुत्तमम् ।
अजेयत्वं रणेऽरीणां तथा च चिरजीविताम् ।। ९८ ।।

प्रसन्नेन शिवेनोक्तस्तत्तथैव भविष्यति ।
इत्युक्त्वा परशुं तस्मै दत्तवान् शत्रुमारकम् ।। ९९ ।।

ततः परशुमादाय प्रणम्य च सदाशिवम् ।
शर्वभीम[1] त्वयाऽत्रैव वस्तव्यं सर्वदैव हि ।। १०० ।।

सकलांशेन देवेन सगणेनेह मुक्तिदः ।
इति देवं प्रार्थयित्वा रामस्तत्रैव संस्थितः ।। १०१ ।।

चकार शिवभक्तिं च योगिनामप्यगोचराम् ।
ततः स एव संचक्रे क्षत्रियाणां हि संक्षयम् ।
त्रिः सप्तकृत्वो जयति परशोर्धारको मुनिः ।। १०२ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सौम्यवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं
नाम त्रिनवतितमोध्यायः ।

---

१. सर्वभौम ।

चीते के चमड़े का वस्त्र पहने, मस्तक पर अर्धचन्द्र से सुशोभित, देव सदाशिव का, स्थिर बुद्धि वाले, निर्मल मुनि परशुराम ने ध्यान किया ।। ६४ ।।

वे मुनि जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतने वाले और अन्य स्थाणु के समान निश्चल स्थित थे । इस प्रकार तपस्या करते हुए उनके शरीर पर लता और वृक्ष उग आये । हे मुनिवन्दित नारद ! बुद्धिमान् भक्त के अङ्गों में आश्चर्यजनक बात हुई ।। ६५ ।।

इस प्रकार तपस्या करते हुए उस परशुराम से सदाशिव प्रसन्न हो गये । मेघ के समान गम्भीर वाणी से वे यह रमणीय वचन बोले ।। ६६ ।।

श्रीशिव ने कहा—

तुम्हारा कल्याण हो । जो तुम्हारे मन में हो, वह वर मांग लो । वह मैं तुमको सर्वथा दूंगा । इस विषय में संशय मत करो ।। ६७ ।।

स्कन्द ने कहा—

शिव द्वारा इस प्रकार कहने पर उसने यह उत्तम वर मांगा—रणक्षेत्र में शत्रुओं से मैं अजेय रहूँ और चिरंजीवी रहूँ ।। ६८ ।।

प्रसन्न हुये शिव ने कहा कि ऐसा ही होगा । यह कहकर शिव ने उस परशुराम को शत्रुओं को मारने वाला परशु दिया ।। ६६ ।।

तदनन्तर परशु को लेकर और सदाशिव को प्रणाम करके शिव से परशुराम ने कहा—हे भयानक आकृति के शर्व भीम ! आप सर्वदा यहीं रहिये ।। १०० ।।

हे देवेश शिव ! आप मुक्ति देने वाले हैं और गणों के साथ, सम्पूर्ण अंश के साथ यहीं रहिये । इस प्रकार देवता की प्रार्थना कर परशुराम भी वहीं स्थित हो गये ।। १०१ ।।

उसने योगियों के लिये भी अगम्य शिव की भक्ति-भाव से पूजा की । तदनन्तर उन्होंने २१ बार क्षत्रियों का विनाश किया । परशु को धारण करने वाले परशुराम विजय को प्राप्त होते हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं ।। १०२ ।।

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सौम्यवाराणसी-माहात्म्य-वर्णन नाम का ६३वाँ अध्याय पूरा हो गया ।

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्रीपरशुरामकृतक्षत्रियवधवर्णनम्

नारद उवाच—

कथं त्रिसप्तकृत्वो हि चक्रे क्षत्रियसंक्षयम् ।
रामः परशुसंयुक्तस्तन्मे वद सविस्तरम् ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच—

एकदा कार्तवीर्य्यो वागच्छत्केदारमंडलम् ।
ययौ तेन च मार्गेण यत्र रामाश्रमं शुभम् ॥ २ ॥

जमदग्नेस्तत्र पत्नी जलानयनकारिणी ।
अपश्यन्मृण्मयैः कुंभैर्ददर्श भगिनीपतिम् ॥ ३ ॥

कार्त्तवीर्य्यं समस्तैश्च बलैश्च परिवारितम् ।
नानापत्तिभिरश्वैश्च मत्तमातंगयूथपैः ॥ ४ ॥

महारथैः खड्गहस्तैः शोभमानं सुतेजसा ।
दृष्ट्वा तं रेणुका भूपं चिंतयामास मानसे ॥ ५ ॥

धन्या मद्भगिनी नूनं यस्या एतादृशः पतिः ।
मतपतेस्तु जलं हर्त्तुं पात्रं नैवास्ति किंचन ॥ ६ ॥

इति वै चिंतयंत्याश्च कलशः शिरसोऽपतत् ।
भूमौ संचूर्णितश्चासीत्तज्ज्ञात्वा जमदग्निकः ।
क्रोधादुवाच पुत्रांश्च प्रत्येकं पर्यपृच्छत ॥ ७ ॥

यः कश्चिदस्या रण्डायाः शिरश्छेत्ता स मे सुतः ।
इत्याज्ञां कृतवान्सोऽथ सर्वे नेतीति चाब्रुवन् ॥ ८ ॥

चौरानवेवां अध्याय

श्रीपरशुराम द्वारा क्षत्रियों के वध का वर्णन।

नारद ने कहा—

परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों का संहार किस प्रकार किया। यह वृत्तान्त मुझसे विस्तार से कहो ॥ १ ॥

स्कन्द ने कहा—

एक बार कार्तवीर्य केदारमण्डल में आया। यह उसी मार्ग से गया, जहां शुभ रामाश्रम था ॥ २ ॥

वहाँ मिट्टी के घड़ों में जल को लाती हुई जमदग्नि की पत्नी ने अपने बहनोई को देखा ॥ ३ ॥

वह कार्तवीर्य समस्त सेनाओं से घिरा था। उसके साथ अनेक पैदल सैनिक, अश्व और मस्त हाथी थे ॥ ४ ॥

तलवारों को हाथों में लिये हुये महारथी थे। वह उत्तम तेज से शोभित था। उस राजा को देखकर रेणुका मन में विचार करने लगा ॥ ५ ॥

मेरी बहिन धन्य है, जिसका ऐसा पति है। मेरे पति के पास तो जल लाने के लिये पात्र भी नहीं है ॥ ६ ॥

इस प्रकार से सोचते हुये उसके सिर से घड़ा भूमि पर गिर गया और चूरा हो गया। यह जानकर जमदग्नि ने क्रोध से कहा और प्रत्येक पुत्र से पूछा ॥ ७ ॥

जो कोई भी इस राण्ड का सिर काटेगा, वह मेरा पुत्र है। उसने यह आज्ञा दी। परन्तु सबने नहीं, यह कहा (इस कार्य से इन्कार किया) ॥ ८ ॥

ताञ्छशाप स्वपुत्रान्स सर्वे प्रेता भविष्यथ।
ततः परशुरामं च सस्मार मुनिसत्तमः ॥ ९ ॥

आविर्वभौ तदानीं स आज्ञापयेति च ब्रुवन्।
शिरश्छिन्धीति चाज्ञप्तश्चिच्छेद परशुना तदा ॥ १० ॥

मातुः शीर्षं च मेदिन्यां पपात मुनिवंदित।
जमदग्निस्तु संतुष्टो वरयेति वरं वदन् ॥ ११ ॥

साधु साधु च प्रोवाच राम त्वं मत्सुतः किल।
इति संवादिनं तं तु प्रोवाच वचनं तदा ॥ १२ ॥

मयि त्वं यदि संतुष्टस्तदा जीवय मारतरम्।
तथेत्युक्त्वा मुनिस्तां तु जीवयामास भामिनीम् ॥ १३ ॥

ततः प्रभृति सा देवी रेणुकाख्यां ययौ मुने।
अद्याऽपि तत्र विख्याता स्मरणात्पापनाशिनी ॥ १४ ॥

सप्तजन्मकृतत्पापान्मुच्यते दर्शनान्नरः।
संपूजयति तां देवीं रेणुकाख्यां मुनीश्वर ॥ १५ ॥

अयुतार्काभयानेन दिव्यलोके प्रमोदते।
अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि क्षत्रियांतस्य कारणम् ॥ १६ ॥

एकदा सुखमासीनां कृपाविष्टो मुनिः स्वयम्।
स पत्नीं रेणुकाख्यां हि प्रोवाच दचनं मुदा ॥ १७ ॥

प्रिये निमंत्रयस्य त्वं भोजनार्थं पतिव्रते।
स्वस्वस्रा सहितं कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनमहीपतिम् ॥ १८ ॥

समस्तसैन्यलोकैश्च गजवाजिपदातिभिः।
इत्युक्ता सा पतिरता रेणुकाख्या मुनीश्वर।
साध्वी निमंत्रयामास भगिनीं भर्तृसंयुताम् ॥ १९ ॥

निमंत्र्य सबलं भूपं जमदग्निस्तदा मुने।
आनयामास स्वर्गात्तु कामधेनुं बहुप्रदाम् ॥ २० ॥

उसने उन पुत्रों को शाप दिया कि तुम सब प्रेत हो जाओगे। तदनन्तर उस मुनिश्रेष्ठ ने परशुराम को स्मरण किया ॥ ६ ॥

तब वह प्रकट हुआ और कहा कि आज्ञा दीजिये। सिर काट देने की आज्ञा पाने पर उसने कुल्हाड़े से माता का सिर काट दिया ॥ १० ॥

हे मुनिवन्दित! उसकी माता का सिर भूमि पर गिर पड़ा। जमदग्नि ने सन्तुष्ट होकर कहा कि वर मांगो ॥ ११ ॥

उसने साधु, साधु, कहकर कहा कि हे राम! तुम निश्चय से मेरे पुत्र हो। इस प्रकार से कहते हुये पिता से तब परशुराम ने यह वचन कहा ॥ १२ ॥

यदि आप मेरे प्रति सन्तुष्ट हैं तो माता को जीवित कर दीजिये। ऐसा ही हो, यह कहकर मुनि ने पत्नी को जीवित कर दिया ॥ १३ ॥

हे मुने! तब से उस देवी का नाम रेणुका हुआ। वह वहाँ आज भी प्रसिद्ध है। स्मरण करने से वह पापों को नष्ट करती है ॥ १४ ॥

हे मुनीश्वर नारद! उसका दर्शन करने से मनुष्य सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है। जो उस रेणुका देवी का पूजन करता है··· ॥ १५ ॥

वह दस हजार सूर्यों के समान कान्ति वाले विमान में आरूढ़ होकर दिव्य लोकों में आनन्द प्राप्त करता है। अब मैं क्षत्रियों के अन्त करने की कारणभूत दूसरी कथा सुनाऊँगा ॥ १६ ॥

एक बार कृपा से भरे हुये मुनि ने सुख से बैठी हुई रेणुका नाम की पत्नी से स्वयं प्रसन्नता से कहा ॥ १७ ॥

हे पतिव्रते प्रिये! तुम अपनी बहिन सहित राजा कार्तवीर्य को भोजन के लिये निमन्त्रित करो ॥ १८ ॥

वह समस्त सैनिकों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकों के साथ आवे। हे मुनीश्वर! इस प्रकार कहने पर उस साध्वी पतिव्रता रेणुका ने पति सहित अपनी बहिन को निमन्त्रित किया। ॥ १६ ॥

हे मुने! सेना-सहित उस राजा को निमन्त्रित करके जमदग्नि स्वर्ग से बहुत प्रदान करने वाली कामधेनु को ले आये ॥ २० ॥

चकाराशनसंभारान्खाद्यान्पेयान्सुसंस्कृतान् ।
लेह्यांश्चोष्यांस्तथा चर्व्यान्सर्वान्स्वादुत्तरान्नृप: ॥ २१ ॥

गृहाणि सौधतुल्यानि रम्याणि विविधानि च ।
प्रत्युच्चानि च विस्तीर्णशय्यानि मुनि-पुङ्गव ॥ २२ ॥

अन्यानपि पदार्थांश्च रचयित्वा मुनीश्वर: ।
आनयामास राजानं भोजनाय महार्ज्जुनम् ॥ २३ ॥

सबलं च सपत्नीकं सेभवाजिपदातिनम् ।
यस्य यस्य यथेच्छासीत्तत्तत्समददत्तथा ॥ २४ ॥

भुक्त्वा संतुष्टमनस: सर्वे एवाभवंस्तदा ।
आतिथ्यं तन्नृपो भुक्त्वा तापसस्येदृशं तप: ॥ २५ ॥

येन मे सबलस्यापि भोजनं दत्तवान्मुनि: ।
अथ वा कामधुक् चेयं वर्त्तते तापसालये ॥ २६ ॥

तस्या एव प्रभावोऽयं याचे तामेव तन्मुने: ।
इति संचिन्त्य राजा तु मुनिं प्रोवाच सुव्रतम् ॥ २७ ॥

जमदग्ने इयं धेनुर्दीयतां मम सर्वथा ।
भोजनांते दक्षिणायै सबलस्य महामुने ॥ २८ ॥

इत्युक्त: प्राह राजानं मुनिर्सधुरया गिरा ।
प्रभो नाथ मदीयेयं धेनुर्नास्ति महीपते ॥ २९ ॥

इयं वै ब्रह्मणो धेनु: कथं दास्यामि ते नृप ॥ ३० ॥

राजोवाच—

अवश्यमेव दातव्यं धेनुर्मे मुनिपुंगव ।
नोचेत्त्वां हन्मि खड्गेन मा कुरुष्वात्र संशयम् ॥ ३१ ॥

स्कन्द उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनि: क्रोधसमाकुल: ।
प्रोवाच वचनं चेदं गच्छ राजन्यथागतम् ॥ ३२ ॥

राजा के लिये उस मुनि ने भोजन सामग्रियों को तैयार कराया। उसमें सुसंस्कृत खाद्य, पेय, लेह्य, चोष्य और सभी प्रकार के स्वादिष्ट भोजन थे ॥ २१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! विविध प्रकार के ऊँचे, रम्य, महलों के समान घर थे और विस्तृत शय्यायें थीं ॥ २२ ॥

मुनीश्वर जमदग्नि अन्य प्रकार के पदार्थों की भी रचना करके महार्जुन कार्तवीर्य राजा को भोजन के लिये लाये ॥ २३ ॥

हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों सहित सेना को और सपत्नीक राजा को वे लाये। जिस-जिसकी जो इच्छा हुई, उसने उसको वही दिया ॥ २४ ॥

तब भोजन करके सबके मन सन्तुष्ट हो गये। उस राजा कार्तवीर्य ने आतिथ्य का उपभोग करके तपस्वी जमदग्नि के इस प्रकार के तप के प्रभाव को देखा ॥ २५ ॥

जिस मुनि ने सेना-सहित मुझको ऐसा भोजन दिया है। अथवा तपस्वी के घर में वह कामधेनु है ॥ २६ ॥

यह उस कामधेनु का ही प्रभाव है। मैं मुनि से उसको ही मांगता हूँ। इस प्रकार विचार करके राजा ने उत्तम व्रती मुनि से कहा ॥ २७ ॥

हे महामुने जमदग्ने ! भोजन के अन्त में दक्षिणा के रूप में सेना-सहित मुझको यह गौ सर्वथा दे दीजिये ॥ २८ ॥

इस प्रकार कहे जाने पर मुनि ने मधुर वाणी में राजा से कहा—हे प्रभो, नाथ, राजन् ! यह गौ मेरी नहीं है ॥ २९ ॥

हे राजन् ! यह तो ब्रह्मा की गौ है, तुमको कैसे दूं ? ॥ ३० ॥

राजा ने कहा—

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह गौ मेरे लिये अवश्य देनी है। अन्यथा मैं तुमको तलवार से मारता हूँ। इसमें सन्देह मत करो ॥ ३१ ॥

स्कन्द ने कहा—

उसके इस वचन को सुनकर मुनि क्रोध से व्याकुल हो गये। उन्होंने यह वचन कहा—हे राजन् ! जैसे आये थे, वैसे ही चले जाओ ॥ ३२ ॥

गृह्यतां कामधेनुर्वै यदि ते बहुमंडलम् ।
त्वामियं कामधेनुश्च भस्मसात् प्रकरिष्यति ।। ३३ ।।

इत्युक्तो मुनिना राज्ञा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
खड्गं निस्सार्य कोशात्तु शिरश्चिच्छेद तन्मुनेः ।। ३४ ।।

अथ धेनुसमीपे तु गत्वा तां समुपाहरत् ।
सापि क्रोधेन तप्तांगी स्वांगेभ्यो यवनानथ ।
बहून्बहुविधान्क्रूरान्निस्ससार तदा मुने ।। ३५ ।।

यवनैः क्रूरचेष्टैश्च खड्गचर्मलसत्करैः ।
भूमिपस्य बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मभिः ।। ३६ ।।

हते सैन्ये कामधेनुर्ययौ स्वभंवनं प्रति ।
लज्जाविष्टमना राजा ययौ केदारमंडले ।। ३७ ।।

ब्रह्महत्यापनोदाय यत्र भागीरथी स्मृता ।
तत्र स्थित्वा तपस्तप्त्वा मुमुचे ब्रह्महत्यया ।। ३८ ।।

अथ कालेन महता समायातो महामुने ।
परशुरामस्तत्क्षेत्रे रेणुका तमुवाच ह ।। ३९ ।।

पुत्र पश्येदृशं दुःखं कार्त्तवीर्य्याद्दुरात्मनः ।
त्वत्पितुश्च शिरश्छिन्नं तद्विचारय सांप्रतम् ।। ४० ।।

येन मे हृद्गतं दुःखं विनश्येत् कथंचन ।
श्रुत्वा तद्वचनं मातुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
दंतैरोष्ठौ पीडयंश्च प्रोवाच वचनं रुषा ।। ४१ ।।

प्राणोत्क्रमणकाले तु मत्पित्रा किमुदाहृतम् ।
तत्त्वं कथय मे मातर्यदि ते मदनुग्रहः ।। ४२ ।।

श्रुत्वा तद्वचनं माता सुतं प्रोवाच रेणुका ।
त्रिसप्तकृत्वस्त्वत्पित्रा कराभ्यां भुवि ताडितम् ।
ताडयित्वा दिवं यातश्चान्यत्किञ्चिन्न तत्कृतम् ।। ४३ ।।

यदि तुमको वहुत बड़ा राज्य होने का घमण्ड है, तो इस कामधेनु को स्वयं ले जाओ। यह कामधेनु ही तुमको भस्म कर देगी ॥ ३३ ॥

मुनि से इस प्रकार कहे जाने पर राजा के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उसने म्यान से तलवार निकालकर उस मुनि का सिर काट दिया ॥ ३४ ॥

वह गौ के समीप जाकर उसका अपहरण करने लगा। गौ के अंग क्रोध से तप्त हो गये। हे मुने! तब उसने अपने अंगों से बहुत प्रकार के क्रूर यवनों को निकाला ॥ ३५ ॥

क्रूर चेष्टाओं वाले, हाथों में ढाल-तलवार चमकाते हुए उन महात्मा यवनों ने राजा की सारी सेना को नष्ट कर दिया ॥ ३६ ॥

सेना के नष्ट हो जाने वह कामधेनु अपने लोक स्वर्ग को चली गई। लज्जा से भरे मन वाला वह राजा भी केदारमण्डल में चला गया ॥ ३७ ॥

जहाँ भागीरथी है, वहां स्थित होकर वह ब्रह्महत्या के पाप को दूर करने के लिये तप करने लगा और ब्रह्महत्या से मुक्त हुआ ॥ ३८ ॥

हे महामुने! तब बहुत समय व्यतीत हो जाने पर परशुराम उस क्षेत्र में आये। रेणुका ने उनसे कहा ॥ ३९ ॥

हे पुत्र! दुष्ट कार्तवीर्य के दिये इस दुःख को देखो। उसने तुम्हारे पिता का सिर काट दिया। अब विचार कर लो ॥ ४० ॥

जिससे कि मेरे हृदय का दुःख किसी प्रकार नष्ट होवे। माता के उस वचन को सुनकर उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। दाँतों से होठों को पीसते हुये उसने क्रोध से यह वचन कहा ॥ ४१ ॥

हे माता! यदि तुम्हारी मुझ पर कृपा है, तो यह बात मुझको बताओ कि प्राणों के निकलते समय मेरे पिता ने क्या कहा था ॥ ४२ ॥

यह वचन सुनकर रेणुका ने पुत्र से कहा—तुम्हारे पिता ने २१ बार भूमि पर प्रहार किया। यह प्रहार करके वे स्वर्ग चले गये। उन्होंने और कुछ नहीं किया ॥ ४३ ॥

इति मातुर्वचः श्रुत्वा मन्युना कलुषेक्षणः ।
प्रतिज्ञां कृतवान् राम एकविंशतिवारकम् ।
करिष्यामि क्षत्रशून्यां सर्वथैव वसुंधराम् ।। ४४ ।।

प्रतिज्ञाय ययौ रामो यत्रास्ते कार्त्तवीर्य्यकः ।
तेन साकं महद्युद्धं चक्रे देवासुरं यथा ।। ४५ ।।

ततो बाहुसहस्रं वै परशोश्चैव धारया ।
चिच्छेद तच्छिरश्चैव ततश्चान्यान्महीक्षितः ।। ४६ ।।

जघान क्षत्रियान् रामो मृधे त्रिःसप्तसंख्यया ।
ततो रामावतारे हि रामेण कृतबुद्धिना ।
संगतोऽसौ महाराज रूपेस्मिञ्श्रीहरौ बलम् ।। ४७ ।।

चिक्षेप महसा तत्र धनुर्मार्गेण नारद ।
तपसे प्रययौ विप्रस्सौम्यवाराणसीस्थले ।। ४८ ।।

इति ते कथितो विप्र सौम्यवाराणसीभवः ।
यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते भवभीतितः ।। ४९ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीपरशुरामेण क्षत्रियवधप्रसङ्गे
सौम्यवाराणसीमाहात्म्यंवर्णनं नाम
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।

पंचनवतितमोऽध्यायः

**विश्वेश्वरलिङ्गवारणावतमाहात्म्यवर्णन प्रसङ्गेन नानातीर्थ-
वर्णनम् । चन्द्रवर्मनृपकथा यात्राक्रमादिवर्णनम्**

नारद उवाच—
कानि कानि च तीर्थानि तत्र संति महामते ।
तेषां विरस्तरतो ब्रूहि माहात्म्यं वदतां वर ।। १ ।।

माता के इस वचन को सुनकर क्रोध से लाल आँखों वाले परशुराम ने प्रतिज्ञा की कि—मैं सारी पृथिवी को २१ बार क्षत्रियों से सर्वथा शून्य कर दूँगा ।। ४४ ।।

यह प्रतिज्ञा करके परशुराम वहाँ गये, जहां कि कार्तवीर्य था। उन्होंने उसके साथ देव-असुर संग्राम के समान युद्ध किया ।। ४५ ।।

तब उन्होंने परशु की धारा से उसकी हजार भुजाओं को और उसके सिर को काट डाला। तदनन्तर अन्य राजाओं को काट डाला ।। ४६ ।।

परशुराम ने युद्ध में २१ बार क्षत्रियों का वध किया। तदनन्तर राम-अवतार में बुद्धिमान् राम से उनका मिलन हुआ। हे महाराज! इस रूप में उनका बल श्रीहरि में विलीन हो गया ।। ४७ ।।

हे नारद! उन्होंने (राम ने) धनुष द्वारा उनके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। तदनन्तर वे परशुराम तपस्या करने के लिए सौम्य वाराणसी स्थल पर चले गये ।। ४८ ।।

हे विप्र! इस प्रकार मैंने तुमसे सौम्यवाराणसी (उत्तरकाशी) के वृत्तान्त को कह दिया। इसको सुनकर मनुष्य सब पापों से और भव-भय से मुक्त हो जाता है ।। ४९ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में श्रीपरशुराम द्वारा
क्षत्रियों के वध के प्रसङ्ग में सौम्यवाराणसी माहात्म्य
वर्णन नाम का चौरानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

पिचानवेवां अध्याय

विश्वेश्वर लिङ्ग और वारणावत के माहात्म्य के वर्णन के प्रसङ्ग में अनेक तीर्थों का वर्णन, राजा चन्द्रवर्मा की कथा और यात्रा के क्रम आदि का वर्णन।

नारद ने कहा—

बोलने वालों में श्रेष्ठ हे महामते! वहाँ कौन-कौन से तीर्थ हैं। विस्तार से उनके माहात्म्य को कहो ।। १ ।।

तथा विश्वेशलिंगस्य पूजाया विभवं वद ।
वारणावतमाहात्म्यं सोद्भवं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

स्कन्द उवाच—

श्रृणु यत्नेन सारं च कुण्डं व ब्रह्मसंज्ञकम् ।
यत्र भागीरथी रम्या गंगा चोत्तरवाहिनी ॥ ३ ॥

तत्र स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ।
सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥

स्नातका यं यमिच्छंति तं तं कामं लभन्ति ते ।
स्त्रियः पुरुषतां यान्ति पुंसो यान्ति हि देवताम् ॥ ५ ॥

तज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मकुण्डे चराचरा ।
निर्मुक्ताः सर्वपापेभ्यो विमुखा गर्भवेश्मसु ॥ ६ ॥

लताः गुल्माश्च वृक्षाश्च तृणानि च मृगास्तथा ।
पशवः पक्षिणो वापि जलस्थलगताः पुनः ॥ ७ ॥

तत्तदेहैर्विमुच्यन्ते तज्जलस्पर्शनाद्ध्रुवम् ।
ज्ञानात्ततो भविष्यन्ति प्रमुख्याश्च तपस्विनः ॥ ८ ॥

ततो मयि च ते सर्वे शिवभक्तिपरायणाः ।
शिवे लीना भविष्यन्ति योन्युद्भवविवर्ज्जिताः ॥ ९ ॥

तदधो रुद्रकुण्डं तु वर्तते भुवि दुर्ल्लभम् ।
स्नानं करोति यो भक्त्या तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥ १० ॥

युगकोटिसहस्राणि रुद्रलोके सुखं वसेत् ।
ततोऽवतीर्य्य भूमौ तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ११ ॥

स भुक्त्वा सुखबाहुल्यं रुद्रभक्तिपरायणः ।
देहांते स भवेद्योगो गर्भवासविवर्ज्जितः ॥ १२ ॥

शिवेन सह लीयेत नाम कार्या विचारणा ।
तत्रैव वर्तते लिंगं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ १३ ॥

विश्वनाथ लिंग की पूजा के विभव को कहो । उत्पत्ति सहित वारणावत के माहात्म्य को कहिये ।। २ ।।

स्कन्द ने कहा—

इस वृत्तान्त के सार को और ब्रह्मकुण्ड के माहात्म्य को यत्न से सुनो, जहां कि उत्तरवाहिनी रम्य गंगा प्रवाहित होती है ।। ३ ।।

वहाँ स्नान करके मनुष्य सनातन ब्रह्मलोक में जाता है । यहाँ मनुष्य सात जन्मों में अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है । इसमें संशय नहीं है ।। ४ ।।

यहाँ स्नान करने वाले जिस-जिस वस्तु की इच्छा करते हैं, उस-उसको प्राप्त करते हैं । स्त्रियाँ पुरुषत्व को प्राप्त करती हैं और पुरुष देवता हो जाते हैं ।। ५ ।।

ब्रह्मकुण्ड में उसके जल का स्पर्श होने पर चर-अचर प्राणी सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और गर्भों में आने से मुक्त हो जाते हैं (उनका पुनः जन्म नहीं होता ।। ६ ।।

लतायें, गुल्म, वृक्ष, तृण, मृग, पशु, पक्षी और जल-स्थल के जो प्राणी हैं··· ।। ७ ।।

वे उसके जल का स्पर्श करने से निश्चय से उन-उन शरीरों से मुक्त हो जाते हैं । तदनन्तर ज्ञान प्राप्त करके वे प्रमुख तपस्वी होते हैं ।। ८ ।।

तदनन्तर शिव भक्ति में परायण वे सब मुझ शिव में लीन होते हैं । वे स्त्री के गर्भ से उत्पत्ति से छूट जाते हैं (उनका पुनर्जन्म नहीं होता) ।। ९ ।।

उससे नीचे पृथिवी पर दुर्लभ रुद्रकुण्ड है । जो मनुष्य भक्ति-भाव से उसमें स्नान करता है, उसका पुण्य फल सुनो ।। १० ।।

वह हजार करोड़ वर्षों तक रुद्रलोक में सुख से रहता है । तदनन्तर भूमि पर अवतीर्ण होकर सात द्वीपों का राजा होता है ।। ११ ।।

रुद्र के प्रति भक्ति में परायण वह बहुत सुखों का भोग करके, शरीर का अन्त होने पर गर्भ के निवास से रहित योगी होता है (उसका पुनः जन्म नहीं होता) ।। १२ ।।

वह शिव के साथ विलीन हो जाता है, इसमें सोच-विचार नहीं करना चाहिए । वहीं पर शिवलिंग है, जो दर्शन करने से मुक्ति प्रदान करता है ।। १३ ।।

सकृत्पश्यति यो लिंगं रुद्रेश्वर इति स्मृतम्।
मोहकंचुकमुन्मुज्य ज्ञानकंचुकसंवृतः।
परिवारान्वयैर्युक्तः सुखं याति शिवालये॥ १४॥

अयुतार्काभयानेन सेवितश्चप्सरोगणैः।
गीतवाद्यरसोपेतैर्धूयमानो हि चामरः॥ १५॥

कल्पकोटिशतं दिव्यं शिवलोके वसेत्सुधीः।
ततो यास्यति निर्वाणं सर्वधर्मसुदुर्लभम्॥ १६॥

योनियन्त्रं परित्यज्य ज्योतीरूपे प्रलीयते।
श्राद्धं कुरुते तत्र तस्य पुण्यफलं शृणु॥ १७॥

शतमेकोत्तरं साग्रं तारितं तेन पैतृकम्।
तथैव मातृकं वापि सुहृद्बंधुजनस्य च॥ १८॥

गुरूणां च तथा राज्ञां श्वशुराणां कुलं तथा।
सुकृत्पिण्डप्रदानेन प्रणयेद्ब्रह्मशाश्वतम्॥ १९॥

एतत्तीर्थयवज्ञाय गयां यः परिधावति।
तेनैव स्वकुलं विप्र पातितं नरके ध्रुवम्॥ २०॥

यदैतत्तीर्थंप्राप्तिर्न तदा गयां परिव्रजेत्।
तदधो वरुणायाश्च गंगायास्तत्र संगमः॥ २१॥

तत्र स्नातुं फलं वक्ष्ये शृणु त्वं मुनिसत्तम।
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च वाराणस्यां च सागरे॥ २२॥

यत्पुण्यं कोटिधा स्नानात्तथा बदरिकाश्रमे।
देवप्रयागे श्रीक्षेत्रे कोटिधा स्नानतोऽपि यत्।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्राप्यते मज्जनात्सकृत्॥ २३॥

मोहशोकैर्विनिर्मुक्तो गर्भवासविवर्जितः।
श्रीशिवे परिलीयेत सत्यं सत्यं न संशयः॥ २४॥

रुद्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध उस लिंग का जो एक बार दर्शन कर लेता है। वह मोह के कंचुक से मुक्त होकर ज्ञान के कंचुक से आवृत होता है। वह परिवार सहित सुख से शिवलोक में जाता है ॥ १४ ॥

गीतों और वाद्यों के रस से युक्त, अप्सराओं से सेवा किया जाता हुआ और चामरों से वीजित होता हुआ वह दस हजार सूर्यों के समान आभा वाले विमान से शिवलोक जाता है ॥ १५ ॥

वह बुद्धिमान् भक्त सौ करोड़ कल्पों तक शिवलोक में निवास करता है। तदनन्तर सब धर्मों से दुर्लभ निर्वाण को प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

वह गर्भ के निवास को छोड़कर ज्योति रूप में विलीन हो जाता है। जो यहाँ श्राद्ध करता है, उसका पुण्य-फल सुनो ॥ १७ ॥

वह पिता की, माता की, मित्रों की और बन्धुओं की आगे आने वाली भी १०१ पीढ़ियों को तरा देता है ॥ १८ ॥

एक बार पिण्ड-दान करके वह गुरुओं, राजाओं और श्वसुरों के कुल को सनातन ब्रह्म तक ले जाता है ॥ १९ ॥

इस तीर्थ की अवहेलना करके जो गया की ओर दौड़ता है, हे विप्र ! वह निश्चय से अपने कुल को नरक में गिरा देता है ॥ २० ॥

यदि यह तीर्थ प्राप्त न हो, तभी मनुष्य गया को जावे। उसके नीचे वरुणा और गंगा का संगम है ॥ २१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तुमको वहाँ स्नान करने का फल कहूँगा, सुनो। कुरुक्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, गंगासागर··· ॥ २२ ॥

बदरिकाश्रम, देवप्रयाग और श्रीक्षेत्र तीर्थों में करोड़ों बार स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका भी करोड़ों गुना पुण्य यहाँ एक बार स्नान करने से मिलता है ॥ २३ ॥

वह मनुष्य मोह और शोक से मुक्त होकर, गर्भ के निवास (पुनर्जन्म) से रहित होकर श्रीशिव में लीन हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

तत्र पिंडप्रदाता च त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ।
अज्ञानादपि मत्स्याद्या मज्जिता न पुनर्भवाः ।। २५ ।।

यो दद्यादणुमात्रं हि हिरण्यं भक्तितत्परः ।
सोऽपि याति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ।। २६ ।।

स्नानं जपं च दानं वा वाराणस्यां कृताधिकम् ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं यत्किंचित्कुरुते नरः ।
तत्सर्वं विलयं याति तज्जलस्पर्शमात्रतः ।। २७ ।।

तत्रैव वर्त्तते लिंगे वरुणेशमिति स्मृतम् ।
तद्दर्शी मनुजो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति तत्क्षणात् ।। २८ ।।

सप्तजन्मार्जितैः पापैः स मुक्तो नात्र संशयः ।। २९ ।।

आषाढ्यामासनक्षत्रयुक्तायां स्नाति मानवः ।
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते मुनिसत्तम ।। ३० ।।

ततश्च वसते शैवे पुरे रम्ये गणावृते ।
ततः प्रलीयते तस्मिन्योनिसंकटवर्जितः ।। ३१ ।।

अथासीद्यत्र गंगायां संगमे तत्र मानवः ।
कृमिकीटपतंगाद्या स्नाता यान्ति विमुक्तिताम् ।। ३२ ।।

तत्र दत्तं हुतं तप्तममृतत्वाय कल्पते ।
अत्रान्यच्च प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।। ३३ ।।

अत्याश्चर्य्यकरं पुंसां पठनात्पापनाशनम् ।
अयोध्यायां द्विजः कश्चिद् बभूव विनयान्वितः ।। ३४ ।।

नाम्नाऽसौ चन्द्रवर्म्मेति ख्यातो बहुसुतान्वितः ।
बहुस्त्रीभिः परिवृतो महदैश्वर्यसंयुतः ।। ३५ ।।

दत्तानि तेन दानानि गोभूवासांसि च द्विज ।
महादानानि विप्रेभ्यो ददौ धान्याचलादिकम् ।। ३६ ।।

वहाँ पिण्ड को देने वाला अपने तीन करोड़ कुलों का उद्धार करता है । अज्ञान से भी यहाँ जो मछली आदि का स्नान हो जाता है, तो उनका पुनर्जन्म नहीं होता ।। २५ ।।

भक्ति-भाव से जो मनुष्य यहाँ अणुमात्र भी स्वर्ण का दान करता है, वह भी उस परम धाम को जाता है, जहाँ जाकर शोक नहीं रहता ।। २६ ।।

यहाँ जो स्नान, जप और दान किया जाता है, उसका फल वाराणसी से अधिक होता है । मनुष्य जो कुछ ब्रह्महत्या आदि पाप करता है, उस जल के स्पर्श करने मात्र से वह नष्ट हो जाता है ।। २७ ।।

वहीं पर वरुणेश नाम का लिंग है । भक्ति-भाव से उसका दर्शन करने वाला मनुष्य तत्क्षण मोक्ष को प्राप्त करता है ।। २८ ।।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह सात जन्मों में उपार्जित भी पापों से मुक्त हो जाता है ।। २९ ।।

आषाढ़ी नक्षत्र से युक्त समय (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा) में जो मनुष्य यहाँ स्नान करता है, हे मुनिश्रेष्ठ ! वह करोड़ों जन्मों के उपार्जित पापों से मुक्त हो जाता है ।। ३० ।।

तदनन्तर वह शिव के गणों से भरे हुए रमणीय शिवलोक में निवास करता है । तदनन्तर योनि के संकट (पुनर्जन्म) से रहित होकर उसी शिव में विलीन हो जाता है ।। ३१ ।।

और जहाँ गंगा में वरुणा का संगम है, वहाँ मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग आदि भी स्नान करने से मुक्त हो जाते हैं ।। ३२ ।।

वहाँ दान देने, हवन करने और तप करने से मनुष्य मोक्ष पाने में समर्थ होता है । मैं अन्य भी पुरातन इतिहास को कहूँगा ।। ३३ ।।

वह मनुष्यों के लिये अति आश्चर्यकर है और पढ़ने से पापों को नष्ट करता है । अयोध्या में कोई विनयशील ब्राह्मण था ।। ३४ ।।

उसका नाम चन्द्रवर्मा था । उसके बहुत से पुत्र थे । वह अनेक स्त्रियों से घिरा था और बहुत ऐश्वर्य से युक्त था ।। ३५ ।।

हे द्विज नारद ! उसने ब्राह्मणों के लिये गौ-भूमि-वस्त्रों का दान किया और धान-पृथिवी आदि का महादान किया ।। ३६ ।।

तथा ब्रह्माण्डदानं च सुवर्णपृथिवीं तथा ।
व्रतान्यपि चकाराऽसौ बहुपुण्यानि नारद ।। ३७ ।।

पुराणानि च शुश्राव तीर्थानां वैभवं तथा ।
अधिकं सर्वतीर्थेभ्यो मत्वा केदारमण्डलम् ।। ३८ ।।

विरक्तोऽभूत्तदा सोऽथ वैभवे च सुखप्रदे ।
सर्वं गृहाश्रमं त्यक्त्वा गमनाय मनोऽकरोत् ।। ३९ ।।

केदारेश्वरयात्रायां खड्गचर्मधरः सुधीः ।
सोऽपानत्को ययौ सोऽथ गंगाद्वारे महामुने ।। ४० ।।

आगत्य ब्रह्मकुण्डे च स्नात्वा दक्षेश्वरं विभुम् ।
प्रजापतिं च नत्वाऽथ कुब्जाम्रकं समाययौ ।। ४१ ।।

तत्रापि बहुशः स्नात्वा प्रणम्य भरतं मुदा ।
लक्ष्मणाश्रममागत्य पूजयित्वा च तं प्रभुम् ।। ४२ ।।

वसिष्ठाश्रममागत्य दृष्ट्वा तत्र महामुनिम् ।
देवप्रयामागत्य स्नात्वा दृष्ट्वा रघूद्वहम् ।। ४३ ।।

ययौ तत्र महाक्षेत्रं गंगाभिल्लांगनासमम् ।
मिलित्वा तत्र संनेते सस्नौ पुण्यप्रदे मुने ।। ४४ ।।

ततोऽगच्छत्सौम्यकाशीमज्ञानात्स महाशयः ।
यत्रासीद् गङ्गयोः संगस्तत्रामज्जन्मुदान्वितः]। ४५ ।।

आगत्य तीरे वस्त्राणि परिधाय महामतिः ।
नापश्यच्चर्मकोशं च उभे चोपानहौ तथा ।। ४६ ।।

इतस्ततः भ्रमन्सोऽथ चिन्तयंस्तदहेतुकम् ।
गतं कुत्र ममातीव प्रियं वस्तु न वेद्मि तत् ।। ४७ ।।

वदतस्तस्य क्षेत्रस्य पुरस्तात्कृतकर्म्मणः ।
आविर्बभुस्त्रिनेत्राश्च शूलिनो वृषभध्वजाः ।। ४८ ।।

हे नारद ! उसने ब्रह्माण्ड, सुवर्ण और पृथिवी का दान किया। उसने बहुत पुण्यद व्रत भी किये ।। ३७ ।।

उसने पुराण सुने और तीर्थों का वैभव सुना। उसने केदारमण्डल को सब तीर्थों से अधिक माना ।। ३८ ।।

तदनन्तर वह सुख देने वाले वैभव के प्रति विरक्त हो गया। सारे गृहस्थ आश्रम को छोड़कर उसने वहाँ जाने के लिये मन बनाया ।। ३९ ।।

हे महामुने ! वह बुद्धिमान् ब्राह्मण ढाल-तलवार को धारण किये केदारेश्वर यात्रा के लिये चल पड़ा। तदनन्तर वह जूते पहने ही गंगाद्वार में गया ।। ४० ।।

यहाँ ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके दक्षेश्वर, विभु प्रजापति को प्रणाम करके उसके पश्चात् कुब्जाम्रक में आ गया ।। ४१ ।।

वहाँ भी अनेक बार स्नान करके, प्रसन्नता से भरत को प्रणाम करके, लक्ष्मण-आश्रम में आकर उस प्रभु को प्रणाम किया ।। ४२ ।।

तदनन्तर वसिष्ठ आश्रम में आकर वहाँ महामुनि के दर्शन किये। उसके बाद देवप्रयाग में आकर भगवान् राम के दर्शन किये ।। ४३ ।।

हे मुने ! तदनन्तर वह गंगा और भिलंगना के क्षेत्र में गया। वहाँ उनके पुण्यप्रद संगम में स्नान किया ।। ४४ ।।

तदनन्तर वह महाशय अनजाने ही सौम्यकाशी चला गया, जहाँकि असी गंगा और वरुण गंगा का संगम था। वहाँ उसने प्रसन्नता से स्नान किया ।। ४५ ।।

किनारे पर आकर उस महामति चन्द्रवर्मा ब्राह्मण ने वस्त्र पहने, तो ढाल, तलवार की म्यान (चर्मकोष) और दोनों जूतों को नहीं देखा ।। ४६ ।।

इधर-उधर घूमते हुए वह इस अहेतुक बात का विचार करता रहा कि मेरी अतिप्रिय वस्तुयें कहाँ चली गई हैं, इसको मैं नहीं जान रहा हूँ ।। ४७ ।।

इस प्रकार वह उस क्षेत्र में कह ही रहा था कि उस कृतकर्मा ब्राह्मण के समक्ष तीन नेत्रों वाले, शूलों को धारण किये अनेक वृक्षभध्वज शिव प्रकट हो गये ।। ४८ ।।

गजकृजिवसानाश्च व्याघ्रचर्मपरिवृताः ।
शशांकार्द्धप्रभालीकास्तान्दृष्ट्वा विस्मयान्वितः ।। ४९ ।।
दृष्टवाञ्छिवरूपं वै धन्योऽहं कृतबुद्धिमान् ।
यः पश्येच्छिवरूपांश्च इमानाश्चर्यकर्म्मणः ।। ५० ।।
शिव एकोऽस्ति सर्वत्र पुराणे परिगीयते ।
अद्यैव बहुधा दृष्टो मया एकः शिवस्तथा ।। ५१ ।।

स्कन्द उवाच—

अत्याश्चर्य्यं तु तज्ज्ञात्वा पर्य्यपृच्छच्च तांस्तदा ।
विनयावनतो भूत्वा उवाच वचनं त्विदम् ।। ५२ ।।

चन्द्रवर्म्मोवाच—

के यूयं शिवरूपा वै शशांककृतशेखराः ।
तन्मे विस्तरतो ब्रूत यदि चेन्मपि वो दया ।। ५३ ।।

शिवरूपिणः ऊचुः —

त्वं न जानासि भो भद्र जीवन्मुक्तोऽसि सांप्रतम् ।
वयं च त्वत्प्रसादेन शिवा जाता न संशयः ।। ५४ ।।

खड्गो मेघो वृषो गौश्च तेषां चर्म्माणि त्वत्सह ।
समागतानि तीर्थेऽस्मिन्सर्वेषां मुक्तिदायके ।। ५५ ।।

एतत्तीर्थस्य संसर्गाज्जाता वै वृषभध्वजाः ।
इति तेषां वचः श्रुत्वा धन्योऽहमिति भावयन् ।। ५६ ।।

दृष्ट्वा ताञ्छिवरूपांश्च गतान्कैलासपर्व्वते ।
सोऽपि तत्रैव लीनोऽभूच्छिवदेहे न संशयः ।। ५७ ।।

इति ते कथिनं दिव्यं माहात्म्यं संगमस्य हि ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण मुक्तिर्भवति दुर्लभा ।। ५८ ।।

तत्रैव विष्णुकुण्डं च यत्र स्नात्वा हरिर्भवेत् ।
पिंडदानं कृतं तत्र कुलकोटिं समुद्धरेत् ।। ५९ ।।

अस्मिंस्तीर्थे महाभाग वारणावतसंज्ञके ।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानामपि सुव्रत ।। ६० ।।

उन्होंने हाथी के चमड़े के वस्त्र पहन रखे थे । बाघ का चमड़ा ओढ़े हुए थे । मस्तक पर अर्ध चन्द्र की कान्ति थी । उनको देखकर वह विस्मित हो गया ॥ ४९ ॥

मैंने शिव के रूप को देख लिया है । मैं धन्य हूँ, जो कि मुझ बुद्धिमान् ने इन आश्चर्यकारी अनेक शिव रूपों को देख लिया है ॥ ५० ॥

पुराणों में सर्वत्र गाया गया है कि शिव एक है । मैंने आज ही एक शिव को बहुत रूपों में देखा है ॥ ५१ ॥

स्कन्द ने कहा—

इस अति आश्चर्यकर घटना को देखकर और जानकर उसने उनसे पूछा । विनय से झुककर उसने यह वचन कहा ॥ ५२ ॥

चन्द्रवर्मा ने कहा—

शिव के रूप तुम कौन हो, जिन्होंने चन्द्रमा को शिरोभूषण बनाया है । यदि तुम्हारी मुझ पर दया है, तो मुझको विस्तार से बताओ ॥ ५३ ॥

शिव रूप बोले—

हे भद्र ! तुम नहीं जानते हो । अब तुम जीवन्मुक्त हो गये हो और हम तुम्हारी कृपा से शिव हो गये हैं । इसमें संशय नहीं है ॥ ५४ ॥

तलवार, ढाल, बैल गौ, और उनके चर्म तुम्हारे साथ सबको मुक्ति देने वाले इस तीर्थ में आये हैं ॥ ५५ ॥

इस तीर्थ के संसर्ग से वे निश्चय से वृषभध्वज हो गये हैं । इस प्रकार उनके वचन को सुनकर वह विचार करने लगा कि मैं धन्य हूँ ॥ ५६ ॥

उन शिवरूपों को कैलास पर्वत पर गया हुआ देखकर, वह चन्द्रवर्मा भी वहीं शिव के शरीर में निःसन्देह रूप से विलीन हो गया ॥ ५७ ॥

इस प्रकार मैंने गंगा और वरुणा के संगम के दिव्य माहात्म्य को कह दिया है, जिसके जल के स्पर्शमात्र से दुर्लभ मुक्ति होती हैं ॥ ५८ ॥

वहीं विष्णुकुण्ड है । इसमें स्नान करके मनुष्य विष्णु हो जाता है । वहाँ पिण्डदान करके मनुष्य करोड़ कुलों का उद्धार करता है ॥ ५९ ॥

हे महाभाग सुव्रत ! इस वारणावत तीर्थ में साढे तीन करोड़ तीर्थ हैं ॥ ६० ॥

तत्रैवा[1]भूत् पुर ह्यत्र जातुकं गृहमुत्तमम् ।
कौरवैः पांडवाः सर्वे धृतास्तत्र महामते ।। ६१ ।।

अद्यापि दृश्यते तत्र दग्धं जतु तदंतिके ।
तत्रैव वर्त्तते शक्तिर्यस्याः स्पर्शाद्विमुक्तिभाक् ।। ६२ ।।

अधः शेषस्य शिरसि धृता सा परदेवता ।
राजराजेश्वरी दिव्या सा शक्तिः परमा स्मृता ।। ६३ ।।

यैर्दृष्टा सा महाशक्तिस्ते यान्ति परमां गतिम् ।
समारोहति यः शैलं वारणावतसंज्ञकम् ।
अश्वमेघसहस्रस्य फलं स्याद्वै पदे पदे ।। ६४ ।।

निःसरन्ति तु याः नद्यस्तस्माद्यानि जलानि च ।
तत्सर्वं जाह्नवीतुल्यं कथितं तु महर्षिभिः ।। ६५ ।।

ततो वै दक्षिणे भागे बिलमेकं महत्तरम् ।
तस्मिन्महातपा नाम ऋषिरास्ते स्मरन्हरिम् ।। ६६ ।।

अन्येऽपि चैव मुनयो वर्त्तंते बहवो मुने ।
संन्यस्तसर्वकर्म्माणो मुक्तिमार्गे व्यवस्थिताः ।। ६७ ।।

निर्द्वन्द्वा निरहंकाराः काशीविश्वेश्वरावनु ।
स्मरन्तः परया भक्त्या अन्ये चापि तृणद्रुमाः ।। ६८ ।।

सरीसृपाः पक्षिणश्च तथान्ये जीवजन्तवः ।
निवसन्ति स्थले रम्ये छन्नरूपा महर्षयः ।। ६९ ।।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव पापिनां गतिरन्यथा ।
अस्मात्क्षेत्रवराधीशान्मुक्तिमार्गप्रदर्शकात् ।। ७० ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन इदं स्थानं न संत्यजेत् ।
इयमुत्तरकाशी हि विना भैरवयातनाम् ।
ददाति परमां सिद्धिमन्यक्षेत्रेषु दुर्ल्लभाम् ।। ७१ ।।

---

१. तत्रैव वर्तते नूनं ।

वहीं प्राचीनकाल में उत्तम लाक्षागृह बनाया गया था। हे महामते ! वहां कौरवों ने सब पांडवों को रखा था ॥ ६१ ॥

आज भी वहां उसके समीप जली हुई लाख दिखाई देती है। वहीं पर शक्ति है, जिसके स्पर्श से मनुष्य मुक्ति का भागी होता है ॥ ६२ ॥

वह परम दैवत शक्ति नीचे शेषनाग के सिर पर रखी हुई है। वह परम दिव्य शक्ति राजराजेश्वरी कही गयी है ॥ ६३ ॥

जिन्होंने उस महाशक्ति के दर्शन कर लिये हैं वे परम गति को प्राप्त होते हैं। जो वारणावत नामक पर्वत पर आरोहण करता है, वह कदम-कदम पर हजार अश्वमेध यज्ञों के फल को पाता है ॥ ६४ ॥

उस पर्वत में जो नदियां और जल निकलते हैं, महर्षियों ने उन सबको गंगा के तुल्य कहा है ॥ ६५ ॥

उससे दक्षिण भाग में एक बहुत बड़ा बिल है। उसमें महातपा नाम के ऋषि हरि का स्मरण करते रहते हैं ॥ ६६ ॥

हे मुने ! सब कर्मों को छोड़ देने वाले और मुक्ति के मार्गों में लगे हुए अन्य भी बहुत से मुनि वहां रहते हैं ॥ ६७ ॥

वे द्वन्द्वों से रहित और अहंकार से रहित मुनि परम भक्ति से काशी विश्वेश्वर का स्मरण करते रहते हैं। वहां और भी तृण, वृक्ष ॥ ६८ ॥

सरीसृप और अन्य जीव-जन्तु उस रमणीय स्थल पर निवास करते हैं वे प्रच्छन्न रूप से महर्षि ही हैं ॥ ६९ ॥

कलियुग में मुक्ति के मार्ग के प्रदर्शक इस अति उत्तम क्षेत्र से अतिरिक्त पापियों की गति नहीं है, नहीं है ॥ ७० ॥

इसलिए सब प्रकार से प्रयत्न करके इस स्थान को न छोड़े। यह उत्तरकाशी भैरव की यातना के बिना ही परमसिद्धि को देती है, जो अन्य क्षेत्रों में दुर्लभ है ॥ ७१ ॥

इदमेव परं स्थानं चतुर्वर्गप्रसाधकम् ।
यः पुमान्पंचरात्रं वै निराहारो जितेन्द्रियः ।। ७२ ।।

विश्वेश्वरमहालिंगं रूद्राध्यायमनुस्मरन् ।
अभिषेकं प्रकुर्वाणो दुर्ल्लभं चापि साधयेत् ।। ७३ ।।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्पुण्यं कोटिगणितमभिषेकाल्लभेन्नरः ।। ७४ ।।

वृहद्रथांतराभ्यां यः शतकृत्वः शिवं भजेत् ।
स्नापयेच्च तथा ताभ्यां स स्वयं वृषभध्वजः ।। ७५ ।।

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
राजभ्रष्टोऽपि यो राजा सोऽत्र शक्ति समर्चयेत् ।
उपचारैः षोडशभिः पंचभिर्वा यथाविधि ।। ७६ ।।

एवं मासं तु यो राजा कुरुते कारयेदपि ।
प्राप्नोति राज्यं विपुलं हतशत्रुरकंटकम् ।। ७७ ।।

अपुत्रो दशधा तत्र स्नापनं दुग्धवारिणा ।
करोति शक्त्या विप्रेश सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ।। ७८ ।।

विद्यार्थी यस्तत्र गच्छेत् तस्मिन्वै शक्तिमंडले ।
जपेत्सारस्वतं मंत्रं निराहारो जितेन्द्रियः ।। ७९ ।।

लभते दशरात्रेण प्रसादं पुरुषस्तदा ।
निर्द्रव्यो यो द्विजश्रेष्ठः कुटुम्बाभिद्रुतः परम् ।
तस्मिन्नेव स्थले रम्ये गच्छेदीशमनुस्मरन् ।। ८० ।।

सप्तरात्रं निराहारो जपेत्पंचाक्षरं मनुम् ।
प्राप्नोति परमां लक्ष्मीं मोदते राजवत्सदा ।। ८१ ।।

मृतोऽसौ यत्र कुत्रापि मुक्तो भवति सर्वथा ।
पंचक्रोशात्मकस्यास्य यः करोति प्रदक्षिणाम् ।
सप्तद्वीपवती तेन परिक्रान्ता वसुन्धरा ।। ८२ ।।

यह चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) को सिद्ध करने वाला परम स्थान है। जो मनुष्य पांच रात्रियों तक निराहार और जितेन्द्रिय रहकर ॥ ७२ ॥

रुद्राध्याय का स्मरण करता हुआ विश्वेश्वर महालिङ्ग का अभिषेक करता है, वह दुर्लभ कार्य को भी सिद्ध कर लेता है ॥ ७३ ॥

सब तीर्थों में जो पुण्य मिलता है और सब यज्ञों में जो फल मिलता है, उसका करोड़ गुना फल मनुष्य इस महालिङ्ग का अभिषेक करके प्राप्त करता है ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य बृहद् रथान्तर सामगानों से शिव का सौ बार भजन करता है और उनका अभिषेक करता है, वह स्वयं वृषभध्वज हो जाता है ॥ ७५ ॥

वह जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उसको निश्चित रूप से प्राप्त करता है। राज्य से भ्रष्ट होकर भी जो राजा यहां षोडश अथवा पंच उपचारों से यथाविधि शक्ति की अर्चना करता है ॥ ७६ ॥

इस प्रकार जो राजा एक महीने तक स्वयं करता है या करवाता है, वह शत्रुओं को नष्ट करके निष्कण्टक, विपुल राज्य को प्राप्त करता है ॥ ७७ ॥

हे विप्रेश नारद ! पुत्र से रहित जो व्यक्ति यहां दूध के जल से शक्ति का अभिषेक करता है वह निश्चित रूप से उत्तम पुत्र को प्राप्त करता है ॥ ७८ ॥

जो विद्यार्थी इस शक्ति मण्डल में जाकर निराहार और जितेन्द्रिय रहकर सारस्वत मन्त्र का जाप करता है ॥ ७९ ॥

वह पुरुष विद्यार्थी दस यात्रियों में देवी की कृपा को प्राप्त करता है। धन से रहित श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने परिवार को छोड़कर ईश का स्मरण करता हुआ उस रमणीय स्थल पर जावे ॥ ८० ॥

वहां निराहार रहकर सात रात्रियों तक पंचाक्षर मन्त्र का जप करे, वह परम लक्ष्मी को प्राप्त करता है और राजा के समान सदा आनन्द पाता है ॥ ८१ ॥

उस ब्राह्मण की जहां कहीं भी मृत्यु हो वह सर्वथा मुक्त होता है। इस पांच कोस वाले क्षेत्र की जो परिक्रमा करता है, उसने मानो सातों द्वीपों वाली पृथ्वी की परिक्रमा कर ली ॥ ८२ ॥

गोचर्ममात्रमपि यो दद्यादत्र वसुन्धराम् ।
सप्तद्वीपवतीनाथः स भवेत्पुरुषोत्तमः ।। ८३ ।।

त्रुटिमात्रं तु यः स्वर्णं प्रदद्याद्वेदवि द्विजे ।
तेन दत्तं भवेत्सर्वं जगच्च सचराचरम् ।। ८४ ।।

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दद्यादत्र नारद ।
स स्वयं नीलकण्ठः स्यादुमया सह मोदते ।। ८५ ।।

पंचक्रोशातमके क्षेत्रे नैव पापं समाचरेत् ।
यदन्यत्र कृतं कर्म तदत्र परिनश्यति ।
अत्र यत्क्रियते कर्म वज्रलेपाय कल्पते ।। ८६ ।।

अन्यत्र कृतपापानि क्षेत्राद्बाह्ये भवन्ति हि ।
अस्मिन्यत्क्रियते कर्म तदस्थिषु परिष्कृतम् ।। ८७ ।।

अस्मात्स्थानातपरं स्थानं न दृष्टं क्वापि नारद ।
यत्र भागीरथी साक्षाद्यत्र विष्णुः सनातनः ।। ८८ ।।

यत्र देवो भवानीशः प्रमथैस्सह तिष्ठति ।
तस्य पूर्वोत्तरे पार्श्वे वायुतीर्थमिति स्मृतम् ।। ८९ ।।

यत्र वायुः पुरा तप्त्वा तपः परमदारुणम् ।
दिक्पालत्वं यतः प्राप्तं तदेतद्वायुतीर्थकम् ।। ९० ।।

वायव्येति समाख्याता नदी परमपाविनी ।
यस्यां स्नात्वा नरो याति वायुलोकं न संशयः ।। ९१ ।।

ततो वै दक्षिणे भागे योजनार्द्धे मुनीश्वर ।
यमतीर्थमिति ख्यातं यमादर्शनकारकम् ।। ९२ ।।

यावद्वै तिलबीजेन भूमिराच्छाद्यते मुने ।
तत्र तीर्थमयं बोध्यं ततस्तीर्थमयी पुरी ।। ९३ ।।

संसारभयभीतानां शरणं सौम्यकाशिका ।
यावन्त्यत्र महाभाग ह्यश्मकूटानि सन्ति वै ।
तानि वै शिवलिंगानि नात्र कार्य्या विचारणा ।। ९४ ।।

जो यहां गौ के चर्म के बराबर भी पृथ्वी का दान करता है, वह पुरुषोत्तम सात द्वीप वाली पृथ्वी का स्वामी होता है ॥ ८३ ॥

वेदों को जानने वाले जो मनुष्य ब्राह्मण को अणु मात्र भी स्वर्ण प्रदान करता है, उसने मानो सम्पूर्ण चर-अचर जगत् का दान कर दिया है ॥ ८४ ॥

हे नारद ! जो यहां सब प्राणियों को अभय देता है, वह स्वयं नीलकण्ठ होकर पार्वती के साथ आनन्द प्राप्त करता है ॥ ८५ ॥

इस पांच कोस के क्षेत्र में पाप का आचरण न करे। अन्य स्थानों पर किया गया कर्म तो यहां नष्ट हो जाता है, परन्तु जो कर्म यहां किया जाता है, वह वज्रलेप हो जाता है ॥ ८६ ॥

अन्य स्थानों पर किये गये पाप क्षेत्र से बाहर ही होते हैं, किन्तु जो कर्म इस क्षेत्र में किये जाते हैं वे हड्डियों में व्याप्त हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

हे नारद ! इस स्थान से उत्कृष्ट स्थान कहीं नहीं देखा गया, जहां कि भागीरथी और साक्षात् सनातन विष्णु हैं ॥ ८८ ॥

जहां कि भवानी के पति महादेव प्रमथों के साथ रहते हैं। उसके पूर्वोत्तर पार्श्व में वायुतीर्थ है ॥ ८९ ॥

यहां प्राचीन समय में वायु देवता ने परम कठोर तप करके दिक्पालत्व को पाया था, अतः यह तीर्थ वायुतीर्थ कहलाया ॥ ९० ॥

यहां वायव्या नाम की परम पवित्र नदी है। इसमें स्नान करके मनुष्य वायु-लोक को जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ९१ ॥

हे मुनीश्वर ! उससे दक्षिण भाग में आधा योजन दूर यमतीर्थ है, जो यम का दर्शन कराने वाला प्रसिद्ध है ॥ ९२ ॥

हे मुने ! जितने तिल बीजों से भूमि आच्छादित होती है, उतने तीर्थ इस उत्तरकाशी में समझने चाहियें। अतः यह पुरी तीर्थमयी है ॥ ९३ ॥

संसार के भय से डरे हुए व्यक्तियों की शरण यह लौम्यकाशी है। हे महा-भाग ! यहां जितनी शिलायें और शिखर हैं, वे सब निश्चय से शिवलिङ्ग हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥ ९४ ॥

अतः परतरं नास्ति तीर्वं मुक्तिप्रदायकम् ।
इदं ते कथितं सर्वं मुक्तिक्षेत्रं तथोत्तरे ॥ ९५ ॥

पृथिव्यां त्रीणि क्षेत्राणि मोक्षदानि च पापिनाम् ।
वाराणसी तथा पूर्वे शालग्रामाख्यतीर्थकम् ॥ ९६ ॥

यत्र पुण्या नदी श्रेष्ठा गण्डकी नाम विश्रुता ।
मुक्तिक्षेत्रं द्वितीयं तु तद्विजानीहि नारद ॥ ९७ ॥

यः श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
पुण्यं यशस्यमायुष्यं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ ९८ ॥

तदाख्यानं तु ते प्रोक्तं वाराणस्यास्तु वैभवः ।
एतच्छ्रुत्वा नरो भक्त्या लभते सद्गतिं पराम् ॥ ९९ ॥

इदमाख्यानकं पुण्यं न वाच्यं यस्य कस्य वै ।
कथनीयं प्रयत्नेन हरिभक्तिरताय च ॥ १०० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सौम्यवाराणसीमाहात्म्यं
समाप्तिर्नाम पंचनवतितमोऽध्यायः ।

षण्णवतितमोऽध्यायः

**ब्रह्मधारायमुनाहिरण्यबाहुतामसीनदीदक्षकाश्यपतीर्थशतद्रु-
गङ्गाविषहरादेवीसुन्दरप्रयागादिबहुतीर्थवर्णनम्**

स्कन्द उवाच—

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि भवमुक्तिकराणि हि ।
विविधानि च तीर्थानि गंगापश्चिमदेशतः ॥ १ ॥

इससे बढ़कर तीर्थ मुक्ति देने वाला नहीं है। इस प्रकार मैंने उत्तर दिशा में स्थित सम्पूर्ण मुक्ति क्षेत्र को कह दिया ॥ ९५ ॥

पापियों को मोक्ष देने वाले तीन क्षेत्र पृथ्वी पर हैं। पूर्व में वाराणसी और और शालग्राम नाम का तीर्थ है ॥ ९६ ॥

जहांकि गण्डकी नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ पुण्य नदी बहती है। हे नारद ! उसको तुम दूसरा मुक्ति क्षेत्र समझो ॥ ९७ ॥

इस वृत्तान्त को सुनकर मनुष्य निःसन्देह सब पापों से छूट जाता है। यह वृत्तान्त पुण्य, यशस्य, आयुष्य, पाप नाशक और सब कामनाओं को पूरा करने वाला है ॥ ९८ ॥

वाराणसी के वैभव का यह जो आख्यान कहा गया है, इसको भक्ति-भाव से सुनकर मनुष्य परम सद्गति को प्राप्त करता है ॥ ९९ ॥

यह आख्यान पुण्य है, इसको जिस किसी से नहीं कहना चाहिए। इसको प्रयत्न करके शिव के भक्त से ही कहना चाहिए ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सौम्यवाराणसी-
माहात्म्य की समाप्ति नाम का पिचानवेवां अध्याय
समाप्त हुआ ॥

छियानवेवां अध्याय

ब्रह्मधारा, यमुना, हिरण्यबाहु, तामसी नदी, दक्षतीर्थ, काश्यपतीर्थ, शतद्रु, गङ्गा, विषहरा देवी, सुन्दर-प्रयाग आदि अनेक तीर्थों का वर्णन

स्कन्द ने कहा—

अब मैं गंगा नदी के पश्चिम के देशों के भव-बन्धन से मुक्त कराने वाले अन्य भी तीर्थों के विषय में कहूँगा ॥ १ ॥

ब्रह्मधारा नदी ख्याता स्नानान्मोक्षप्रदायिनी ।
तस्यां स्नात्वा सुभक्त्या च ब्रह्मत्वं प्राप्नुयान्मुने ॥ २ ॥

एकश्रृंगे महाद्रौ सा प्रववाह महानदी ।
वेदघोषेण स्नवितो ब्रह्मबिन्दुः प्रजापतेः ॥ ३ ॥

तस्माज्जाता ब्रह्मधारा नदी परमपाविनी ।
तत्पश्चिमोत्तरे भागे यमुनाख्या महानदी ॥ ४ ॥

तस्यां स्नात्वा समाप्नोति कैवल्यं योगिदुर्लभम् ।
हिरण्यबाहुनामा च नदी परमपावनी ॥ ५ ॥

अनयोः संगमे स्नात्वा यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं ते प्रवक्ष्यामि श्रृणु नारदसत्तम ॥ ६ ॥

सप्तजन्मसमुद्भूतैर्मुच्यते पातकैर्ध्रुवम् ।
सुवर्णाभविमानेन प्रगच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ ७ ॥

तस्मै दद्याद्यमस्तुष्टो विमानं सर्वलोकगम् ।
तत्रारूढ़ो नरो यात्येकविंशतिकुलैः सह ॥ ८ ॥

परमं स्थानमाप्नोति तपोभिश्चैव दुर्लभम् ।
ततः पश्चिमभागे तु विख्याता तामसा नदी ॥ ९ ॥

सितस्रवया संगच्छेत्तत्स्थानं सुखदं परम् ।
तत्र स्नात्वा सुखं मर्त्यो न कदाचिद्विमुंचति ॥ १० ॥

जन्मजन्मनि विप्रेंद्र सुखी भूत्वा शिवो भवेत् ।
तत्रैव दक्षतीर्थं तु तत्र स्नात्वा तु दक्षताम् ।
प्राप्नोति मनुजो यत्र यज्ञं दक्षोऽकरोन्मुने ॥ ११ ॥

तदुत्तरे विष्णुतीर्थं तत्र स्नात्वा नरो लभेत् ।
दुर्लभं विष्णुसायुज्यं त्यक्त्वां स्वं च कलेवरम् ॥ १२ ॥

तत्पश्चिमे महासानुर्गिरिस्तिष्ठति नारद ।
तस्माच्छैत्या समुद्भूता नदीस्नानाद्विमुक्तिदा ॥ १३ ॥

ब्रह्मधारा नाम से प्रसिद्ध एक नदी है। इसमें स्नान करने से मोक्ष मिलता है। हे मुने! इसमें भक्ति-भाव से स्नान करने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है॥ २॥

महापर्वत हिमालय के एक शिखर से वह महानदी प्रवाहित हुई थी। प्रजापति के वेद-घोष से ब्रह्म-बिन्दु स्रवित हुआ था॥ ३॥

उससे यह परमपाविनी ब्रह्मधारा नदी उत्पन्न हुई थी। उसके पश्चिमोत्तर भाग में यमुना नाम की महानदी है॥ ४॥

उसमें स्नान करके मनुष्य योगियों को भी दुर्लभ कैवल्य को प्राप्त करता है। हिरण्यबाहु नाम की एक परमपावनी नदी हैं॥ ५॥

इन दोनों यमुना-हिरण्यबाहु नदियों के संगम पर स्नान करने से मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है, हे श्रेष्ठ नारद! मैं उस फल को कहूँगा सुनो॥ ६॥

वह मनुष्य सात जन्मों में उत्पन्न हुए पापों से निश्चय ही मुक्त हो जाता है। वह सुवर्ण के समान कान्तिमान् विमान पर आरूढ़ होकर वैष्णव लोक में जाता है॥ ७॥

सन्तुष्ट यम उसके लिये सब लोकों में गति करने वाले विमान को देता है। वह मनुष्य उस पर २१ पीढ़ियों के कुलों के साथ आरूढ़ होकर जाता है॥ ८॥

वह तपस्याओं से भी दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त करता है। तदनन्तर पश्चिम भाग में तामसा नाम की नदी है॥ ९॥

जहाँ उसका सितस्रवा नदी से संगम होता है। वह स्थान परम सुखद है। वहां स्नान करने से मनुष्य का सुख कभी नहीं छूटता॥ १०॥

हे विप्रेन्द्र नारद! वहां मनुष्य जन्म-जन्म में सुखी होकर शिव हो जाता है। वहीं पर दक्षतीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य दक्षता प्राप्त करता है। हे मुने! यहाँ दक्ष ने यज्ञ किया था॥ ११॥

उसके उत्तर में विष्णु तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अपने शरीर को छोड़कर विष्णु के दुर्लभ सायुज्य को प्राप्त करता है॥ १२॥

उसके पश्चिम में महासानु नाम का पर्वत है। हे नारद! उससे शैत्या नाम की नदी निकलती है। उसमें स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती है॥ १३॥

समुद्रेण च सा शैत्या संगमे यत्र वै स्थले ।
तत्र स्नानात्फलं स्नातुर्गंगासागरसंगमे ।
यत्पुण्यं कोटिगुणितं तत्फलं स्यात्सकृत्प्लवात् ।। १४ ।।

त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य विमानेनार्कवर्चसा ।
गच्छन्ति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।। १५ ।।

तत्संगमे महादेवलिंगं ज्योतीश्वरं मुने ।
सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते तत्समर्चनात् ।। १६ ।।

यः कुर्यात्पिण्डदानं हि पितॄनुद्दिश्य मानवः ।
मातृगोत्रे पितृगोत्रे प्रियगोत्रे च ये स्थिताः ।
उद्धृतास्तेऽपि ते सर्वे तेन मर्त्येन नारदः ।। १७ ।।

वामदेवं च यः साम गायते रुद्रभक्तितः ।
यं यं कामयते कामं तदाप्नोति विनिश्चितम् ।। १८ ।।

तदुत्तरे क्षितेर्भागे हेमशृंगादधः स्थले ।
तत्रास्ते मनिशार्दूल [1]सिद्धधारा नदी शुभा ।। १९ ।।

स्पर्शनाद्दर्शनात्स्नानाद्यस्याः पश्येत् सिद्धकान् ।
ततोऽसौ मुक्तिमाप्नोति दुःखसंसारसागरात् ।। २० ।।

तत्संगमो यत्र देशे स्यात्समुद्रणे दुर्लभः[2] ।
तत्रापि लभते पुण्यं गंगासागरसंगजम् ।। २१ ।।

तत्रास्ते तु महालिंगं ब्रह्मणाराधितं पुरा ।
तद्दर्शनान्निष्कल्मषो रुद्र एव भवेन्नरः ।। २२ ।।

आनाद्याख्यं महालिंगं सकृद्यः पूजयेन्नरः ।
प्रमथैः सेव्यमानोऽसौ विमानेनार्कवर्चसा ।
शैवं लोकं समाप्नोति तेनैव सह मोदते ।। २३ ।।

---

१. सिद्धारा ता २. समुद्र' सुदुर्लभः ।

उस शैत्या नदी का जिस स्थल पर समुद्र में संगम होता है, वहां स्नान करने से, गंगा-सागर संगम पर स्नान करने का जो पुण्य फल मिलता है, उसका करोड़ गुना फल एक बार स्नान से मिलता है ।। १४ ।।

वहां स्नान करने वाले मनुष्य तीन करोड़ कुलों का उद्धार करके सूर्य के समान् कान्तिमान् विमान से परम स्थान को जाते हैं, जहां से पुनरागमन दुर्लभ है ।। १५ ।।

हे मुने ! उसके संगम पर ज्योतीश्वर महादेवलिङ्ग है। उनकी अर्चना करने से सात जन्मों में अर्जित पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है ।। १६ ।।

हे नारद ! जो मनुष्य यहां पितरों को लक्ष्य करके पिण्डदान करता है, वह माता के गोत्र के, पिता के गोत्र के और पत्नी के गोत्र के सब पितरों का उद्धार कर देता है ।। १७ ।।

जो मनुष्य यहां रुद्र के प्रति भक्ति-भाव से वामदेव साम का गान करता है, वह जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उस-उसको निश्चित पाता है ।। १८ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! वहां उत्तर के पृथिवी के भाग में हेमशृङ्ग से नीचे के स्थल में सिद्धधारा नाम की शुभ नदी है ।। १९ ।।

जिसके दर्शन करने, स्पर्श करने और स्नान करने से मनुष्य सिद्धों का दर्शन करता हैं। तदनन्तर वह संसार के दुःख रूपी सागर से मुक्ति प्राप्त करता है ।। २० ।।

उस नदी का जहाँ समुद्र में संगम है, वह स्थान दुर्लभ है। वहां भी मनुष्य गंगा-सागर संगम के पुण्य को पाता है ।। २१ ।।

वहां पर महालिङ्ग है। प्राचीन समय में ब्रह्मा ने इसकी आराधना की थी। उसका दर्शन करने से मनुष्य निष्कलमष होकर रुद्र हो जाता है ।। २२ ।।

इस लिंग का नाम आनाद्य है। जो मनुष्य इस महालिङ्ग का एक बार पूजन करता है, वह प्रमथों से सेवा किया जाता हुआ, सूर्य के समान कान्तिमान् विमान से शिव के लोक में जाता हैं और उन्हीं के साथ आनन्द करता है ।। २३ ।।

तस्य पूर्वोत्तरे भागे हिरण्यसैकता नदी ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते स्नानमात्रतः ॥ २४ ॥

तत्पूर्वभागे विख्याता नदी हैमवती शुभा ।
स्नानमात्रेण तस्यां तु कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ २५ ॥

भवेयुः स्थावरास्तत्र जंगमाः जलसंगताः ।
जंगमोऽपि भवेद्देवो देवोऽपि मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

तत्पूर्वे काश्यपं तीर्थं यत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ।
तत्पूर्वे ब्रह्मपुत्राख्यो नदः परमपावनः ॥ २७ ॥

तत्र स्नात्वा नरो गच्छेद् ब्रह्मलोकं सनातनम् ।
तत्र प्रार्थ्यं महादेवं ब्रह्मेश्वर इति श्रुतम् ॥ २८ ॥

अयुतार्काभयानेन रुद्रलोके वसेन्नरः ।
सर्वाभिलाषदा नृणां नाम्ना देवी गवीश्वरी ॥ २९ ॥

तस्याः क्षेत्रं महापुण्यं कोशार्द्धायामविस्तरम् ।
संदर्शनात्पूजनाच्च देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

गवीश्वरी महादेवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ।
पूर्वमाराधिता देवी स्वशापपरिमुक्तये ।
सुरभिणा कामदुहा विमुक्ता शिवशापतः ॥ ३१ ॥

तत आरभ्य गावस्तु बभूवुस्सर्वकर्म्मणि ।
अतिपुण्यतमा विप्र पापघ्न्यः स्पर्शनादपि ॥ ३२ ॥

यं कामं चिंतयेन्मर्त्यस्तं समाप्नोति निश्चितम् ।
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते निश्चयो भवेत् ॥ ३३ ॥

सर्वांशभावतो देवी वसते नित्यमेव हि ।
मासि मासि रजस्तस्याः दृश्यते योनिमध्यतः ॥ ३४ ॥

उसके पूर्वोत्तर भाग में हिरण्यसैकता नदी है। इसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापो से मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥

उससे पूर्व भाग में हैमवती नाम की शुभ नदी है। उसमें स्नान करने मात्र से कोटि कल्प पर्यन्त स्वर्ग में रहता है ॥ २५ ॥

जहां पर कि उस नदी के जल का स्पर्श करके स्थावर (जड़) पदार्थ जङ्गम (चेतन, गतिशील) हो जाते हैं। जंगम पदार्थ देवता हो जाते हैं और देवता मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥ २६ ॥

उससे पूर्व में काश्यप तीर्थ है, जिसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग जाता है। उससे पूर्व में परम पवित्र ब्रह्मपुत्र नाम का नद है ॥ २७ ॥

वहां स्नान करके मनुष्य सनातन ब्रह्मलोक में जाता है। वहां ब्रह्मेश्वर नाम से प्रसिद्ध महादेव की प्रार्थना करनी चाहिए ॥ २८ ॥

उनका पूजन करने से मनुष्य दस हजार सूर्यों के समान कान्तिमान् विमान से रुद्रलोक में जाकर निवास करता है। वहां मनुष्यों की सभी अभिलाशाओं को देने वाली गवीश्वरी नाम की देवी हैं ॥ २९ ॥

उनका महापुण्यशाली क्षेत्र आधे कोस के विस्तार में है। उसके दर्शन और पूजन करने से मनुष्य देवी के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥ ३०॥

यह गवीश्वरी महादेवी तत्काल ज्ञान को देने वाली है। पूर्व समय में कामनाओं को पूरा करने वाली कामधेनु ने अपने शाप की निवृत्ति के लिए देवी की आराधना की थी और वह शिव के शाप से मुक्त हुई ॥ ३१ ॥

हे विप्र ? तभी से लेकर गौयें सभी कार्यों में अति पुण्यतम हुईं और स्पर्श करने से भी वे पापों को नष्ट करती हैं ॥ ३२ ॥

मनुष्य वहां जिस कामना का विचार करता है, उसको निश्चित प्राप्त करता है। मैं उसका चिह्न कहूँगा, जिससे तुमको निश्चय हो जायेगा ॥ ३३ ॥

वहां देवी अपने सभी अंशों से नित्य दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक मास में उसकी योनि के मध्य से उसका रजस् निकलता दिखाई देता है ॥ ३४ ॥

यावत्तद्दृश्यते ब्रह्मंस्तावत्पूजां विवर्ज्जयेत् ।
दर्शनं नापि कुर्वीत कृत्वा निरयमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

बहुना किमिहोक्तेन देवीयं सिद्धिदायिनी ।
ततः पश्चिमदिग्भागे त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ३६ ॥

सौम्यकाशीस्थलाद्विप्र पश्चिमोत्तरभागके ।
शतद्रूश्च नदी पुण्या वर्त्तते मुक्तिदायिनी ॥ ३७ ॥

तस्यां स्नातुः फलं वक्ष्ये यत्र कुत्रापि नारद ।
शंखचक्रगदापद्मपाणिर्भूत्वा चतुर्भुजः ॥ ३८ ॥

अनेकाप्सरगन्धर्वगणैरग्रे सुगायकैः ।
पन्नगाशनयानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३९ ॥

पितॄन्यस्तर्प्पयदेस्यां तृप्ताः स्युः पितरो मुने ।
कुलकोटीः समुद्धृत्य [1]तान्नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ४० ॥

यस्या कस्यापि नाम्ना वै पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।
सोऽपि याति परं ब्रह्म यत्रास्ते मुनिपुंगव ॥ ४१ ॥

तत्रैव शैवलिंगं तु दिव्यकान्तिविभासितम् ।
नाम्ना ख्यातं क्षितितले पंचनादेश्वरेश्वरम् ॥ ४२ ॥

तद्दर्शनात्पूजनाच्च नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।
कृत्याकृत्यं च जानीयात्स्वजातिं च तथा द्विज ॥ ४३ ॥

त एव धन्या लोकेषु यैर्दृष्टा सा महानदी ।
ते सर्वे कृतय कृत्याः स्युः पीतं यैर्जलमुत्तमम् ॥ ४४ ॥

ततः पश्चिमभागे तु जम्बुशैलेऽचलोत्तमे ।
तत्र जम्बूनदाभासा पार्वती पर्वते मुने ॥ ४५ ॥

---

१. स नयेत् ।

हे ब्राह्मण नारद ! जब तक कि वह रजस् दिखाई दे, तब तक के लिये देवी की पूजा छोड़ दे। उसका दर्शन भी न करे। दर्शन करने पर मनुष्य नरक में जाता है ।। ३५ ।।

बहुत कहने से क्या ? यह देवी सिद्धि को प्रदान करने वाली है। उससे पश्चिम दिशा में यह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। अब मैं अन्य तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ का वर्णन करूँगा ।। ३६ ।।

हे विप्र ! सौम्यकाशी के स्थल के पश्चिमोत्तर दिशा में मुक्ति प्रदान करने वाली शतद्रू नाम की नदी है ।। ३७ ।।

हे नारद ! उसमें स्नान के फल को बताऊँगा। उसमें स्नान करनें से मनुष्य जहाँ कहीं भी हो, शंख-चक्र-गदा-पद्म को धारण किये चतुर्भुज होकर···।। ३८ ।।

उत्तम गान करने वाली अनेक अप्सराओं और गन्धर्वों से आगे और आगे स्तुति किया जाता हुआ गरुड़यान पर आरूढ़ होकर विष्णु लोक को जाता है ।। ३९ ।।

इसमें यदि वह पितरों का तर्पण करता है, तो हे नारद ! उसके पितर तृप्त होते हैं। वह करोड़ कुलों का उद्धार करके उनको शाश्वत ब्रह्मलोक ले जाता है ।। ४० ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! वहां वह बुद्धिमान् मनुष्य जिस किसी के भी नाम से पिण्डदान करता है, वह भी उस पद को पाता है. जहां कि परमब्रह्म हैं ।। ४१ ।।

वहीं दिव्य कान्ति से प्रकाशमान शिवलिंग है। वे पृथिवी पर पंचनादेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं ।। ४२ ।।

उनके दर्शन और पूजन से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। हे द्विज नारद ! वह करने योग्य और न करने योग्य को जान लेता है और अपने जन्मों को पहचान लेता है ।। ४३ ।।

लोकों में वही मनुष्य धन्य हैं, जिन्होंने वह महानदी देख ली है। जिन्होंने उसके उत्तम जल का पान कर लिया है, वे सब कृत-कृत्य हो जाते हैं ।। ४४ ।।

हे मुने ! उसके पश्चिम भाग में जम्बू शैल नाम का उत्तम पर्वत है। वहां उस पर्वत पर स्वर्ण (जम्बूनद) के समान कान्ति वाली पार्वती हैं ।। ४५ ।।

तस्या दर्शनमात्रेण मुक्तो भवति मानवः।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थानामुत्तमोत्तम्।
यत्र देवी विषहरा दर्शनान्मुक्तिदायिनी ॥ ४६ ॥

विषग्रस्तोऽयि यो मर्त्यो निर्विषो यत्र जायते।
नदी तत्र महापुण्या सर्त्रपापौघनाशिनी।
तस्यां हि स्नानमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥ ४७ ॥

कामधारा नदी पुण्या ब्रह्मपुत्रेण संगता।
तत्र कामाख्यतीर्थं हि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४८ ॥

तत्र स्नात्वा मुच्यतै तु सप्तजन्मार्जितैरघैः।
सौन्दर्य्याख्ये पर्वते तु नदी ख्याता हि सुन्दरी ॥ ४९ ॥

संगता यत्र सा मोक्षवत्या नद्या महामुने।
तत्सुन्दरप्रयागं स्यात्सुन्दरः स्यान्नरो मुने ॥ ५० ॥

अन्यजन्मनि तत्स्नानान्नात्र कार्य्या विचारणा।
यत्र स्नात्वाऽन्यत्र भवे षण्डोऽपि पुरुषायते ॥ ५१ ॥

सुन्दरीति प्रविख्याता यत्र देवी प्रतिष्ठिता।
कोटिकोटि सहस्राणि युगानि वसते दिवि ॥ ५२ ॥

विसानेनार्कवर्णेन यस्याः दर्शनमात्रतः।
तस्याः पूर्वोत्तरे भागे हयग्रीवो जनार्दनः।
दर्शनात्पूजनान्तॄणां कैवल्यं प्रददाति यः ॥ ५३ ॥

विष्णुधारापुण्यनद्योः संगो विष्णुप्रयागकः।
तत्र स्नात्वा मुच्यते तु कोटिजन्मोत्थितैरघैः ॥ ५४ ॥

इति ते कथितं[1] दिव्यं नानाक्षेत्रसुवैभवम्[2]।
यच्छ्रुत्वाऽपि नरः पापैर्मुच्यते कोटिजन्मजैः ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे नानातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः।

---

१. कथितो दिव्यो २. वैभवः।

उनके दर्शनमात्र से मनुष्य मुक्त हो जाता है। अब मैं तीर्थों में उत्तमोत्तम अन्य तीर्थ का वर्णन करूँगा, जहां कि दर्शन करने से मुक्ति देने वाली विषहरा देवी हैं ॥ ४६ ॥

विष से ग्रस्त मनुष्य भी यहाँ विष से रहित हो जाता है। वहां सब पापों का विनाश करने वाली महापुण्यशालिनी नदी है। उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४७ ॥

उस नदी का नाम कामधारा है। जहां उसका ब्रह्मपुत्र नद से संगम होता है, वहां सब कामनाओं के फलों को देने वाला कामाख्य तीर्थ है ॥ ४८ ॥

उसमें स्नान करके मनुष्य सात जन्मों में अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है। वहीं सौन्दर्य नाम के पर्वत पर सुन्दरी नाम से प्रसिद्ध नदी है ॥ ४९ ॥

हे मुने ! जहां उसका मोक्षवती नाम की नदी से संगम होता है, वह सुन्दर-प्रयाग है। उसमें स्नान करने से मनुष्य सुन्दर हो जाता है ॥ ५० ॥

वहां स्नान करने से वह अन्य जन्म में सुन्दर होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। इसमें स्नान करने से मनुष्य नपुंसक होते हुये भी अन्य जन्म में पुरुषत्व प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥

वहां सुन्दरी नाम से विख्यात देवी प्रतिष्ठित हैं। उनका दर्शन करने से मनुष्य हजारों-करोड़ों युगों तक स्वर्ग में निवास करता है ॥ ५२ ॥

जिसके दर्शन करने मात्र से वह सूर्य के समान कान्तिमान् विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्ग में जाता है। उसके पूर्वोत्तर भाग में हयग्रीव नाम के विष्णु हैं। वे दर्शन और पूजन करने पर मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करते हैं ॥ ५३ ॥

वहां विष्णुधारा और पुण्या नाम की दो नदियों का संगम है, जो विष्णुप्रयाग कहलाता है। वहां स्नान करने से मनुष्य करोड़ों जन्मों में उत्पन्न पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

इस प्रकार मैंने तुमसे अनेक क्षेत्रों के उत्तम वैभव को कह दिया है। इसको सुनकर भी मनुष्य करोड़ों जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नानातीर्थमाहात्म्य नाम का छियानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

सप्तनवतितमोऽयाय

हिमगिरौ सागरप्रादुर्भावस्तत्कृतशिवस्तुतिश्च

नारद उवाच—

कथमत्र समुद्रोऽभूद् दुर्ग्गमे हिमपर्वते ।
तत्कारणं वद स्वामिन्येन मे प्रत्ययो भवेत् ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच—

शृणु विप्र यथा ह्यत्र समुद्रस्तस्थिवान्महान् ।
तद्वक्ष्यामि महाभाग सावधानमना भव ॥ २ ॥

पुरागतस्येन संपीतो मूर्त्तिमान्सरितां पतिः ।
तद्भयेन च संत्रस्त आययौ हिमवद्गिरौ ॥ ३ ॥

चकार तत्र सुमहत्तपस्तीव्रं महामते ।
आराधयामास शिवं सलोकं करुणानिधिम् ॥ ४ ॥

लक्षवर्षसहस्राणि निराहारोऽभवन्मुने ।
तपसा तस्य महता संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥ ५ ॥

दत्तवान्ददर्शनं तस्मै योगिनामपि दुर्ल्लभम् ।
दृष्ट्वा सदाशिवं सिंधुस्तुष्टाव जगतां पतिम् ॥ ६ ॥

समुद्र उवाच—

नमस्ते शिपिविष्टाय मीढष्टमाय ते नमः ।
शंभवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते शंकराय च ॥ ७ ॥

सत्तानवेवां अध्याय

हिमालय पर्वत पर समुद्र का प्रादुर्भाव और उसके द्वारा की गई शिव की स्तुति

नारद ने कहा—

हे स्वामिन् ! इस दुर्गम हिमालय पर्वत पर समुद्र कैसे हो गया। मुझको इसका कारण बताइये, जिससे कि मुझको उसका ज्ञान हो जावे ।। १ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे महाभाग विप्र नारद ! जिस प्रकार कि यहां महान् समुद्र स्थित हुआ था, मैं उस वृत्तान्त को कहता हूँ। सावधान मन होकर सुनो ।। २ ।।

पूर्वकाल में मूर्तिमान् नदियों के स्वामी समुद्र को अगस्त्य ने पी लिया था। उसके भय से डरता हुआ वह समुद्र हिमालय पर्वत पर आया ।। ३ ।।

हे महामते ! वहाँ उसने तीव्र महान् तप किया। उसने लोकों पर करुणा करने वाले शिव की आराधना की ।। ४ ।।

हे मुने ! वह एक लाख वर्ष तक निराहार रहा। उसके महान् तप से सदाशिव प्रसन्न हो गये ।। ५ ।।

शिव ने उसको योगियों के लिये भी दुर्लभ दर्शन दिये। सदाशिव को देखकर समुद्र ने लोकों के स्वामी उनकी स्तुति की ।। ६ ।।

समुद्र ने कहा—

शिपिविष्ट (वृषभ पर आरूढ़) शिव के लिये नमस्कार है। महापराक्रमी वीर्यशाली आप शिव के लिये नमस्कार है। शम्भव शिव के लिये नमस्कार है। आप शंकर शिव के लिये नमस्कार है ।। ७ ।।

हिरण्यबाहवे तुभ्यं दिशां च पतये नमः।
नमस्ते हरिकेशाय नमो व्यालोपवीतिने ॥ ८ ॥

नमः पर्य्याय वर्य्याय प्रतरणाय ते नमः।
दुन्दुभ्याय नमस्तेऽस्तु हनन्याय च ते नमः ॥ ९ ॥

नमः पशुपते तुभ्यं नमस्तेऽनेकचक्षुषे।
व्याघ्रचर्मपरीधान नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ १० ॥

नमस्ते वेदनिधये नमः पिनाकपाणये।
नमश्चन्द्रार्द्धभूषाय नमो डमरुधारिणे ॥ ११ ॥

नमस्ते नीलकण्ठाय करालविषगालिने।
नमो वृषभवाहाय महापीठनिवासिने ॥ १२ ॥

नमस्ते मन्यवे रुद्र नमस्ते इषवे नमः।
बाहुभ्यां तु नमस्तेऽस्तु तव पद्भ्यां नमोनमः ॥ १३ ॥

नमस्ते वीतरागाय भस्मरागाय ते नमः।
नमः कांतशरीराय नमः कामहराय ते ॥ १४ ॥

स्कन्द उवाच—

इति स्तुतो महादेवः समुद्रं प्रत्युवाच ह।
वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ १५ ॥

इति श्रुत्वा समुद्रस्तु चकमे वरमुत्तमम्।
यदि देव प्रसन्नोऽसि सामीप्यं देहि मे प्रभो ॥ १६ ॥

यत्र स्थित्वा यदा भद्रं त्वत्पादस्थरणं चरे।
श्रुत्वा शिवस्तु तद्वाक्यं प्रोवाच वचनं शुभम् ॥ १७ ॥

साकल्येनात्र संतिष्ठ मत्पादशरणं कुरु।
मा भैषीस्त्वमगस्त्याद्वै स्थितिं कुरु हिमालये ॥ १८ ॥

स्वर्णिम भुजाओं (हिरण्यबाहु) वाले तुम्हारे लिये नमस्कार है। दिशाओं के स्वामी तुम्हारे लिये नमस्कार है। हरिकेश (सुनहरी जटाओं वाले) तुम्हारे लिये नमस्कार है। सर्पों का यज्ञोपवीत धारण करने वाले (व्यालोपवीति) तुम्हारे लिये नमस्कार है॥ ८॥

पर्य (सबको परिव्याप्त करने वाले), वर्य (सबसे श्रेष्ठ) और प्रतरण (सबको भवसागर से पार कराने वाले) आपको नमस्कार है। दुन्दुभ्य (दुन्दुभियां बजा कर स्तुति करने योग्य) और हनन्य (सबका संहार करने वाले) आपको नमस्कार है॥ ९॥

पशुपतिरूप आपको नमस्कार है। अनेक चक्षुओं वाले आपको नमस्कार है। व्याघ्र चर्म का परिधान धारण करने वाले आपको नमस्कार है। गजचर्म पहनने वाले आपको नमस्कार है॥ १०॥

वेदों की निधि आपको नमस्कार है। हाथों में पिनाक (धनुष) धारण करने वाले आपको नमस्कार है। अर्धचन्द्र आभूषण को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। डमरु को धारण करने वाले आपको नमस्कार है॥ ११॥

भयानक विष को निगलने वाले तथा नीलकण्ठ आपको नमस्कार है। वृषभ-वाहन और महापीठ पर निवास करने वाले आपको नमस्कार है॥ १२॥

मन्यु और रुद्ररूप आपको नमस्कार है। इषुरूप आपको नमस्कार है। आपको भुजाओं से नमस्कार है। आपको पैरों से नमस्कार है॥ १३॥

वीतराग आपको नमस्कार है। भस्म का लेप करने वाले आपको नमस्कार है। सुन्दर शरीर वाले आपको नमस्कार है। कामदेव का विनाश करने वाले आपको नमस्कार है॥ १४॥

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार स्तुति किये गये महादेव ने कहा—जो तुम्हारे मन में है, ऐसे कल्याणकारी वर को मांग लो॥ १५॥

यह सुनकर समुद्र ने उत्तम वर की याचना की—हे देव, प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो अपना सामीप्य दीजिये॥ १६॥

जहां पर स्थित रहकर मैं तुम्हारे कल्याणकारी चरणों का स्मरण कर सकूँ। यह वाक्य सुनकर शिव ने शुभ वचन कहा॥ १७॥

सम्पूर्ण रूप से तुम यहां स्थित रहो और मेरे चरणों की शरण में आ जाओ। अगस्त्य से मत डरो। हिमालय पर स्थित रहो॥ १८॥

स्तोत्रेणानेन यो मां हि स्तोष्यते धरणीतले ।
सोऽपि त्वयि स्नानफलं प्राप्य स्वर्गे महीयते ॥ १९ ॥

स्कन्द उवाच—

इति दत्त्वा वरं तस्मै गतोऽन्तर्द्धानमीश्वरः ।
तत आरभ्य सिंधुस्तु मूर्त्तिमानिह वर्त्तते ॥ २० ॥

यः स्नाति तत्र मनुजः समुद्रस्नानजं फलम् ।
प्राप्नोत्येव महाभाग कोटि कोटि गुणं मुने ॥ २१ ॥

इति ते कथितं सिंधो समुत्पत्तिश्च वैभवः ।
यच्छ्रुत्वाऽपि नरो याति शैवं पदमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे समुद्रतीर्थाऽभिधानं नाम
सप्तनवतितमोऽध्यायः ।

अष्टनवतितमोऽध्यायः

तामसासरिदुत्पत्तिस्तत्तटवर्तिरुद्रतीर्थविष्णुतीर्थादिनिरूपणञ्च

नारद उवाच—

या तामसा त्वया प्रोक्ता नदी परमपावनी ।
कथं तस्याः समुत्पत्तिः कथं नाम बभूव ह ॥ १ ॥

तस्यां स्नातुश्च किं पुण्यं कानि तीर्थानि तत्र हि ।
वद सर्वं समासेन लोकानुग्रहकाम्यया ॥ २ ॥

स्कन्द उवाच—

पुरा संसृजतः सर्वं ब्रह्मणस्तामसाधिकम् ।
कमण्डलोस्तु संजाता तामसाख्या महानदी ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा तां प्राह भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
यस्मात्त्वं तामसांशाऽसि समुत्पन्नाऽसि सुव्रते ।
तस्मात्त्वं लोकविख्याता तामसेति भविष्यसि ॥ ४ ॥

जो मनुष्य पृथिवी तल पर इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा, वह भी तुममें स्नान के फल को प्राप्त करके स्वर्ग में महिमा को पायेगा ।। १६ ।।

स्कन्द ने कहा—

इस वर को समुद्र के लिये देकर ईश्वर (शिव) अन्तर्धान हो गये। तबसे मूर्तिमान् समुद्र यहां विद्यमान है ।। २० ।।

हे मुने महाभाग ! जो मनुष्य यहां स्नान करता है, वह समुद्र में स्नान करने के कोटि-कोटि गुना फल प्राप्त करता है ।। २१ ।।

इस प्रकार से मैंने समुद्र की उत्पत्ति और वैभव का वृत्तान्त कह दिया है। इसको सुनकर भी मनुष्य उत्तम शिवलोक को प्राप्त करता है ।। २२ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में समुद्रतीर्थाभिधान
नाम का सत्तानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

अट्ठानवेवां अध्याय

तामसा नदी की उत्पत्ति, उसके तट पर उपस्थित रुद्रतीर्थ, विश्वतीर्थ आदि का निरूपण

नारद ने कहा—

तुमने जिस परमपावनी तामसा नाम की नदी के लिये कहा है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी ? ।। १ ।।

उसमें स्नान करने वाले को कौन सा पुण्य मिलता है और वहां कौन-कौन तीर्थ हैं ? संसार पर कृपा करने की कामना से यह सारा वृत्तान्त आप संक्षेप से कहें ।। २ ।।

स्कन्द ने कहा—

पूर्वकाल में जब ब्रह्मा तमोगुण प्रचुर सृष्टि की रचना कर रहे थे, तो उनके कमण्डलु से तामसा नाम की नदी उत्पन्न हुई ।। ३ ।।

उसको देखकर लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा ने कहा—हे सुव्रते ! क्योंकि तुम तामस अंश से उत्पन्न हुई हो, अतः तुम लोक में तामसा नाम से प्रसिद्ध होओगी ।। ४ ।।

घोरे कलियुगे प्राप्ते भविष्यसि विमुक्तिदा ।
त्वयि स्नास्यन्ति ये मर्त्यास्ते यास्यन्ति परां गतिम् ।। ५ ।।

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वा तु ययौ ब्रह्मा ह्यन्तर्द्धानं मुनीश्वर ।
ततः प्रभृति ख्यातेऽयं तामसा लोकपाविनी ।। ६ ।।

पिंडदानं तु यः कुर्य्यादस्याः कूले सुनिर्मले ।
कुलकोटिशतं मर्त्यो नयते ब्रह्म शाश्वतम् ।। ७ ।।

तृप्ताः स्युः पितरस्तस्य यस्तु संतर्पयेत्पितॄन् ।
तमसायां हि संगच्छेद्यत्र ख्याता मितस्रवा ।। ८ ।।

रुद्रतीर्थं तु तत्रैव स्नातुस्तत्र फलं श्रृणु ।
कोटिसूर्य्याभवर्णेन विमानेन मुनीश्वर ।
प्रगच्छेद्रुद्रलोके च अनेकैर्गोत्रिभिः सह ।। ९ ।।

तत्र स्थित्वा कोटिकल्पं ततो भूमण्डले विशेत् ।
सप्तद्वीपवतीपृथ्व्याः पाता स्वामी भवेदिह ।। १० ।।

भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु रुद्रलोके भविष्यति ।
तदधो विष्णतीर्थं तु विष्णुलोकप्रदायकम् ।। ११ ।।

तत्रास्ते वैष्णवी मूर्त्तिः शंखचक्राब्जलक्षणा ।
दृश्यते पुण्यकृद्भिस्तु यदि भाग्येन दृश्यते ।। १२ ।।

तदैव मुक्तो भवति नात्र कार्य्या विचारणा ।
तदधो ब्रह्मतीर्थं तु ब्रह्मलोकप्रदायकम् ।। १३ ।।

यत्र स्नात्वा नरो भक्त्या नित्यं ब्रह्मपुरे वसेत् ।
ततः क्रोशार्द्धके तीर्थं शाक्रं नाम्ना हि तिष्ठति ।
तत्र स्नात्वा नरो याति शक्रलोकं सनातनम् ।। ६४ ।।

इति ते कथितो विप्र तमसायाः सुवैभवम् ।
यं श्रुत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। १५ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे तामसोत्पत्तिमाहात्म्यकथनं
नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।

घोर कलियुग के आने पर तुम मुक्ति देने वाली होगी। जो मनुष्य तुममें स्नान करेंगे, वे परम गति को प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे मुनीश्वर ! यह कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये। तब से यह लोकपावनी नदी तामसा नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ ६ ॥

जो मनुष्य इसके अति निर्मल तट पर पिण्डदान करेगा, वह सौ करोड़ कुल को शाश्वत ब्रह्मलोक में ले जायेगा ॥ ७ ॥

जो यहां पितरों का तर्पण करेगा, उसके पितर तृप्त हो जायेंगे। तामसा नदी में जहां मितस्रवा नदी का संगम होता है··· ॥ ८ ॥

वहां रुद्रतीर्थ है। वहां स्नान करने के फल को सुनो। हे मुनीश्वर ! वह (यहां स्नान करने वाला) करोड़ों सूर्यों के समान कान्तिमान् विमान पर आरूढ़ होकर अनेक सम्बन्धियों के साथ रुद्रलोक में जाता है ॥ ९ ॥

वहां करोड़ कल्प तक स्थित रहकर तदनन्तर भूमण्डल में प्रवेश करता है। वह इस लोक में सात द्वीपों वाली पृथिवी का रक्षक और स्वामी होता है ॥ १० ॥

वह सम्पूर्ण भोगों का भोग करके रुद्रलोक में जाता है। उसके नीचे के भाग में विष्णुलोक को प्रदान करने वाला विष्णुतीर्थ है ॥ ११ ॥

वहाँ पर शंख-चक्र-कमल से चिह्नित विष्णु-मूर्ति है। यदि भाग्य हो तो वह मूर्ति पुण्य कर्म करने वालों को दृष्टिगोचर होती हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य वहाँ जाने से तभी मुक्त हो जाता है, इसमें विचार नहीं करना चाहिए। उसके नीचे ब्रह्मलोक को प्रदान करने वाला ब्रह्मतीर्थ है ॥ १३ ॥

यहां भक्ति-भाव से स्नान करके मनुष्य नित्य ब्रह्मलोक में निवास करता है। उससे आधे कोस दूर शाक्र नाम का तीर्थ है उसमें स्नान करके मनुष्य सनातन शक्र-लोक में जाता है ॥ १४ ॥

हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तामसा नदी के उत्तम वैभव का वृत्तान्त कह दिया है। इसको सुनकर और पढ़कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में तामसोत्पत्ति माहात्म्य कथन नाम का अट्ठानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

नवनवतितमोऽध्यायः

बालखिल्याख्यतीर्थे तन्नामकशिवलिङ्गनिरूपणम्

स्कन्द उवाच—

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थराजमनुत्तमम् ।
अस्ति क्षेत्रतमं लोके वारणवतसंज्ञकात् ॥ १ ॥

पूर्वयाम्याश्रिते भागे योजनत्रयसम्मिते ।
पर्वतो बालखिल्याख्यो वर्त्तते मुनिपुंगव ॥ २ ॥

यत्र वै बालखिल्यास्ते तपस्तेपुः सुदुष्करम् ।
शिवमाराधायामासुः संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥ ३ ॥

विविधांश्च वरांस्तेभ्यो दत्त्वा प्रोवाच वै वचः ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच—

अद्यप्रभृति युष्माकं नाम्ना ख्यातो महागिरिः ।
भविष्यति न संदेहो महापापौघनाशनः ॥ ५ ॥

समारोहति यः शैलं बालखिल्याभिधं त्विमम् ।
शतजन्मार्ज्जितैः पापैर्मुच्यते तत्क्षणान्नरः ॥ ६ ॥

अस्मिञ्छैले महाभागो[1] यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।
मल्लोके गमनं तस्य विमानेनार्कवर्चसा ॥ ७ ॥

कल्पकोटिसहस्राणि स्थित्वा वर्षाणि मानवः ।
पश्चाद् भूमण्डलं प्राप्तो द्विजो भवति धर्म्मवित् ॥ ८ ॥

वेदवेदांगविज्ज्ञानी वरिष्ठो विदुषां क्षमी ।
अन्ते लीनो भवेद्देहे मदीये सुरपूजिते ॥ ९ ॥

---

१. महाभागाः ।

अध्याय ६६

बालखिल्य नामक तीर्थ में उनके नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग का निरूपण

स्कन्द ने कहा—

मैं दूसरे भी उत्तम तीर्थराज का वर्णन करूँगा। वारणावत नाम के पर्वत से कुछ दूर लोक में यह उत्तम क्षेत्र है ॥ १ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस पर्वत से पूर्व-दक्षिण दिशा में तीन योजन दूर बालखिल्य नाम का पर्वत है ॥ २ ॥

यहां बालखिल्य नाम के मुनियों ने सुदुष्कर तप किया था। उन्होंने शिव की आराधना की और इससे सदा-शिव प्रसन्न हो गये ॥ ३ ॥

उनको विविध वर देकर शिव ने निश्चय से यह वचन कहा ॥ ४ ॥

ईश्वर ने कहा—

आज से इस महापर्वत का नाम तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। निस्सन्देह यह महान् पापों का विनाश करने वाला होगा ॥ ५ ॥

जो मनुष्य बालखिल्य नाम के पर्वत पर आरोहण करेगा। वह तत्क्षण सौ जन्मों में उपार्जित पापों से मुक्त हो जायेगा ॥ ६ ॥

जो महाभाग इस पर्वत पर प्राणों का परित्याग करेगा, वह सूर्य के समान कान्तिमान् विमान पर आरूढ़ होकर मेरे लोक में जायेगा ॥ ७ ॥

हजार-करोड़ कल्प वर्षों तक वह मनुष्य वहां निवास करके पीछे पृथिवी मण्डल पर आकर धर्म को जानने वाला ब्राह्मण होगा ॥ ८ ॥

वह वेद-वेदांगों को जानने वाला, ज्ञानी, वरिष्ठ और विद्वानों में समर्थ होगा। मृत्यु होने पर वह देवताओं से पूजित मेरे शरीर में विलीन हो जायेगा ॥ ९ ॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो मुनीनां पश्यतामपि।
तत आरभ्य तस्यासीद् बालखिल्याभिधा गिरेः॥ १० ॥

तस्योपकंठे चैवास्ति बालखिल्याभिधो नदः।
तत्र स्नात्वा भक्तिपरो ज्ञानकंचुकसंवृतः।
पापकंचुकनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ ११ ॥

कुक्कुटांडप्रमाणं वै दद्यात्पिण्डमपि द्विज।
तारयेत्स स्ववंश्यान्वै दशपूर्वान्दशापरान्॥ १२ ॥

यो रौद्रसामभिस्स्तौति तत्कूले श्रीशिवं मुने।
स याति परमं धाम यस्मान्नैव निवर्त्तते॥ १३ ॥

महारुद्राऽभिधानेनाऽभिषेकं कुरुते नरः।
क्षयरोगादिकेभ्यश्च स मुक्तो भवति ध्रुवम्॥ १४ ॥

तत्कूले शिवलिंगं च बालखिल्येश्वराभिधम्।
यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते भवभीतितः॥ १५ ॥

यः पूजयति तल्लिगं दुग्धेन मधुना तथा।
दध्ना च सर्पिषा चैव उपचारैरनेकधा॥ १६ ॥

स भवेत्सार्वभौमो वै पुत्रपौत्रादिसंवृतः।
गजवाजिगणैर्युक्तो धर्म्मशास्त्रार्थवित्क्षमी॥ १७ ॥

भुक्त्वा भोगांस्तु सकलाञ्छिवलोके महीयते।
कामानुद्दिश्य कुरुते पूजनं श्रीशिवस्य हि।
ईप्सितं तत्समाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा॥ १८ ॥

महापापोपपापैश्च [1]गोभ्रूहत्यादिभिस्तथा।
तल्लिगस्पर्शनादेव मुच्यते तत्क्षणादिह॥ १९ ॥

इति ते कथितं बालखिल्यतीर्थस्य वैभवम्।
यं श्रुत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे बालखिल्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नाम नवनवतितमोऽध्यायः।

---

१ गोभ्रूणादिविघातजैः।

स्कन्द ने कहा—

यह कहकर भगवान् शिव मुनियों के देखते-देखते ही अन्तर्धान हो गये। तब से उस पर्वत का नाम बालखिल्य हो गया ॥ १० ॥

उसकी ही तलहटी में बालखिल्य नाम का नद है। भक्ति-भाव से उसमें स्नान करने से मनुष्य ज्ञान रूपी कंचुक से आवृत हो जाता है, पाप के कंचुक से मुक्त हो जाता है और शिवलोक में जाकर महिमा को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

हे द्विज नारद ! जो यहां अण्डे के बराबर भी पिण्ड का दान करता है, यह अपने दस पहले के और दस बाद के वंशजों को भवसागर से तरा देता है ॥ १२ ॥

जो मनुष्य उस बालखिल्य के तट पर रौद्र साम मन्त्रों से श्रीशिव की स्तुति करता है, वह परमधाम को जाता है, जहाँ से लौटना नहीं होता ॥ १३ ॥

जो मनुष्य महारुद्र अभिधान से उस शिवलिंग का अभिषेक करता है वह निश्चय से क्षय रोग आदि से मुक्त हो जाता है ॥ १४ ॥

उस बालखिल्य नद के तट पर बाल्यखिल्येश्वर नाम का शिवलिंग है। इसके दर्शन करने मात्र से मनुष्य भव-बन्धन के भयों से मुक्त हो जाता है ॥ १५ ॥

जो मनुष्य उस लिंग का दूध, मधु, दही, घृत और अन्य विविध उपचारों से पूजन करता है ॥ १६ ॥

वह पुत्र-पौत्र आदि से परिवारित होता है, उसको हाथी-घोड़े प्राप्त होते हैं, वह सार्वभौम राजा होता है, धर्मशास्त्रों का विद्वान् और क्षमाशील होता है ॥ १७ ॥

वह सकल भोगों का भोग करके शिवलोक में महिमा को प्राप्त करता है। जो किन्हीं कामनाओं को लक्ष्य करके श्रीशिव का पूजन करता है, वह उन ईप्सितों को पाता है, इसमें विचार नहीं करना चाहिए ॥ १८ ॥

उस लिंग का स्पर्श मात्र करने से ही मनुष्य तत्क्षण गोहत्या, भ्रूणहत्या आदि महापापों और लघुपापों से मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥

इस प्रकार मैंने बालखिल्य तीर्थ के वैभव का कथन कर दिया है, जिसको सुनकर और पढ़कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में बालखिल्य तीर्थ-माहात्म्य वर्णन नाम का ९९वां अध्याय पूरा हुआ ॥

शततमोऽध्यायः

सोमेश्वर-धर्मकूट-धर्मेश्वरी-सिद्धकूट-अप्सरोगिरि-यक्षकूट-शैलेश्वराद्यनेकशिवलिङ्गवर्णनम्

स्कन्द उवाच—

श्रृणु विप्र परं क्षेत्रं तत ईशानकोणके।
सोमेश्वरो महादेवो भक्तसंतारणः शुभः ॥ १ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण शिवः प्रीतो भवेन्नरि।
इदं पीठं परं गुह्यं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
यत्र देवः स्वयं साक्षाद्वर्ततेऽखिलरूपधृक् ॥ २ ॥

भिल्लैश्च संगतो नित्यं येन जानन्ति तं शिवम्।
स्वल्पकार्यपराः शक्त्या न सिद्धिं प्राप्नुयुः क्वचित् ॥ ३ ॥

मुनयः सिद्धकास्तत्र प्रच्छन्ना विचरन्ति हि।
पंचाद्रिमध्यगामिन्यो नद्यः परमपावनाः ॥ ४ ॥

गंगाधरांबुजनिताः पुण्यगोचरकूलिकाः।
नानाविधानि लिंगानि श्रीशिवस्य परात्मनः।
असंख्यातानि विप्रेश वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥ ५ ॥

तत्र सोमेश्वरं लिंगं महादेवस्य भूतिदम्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा चार्चयित्वा न पुनः स्तनपो भवेत् ॥ ६ ॥

तत्रैवास्ति सरिद्दिव्या वनपंक्तिसुशोभिता।
नाम्ना धर्मनदी ख्याता धर्मराजेन निर्मिता ॥ ७ ॥

यस्यां वै स्नानमात्रेण यमलोकं न गच्छति।
इयं नदी तीर्थमयी पुण्यकर्मसुगोचरा ॥ ८ ॥

अध्याय १००

सोमेश्वर-धर्मकूट-धर्मेश्वरी-सिद्धकूट-अप्सरोगिरि-यक्षकूट और शैलेश्वर आदि अनेकों शिवलिङ्गों का वर्णन

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र नारद ! सुनो । उस बालखिल्येश्वर तीर्थ से ईशान कोण में सोमेश्वर महादेव का परम शुभ क्षेत्र है । यह भक्तों को भवसागर से पार करता है ॥ १ ॥

इसका दर्शन करने मात्र से मनुष्य पर शिव प्रसन्न होते हैं । यह परम गुह्य पीठ है और तत्काल ज्ञान देने वाला है । यहां साक्षात् महादेव सम्पूर्ण रूपों को धारण करके विद्यमान रहते हैं ॥ २ ॥

वे महादेव भीलों से संगत हैं । स्वल्प कार्य करने वाले, जो मनुष्य उस शिव को नहीं जानते, वे कहीं भी अपने सामर्थ्य से सिद्धि को नहीं पा सकते ॥ ३ ॥

वहां मुनि और सिद्धजन प्रच्छन्न रूपों में विचरण करते हैं । वहां पांच पर्वतों के मध्य में परम पवित्र नदियाँ बहती हैं ॥ ४ ॥

वे गंगा-जल को लेकर उत्पन्न हुई हैं और उनके तट पुण्यों से दृष्टिगोचर होते हैं । वहाँ परमात्मा शिव के अनेक प्रकार के लिंग हैं । हे विप्रराज ! उन असख्य शिवलिगों का कौन वर्णन कर सकता है ॥ ५ ॥

वहाँ महादेव का सोमेश्वर नाम का लिंग है, जो ऐश्वर्य को देने वाला है । इसका दर्शन, स्पर्श और अर्चना करके पुनः जन्म नहीं होता ॥ ६ ॥

वहाँ पर वन-पंक्तियों से सुशोभित दिव्य नदी है । यह धर्मनदी नाम से प्रसिद्ध है और इसका निर्माण धर्मराज ने किया था ॥ ७ ॥

इसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य यमलोक को नहीं जाता । यह नदी तीर्थमयी है और पुण्य-कर्मों से दृष्टिगोचर होती है ॥ ८ ॥

तत्र नानाप्रकाराणि देवतायतनानि च।
ततो वै पूर्वभागे तु धर्मकूटो गिरिर्महान् ॥ ९ ॥

धर्मराजः पुरा तत्र तपस्तेपे महत्तरम्।
ततोऽयं धर्मकूटेति गिरिः ख्यातो महात्मभिः ॥ १० ॥

धर्मकूटे गिरौ तत्र नाम्ना धर्मेश्वरी शुभा।
भवपत्नी भवच्छेदाऽमुत्र दुःखविनाशिनी ॥ ११ ॥

ततो वै दक्षिणे भागे सिद्धकूटो महागिरिः।
तत्र सिद्धास्तु विप्रर्षे निवसन्ति सुपुण्यदे ॥ १२ ॥

तत्र उत्तरदिग्भागे ह्यप्सरोगिरिरुत्तमः।
तत्रास्त्यप्सरसां वासः पुण्यकर्मसुगोचरः ॥ १६ ॥

तत ईशानदिग्भागे यक्षकूटो महागिरिः।
तत्र यक्षाः सगन्धर्वा निवसन्ति महामुने ॥ १४ ॥

[1]सिद्धिपुण्योदयेनैव लभ्यते हि न चान्यथा।
तत्र गत्वा महाकूटे न क्षुधा न च वै तृषा।
न बाधते नरं विप्र यतोऽसौ स्वर्गभूमिका ॥ १५ ॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे नाम्ना शैलेश्वरः शिवः।
तस्य दर्शनमात्रेण नरः शिवपुरं व्रजेत् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सोमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः।

एकाधिकशततमोऽध्यायः

हिमाद्रिमहिमावर्णनम्

सूत उवाच—

ततः पूर्वं महाभागाः स्कन्दो वै पार्वतीसुतः।
सर्वं कैलासमाहात्म्यं कथयमास सुव्रताः ॥ १ ॥

---

१. तद्धि।

वहां नाना प्रकार के देवमन्दिर हैं। उसके पूर्वभाग में महान् धर्मकूट नाम का पर्वत है ॥ ९ ॥

पूर्व समय में वहां धर्मराज ने महान् तप किया था। इसलिये महात्माओं ने उसको धर्मकूट पर्वत नाम से प्रसिद्ध किया ॥ १० ॥

वहां धर्मकूट पर्वत पर धर्मेश्वरी नाम की शुभ देवी हैं। वे शिव की पत्नी हैं, भव का छेदन करती हैं और इस लोक एवं परलोक में दुःखों का विनाश करती हैं ॥ ११ ॥

हे विप्रर्षे नारद ! उसके दक्षिण भाग में सिद्धकूट नाम का महान् पर्वत है। उस उत्तम पुण्य देने वाले पर्वत पर सिद्ध निवास करते हैं ॥ १२ ॥

उससे उत्तर दिशा में अप्सरोगिरि नाम का पर्वत है। वहाँ अप्सरायें निवास करती हैं। यह पर्वत पुण्य कर्मों से दिखाई देता है ॥ १३ ॥

हे महामुने ! उससे ईशान दिशा में यक्षकूट नाम का महान् पर्वत है। वहां यक्ष और गन्धर्व निवास करते हैं ॥ १४ ॥

वह पर्वत सिद्धियों ओर पुण्यों का उदय होने पर ही प्राप्त होता है अन्यथा नहीं।उस महापर्वत के शिखर पर जाकर न तो भूख पीड़ित करती है और नाहीं प्यास पीड़ित करती है। हे विप्र ! क्योंकि वह स्वर्ग की भूमि है ॥ १५ ॥

उसके दक्षिण भाग में शैलेश्वर नाम के शिव हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य शिवलोक में जाता है ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में सोमेश्वर-माहात्म्य वर्णन नाम का सौवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

अध्याय १०१

हिमालय की महिमा का वर्णन।

सूत ने कहा—

उत्तम व्रत धारण करने वाले हे श्रेष्ठ महाभागो ! उसके बाद पार्वती के पुत्र स्कन्द ने सम्पूर्ण कैलास के माहात्म्य को वहां कह दिया ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु वरतीर्थानां माहात्म्यं ब्रह्मपुत्रकः।
पप्रच्छ च ततः स्कन्दं गंगाद्वारस्य वैभवम् ॥ २ ॥

तत्रान्यानां च तीर्थानां पीठानां च तपोऽन्विताः।
सोऽपि स्कन्दो महादेवपुत्रो प्रोवाच सर्वशः ॥ ३ ॥

गंगाद्वारादितीर्थानां तथा च सरितां शुभम्।
माहात्म्यं कथयामास ब्रह्मपुत्राय धीमते ॥ ४ ॥

नारदाय च सर्वासां विद्यानां पारगोऽग्निजः।
येषां च श्रवणात्सद्यो मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः —

सूत सूत महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
त्वन्नो दाता महाभाग ज्ञानरत्नस्य सर्वदा ॥ ६ ॥

बहूनि मे पुराणानि श्रुतानि च मुखात्तव।
गङ्गाया विभवश्चापि राज्ञां चैव प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥

सर्वेषां क्षेत्रवर्याणां माहात्म्यानि महान्ति च।
अवशिष्टानि तीर्थानि मायाक्षेत्रादितः पुनः ॥ ८ ॥

श्रोतुमिच्छामहे त्वत्त आकेदारमतः परम्।
न हि वेत्ता त्रिलोके हि त्वत्समो लोमहर्षण ॥ ९ ॥

सूत उवाच—

साधु साधु महाभागाः पृष्टं यन्मुनिभिः परम्।
तद्वै सम्प्रति वक्ष्यामि नमस्कृत्य गजाननम् ॥ १० ॥

श्रुत्वा वै मानसे खण्डे तीर्थानि सुबहून्यपि।
देवागाराणि बहुशः कथाश्च मुनिसत्तमाः ॥ ११ ॥

पुनः पप्रच्छ वैधात्रो गुहं सर्वेश्वरात्मजम्।
विनयावनतो भूत्वा चरणावभिवाद्य च ॥ १२ ॥

नारद उवाच—

देव षण्मुख देवेश पार्वतीसुत नायक।
मानसादिषु क्षेत्रेषु तीर्थानि प्रवराणि मे।
कथितानि महासेन भवमुक्तिप्रदानि हि ॥ १३ ॥

तदनन्तर ब्रह्मा के पुत्र नारद ने श्रेष्ठ तीर्थों के उस माहात्म्य को सुनकर स्कन्द से गंगाद्वार (हरिद्वार) के माहात्म्य को पूछा ॥ २ ॥

महादेव के पुत्र स्कन्द ने भी, हे तपस्वियो ! वहां के तथा अन्य सारे तीर्थों और पीठों के माहात्म्य को कहा ॥ ३ ॥

उसने बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र नारद से गंगाद्वार आदि तीर्थों के और नदियों के शुभ माहात्म्य को कहा ॥ ४ ॥

सभी विद्याओं में पारङ्गत अग्निपुत्र स्कन्द ने नारद से उस माहात्म्य को कहा, जिसके सुनने से मनुष्य तत्काल सब पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

ऋषियों ने कहा—

सब शास्त्रों में विशारद महाज्ञानी, महाभाग, हे सूत ! तुम सदा हमें ज्ञान रूपी रत्न के देने वाले हो ॥ ६ ॥

हमने तुम्हारे मुख से बहुत से पुराण सुने हैं । गंगा के और राजाओं के विभव को भी तुमने कहा है ॥ ७ ॥

पुनः इधर मायाक्षेत्र तथा उससे आगे के सब उत्तम क्षेत्रों के महान् माहात्म्य और तीर्थों का वर्णन अवशिष्ट रह गया है ॥ ८ ॥

हे लोमहर्षण सूत ! यहां से लेकर केदार पर्यन्त सब तीर्थों का वृत्तान्त तुमसे सुनना चाहते हैं । तुम्हारे समान इनका जानने वाला तीनों लोकों में नहीं है ॥ ९ ॥

सूत ने कहा—

हे महाभागो ! साधु, साधु ! जो तुम मुनियों ने यह उत्तम बात पूछी है । मैं गणेश जी को नमस्कार करके यह वृत्तान्त कहूँगा ॥ १० ॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! मानसखण्ड के बहुत से तीर्थों, मन्दिरों और बहुत सी कथाओं को सुनकर··· ॥ ११ ॥

विधाता के पुत्र नारद ने विनय से अवनत होकर और चरणों में अभिवादन करके सर्वेश्वर शिव के पुत्र गुह से पुनः पूछा ॥ १२ ॥

नारद ने कहा—

हे छः मुख वाले देव, पार्वती पुत्र, महासेन, देवताओं के स्वामी, सेनापते ! तुमने भव-बन्धन से मुक्ति दिलाने वाले मानस आदि क्षेत्रों के उत्तम तीर्थ कह दिये हैं ॥ १३ ॥

यद्यप्युक्तानि भवता तीर्थानि विविधान्यपि।
तथापि संशयो मेऽद्य वर्त्तते देववन्दित ॥ १४ ॥

त्वन्मुखादेव देवेश श्रुतं काश्यां हि विस्तरात्।
गंगाया विभवश्चापि स्थितिश्च परमात्मनः ॥ १५ ॥

तेपुर्द्रोणादयो विप्राः क्षत्रियाः पांडवादयः।
संसारे दुःखसंतप्ता विचिन्वंतो महेश्वरम् ॥ १६ ॥

जग्मुः कैलासशिखरे केदारे शुभदायके।
कथं पुण्यमभूत्तप्तुं स्थलं वै परमात्मनः ॥ १७ ॥

काशीं त्यक्त्वा महादेवो दृष्ट्वा पांडवसत्तमान्।
कथं न ज्ञातवांस्तेषां निष्कृतिं शिवनन्दन ॥ १८ ॥

देवेश गोत्र[1]हत्यायास्तन्मे वद महामते।
कथमस्मिन्स्थले रम्ये गत्वा प्रापुः परं पदम्।
इति मे संशयं छिंधि यदि भक्तेषु ते दया ॥ १९ ॥

सूत उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य महात्मनः।
ध्यात्वा क्षणं महादेवं स्मृत्वा तद्वचनं परम् ॥ २० ॥

उवाच प्रहसन्वाक्यं वाक्यज्ञं वाग्विदांवरः।
नमस्कृत्य महैशानं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ २१ ॥

स्कन्द उवाच—

धन्योऽसि त्वं महाभाग धन्यानां प्रवरो मुनिः।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये भक्तो भक्तिमतां वर ॥ २२ ॥

नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि चराचरगुरुं विभुम्।
सर्वस्य जगतो बीजं जन्मादिपरिवर्ज्जितम् ॥ २३ ॥

ब्रह्माण्डकोटयो यस्य रोमांचविवरेषु वै।
महावातप्रेरिता हि विशन्ति प्रविशन्ति च ॥ २४ ॥

---

१. हत्यायां

३

देवों से वन्दित हे स्कन्द ! यद्यपि आपने विविध तीर्थों को कह दिया है, तथापि मुझको आज संशय हो रहा है ।। १४ ।।

हे देवेश ! तुम्हारे ही मुख से मैंने विस्तार से काशी में गंगा के विभव और परमात्मा शिव की स्थिति की बात सुनी थी ।। १५ ।।

संसार में दुःख से सन्तप्त हुए द्रोण आदि ब्राह्मणों ने और पांडव आदि क्षत्रियों ने महेश्वर शिव की खोज करते हुए तप किया था ।। १६ ।।

वे शुभदायक केदारक्षेत्र में कैलास के शिखर पर गये थे। वहां परमात्मा के उस स्थल पर तपस्या करने में पुण्य कैसे हुआ ।। १७ ।।

हे शिव के पुत्र ! काशी को छोड़कर तथा पाण्डवों को देखकर महादेव ने उनके दुःख निवारण के उपाय को कैसे नहीं जाना ।। १८ ।।

हे महामते देवेश स्कन्द ! वे गोत्र हत्या के पाप से कैसे मुक्त हुए और इस रम्य स्थल में पहुँचकर उन्होंने परम पद कैसे पाया ? यदि तुमको भक्तों पर दया हो, तो मेरे इस सन्देह का निवारण करो ।। १९ ।।

सूत ने कहा—

महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर, क्षण भर के लिये महादेव का ध्यान करके और उसके वचन को स्मरण करके··· ।। २० ।।

वाणियों को जानने वालों में श्रेष्ठ स्कन्द ने सब देवताओं से नमस्कृत ईशान (शिव) को नमस्कार करके हँसते हुए यह वाक्य कहा ।। २१ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे महाभाग ! तुम धन्य हो। तुम धन्यों में भी श्रेष्ठ मुनि हो। भक्तिशालियों में श्रेष्ठ नारद ! तुम्हारे समान तीनों लोकों में कोई भक्त नहीं है ।। २२ ।।

चर-अचर के गुरु, सर्वव्यापक सारे जगत् के बीज रूप (आदि कारण), जन्म आदि से रहित विभु शिव को नमस्कार करके कहूँगा ।। २३ ।।

जिस शिव के रोमाञ्च के छिद्रों में महान् पवनों (आंधियों) द्वारा प्रेरित किये गये करोड़ों ब्रह्माण्ड प्रवेश करते हैं और पुनः प्रवेश करते हैं··· ।। २४ ।।

दिक्कालपरिणामानं जगदीशं जगन्मयम् ।
अनादिमध्यनिधनं नमस्कृत्य ब्रवीमि ते ।। २५ ।।

यस्त्वया परिपृष्टोऽहं धर्मार्थसहितं वचः ।
तच्छृणुष्व महाभाग मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ।। २६ ।।

इदं क्षेत्रं तु यत्प्रोक्तं केदाराख्यं सुपुण्यदम् ।
यच्छ्रुत्वाऽपि नरो याति शिवसायुज्यतां मुने ।। २७ ।।

इमं देशं सकृद्दृष्ट्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः शिवसंन्यस्तमानसाः ।। २८ ।।

माहात्म्यं कथयिष्यामि देशस्य प्रवरं मुने ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा गदतो ब्रह्मनन्दन ।। २९ ।।

नन्दापर्वतमारभ्य यावत्काष्ठगिरिर्भवेत् ।
तावत्केदारकं क्षेत्रं शिवमन्दिरमुत्तमम् ।। ३० ।।

रत्नस्तम्भं समारभ्य मायाक्षेत्रावधि स्मृतम् ।
अतिपुण्यतमं स्थानं हिमालयपदान्तिकम् ।। ३१ ।।

अस्मिन् देशे तु ये मर्त्याः वसन्ति दृढ़निश्चयाः ।
तेषां मुक्तिर्महीदेव मन्तव्या हि करे स्थिता ।। ३२ ।।

एते सर्वे महाभागाः देवा वै मुक्तिलालसाः ।
मर्त्त्ये जन्म हि सुप्राप्ताः सर्वे ते मुक्तिहेतवे ।। ३३ ।।

हिमालयभवा नद्यो गङ्गाम्भोभिर्विनिर्मिताः ।
गङ्गाम्बुसम्भवाः यस्माद् गंगातुल्याः न संशयः ।। ३४ ।।

अतस्तत् सलिलं पीत्वा तत्रत्याः मनुजाः खलु ।
कथं न स्युर्महात्मानः शिवा इव महामते ।। ३५ ।।

अतस्तत् सलिलं पातुमागतास्त्रिदिवौकसः ।
गङ्गा च यमुना चैव वर्तेते शुभदायके ।। ३६ ।।

दिशा-काल के सदृश परिणाम वाले, जगत् के स्वामी, जगन्मय, जिनका आदि-मध्य-निधन नहीं होता, ऐसे शिव को नमस्कार करके मैं कहता हूँ ।। २५ ।।

हे महाभाग ! जो तुमने पूछा है, उस धर्म-अर्थ सहित वचन को मन को सुस्थिर करके सुनो ।। २६ ।।

यह जो केदारनाम वाले सुपुण्यद क्षेत्र को कहा है, हे मुने ! इसको सुनकर भी मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है ।। २७ ।।

जहां ब्रह्मा आदि देवताओं ने शिव के प्रति मन को निहित किया था, ऐसे इस देश को एक बार भी देखकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ।। २८ ।।

हे मुने ! मैं इस देश के श्रेष्ठ माहात्म्य को कहूँगा । हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! मैं कहता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो ।। २९ ।।

नन्दा पर्वत से लेकर जहां तक काष्ठ पर्वत है, वहां तक केदारक्षेत्र है और यह शिव का उत्तम मन्दिर है ।। ३० ।।

रत्नस्तम्भ (सुमेरु) से लेकर माया क्षेत्र तक हिमालय की तलहटियों तक अति पुण्यतम स्थान है ।। ३१ ।।

हे पृथिवी के देव नारद ! इस देश में जो दृढ़ निश्चय करके रहते हैं, उनकी मुक्ति उनके हाथ में रहती है, यह मानना चाहिए ।। ३२ ।।

इन सब महाभाग्यशाली देवताओं ने मुक्ति की लालसा करके मुक्ति को प्राप्त करने के लिए मरण हेतु जन्म लिया था ।। ३३ ।।

हिमालय में उत्पन्न सभी नदियाँ गंगा के जल से निकली हैं । क्योंकि उनकी उत्पत्ति गंगा के जल से हुई है, अतः वे गंगा के समान हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।। ३४ ।।

हे महामते ! उन नदियों का जल पीने वाले वहां के निवासी मनुष्य किसलिए महात्मा नहीं होंगे ? वे तो शिव के समान हैं ।। ३५ ।।

इसलिये देवता उनका जल पीने के लिये आ गये हैं । वे गंगा और यमुन शुभदायक हैं ।। ३६ ।।

अतस्तन्माहात्म्यकथने शक्तिः स्यात् कस्य भूसुर ।
सर्वेषां देशवर्याणामयं देशः प्रशस्यते ॥ ३७ ॥

यत्र साक्षान्महादेवो वसते च महामते ।
ममोत्पत्तिश्च भगवन् दस्रयोश्च तथैव च ॥ ३८ ॥

बभूव सर्वदेवानां मुनीनां ब्रह्मनन्दन ।
इदमेव महास्थानं पुरा प्राह सदाशिवः ॥ ३९ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अहोभाग्यमहोभाग्यं गच्छतां [1]वसतां तथा ॥ ४० ॥

मनसा वचसा ये वै गच्छन्ति निवसन्ति च ।
त एव विष्णुलोकेषु भाग्यवन्तो भवन्ति हि ॥ ४१ ॥

ये वै हिमालयं स्वच्छं विनिर्गतमहाजलम् ।
पिवन्त्यमृतवद् विप्र सदा शिवपरायणाः ॥ ४२ ॥

तेषां वैवस्वतो राजा दृष्टिगोचरगो न हि ।
यथा सर्वेषु देवेषु श्रीशिवः परिकीर्तितः ।
तथा सर्वेषु देशेषु हिमवद्देशसंज्ञितः ॥ ४३ ॥

यथा सर्वशिलानां हि शालिग्रामशिला वरा ।
तथा सर्वेषु तीर्थेषु तीर्थराजोऽयमीरितः ॥ ४४ ॥

यथा सर्वेषु वेदेषु सामवेदः प्रकीर्तितः ।
तथायं सर्वदेवेषु देशवर्यो विधीयते ॥ ४५ ॥

यथारण्येषु सर्वेषु नैमिषारण्यसंज्ञितम् ।
तथा सर्वेषु देशेषु हिमवद्देशकः स्मृतः ॥ ४६ ॥

यथा नदीषु सर्वासु जाह्नवी समुदाहृता ।
तथायं सर्वदेशेषु देशराजोऽयमीरितः ॥ ४७ ॥

यथा भक्तेषु सर्वेषु भक्तराजो हि नारदः ।
तथायं सर्वक्षेत्रेषु देशः केदारसंज्ञितः ॥ ४८ ॥

---

१. च सतां ।

अतः, हे ब्राह्मण नारद ! उस केदार प्रदेश का माहात्म्य कहने का सामर्थ्य किसमें है ? यह देश सभी उत्तम देशों में प्रशस्त है ।। ३७ ।।

हे महामते ! जहाँ कि साक्षात् महादेव निवास करते हैं, हे भगवन् वहाँ मेरी और दोनों अश्विनी देवताओं की उत्पत्ति हुई थी ।। ३८ ।।

हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! सब देवताओं और मुनियों की उत्पत्ति भी इसी स्थान पर हुई थी । इसी स्थान को प्राचीन समय में सदाशिव ने उत्तम कहा था ।। ३९ ।।

जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ जाने वालों और बसने वालों का अहोभाग्य है, अहोभाग्य है ।। ४० ।।

जो मनुष्य मन से और वाणी से वहाँ जाते हैं और निवास करते हैं, वे भाग्यवान् निश्चय से विष्णुलोक में जाते हैं ।। ४१ ।।

हे विप्र ! शिव के प्रति परायण होकर जो मनुष्य हिमालय से निकले हुए स्वच्छ, अमृत के समान महान् जल का पान करते हैं··· ।। ४२ ।।

उनको सूर्य के पुत्र राजा यम दृष्टिगोचर नहीं होते (उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती) । जिस प्रकार सब देवताओं में श्रीशिव को श्रेष्ठ कहा गया है, वैसे ही सब देवताओं में हिमालय को कहा गया है ।। ४३ ।।

जैसाकि सब शिलाओं में शालिग्राम शिला श्रेष्ठ है, वैसे ही सब तीर्थों में इस तीर्थराज हिमालय को कहा गया है ।। ४४ ।।

जैसे सब वेदों में सामवेद श्रेष्ठ कहा गया है, वैसे ही सब देशों में इस देश को श्रेष्ठ माना गया है ।। ४५ ।।

जैसे सब अरण्यों में नैमिषारण्य श्रेष्ठ है, वैसे सब देशों में हिमालय देश कहा गया है ।। ४६ ।।

जैसे सब नदियों में जाह्नवी श्रेष्ठ कही गई है, वैसे सब देशों में यह देशराज कहा गया है ।। ४७ ।।

जैसे कि सब भक्तों में नारद भक्तराज हैं, वैसे ही सब क्षेत्रों में केदारक्षेत्र को श्रेष्ठ माना गया है ।। ४८ ।।

ते धन्याः सर्वलोकेषु ते पूज्याः सर्वदेवतैः ।
श्रीशिवन्यस्तमनसो वसन्त्यत्र निरामयाः ॥ ४९ ॥

सूत उवाच –
इति श्रुत्वा महाभागा नारदो देशवर्यकम् ।
पुनः पप्रच्छ तं स्कन्दं तीर्थानां विस्तरं बुधाः ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देशप्रशंसावर्णनं नाम
एकाधिकशततमोऽध्यायः ।

द्वयधिकशततमोऽध्यायः

मायाक्षेत्रावधिकथनपूर्वकं तत्रत्यकुशावर्ताद्यनेकतीर्थवर्णनम्

नारद उवाच—
भो भो षण्मुख सेनानिन् धन्योऽहं भुवि नारदः ।
यो वै तवमुखकंजाद्धि निर्गतं समधु प्रभो ॥ १ ॥

पिबामि श्रोत्रपुटकैः[1] क्षुधा मे बाधते न हि ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थानि प्रवराणि भो ॥ २ ॥

अन्यानि कानि तीर्थानि का का नद्यः शुभावहाः ।
अस्मिन्देशे महादेवपुत्रराज नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

स्कन्द उवाच—
श्रृणु नारद वक्ष्यामि तीर्थानि शुभदानि हि ।
यानि ज्ञात्वैव सपदि मुक्तिभाग्भवति स्फुटम् ॥ ४ ॥

गंगाद्वाराच्छृणु प्राज्ञ रत्नश्रृंगावधि ब्रुवे ।
तथा नंदगिरेः पश्चात्काष्ठान्तं ब्रह्मनंदन ॥ ५ ॥

मायाक्षेत्रं समाख्यातं गंगाद्वारे सुपुण्यदम् ।
ब्रह्मणः स्थानतो यावद्योजनानां त्रिकद्वयम् ॥ ६ ॥

१. पुटकः ।

सब लोकों में वे धन्य हैं, वे सब देवताओं से पूजनीय हैं, जो शिव के प्रति मन को निहित करके, दुःखों-रोगों से रहित होकर यहाँ निवास करते हैं ॥ ४६ ॥

सूत ने कहा—

हे महाभाग विद्वानो ! इस प्रकार नारद ने इस श्रेष्ठ देश के विषय में सुनकर पुनः तीर्थों के विषय में विस्तार से स्कन्द से पूछा ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में देशप्रशंसा वर्णन नाम का १०१ वां अध्याय पूरा हुआ ।

अध्याय १०२

माया क्षेत्र की सीमाओं का कथन करके वहाँ के कुशावर्त आदि अनेक तीर्थों का वर्णन ।

नारद ने कहा—

हे छः मुखों वाले, देव सेनापते, प्रभो स्कन्द ! मैं नारद इस पृथिवी पर धन्य हूँ, जो मैं तुम्हारे मुख रूपी कमल से निकले हुए इस सुमधुर कथन को··· ॥ १ ॥

श्रोत्रपुटों से सुन रहा हूँ और भूख भी मुझको पीड़ित नहीं कर रही है। अब मैं श्रेष्ठ तीर्थों को सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

हे महादेव के पुत्रराज ! इस देश में अन्य तीर्थ कौन से हैं तथा अन्य शुभ-दायक नदियां कौन सी हैं ? तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! मैं अन्य शुभदायक तीर्थों के विषय में कहूँगा, जिनको जानकर ही मनुष्य निश्चय ही मुक्ति का पात्र बनता है ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मा के पुत्र ! ज्ञानी नारद ! मैं कहता हूँ, सुनो। गंगा द्वार से लेकर रत्नगिरि के शिखर पर्यन्त तथा नन्द पर्वत से लेकर काष्ठ पर्वत पर्यन्त स्थानों का वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

गंगा द्वार में उत्तम पुण्यों को देने वाला माया क्षेत्र कहा गया हे। ब्रह्मा के स्थान (ब्रह्मकुण्ड) से ३ × २ = ६ योजन··· ॥ ६ ॥

प्रमाणं क्षेत्रराजस्य गदितं मुनिनायक।
तत्क्षेत्रदक्षिणे भागे द्रोणाश्रम इतीरितः ॥ ७ ॥

गंगायमुनयोर्मध्ये अष्टयोजनविस्तृतम्।
तिर्यग्विस्तार एवास्य योजनत्रयमीरितः ॥ ८ ॥

नारद उवाच—

मायाक्षेत्रं हि यत्प्रोक्तं त्वया द्वादशयोजनम्।
तद्ब्रूहि प्रथमं देव विस्तरेण मम प्रभो ॥ ९ ॥

स्कन्द उवाच—

श्रृण नारद वक्ष्यामि मायाक्षेत्रं सुपुण्यदम्।
तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं श्रृणुष्वैकमना हि मे ॥ १० ॥

माया भगवती साक्षात्सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
तत्क्षेत्रं हि मया प्रोक्तं भवमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥

पुरा दक्षो महातेजा ब्रह्मपुत्रो मुनीश्वर।
तस्येयं दुहिता पुत्र सती नाम्ना मनोहरा ॥ १२ ॥

यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वदुःखैः प्रमुच्यते।
यया सर्वमिदं व्याप्तं जगद्वै सचराचरम् ॥ १३ ॥

तत्क्षेत्रदर्शनात्सद्यो न च भूयोऽभिजायते।
येन दृष्टमिदं क्षेत्रं सफलं तस्य जीवितम् ॥ १४ ॥

गंगाद्वारे कुशावर्त्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १५ ॥

सर्वे देवाः सगंधर्वा यक्षकिन्नरतापसाः।
तिष्ठन्ति यत्र तीर्थे हि सर्वे ते मुक्तिलालसाः ॥ १६ ॥

चंडिकातीर्थराजे हि सकृत्स्नातो महामुने।
स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥ १७ ॥

दक्षेश्वरं महादेवं दृष्ट्वा वै भक्तितत्पर।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो धन्यतां याति सत्वरम् ॥ १८ ॥

इस क्षेत्रराज का प्रमाण कहा गया है। हे मुनिनायक नारद ! इस क्षेत्र के दक्षिण भाग में द्रोणाश्रम कहा गया है ॥ ७ ॥

गंगा और यमुना के मध्य में इसका विस्तार आठ योजन लम्बा और तीन योजन चौड़ा है ॥ ८ ॥

नारद ने कहा—

हे देव ! मेरे प्रभो ! जो तुमने १२ योजन विस्तार के मायाक्षेत्र के विषय में कहा है पहले उसी का विस्तार से वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! मैं उत्तम पुण्यदायक मायाक्षेत्र के सम्बन्ध में कहूँगा। तुम एकाग्र मन होकर मुझसे उसकी उत्पत्ति और माहात्म्य को सुनो ॥ १० ॥

भगवती माया साक्षात् सृष्टि की रचना-स्थिति-अन्त को करने वाली हैं। भवबन्ध से मुक्ति दिलाने वाले उसके क्षेत्र के सम्बन्ध में मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥

हे मुनीश्वर ! पूर्व काल में महातेजस्वी ब्रह्मा का पुत्र दक्ष था। यह माया उसकी सती नाम की सुन्दर पुत्री थी ॥ १२ ॥

इसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है। इसने सम्पूर्ण चर-अचर जगत् को व्याप्त किया हुआ है ॥ १३ ॥

उस क्षेत्र का दर्शन करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता, जिसने इस क्षेत्र का दर्शन कर लिया है, उसका जीवन सफल हो गया है ॥ १४ ॥

गंगाद्वार, कुशावर्त, बिल्वकेश्वर, नील पर्वत और कनखल, इन तीर्थों में स्नान करके मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १५ ॥

सब देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और तपस्वी इस तीर्थ में मुक्ति की इच्छा से रहते हैं ॥ १६ ॥

हे महामुने ! जो मनुष्य चण्डी नामक तीर्थराज में एक बार स्नान कर लेता है, वह पुरुष धन्य है और उसका जीवन सफल है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य भक्ति-भाव से दक्षेश्वर महादेव का दर्शन कर लेता है, वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और शीघ्र धन्य होता है ॥ १८ ॥

द्रोणतीर्थेऽपि यः कश्चिच्छिवसंन्यस्तमानसः ।
स्नानं दानं जपं होमं करोति भक्तितत्परः ।
तत्सर्वं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः ॥ १९ ॥

रामतीर्थेषु यः कश्चित्स्नानं वै प्रकरोति हि ।
स याति शिवलोके हि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २० ॥

हृशीकेशेषु यः कश्चिद्ब्रह्मतीर्थे सुपुण्यदे ।
दृष्ट्वा श्रीशरणं देवं स्नाति वै भक्तितत्परः ।
मुक्तिभागी भवेत्सद्यो नरनाथो भवत्यपि ॥ २१ ॥

एकरात्रमपि स्थित्वा नारायणमयो भवेत् ।
यमुनापि महाभागा तत्रायाति सरिद्वरा ॥ २२ ॥

तत्संगमे महातीर्थं प्रयागात्कोटिसंख्यकम् ।
धन्यानां मानुषं जन्म तत्र भारतखण्डके ।
तत्रापि हि भवेद्देशे मायाक्षेत्रे विशेषतः ॥ २३ ॥

तत्रापि ब्राह्मणे वंशे तत्रापि मज्जतां कुले ।
यत्तीर्थस्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ २४ ॥

मानुषं जन्म संप्राप्य [1]तेनैव सकलं कृतम् ।
हृषीकेशाश्रमे क्षेत्रे गच्छन्ति सुधियश्च ये ॥ २५ ॥
हसन्ति षितरस्तेषां सर्वे मुक्तिलालसाः ।
अन्यान्यपि च तीर्थानि वर्त्तन्ते सुबहून्यपि ॥ २६ ॥

यानि स्मृत्वापि पापेभ्यो मुच्यते पापवंधनैः ।
तपोवनं समासाद्य कुर्वन्ति श्राद्धमुत्तमम् ।
तेषां वै पितरः स्वर्गे नित्यं तृप्ता भवन्ति हि ॥ २७ ॥

एतदेव महाक्षेत्रं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
लक्ष्मणस्थानमासाद्य लक्ष्मणं प्रणमन्ति ये ।
ते वै रघुवरश्रेष्ठा भाग्यवन्तो भवन्ति हि ॥ २८ ॥

सौमित्रितीर्थके स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ।
ततो वै शिवतीर्थेषु स्नान्ति ये भक्तितत्पराः ।
शिवस्थानं प्राप्नुवन्ति ब्रह्मस्थानं तथैव च ॥ २९ ॥

---

१. तेरैव ।

शिव के प्रति मन को निहित करके जो कोई मनुष्य द्रोणतीर्थ में भी भक्ति-भाव से स्नान, दान, जप और होम करता है, उसका वह सब कृत्य करोड़ गुना हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।। १६ ।।

जो कोई मनुष्य राम-तीर्थ में स्नान करता है, वह उतनी अवधि तक शिवलोक में रहता है, जब तक कि १४ इन्द्रों का समय होता है ।। २० ।।

जो कोई मनुष्य हृषीकेश में उत्तन पुण्यदायक ब्रह्मतीर्थ में भक्ति-भाव से श्रीमहादेव की शरण में जाकर स्नान करता है, वह मनुष्य शीघ्र मुक्ति का भाजन होता है और राजा बनता है ।। २१ ।।

एक रात भी वहाँ रहने से वह नारायणमय हो जाता है। वहाँ नदियों में श्रेष्ठ महाभाग्यशालिनी यमुना भी आती है ।। २२ ।।

उन गंगा-यमुना के संगम पर महातीर्थ है, जो प्रयाग से करोड़ गुना माहात्म्य-शाली है। वे पुरुष धन्य हैं, जिनका जन्म भरतखण्ड में हुआ है। उनमें भी वे विशेष रूप से धन्य हैं, जिनका जन्म मायाक्षेत्र में हुआ है ।। २३ ।।

उनमें भी ब्राह्मण वंश और उनमें भी स्नान करने वालों के वंश में जिनका जन्म हुआ है, वे धन्य हैं। इस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य धन्य होता है ।। २४ ।।

मनुष्यों में जन्म पाकर उन्होंने सारे पुण्य किये हैं, जो बुद्धिमान् हृषीकेशाश्रम के क्षेत्र में जाते हैं ।। २५ ।।

जो यहाँ यात्रा करते हैं, मुक्ति के अभिलाषी उनके सब पितर प्रसन्न होते हैं। वहाँ अन्य भी बहुत से तीर्थ हैं ।। २६ ।।

जिनका स्मरण करके भी मनुष्य पापों से, पाप के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। इस तपोवन में पहुँचकर जो उत्तम श्राद्ध करते हैं, उनके पितर स्वर्ग में नित्य तृप्त होते हैं ।। २७ ।।

यह महाक्षेत्र ही मुक्ति का खुला हुआ द्वार है। लक्ष्मण के स्थान (लक्ष्मणझूला) में पहुँचकर जो लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं, वे रघुवंशियों में श्रेष्ठ होते हैं तथा भाग्य-वान् होते हैं ।। २८ ।।

लक्ष्मणतीर्थ में स्नान करके मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। जो शिवतीर्थों में जाकर भक्ति-भाव से स्नान करते हैं, वे शिव के स्थान को और ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त करते हैं ।। २६ ।।

एतदेव महाक्षेत्रं श्रेष्ठं प्राह सदाशिवः ।
मनसापि च यो मर्त्यो वचसापि तथैव ।। ३० ।।

कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो मायाक्षेत्रस्य दर्शनात् ।
अस्मिन् क्षेत्रे मृतः कश्चिद्ब्रह्म याति न संशयः ।। ३१ ।।

देवा अपि महात्मानो नित्यं वै मुक्तिलालसाः ।
इच्छन्त्यस्मिन्स्थले रम्ये जन्मापि हि न संशयः ।। ३२ ।।

मुनयः सिद्धगंधर्वा यक्षकिन्नरतापसाः ।
नित्यं वसन्ति विप्रेन्द्र नारायणपरायणाः ।। ३३ ।।

चतुर्वेदमयो घोषस्त्रिसन्ध्यं जायते द्विज ।
इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वया द्विज ।
तीर्थानि प्रवराण्येव किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। ३४ ।।

सूत उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनिः परमपावनम् ।
पुनः पप्रच्छ देवेशं पुनर्विस्तारपूर्वकम् ।। ३५ ।।

इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्यकथनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

दक्षयज्ञेऽनिमन्त्रितायाः सत्या आगमनं पतिनिन्दा-श्रवणेन च पावके शरीरत्यागः ।

नारद उवाच—

श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रस्य मायायाः पुण्यवर्द्धनम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव प्रसन्नो भवितत्परः ।। १ ।।

सदाशिव ने इसी महाक्षेत्र को श्रेष्ठ कहा है। जो मनुष्य मन से भी और वचन से भी··· ॥ ३० ॥

इस मायाक्षेत्र का जो दर्शन करता है, वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। इस क्षेत्र में मरने से कोई भी मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥

मुक्ति की लालसा करने वाले महात्मा देवता भी इस रम्य स्थल में जन्म लेने की इच्छा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥

हे विप्रेन्द्र नारद ! मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और तपस्वी नारायण के प्रति भक्ति रखकर नित्य यहां निवास करते हैं ॥ ३३ ॥

हे द्विज ! यहाँ तीनों संध्या-कालों में चारों वेदों के मन्त्रों की ध्वनि होती है। हे द्विज ! तुमने श्रेष्ठ तीर्थों के सम्वन्ध में जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह दिया है। अब तुम अन्य क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३४ ॥

सूत ने कहा—

इस प्रकार उस स्कन्द के परम पावन वचन को सुनकर मुनि नारद ने पुनः विस्तार से देवेश स्कन्द पूछा ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य वर्णन नाम का १०२ वां अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय १०३

दक्ष के यज्ञ में अनिमन्त्रित सती का आगमन पति की निन्दा सुनने के के कारण उसके द्वारा अग्नि में शरीर का त्याग

नारद ने कहा—

मैं भक्ति में तत्पर होकर प्रसन्नता से आपसे पुण्य को बढ़ाने वाले मायाक्षेत्र के उत्पत्ति के वृत्तान्त को विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच—

श्रृणु नारद तत्सर्वं पापघ्नं सर्वकामदम्।
यथा पुराऽभवद्यज्ञो दक्षास्यात्र प्रजापतेः ॥ २ ॥

पुरा दक्षो महातेजाः प्रजानां पतिषूत्तमः।
बभूवात्यंतकुशलः सर्वशास्त्रेषु वै द्विज ॥ ३ ॥

यो वै पुरा हि विप्रेन्द्र दक्षांगुष्ठाद्व्यजायत।
श्रीब्रह्मणो भगवतः सृष्टिकर्मोद्यतस्य हि ॥ ४ ॥

कन्याः बभूवुस्तस्वापि बह्वयः संततिकारणम्।
एकदा स मुनिः पूर्वं यज्ञाय कृतवान्मनः ॥ ५ ॥

आगताश्च ततः सर्वे सदेवासुरमानुषाः।
दर्शनार्थं हि यज्ञस्य दक्षस्याद्भुतकर्मणः ॥ ६ ॥

मुनयः कुशहस्ताश्च सोत्तरीयाजिनाम्बराः।
वसिष्ठादयो महात्मानो दंडपुस्तकधारकाः ॥ ७ ॥

शिष्योपशिष्यैर्युक्ताश्च नानाशास्त्रविशारदाः।
पुलस्त्यश्च महाभागः पुलहः क्रतुरंगिराः।
एते चान्ये च मुनयो बसवः समुपागताः ॥ ८ ॥

विश्वेदेवातास्तथादित्या मरुतो यक्षकिन्नराः।
साध्याः सिद्धाः महात्मानः सेंद्राः सुरगणास्तथा ॥ ९ ॥

विष्णुश्च भगवान्ब्रह्मा चंद्रमाश्च बृहस्पतिः।
गानं चक्रुश्च गंधर्वाः किन्नराश्च तथैव च ॥ १० ॥

ननृतुश्चाप्सरगणा नानागानविशारदाः।
आनकाः पटहाः ढक्कास्तथा दुंदुभिपंक्तयः।
नेदुश्च सर्वतो विप्र पुष्पाणि बवृषुश्च खात् ॥ ११ ॥

महानेव समाजोऽभूत्सर्वेषां भगवत्प्रिय।
तेषां मध्यगतो दक्षो रराज सुतरां मुने ॥ १२ ॥

समारेभे ततो यज्ञं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
बभूव च ततो हर्षो महानेव महात्मनाम् ॥ १३ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! कामनाओं को प्रदान करने वाले तथा पाप नाशक उस सारे वृत्तान्त को सुनो । प्राचीन समय में यहाँ प्रजापति दक्ष का यज्ञ हुआ था ।। २ ।।

हे द्विज ! पूर्वकाल में यहां प्रजापतियों में उत्तम और सब शास्त्रों में अति कुशल महातेजस्वी दक्ष हुए थे ।। ३ ।।

हे विप्रेन्द्र ! प्राचीन समय में सृष्टि करने के लिये उद्यत भगवान् श्रीब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से वे उत्पन्न हुये थे ।। ४ ।।

उस दक्ष की सन्तानों में अनेक कन्यायें हुईं । पूर्व समय में एक दिन उस दक्ष मुनि का मन यज्ञ करने का हुआ ।। ५ ।।

तदनन्तर सब देवता, असुर और मनुष्य अद्‌भुतकर्मा दक्ष के यज्ञ को देखने के लिये आये ।। ६ ।।

कुशाओं को हाथों में लिये हुए, मृगचर्म के वस्त्र का उत्तरीय पहने हुए और दण्ड-पुस्तक को धारण किये हुए महात्मा वसिष्ठ आदि मुनि भी आये ।। ७ ।।

वे शिष्यों और उपशिष्यों (शिष्य का शिष्य) से युक्त थे तथा नाना शास्त्रों में विशारद थे । इनमें महाभाग पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और अंगिरा थे । ये तथा और भी अनेक बहुत से मुनि तथा बसु वहां आये ।। ८ ।।

विश्वेदेव, आदित्य, मरुत्, यक्ष, किन्नर, साध्य, सिद्ध, महात्मा, इन्द्र और अन्य देवता वहां आये ।। ९ ।।

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा और बृहस्पति वहां आये । गन्धर्व और किन्नर वहां गान करने लगे ।। १० ।।

विविध गानों में निपुण अप्सरायें नृत्य करने लगीं । नगाड़े, ढोल, ढक्का और दुन्दुभियां बजने लगे । हे विप्र ! चारों ओर आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी ।। ११ ।।

हे भगवान् के प्रिय नारद ! वहां सभी का महान् समाज एकत्रित हो गया । हे मुने ! उनके मध्य में दक्ष अत्यधिक शोभायमान होने लगा ।। १२ ।।

तदनन्तर ब्रह्मवादी मुनियों ने यज्ञ को प्रारम्भ कर दिया । तब उन महात्माओं को महान् हर्ष हुआ ।। १३ ।।

[1]सर्वासादुहिता विप्र निष्ककण्ठ्यो महामते ।
आगताः सर्वतो दिग्भ्यो दिव्याभरणसंयुताः ।। १४ ।।

वदतां खेचराणां तु मुखेभ्यश्च तथा श्रुतम् ।
सत्या यज्ञं पितुर्विप्र दक्षस्य नियतात्मनः ।। १५ ।।

तदुपश्रुत्य सहसा सती वै पितृवत्सला ।
सा गन्तुं हि मनश्चक्रे नानामुनिविराजिते ।। १६ ।।

व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्यो गंधर्ववरनायिकाः ।
विमानेषु स्थिताश्चैव सर्वाभरणभूषिताः ।। १७ ।।

अम्बरं शोभितं दृष्ट्वा विमानैः सर्वतोदिशम् ।
उवाच श्रीमहादेवं नानागणसुसेवितम् ।। १८ ।।

सत्युवाच—

भगवन्परमेशान ह्यम्बरं पर्य्यलंकृतम् ।
नूनं ममः पितुर्गेहे वर्त्तते सुमहोत्सवः ।। १९ ।।

द्रष्टुं तमुत्सवं देव मनो मे त्वरयत्यलम् ।
सर्वा भगिन्यो मे देव भवेयुरागताः खलु ।। २० ।।

श्रुत्वोत्सवं पितुर्गेहे गृहे तिष्ठति या सुता ।
कथं वै कीदृशं तस्याः हृदयं सुरवन्दित ।। २१ ।।

कदा द्रक्ष्यामि पितरं मुनिभिः समुपासितम् ।
भगिनीश्च महादेव मातरं वा कदा पुनः ।। २२ ।।

इति मे [2]हृदये देव वर्त्ततेऽहर्निशं विभो ।
देह्याज्ञां मम हे देव यथा यास्यामि तत्र हि ।। २३ ।।

श्रीशिव उवाच—

अनाहूता कथं देवि पितुर्गेहमनः शुभे ।
कथमुत्सहते तेऽद्य निष्ठुरस्य प्रजापतेः ।। २४ ।।

यथा मन्येत यो देवि आत्मानं सततं प्रिये ।
तथा तमपि मन्येत इति प्राहुः पुरातनाः ।। २५ ।।

---

१. सर्वा दुहितरो २. हृदयादेव ३. गमनाः ।

हे महामते विप्र ! दक्ष की सभी पुत्रियाँ कण्ठों में सुवर्णहार डाले हुए तथा दिव्य आभूषणों से विभूषित होकर सब दिशाओं से वहां आईं ॥ १४ ॥

हे विप्र ! सती ने परस्पर वार्ता करते हुये आकाशचारियों के मुख से नियतात्मा पिता दक्ष के यज्ञ के विषय में सुना ॥ १५ ॥

पिता को प्रेम करने वाली सती ने सहसा इसको सुनकर अनेक मुनियों से सुशोभित यज्ञ में आने का विचार किया ॥ १६ ॥

गन्धर्वों की सुन्दर स्त्रियाँ सब आभूषणों से अलंकृत होकर विमानों में बैठकर सब दिशाओं से जा रही थीं ॥ १६ ॥

सब दिशाओं में आकाश को विमानों से शोभित देखकर सती ने अनेक गणों से शोभित श्री महादेव से कहा ॥ १८ ॥

सती ने कहा—

हे परम ईशान भगवान् ! आकाश अलंकृत हो रहा है । निश्चय से मेरे पिता के घर में उत्तम महोत्सव है ॥ १९ ॥

हे देव ! उस उत्सव को देखने के लिये मेरा मन अत्यधिक शीघ्रता कर रहा है । हे देव ! निश्चय से वहाँ मेरी सब बहनें आई होंगी ॥ २० ॥

देवों से वन्दित हे शिव ! पिता के घर में उत्सव की बात को सुनकर जो पुत्री अपने घर में बैठी रहती है, उसका हृदय कैसा होता होगा ? ॥ २१ ॥

हे महादेव ! मैं मुनियों से समुपासित पिता को, बहनों को और माता को पुनः कब देखूंगी ? ॥ २२ ॥

हे देव ! यह बात मेरे हृदय में दिन-रात रहती है । हे देव ! मुझको आज्ञा दीजिये, जिससे कि मैं वहां चली जाऊँ ॥ २३ ॥

श्री शिव ने कहा—

हे शुभे देवि ! निष्ठुर प्रजापति पिता के घर में बिना बुलाये ही जाने के लिये तुम्हारा मन कैसे उत्साहित हो रहा है ? ॥ २४ ॥

हे प्रिये ! प्राचीन महापुरुषों का कहना है कि जो व्यक्ति निरन्तर अपने को जैसा मानता है, उसको भी वैसा ही मानना चाहिए ॥ २५ ॥

उत्सवे हि विशेषेण आहूतो नितरां व्रजेत् ।
यदि गच्छेदनाहूतो लघुतां याति मानदे ।। २६ ।।
मित्रं स्वच्छतया [1]विन्द्यात्समं समतया तथा ।
विद्वेषणेन शत्रुं वै इति प्राहुर्मनीषिणः ।। २७ ।।
ऐश्वर्य्यमदसंयुक्तं त्यजेन्मित्रं पलालवत् ।
पितरं वापि पुत्रं वा भ्रातरं वापि दक्षजे ।। २८ ।।
ऐश्वर्य्यमदयक्तानामहंकारपरात्मनां ।
यदि गच्छेदनाहूतो हास्यतां याति सत्वरम् ।। २९ ।।
मुखं विवृण्वते चैव दृष्ट्वा तं गृहमागतम् ।
यस्तु गच्छेदनाहूतो जायते माननाशनम् ।। ३० ।।

श्रीदेव्युवाच—

सत्यमुक्तं हि भगवंस्त्वया देव महेश्वर ।
न पिता न तथा माता न सन्ति मित्र बांधवाः ।। ३१ ।।

केन साकं तवेशस्य मोहो वै संभविष्यति ।
भूषणं तव सर्पा वै ह्यशनं न हि विद्यते ।
निर्गुणोऽसि महेशान माय्या रहितश्च सः ।। ३२ ।।
कथं मित्रं भवेद्देव तव संसारनायक ।
किमपेक्षा तवेशान भवेत्कस्यापि कालक ।
धारणं भस्मना देव पात्रं यस्य कपालकम् ।। ३३ ।।

कार्तिकेय उवाच—

इति श्रुत्वा निगदितं व्यंग्योक्तं भगवाञ्छिवः ।
विमनस्कां महेशार्नी भवानीं प्रत्यभाषत ।। ३४ ।।

श्रीशिव उवाच—

देवि गच्छ पितुर्गेहे यदि ते आग्रहः खलु ।
यज्ञसंदर्शनार्थाय भोग्यस्योत्पत्तिहेतवे ।। ३५ ।।

कार्त्तिकेय उवाच—

इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा चरणावभिवाद्य च ।
ययौ सा दक्षगेहे तु द्रष्टुं यज्ञमहोत्सवम् ।। ३६ ।।

---

१. विन्देत् ।

विशेष रूप से उत्सव में तो बिल्कुल निमन्त्रित होने पर ही जाना चाहिए। हे अभिमानिनि ! बिना निमन्त्रण के जाने पर मनुष्य अपमानित होता है ।। २६ ।।

मनीषियों का कथन है कि मित्र को स्वच्छ मन से प्राप्त करना चाहिए, समान व्यक्ति से समान भाव से व्यवहार करना चाहिए और शत्रु से द्वेष भाव से व्यवहार करना चाहिए ।। २७ ।।

ऐश्वर्य के मद से युक्त व्यक्ति को, चाहे वह मित्र हो, पिता हो, पुत्र हो अथवा चाहे भाई हो, हे दक्ष पुत्रि ! चोकर के समान छोड़ देना चाहिए ।। २८ ।।

ऐश्वर्य के मद से युक्त और अहंकार करने वाले व्यक्तियों के पास जो मनुष्य बिना बुलाये जाता है, वह शीघ्र हँसी का पात्र बनता है ।। २९ ।।

जो बिना बुलाये जाता है, उसको घर में आया हुआ देखकर उनका मुख खुल जाता है और उसका सम्मान नष्ट होता है ।। ३० ।।

श्रीदेवी ने कहा—

हे देव, भगवन्, महेश्वर ! तुमने सत्य ही कहा है। तुम्हारे न तो माता है, न पिता है, न मित्र है, न बन्धु हैं ।। ३१ ।।

तुम ईश का किसके साथ मोह हो सकता है ? सर्प तुम्हारे आभूषण हैं और भोजन तुम्हारा होता नहीं है। हे महेशान ! तुम निर्गुण हो और माया से रहित हो ।। ३२ ।।

हे संसार के नायक देव ! तुम्हारा मित्र कैसे हो सकता है ? हे कालस्वरूप ईशान ! तुमको किससे क्या अपेक्षा हो सकती है ? हे देव ! जो भस्म धारण करता और कपाल ही जिसका पात्र है ।। ३३ ।।

कार्तिकेय ने कहा—

इस व्यंग्य-उक्ति को सुनकर भगवान् शिव ने उदास होती हुई महेशानी भवानी को उत्तर दिया ।। ३४ ।।

श्रीशिव ने कहा—

हे देवि ! यदि यज्ञ को देखने के लिये और भोग्य को उत्पन्न करने के लिये तुम्हारा निश्चय से आग्रह है, तो पिता के घर को जाओ ।। ३५ ।।

कार्तिकेय ने कहा—

इस प्रकार शिव की आज्ञा को सिर से धारण करके और उनके चरणों में अभिवादन करके वह यज्ञ-महोत्सव देखने के लिगे दक्ष के घर में गई ।। ३६ ।।

तत्र गत्वा महामाया ददर्श मुनिसत्तमान् ।
कुशपाणीन्महासत्त्वान्मृगचर्माम्बरांस्तथा ।। ३७ ।।

सेन्द्रान्सुरगणान्यक्षातगन्धर्वान् किन्नरांतथा ।
विश्वेदेवांश्च मरुतः साध्यान्सिद्धांस्तथापरान् ।। ३८ ।।

भागान्संदृश्य सर्वेषां देवानां दक्षपुत्रिका ।
भर्त्तुर्भागमनालक्ष्य पप्रच्छ पितरं सती ।। ३९ ।।

श्री देव्युवाच—

भो भो पितर्महाभाग सर्वे देवाः समागताः ।
सभागा एव ते सर्वे भर्त्तुर्भागः कथं न हि ।। ४० ।।

जामातरश्च भवतः सर्व एवागताः खलु ।
भर्त्ता ममापि हे तात जामातास्ति महामते ।। ४१ ।।

कथं नाऽऽकारितो देवो भवो भावविवर्जितः ।
एतन्मे संशयं छिंधि यथान्याश्च तथाऽप्यहम् ।। ४२ ।।

स्कन्द उवाच—

निशम्य वचनं तस्याः भवान्याः स प्रजापतिः ।
प्रहस्य ब्रह्मपुत्रस्तु बभाषे वचनं शिवाम् ।। ४३ ।।

दक्ष उवाच—

तस्य वै भूतवेतालाः पिशाचाः शवकाः गणाः ।
सहायास्तस्य रूपं हि विकरालं महेश्वरि ।। ४४ ।।

भस्मनो धारणं यस्य विषस्य ह्यशनं किल ।
करिचर्म्मपरीधानं सर्पाश्चैव विभूषणम् ।। ४५ ।।

अधिकांगश्च दुहितर्हीनांगश्च तथा भवः ।
देवेतरो महाकालः सर्वेषां नाशकश्च सः ।। ४६ ।।

भक्ष्यपरात्रं कपालं च नृमुंडैर्मंडितो हरः ।
वृषध्वजो शूलपाणिः पाशहस्तो निरीश्वरः ।। ४७ ।।

वहां जाकर महामाया ने कुशाओं को हाथों में लिये हुये, मृगचर्म के वस्त्र पहने श्रेष्ठ महासात्त्विक मुनियों को देखा ।। ३७ ।।

इन्द्र, देवगण, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विश्वेदेव, मरुत्, साध्य, सिद्ध और अन्यों को देखा ।। ३८ ।।

दक्ष की पुत्री सती ने सब देवताओं के भागों को देखकर और पति के भाग को न देखकर पिता से पूछा ।। ३९ ।।

श्रीदेवी ने कहा—

हे महाभाग पिता ! सभी देवता आये हैं । उन सबका यज्ञ में भाग है । मेरे पति का भाग क्यों नहीं है ? ।। ४० ।।

हे महामते ! आपके सभी दामाद निश्चय से आये हैं । हे पिता ! मेरे पति भी आपके दामाद हैं ।। ४१ ।।

आपने भावों को छोड़ देने वाले देवशिव को आमंत्रित क्यों नहीं किया है ? मेरे इस संशय को दूर करो । जैसी अन्य पुत्रियाँ हैं, वैसी मैं भी हूँ ।। ४२ ।।

स्कन्द ने कहा—

भवानी के उस वचन को सुनकर ब्रह्मा के पुत्र उस प्रजापति ने हँसकर शिवा से यह वचन कहा ।। ४३ ।।

दक्ष ने कहा—

हे महेश्वरि ! उसके गण भूत, वेताल, पिशाच और मुर्दे सहायक हैं । उसका रूप विकराल है ।। ४४ ।।

वह राख को धारण करता है, विष का भोजन करता है, हाथी के चमड़े का वस्त्र पहनता है और सर्पों के आभूषण धारण करता है ।। ४५ ।।

हे पुत्रि ! वह शिव अधिक अंग वाला (तीन नेत्र वाला) और गुणहीन अंग वाला है । वह देवों से इतर है । महाकाल है और सबका विनाश करने वाला है ।। ४६ ।।

उसका भोजन का पात्र कपाल है । वह शिव नरमुण्डों से अलंकृत है । बैल उसकी ध्वजा पर है । त्रिशूल और पाश हाथ में रहते हैं । उसके लिये कोई ईश्वर नहीं है ।। ४७ ।।

अकस्मान्नृत्यतेऽकस्माद्धसते जृम्तभते पुनः ।
अङ्किनं शिरसा धत्ते पुरदाहकरः परः ॥ ४८ ॥

कंकालविलसद्भूमिश्मशानभस्मलेपनः ।
अनार्य्योऽनार्य्यसंगश्च वंचकोविद्यया युतः ॥ ४६ ॥

एतादृशो महेशानि भर्त्ता वै तव शंकरः ।
अमंगलो मंगलेऽस्मिन्भागभागी कथं भवेत् ॥ ५० ॥

योग्यानामेव हे पुत्रि समाजोऽस्ति मखे मम ।
अमंगलस्य ते भर्त्तुः कथं दर्शनथं शिवे ॥ ५१ ॥

नार्हामि यज्ञसदसि योगिनः सति पुत्रिके ।
दत्तासि दैवयोगेन मया पापेन तस्य वै ॥ ५२ ॥

कार्त्तिकेय उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भर्तृनिंदात्मकं मुने ।
कोपेनारक्तवर्णा सा साश्रुनेत्रा बभूव ह ॥ ५३ ॥

सर्वेषां पश्यतामेव सदेवासुररक्षसाम् ।
मनस्याधाय चरणौ भर्त्तुः श्रीपरमात्मनः ।
पपात सहसा वह्नौ ज्वलिते धातृपुत्रक ॥ ५४ ॥

हाहाकाररवश्चासीत्सर्वेषां देवरक्षसाम् ।
ततः स विस्मयाविष्टो दक्षो नाम प्रजापतिः ।
न किंचिदुक्तवान्विप्र दृष्ट्वा पुत्र्या विचेष्टितम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये सतीदेहोत्सर्गो त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।

वह अकस्मात् नाचने लगता है। अकस्मात् हंसने लगता है, पुनः अकस्मात् जम्भाई लेता है। सिर पर कलंकी चन्द्रमा को धारण करता है, वह नगरों को जलाने वाला परम है ॥ ४८ ॥

कंकालों से शोभायमान श्मशान की भूमि के भस्म का लेप करता है। अनार्य है। अनार्यों के संग रहता है। ठगों की विद्या से युक्त है ॥ ४६ ॥

हे महेशानि ! ऐसा तुम्हारा पति शंकर है। वह अमंगलकारी है, अतः इस मंगलकारी यज्ञ में उसका भाग कैसे हो सकता है ? ॥ ५० ॥

हे पुत्रि ! इस मेरे यज्ञ में योग्य व्यक्तियों का समाज ही एकत्रित हुआ है। हे शिवे ! यहां अमंगलकारी तेरे पति का दर्शल करना कैसे हो सकता है ? ॥ ५१ ॥

हे पुत्रि ! उस योगी को इस यज्ञ सभा में बुलाना मेरे लिये उचित नहीं है। मुझ पापी ने तुमको उसके लिये दैवयोग से ही दिया है ॥ ५२ ॥

कार्तिकेय ने कहा—

हे मुने ! पिता के पति की निन्दा करने वाले इस वचन को सुनकर वह सती क्रोध से लाल हो गई और आँखों से आंसू बहने लगे ॥ ५३ ॥

हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! अपने पति श्री परमात्मा के चरणों का मन में ध्यान करके वह सती सब देव-असुर-राक्षसों के देखते-देखते जलती हुई अग्नि में कूद पड़ी ॥ ५४ ॥

सब देवताओं और राक्षसों का हाहाकार शोर होने लगा। हे विप्र ! तब विस्मय से आविष्ट दक्ष नाम के प्रजापति ने पुत्री की चेष्टा को देखकर कुछ नहीं कहा ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य
प्रकरण में सतीदेहोत्सर्ग नाम का १०३ वां अध्याय
पूरा हुआ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

सतीदेहत्यागसमाचारमाकर्ण्य शिवकोपसमकालमनेकगणो-पस्थितौ वीरभद्रोत्पत्तिः। शिवगणैर्यज्ञस्थले गत्वा दक्षयज्ञध्वंसीकरणम्। वीरभद्रेण दक्षशिरःकर्तनम्

स्कन्द उवाच—

श्रुत्वा तत्पतनं विप्र भार्य्यायाा जातवेदसि।
क्रोधामर्षविवृत्ताक्ष आययौ भगवाञ्छिवः॥ १॥

अनेकास्त्रप्रहरणा अद्भुतास्या भयानकाः।
केचित्पाषाणहस्ताश्च केचिद्वृक्षसुहस्तकाः॥ २॥

एकपादा ऊर्ध्वकेशाः श्यामांगा लोहिताननाः।
घोटकास्याश्च केचिद्वै केचिन्मार्जाररूपकाः॥ ३॥

केचिदंजनकूटाभाः केचिद्भस्मविलेपनाः।
कबंधाश्च तथा केचिदेकहस्तास्तथापरे॥ ४॥

सिंहव्याघ्राननाः केचित्कूर्म्मास्या लम्बकर्णकाः।
लम्बस्तनाश्च केचित्तु तथा लम्बशिरोरुहाः॥ ५॥

दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घास्या दीर्घनासिकाः।
दीर्घदंष्ट्रा दीर्घदेहा दीर्घाम्बरसमावृताः॥ ६॥

नंदी भृंगी भृंगरीटिः प्रेतास्यो वज्रनामकः।
कुवलाश्वोऽश्वकर्णश्च नृमुंडो मस्तकारुणः॥ ७॥

पुष्पदंतो बृहद्भानुरमिताश्वोऽश्ववाहनः।
डुंडिको डुंडकश्चैव कालनामा तथैव च॥ ८॥

अध्याय १०४

सती के शरीर-त्याग के समाचार को सुनकर शिव के क्रोध के साथ ही अनेक गणों की उपस्थिति में वीरभद्र की उत्पत्ति। शिवगणों द्वारा यज्ञस्थल पर जाकर दक्ष के यज्ञ को ध्वंस करना। वीरभद्र द्वारा दक्ष के सिर को काट देवा

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार से अग्नि में पत्नी के गिरने का वृत्तान्स सुनकर, हे विप्र! भगवान् शिव उद्वेग से आँखों को घुमाते हुए वहाँ आये ॥ १ ॥

उनके साथ अनेक गण थे, जो प्रहार करने वाले अनेक अस्त्रों को लिये हुए अद्भुत मुख वाले और भयानक थे। कुछ के हाथों में पाषाण थे और कुछ के हाथों में वृक्ष थे ॥ २ ॥

कुछ एक पैर वाले, कुछ ऊँचे उठे हुए केश वाले, कुछ काले अंगों वाले, कुछ लाल मुख वाले, कुछ घोड़े के समान मुख वाले, और कुछ बिलाव के समान रूप वाले थे ॥ ३ ॥

कुछ काले अंजन के पर्वत के समान थे, कुछ ने भस्म का लेप कर रखा था, कुछ कवन्धमात्र थे और कुछ एक हाथ वाले थे ॥ ४ ॥

कुछ शेर और बाघ के समान मुख वाले, कुछ कछुये के समान मुख वाले, कुछ लम्बे कानों वाले, कुछ लम्बे स्तन वाले और कुछ लम्बे बालों वाले थे ॥ ५ ॥

कुछ लम्बी गर्दन वाले, कुछ लम्बे नाखूनों वाले, कुछ लम्बे मुख वाले, कुछ लम्बी नाक वाले, कुछ बड़ी दाढ़ी वाले, कुछ लम्बे शरीर वाले और कुछ बड़े वस्त्रों से ढके हुए थे ॥ ६ ॥

इतमें कुछ के नाम थे—नन्दी, भृङ्गी, भृङ्गरीटि, प्रेतास्य, वज्र, कुवलाश्व, अश्वकर्ण, नृमुंड, मस्तकारुण··· ॥ ७ ॥

पुष्पदन्त, वृहद्भानु, अमिताश्द, अश्यवाहन, डुण्डिक, डुण्डुक, काल··· ॥ ८ ॥

असुरातो जनाह्लादो ह्लादकायो मिकस्तथा ।
चंडकोऽन्तककारश्च चन्द्रराजो निशाकरः ॥ ९ ॥

एते चान्ये च बहवो गणाः शर्वस्य भो मुने ।
कोटीनां शतकोट्यश्च तथायुतशतानि च ।
आजग्मुः सहसा तेन श्रीशिवेन महात्मना ॥ १० ॥

संदष्टौष्ठपुटाः सर्वे धावन्तः सर्वतोदिशम् ।
कैलासादवतेरुश्च नृत्यंतश्च तथा परे ॥ ११ ॥

कुर्वन्तश्च महाशय्दं साट्टहासं तथा द्विज ।
तत्रसुः सर्वभूतानि समुद्राश्च चकंपिरे ॥ १२ ॥

चकंपे वसुधा विप्र प्रचण्डतिमिराहता ॥ १३ ॥

शिवोऽपि तत्रास्थिनृमुंडमालः क्रुद्धः स्फुरन्नेत्रकरालवह्निः ।
त्रिशूलहस्तो हरिचर्मशोभो दन्तप्रदष्टौष्ठपुरः करालः ॥ १४ ॥

स धूर्जटिः कालकरालरूपो भयंकरो भीममुखाहियुक्तः ।
वमद्विषज्वालभुजंगमोऽसौ तडित्प्रभाभासुरनेत्रकान्तिः ॥ १५ ॥

उत्थाय रुद्रः सहसा हसंस्ततो गम्भीरघोषो जगदीश्वरः शिवः ।
ससर्ज भूमौ पुरुषं महान्तं सहस्रबाहुं वपुषा दिव्रं गतम् ॥ १६ ॥

त्रिसूर्य्यदृष्टिं घनरुक्प्रकाशं करालदंष्ट्रं ज्वलदग्निमूर्द्धजम् ।
नृमुंडमालं विविधोद्यतायुधं ददर्श देवो भुवि ह्यग्रतः स्थितम् ॥ १७ ॥

स प्रत्युवाचाथ महेश्वरं तं किं कर्म कर्त्तुं स्मरणं ममाद्य ।
गृणंतमित्येव महो महेशः समादिशत्कार्यमिति स्फुटेति ॥ १८ ॥

श्री शिव उवाच—

दक्षं जहि स यज्ञं हि त्वमेव प्रमथाग्रणीः ।
उद्भटोऽसि महांस्त्वं हि न हि त्वत्सदृशः क्वचित् ॥ १९ ॥

असुरात, जनाह्लाद, ह्लादकाय, मिक, चण्डक, अन्तककार, चन्द्रराज और निशाकर ।। ९ ।।

हे मुने ! शिव के ये गण तथा अन्य बहुत से गण करोड़ों, अरवों और खरबों की संख्या में उस महात्मा श्रीशिव के साथ सहसा आ गये ।। १० ।।

होठों को चबाते हुए, सब दिशाओं में दौड़ते हुये और नाचते हुये वे कैलास से उतरे ।। ११ ।।

हे ब्राह्मण नारद ! वे महान् शब्द और अट्टहास कर रहे थे । उससे सारे प्राणी डर गये और समुद्र कांप गये ।। १२ ।।

हे विप्र नारद ! प्रचण्ड अन्धकार से आहत पृथिवी कांप गई ।। १३ ।।

अस्थियों और नरयुण्डों की माला वाले, क्रोधित आँखों से भयानक अग्नि को चमकाते हुए, त्रिशूल को हाथों में लिये हुए, बाघाम्बर से शोभित, दान्तों से होठों को चबाते हुए भयानक शिव भी वहाँ आये ।। १४ ।।

काल के समान भयानक रूप वाले, भयङ्कर, भयानक मुख वाले सर्पों से युक्त, विष की ज्वाला का वमन करने वाले भुजङ्गम से युक्त, विद्युत की कान्ति के समान दैदीप्यमान नेत्रों की कान्ति वाले वे शिव वहाँ आये ।। १५ ।।

गम्भीर ध्वनि वाले, जगदीश्वर, रुद्र, शिव ने हँसते हुए सहसा उठकर एक महान् पुरुष की भूमि पर रचना की । उसकी हजार भुजायें थीं और शरीर आकाश तक ऊँचा था ।। १६ ।।

उसकी दृष्टि तीन सूर्यों के उज्जवल समान थी, वह मेघों की विद्युत् के समान प्रकाशित था, भयानक दाढें थीं, जलती अग्नि के समान केश थे, नरमुण्डों की माला थी, विविध आयुध उठाये हुए थे । आगे भूमि पर स्थित उस पुरुष को महादेव ने देखा ।। १७ ।।

उसने महेश्वर से पूछा कि किस कार्य को करने के लिये आज मेरा स्मरण किया है इस प्रकार कहते हुए उससे तेजस्वी महेश ने स्पष्ट रूप से इस कार्य को करने का आदेश दिया ।। १८ ।।

श्रीशिव ने कहा—

तुम दक्ष के यज्ञ का विनाश कर दो । मेरे प्रमथों में तुम ही अग्रणी हो । तुम उद्भट हो और महान् हो । तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं है ।। १९ ।।

स्कन्द उवाच—

इत्याज्ञप्तः शिवेनासौ श्रीशिवं परिचक्रमे।
नमस्कृत्वा च पुरुषो ययौ प्रमथसंवृतः॥ २०॥

नदंतश्च प्लवंतश्च हसन्तः प्रमथा गणाः।
अग्रे कृत्वा च तं देवं देवजं कृष्णपिंगलम्॥ २१॥

उद्यम्य शूलं सहसा जगत्संहारकारकम्।
प्राद्रवद्देवसैन्यानि महाकाल इवान्तकः॥ २२॥

दृष्ट्वा तदद्भुतं सर्वे उदीच्यां रज उत्थितम्।
ऊचुः परस्परं यज्ञे सदस्या ऋत्विजश्च ते॥ २३॥

किमिदं किमिदं जातं केचिद्ध्यानपरास्तथा।
जाताश्च विस्मयाविष्टा द्विजपत्न्यश्च ते द्विजाः॥ २४॥

वाता न वान्ति प्रथमं कथं कल्प उपस्थितः।
[1]दस्यवो वा भविष्यन्ति कुतः प्राचीनबर्हिषिः॥ २५॥

अहोऽहहह किमयं प्रलयः समुपस्थितः।
किं कर्त्तव्यमतो ह्यस्मात्कुत्र वा गम्यतां त्वरम्॥ २६॥

दक्ष उवाच—

ततो ददर्श पुरुषं शूलाग्रग्रथितेभकम्।
गर्ज्जंतं सर्वसैन्यानि द्रवन्तं मुनिवन्दितम्॥ २७॥

उवाच तान्देवगणान्साध्यान्वै मरुतो गणान्।
सज्जीभवथ युद्धाय नानाशस्त्रविशारदाः॥ २८॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्य कुपितस्य हि।
उत्तस्थुः सर्वतो देवा युद्धाय कृतनिश्चयाः॥ २९॥

आदित्या वसवो देवाः साध्याः किन्नरगुह्यकाः।
विश्वेदेवाश्च पितरो गन्धर्वा उरगाः खगाः॥ ३०॥

१. दस्यव इक।

स्कन्द ने कहा—

शिव से इस प्रकार आदेश पाकर उसने श्रीशिव की परिक्रमा की और उनको नमस्कार करके प्रमथों से घिरा हुआ वह पुरुष चला गया ॥ २० ॥

महादेव से उत्पन्न हुए उस काले-पिंगल वर्ण के पुरुष को आगे करके शिव के गण आनन्द करते हुए, कूदते हुए और हँसते हुए चल पड़े ॥ २१ ॥

महाकाल के समान विनाशक वह पुरुष जगत् का संहार करने वाले शूल को उठाकर सहसा देव-सेनाओं पर टूट पड़ा ॥ २२ ॥

यज्ञ-सभा के सदस्य वे ऋत्विज उत्तर दिशा में उठते हुए उस अद्भुत धूल को देखकर आपस में कहने लगे ॥ २३ ॥

ध्यान में लगे हुए कुछ ब्राह्मण और ब्राह्मण-पत्नियाँ विस्मथ से अविष्ट होकर, यह क्ना हुआ है, यह क्या हुआ है, कहने लगे ॥ २४ ॥

पहले आंधियाँ तो चली ही नहीं हैं, तो यह प्रलय कैसे कैसे उपस्थित हो गई ? इस प्राचीन यज्ञ में दस्यु कहाँ से हो सकते हैं ? ॥ २५ ॥

अहो, अहह, यह क्या प्रलय उपस्थित हो गया है ? हमको अब क्या करना चाहिए ओर यहां से कहाँ जाना चाहिए ? २६ ॥

दक्ष ने कहा—

तदनन्तर उन्होंने शूल के आगे के भाग में हस्ति-चर्म को टांके हुए, सब सेनाओं पर गरजंत हुए और वन्दनीय मुनियों की ओर दौड़ते हुये पुरुष को देखा ॥ २७ ॥

दक्ष ने देवताओं, साध्यों और मरुद्गणों से कहा—हे नाना शास्त्रों में विशारद देखो ! युद्ध के लिये तैयार हो जाओ ॥ २८ ॥

स्कन्द ने कहा—

कुपित दक्ष के इस वचन को सुनकर युद्ध के लिये निश्चय करके सब देवता उठ खड़े हुए ॥ २९ ॥

आदित्य, वसु देवता, साध्य, किन्नर, यक्ष, विश्वेदेव, पितर, गन्धर्व, सर्प, पक्षी··· ॥ ३० ॥

मुनयो मनुषाश्चैव तथान्ये तच्छरीरजाः ।
ऐरावतं समारुह्य वासवोऽपि समाययौ ।। ३१ ।।

नानादेवगणैस्सार्द्ध दक्षसाहाय्यकारकः ।
नानाशस्त्रप्रहरणा युद्धाय कृतनिश्चयाः ।। ३२ ।।

यज्ञस्याविघ्नकर्त्तारः संदष्टौष्ठपुटाश्च ते ।
कुर्वन्तस्तूर्य्यघोषांश्च तथा शंखरवान्द्विजाः ।। ३३ ।।

तेऽपि प्रमथनाथाश्च चक्रुः कोलाहलं परम् ।
घंटाशतानि नादंते शिवो जयति सर्वदा ।। ३४ ।।

इतीरयंतः सुगिरो नानापर्वतशोभिताः ।
चक्रुः परस्परं युद्धं लोमहर्षणकारकम् ।। ३५ ।।

देवगणाः शिवगणाः संदष्टौष्ठपुटास्तथा ।
छिंधि छिंधीति शब्दांश्च भिंदि भिंदि तथैव च ।। ३६ ।।

हन हन महादुष्टं तिष्ठ तिष्ठेति चासकृत् ।
वदन्तो युयुधुर्देवास्तथा प्रमथसत्तमाः ।। ३७ ।।

पाषाणैः पर्वतैः केचिल्लगुडैश्च तथापरे ।
त्रिशूलैः पट्टिशैः खड्गैस्तोमरैः शक्तिभिस्तथा ।। ३८ ।।

एवं परस्परं युद्धं चक्रुर्देवगणास्तथा ।
न रात्रिर्नैव दिवसो न संध्याश्च तथैव च ।
नो व्यज्यन्त तदा विप्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ।। ३९ ।।

सोऽपि वै कालपुरुषो ननर्त्त च रणांगणे ।
अट्टहासं तथा चक्रे नेत्रज्वालसमावृतः ।। ४० ।।

तस्य शव्देन सर्वेषां व्याकुलं चाभवन्मनः ।
तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्देवाः सिद्धा गंधर्व्वपन्नगाः ।। ४१ ।।

दृष्ट्वा तथा द्रवंतस्ताञ्छक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रोवाच सर्वसैन्यानि गजराजोपरिस्थितः ।
आश्चर्य्यमतुलं मत्वा दृष्ट्वा तद्गणचेष्टितम् ।। ४२ ।।

मुनि और मनुष्य और वे सभी जिमको दक्ष ने अपने शरीर से उत्पन्न किया था, उठ खड़े हुये । ऐरावत पर सवार होकर इन्द्र भी आ गया ॥ ३१ ॥

वह इन्द्र अनेक देवगणों के साथ दक्ष की सहायना करने वाला था । विविध शस्त्रों और प्रहारों को लेकर देवताओं ने युद्ध करने का निश्चय कर लिया ॥ ३२ ॥

हे ब्राह्मण नारद ! यज्ञ को निर्बिघ्न समाप्त करने वाले वे होठों को चबाने लगे । वे तुरहियों के घोषों की और शंखों की ध्वनियों को करने लगे ॥ ३३ ॥

वे प्रमथ गण भी परम कोलाहल करने लगे । उन्होंने सैंकड़ों घण्टे बजाये और शिय का जय-जयकार किया ॥ ३४ ॥

वे उत्तम बाणियाँ बोलने लगे और अनेक पर्वत खण्डों से शोभित हो गये । देव-प्रमथ गण परस्पर रोमाञ्चित कर देने वाला युद्ध करने लगे ॥ ३५ ॥

देवता ओर शिव के गण होठों को चबाते हुये ये शब्द कहने लगे - काट डालो, काट डालो । तोड़ डालो, तोड़ डालो ॥ ३६ ॥

इस महादुष्ट को मार डालो, मार डालो । ठहरो, ठहरो । इस प्रकार बार-बार बोलते हुये वे देवता और प्रमथ युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥

वे कुछ तो पाषाणों से, कुछ पर्वतों से, कुछ दूसरे डण्डों से, कुछ त्रिशूलों से, कुछ भालों से, कुछ खड्गों से, कुछ तोमरों से और कुछ शक्तियों से युद्ध कर रहे थे ॥ ३८ ॥

वे प्रमथ और देवता परस्पर युद्ध कर रहे थे । हे विप्र ! उस दारुण अंधकार में न तो रात्रि, न दिन नाहीं संध्या प्रतीत होती थी ॥ ३९ ॥

नेत्रों से ज्वालाओं को बखेंरता हुआ काल पुरुष भी रणक्षेत्र में नाच रहा था और अट्टहास कर रहा था ॥ ४० ॥

उसके शब्द से सबका मन व्याकुग हो गया । उसको देखकर देव, सिद्ध गन्धर्व और सर्प भाग गये ॥ ४१ ॥

तब उनको भागते देखकर तीनों लोकों का स्वामी, गजराज ऐरावत पर बैठा इन्द्र, उन शिवगणों की चेष्ठा को देखकर अत्यधिक आश्चर्य मानकर अपनी सब सेनाओं से बोला ॥ ४२ ॥

इन्द्र उवाच—

रे रे देवगणाः सर्वे निवर्त्तध्वमशंकिताः ।
युद्धं कुरुत मा भैष्ट प्रमथैः सह संयुगे ।। ४३ ।।

स्कन्द उवाच—

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा सर्वे देवा महामते ।
नानाशस्त्रप्रहरणा यद्धाय विनिर्वात्तिताः ।। ४४ ।।

ततो बभूव तुमुलं युद्धं वै लोमहर्षणम् ।
देवानां प्रमथानां च महासंवर्त्तकोपमम् ।। ४५ ।।

अर्द्दयन्ति स्म सकलान्महादेवगणांस्ततः ।
इतस्ततश्च धावन्तो विनेशू रुधिरोक्षिताः ।। ४६ ।।

एकबाह्वक्षिचरणा निपेतुर्धरणीतले ।
हाहाकाररवांश्चैव कुर्व्वंतो नितरां गणाः ।। ४७ ।।

एतस्मिन्नंतरे देवो महादेवसमुद्भवः ।
चकार घंटानिनदं दृष्ट्वा तान् पीडितान् भृशम् ।। ४८ ।।

युयुधुर्देवसंघैश्च पाषाणैः पर्वतैर्भृशम् ।
ततस्ते पार्षदाः सर्वे समुत्तस्थुर्महीतलात् ।। ४९ ।।

निरामया निरातंका द्विगुणं बलमाश्रिताः ।
चक्रुः कोलाहलं शब्दं संदष्टौष्ठपुटाः पुनः ।। ५० ।।

अर्द्दयामासुरसुरान्देवादीन् वासवेरितान् ।
तयोश्च सेनयोर्मध्ये जातो वै रुधिरार्णवः ।। ५१ ।।

उत्पेतुर्गगने तूर्णं महादेवगणास्ततः ।
आकाशं छादयामासुः कृतान्ता इव कोपिताः ।। ५२ ।।

निपेतुर्यज्ञभूमौ तु यत्र देवाः सवासवाः ।
प्राग्वंशं प्रमथाः केचित्केचिदाग्नीध्रकांस्तथा ।। ५३ ।।

पत्नीशालां तथा केचिद्बभञ्जुः कुपितास्तथा ।
महानसं च केचित्तु चूर्णयामासुरुत्तमाः ।। ५४ ।।

इन्द्र ने कहा—

हे देवताओं ! तुम सब बिना शंका के लौट आओ। युद्ध करो। इन प्रमथों के साथ युद्ध में मत डरो ॥ ४३ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे महामते नारद ! इन्द्र के कथन को सुनकर विविध शस्त्रों का प्रहार करने वाले सब देवता युद्ध करने के लिये लौट आये ॥ ४४ ॥

तदनन्तर देवताओं और प्रमथों का महाप्रलयकाल के समान रोमाञ्चित कर देने वाला तुमुल युद्ध हुआ ॥ ४५ ॥

वे देवता सब महादेव के प्रमथों को पीड़ित करने लगे। वे प्रमथ रुधिर से भीगकर इधर-उधर दौड़ते हुए नष्ट हो गये ॥ ४६ ॥

एक भुजा, एक आंख और एक पैर वाले वे शिव के गण बहुत अधिक हा-हाकार करते हुये पृथिवी पर गिर गये ॥ ४७ ॥

इस मध्य में अपने इन गणों को बहुत अधिक पीड़ित हुआ देखकर, महादेव से उत्पन्न हुये उस देव पुरुष ने घण्टे की ध्वनि की ॥ ४८ ॥

तब वे शिव के पार्षद पृथिवी-तल से उठ खड़े हुये और देवताओं के साथ पाषाणों एवं पर्वतों के प्रहारों से बहुत विपुल युद्ध करने लगे ॥ ४९ ॥

वे पीड़ा से रहित होकर, भय से रहित होकरु दुगने बलवान् होकर, होठों को चबाते हुए पुनः कोलाहल करने लगे ॥ ५० ॥

वे असुरों को और इन्द्र से प्रेरित देवताओं को पीड़ित करने लगे। तब उन दोनों सेनाओं के मध्य में रुधिर का समुद्र उत्पन्न हो नया ॥ ५१ ॥

तव महादेव के गण शीघ्र ही आकाश में उड़ गये। यमराज के समान कुपित होकर उन्होंने आकाश को आच्छादित कर लिया ॥ ५२ ॥

वे उस यज्ञ भूमि पर टूट पड़े, जहाँ इन्द्र सहित देवता उपस्थित थे। कुछ ने यज्ञशाला की ध्वजा को (प्राग्वंश) और कुछ ने यज्ञाग्नि के स्थान (अग्निध्रक) को तोड़ डाला ॥ ५३ ॥

कुछ कुपित हुए गणों ने दक्ष के अन्तःपुर को तोड़ दिया। कुछ उत्तम गणों ने उसके रसोईघर को तोड़ डाला ॥ ५४ ॥

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तद्विहारं तथापरे।
अग्नीन्वै नाशयामासुर्बिभिदुर्लेदिकांस्तथा ॥ ५५ ॥

कुंडेष्वमूत्रयन्केचिद्विष्ठां चक्रुस्तथा परे।
मुनीनां च तथा पत्नीरेके वाग्भिरतर्जयन् ॥ ५६ ॥

केचिद्वै जगृहुर्देवानासन्नांश्च पलायितान्।
मणिमान्नाम विप्रर्षे बबन्ध भृगुमंजसा ॥ ५७ ॥

वीरभद्रोऽपि दक्षं च चंडीशः पूषणं तथा।
नंदीश्वरोऽग्रहीद्विप्र भगं नाम महाबलम् ॥ ५८ ॥

सर्वांस्तानृत्विजो देवः सदस्यान्सदिवौकसः।
अर्दयामासुरुग्रास्ते ग्रावभिर्मुष्टिभिस्तथा ॥ ५९ ॥

तांस्ते तथाविधान्दृष्ट्वा शेषास्ते प्राद्रवन्दिशः।
सदस्यादाय सर्वेषां मणिमान्नाम नामतः ॥ ६० ॥

भृगोः श्मश्रूणि सहसा लुलुंच प्रहसन्निव।
पातितस्य [1]भगस्याशु नेत्रे वै उज्जहार सः ॥ ६१ ॥

नंदीश्वरो महादेवगणो वै विप्रसत्तम।
चंडीशः पातयद्दन्तान्पूष्णश्चैव महामते ॥ ६२ ॥

शप्यमानं महादेवं दन्तान्योऽदर्शयत्खलः।
वीरभद्रो महाबाहुर्दक्षस्योरसि हेतिना।
आक्रम्य सहसा पद्भ्यां छिन्दन्नपि महेश्वरः ॥ ६३ ॥

तदुद्धर्तुं हि शस्त्रैश्च स मंत्रैरपि तत्त्वचम्।
अभिन्दन्स तदा देवो वीरभद्रो महागणः ॥ ६४ ॥

विस्मयं परमं लेभे दध्यौ पशुपतिश्चिरम्।
दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं मखे तस्य प्रजापतेः ॥ ६५ ॥

तेनासौ वीरभद्रस्तु यजमानपशोः शिरः।
कायात्समाहरच्छीघ्रं दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ ६६ ॥

१. भृगोश्चाथ।

दूसरे गणों ने यज्ञ के पात्रों को और कुछ ने यज्ञ के परिक्रमा स्थल (विहार) को तोड़ दिया। अन्य गणों ने अग्नि को नष्ट कर दिया और वेदियों को तोड़ डाला ॥ ५५ ॥

कुछ गणों ने यज्ञकुण्डों में पेशाब कर दी तथा कुछ ने टट्टी कर दी। कुछ गणों ने मुनियों की पत्नियों को वाणियों से झिड़का ॥ ५६ ॥

कुछ गणों ने समीप विद्यमान और भागते हुए देवताओं को पकड़ लिया। हे विप्रर्षे! मणिमान् नामक गण ने शीघ्रता से भृगु को पकड़ा ॥ ५७ ॥

वीरभद्र ने दक्ष को और चण्डीश ने पूषण को पकड़ लिया। हे विप्र! नारद! नन्दीश्वर ने महाबलशाली चन्द्रमा (भग) को पकड़ लिया ॥ ५८ ॥

उस रुद्रोत्पन्न देवपुरुष ने सब ऋषियों को पकड़ लिया। वे शिव-गण पत्थरों तथा मुक्कों के प्रहारों से यज्ञ-सभा के सदस्यों और देवताओं को पीड़ित करने लगे ॥ ५९ ॥

उन सबकी इस प्रकार की अवस्था को देखकर वे सब देवता वहाँ से दिशाओं में भाग गये। उन सबको यज्ञ-सभा में पकड़ कर मणिमान् नाम के गण ने···॥ ६० ॥

सहसा हँसने हुये भृगु मुनि के दाढ़ी-मूँछ नोच डाले। चन्द्रमा को गिराकर उसकी आँखों को शीघ्रता से उसने (नन्दीश्वर) उखाड़ लिया ॥ ६१ ॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण नारद! महादेव के गण नन्दीश्वर ने यह कार्य किया। हे महामते! चण्डीश नाम के गण ने सूर्य के दान्तों को तोड़ डाला ॥ ६२ ॥

महादेव को कोसते जो दुष्ट दक्ष दान्त दिखा रहा था, उस दक्ष के वक्षःस्थल पर महाबाहु वीरभद्र ने शस्त्र से और पैरों के प्रहारों से आक्रमण किया। वह महेश्वर उसको काट देना चाह रहा था ॥ ६३ ॥

तब उस महागण वीरभद्र देव ने उसको मारने के लिये मन्त्रों द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों से उसकी त्वचा को काट दिया ॥ ६४ ॥

उस प्रजापति के यज्ञ में वीरभद्र के शत्रुबध करने के चातुर्य (संज्ञपन योग) को देखकर पशुपति शिव को देर तक परम आश्चर्य हुआ ॥ ६५ ॥

तदनन्तर उस शस्त्र से वीरभद्र ने अपने हस्तलाघव का प्रदर्शन करते हुए यजमान रूपी पशु दक्ष के सिर को शीघ्र ही उसके शरीर से काट लिया ॥ ६६ ॥

साधुवादो बभूवाथ प्रमथानां महात्मनाम् ।
हाहाकाररवश्चासीदन्येषां च मुनीश्वर ॥ ६७ ॥

अग्नौ जुहाव तच्छीघ्रं दक्षिणाग्नावमर्षितः ।
तत्कृत्वा स महादेवः प्रतस्थे गिरिनायकम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं
नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कैलासं गत्वा इन्द्रादिदेवैश्शिवस्य स्तवनं प्रीताच्च शिवात् तस्मिन् यज्ञे विरूपितानां देवानां पूर्ववत्करणं, दक्षशरीरेऽजशिरोयोजनेन तस्य पुनरुज्जीवनं दक्षस्य प्रार्थनया सत्याः शीघ्रं पुनर्देहप्राप्तिवरदानं हरिद्वारस्यान्वर्थकं मायाक्षेत्रनामकरणम्

स्कन्द उवाच—

अथ सर्वे देवगणाः प्रमथैश्च पराजिताः ।
शरैर्निकृतसर्वांगा ऋत्विग्भिः सहितास्तथा ॥ १ ॥

सदस्याश्च निरुत्साहाः श्रीमत्प्रमथनिर्जिताः ।
भयाकुलास्ततः सर्वे प्रणम्योचुर्महेश्वरम् ॥ २ ॥

देवगणाः ऊचुः —

क्षम्यता क्षम्यतां देव क्षमासारा भवादृशाः ।
यदि मन्येयुरधियां भवन्तो वापराधकम् ।
उत्कृष्टतां कथं देव भवतां प्रवरात्मनाम् ॥ ३ ॥

वयं मानप्रमत्ताः स्मः स्वतो भागो भवादृशाम् ।
न च त्वामनमन्देव तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ४ ॥

ज्ञातोऽसि त्वं महादेव देवानामपि देवता ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वर ! उस समय महात्मा प्रमथ साधुवाद करने लगे और दूसरों के पक्ष में हाहाकार शब्द होने लगा ।। ६७ ।।

तब क्रोधित वीरभद्र ने दक्ष के उस सिर को शीघ्रता से दक्षिणाग्नि (दक्षिण दिशा में यज्ञार्थ स्थापित अग्नि) के अर्पित कर दिया । यह कार्य करके वह महादेव वीरभद्र हिमालय की ओर चल दिया ।। ६८ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य वर्णन नाम का १०४ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय १०५

कैलास पर्वत पर जाकर इन्द्र आदि देवताओं द्वारा शिव की स्तुति करना । प्रसन्न हुये शिव द्वारा उस यज्ञ में विरूपित देवताओं को पूर्व के समान कर देना । दक्ष के शरीर पर बकरे का सिर लगाकर उसको पुनः जीवित कर देना । दक्ष की प्रार्थना करने पर सती के लिये पुनः शरीर-प्राप्ति का वर देना । हरिद्वार का अर्थ के अनुकूल मायाक्षेत्र नाम रखना

स्कन्द ने कहा—

इसके पश्चात् ऋषियों सहित सभी देवताओं को प्रमथों ने पराजित कर दिया । उनके सब अंगों को उन्होंने बाणों से काट डाला था ।। १।।

श्रीमान् प्रमथों से पराजित होकर वे यज्ञ के सदस्य निरुत्साहित हो गये थे । तदनन्तर भय से व्याकुल होकर उन्होंने महेश्वर पुरुष को प्रणाम करके कहा ।। २।।

देवताओं ने कहा—

हे देव ! क्षमा करो । क्षमा करो । आप जैसे क्षमाशील होते हैं । आप हम जैसे बुद्धि-रहितों के अपराध को न मानें । हे देव ! आप जैसे भी बुद्धिरहितों के अपराध को मानने लगेंगे (क्रोध करेंगे) तो आप जैसे श्रेष्ठ महात्माओं कीं उत्कृष्टता कैसे रह सकेगी ।। ३ ।।

हम अभिमान से प्रमादी हो गये थे । आप जैसों का यज्ञभाग स्वतः ही होता है । हे देव ! हमने तुमको प्रणाम नहीं किया था, उस कार्य का ही यह फल है ।। ४ ।।

हे महादेव ! हम समझ गये है कि तुम देवताओं के भी देवता हो ।। ५ ।।

पुरुष उवाच—

यथा यूयं तथाहं वै किंकरो जगदीशितुः।
गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे कृतागसि महेश्वरे॥ ६॥

प्रसादयध्वं भक्त्या वै विरोधं त्यज्य सत्वरम्।
निजक्षेमनिमित्तं हि भक्तिगम्यं महेश्वरम्॥ ७॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे देवगणास्ततः।
वेपमाना भयग्रस्तास्त्राहि त्राहीति चासकृत्॥ ८॥

वदन्तो मुनयः सिद्धाः सदस्याः सार्त्विजस्तथा।
[1]ब्रह्माणं वै पुरस्कृत्य संबद्धांजलयश्च ते॥ ९॥

महादेव महादेव महादेवेति वं पुनः।
गृणंतो विबुधाः सर्वे हाहाकाररवांस्तथा।
कैलासं रुरुहुश्चैव सेन्द्राः सर्वदिवौकसः॥ १०॥

वनस्थलीश्च पश्यन्तो हिमपुंजविमंडिताः।
स्वर्णान्वृक्षास्तथा विप्र पुंस्कोकिलसुकूजितान्॥ ११॥

पापिसंदुर्गमांस्तत्र वापीः स्वच्छजलाश्च ते।
कुमुदोत्पलशोभाढ्या अलिपुंजमनोहराः॥ १२॥

नानापक्षिमृगाकीर्णान्नानाभिल्लशताकुलान्।
पर्वतान्सर्वतो विप्र पश्यन्तो वासवादयः॥ १३॥

जग्मुः कैलासशिखरे नानामुनिगणान्विते।
तत्र गत्वा महेशानं ददृशुर्भूतिभूषितम्॥ १४॥

सर्पालंकारसंयुक्तं गजचर्म्मोपशोभितम्।
प्रियया रहितं देवं सर्वज्ञं परमेश्यरम्॥ १५॥

त्रिनेत्रं परितो विप्र सिद्धचारणसेवितम्।
सनकाद्यैर्महाभक्तैस्तूयमानं विभुं सुराः॥ १६॥

---

१. ब्रह्मणः।

पुरुष ने कहा—

जैसे तुम हो, वैसे ही मैं जगत् के स्वामी शिव का सेवक हूँ। हे देवताओ ! तुम सब उस महेश्वर के पास जाओ, जिसके प्रति तुमने अपराध किया है ॥ ६ ॥

तुम उसको भक्ति से प्रसन्न करो। अपने कल्याण के लिये ही भक्ति से गम्य उस महेश्वर के प्रति विरोध को शीघ्र छोड़ दो ॥ ७ ॥

स्कन्द ने कहा—

उस पुरुष के इस वचन को सुनकर, उसके पश्चात् भय से ग्रस्त हुये, कांपते हुए, रक्षा करो, रक्षा करो, कहने लगे ॥ ८ ॥

इस प्रकार से कहते हुये वे मुनि, सिद्ध और यज्ञ-सभा के सदस्य ऋत्विज ब्रह्मा को आगे करके और हाथों को जोड़कर··· ॥ ९ ॥

महादेव, महादेव, महादेव इस प्रकार पुनः पुनः पुकारने लगे। वे सब देवता हाहाकार शब्द उच्चारित करने लगे। इन्द्र सहित सभी देवता कैलास पर्वत पर चढ़े ॥ १० ॥

उन्होंने हिम के ढेरों से शोभित वनस्थलियों को देखा। हे विप्र ! उन्होंने पुरुष-कोकिलों से कूजित स्वर्णिम वृक्षों को देखा ॥ ११ ॥

वे वन पापियों के लिये दुर्गम थे। वहाँ कुमुदों और उत्पलों की शोभा से सम्पन्न और भ्रमरों के समूहों से मनोहर स्वच्छ जल से भरी हुई बावड़ियाँ थीं ॥ १२ ॥

अनेक पक्षियों और मृगों से भरे हुये तथा सैकड़ों मीलों में व्याप्त पर्वतों को इन्द्र आदि देवताओं ने सब ओर देखा ॥ १३ ॥

वे अनेक मुनियों से युक्त कैलास पर्वत के शिखर पर गये। वहाँ उन्होंने भस्म से विभूषित महेशान शिव को देखा ॥ १४ ॥

वे शिव सर्प के अलंकारों से युक्त थे और हाथी के चर्म से शोभित थे। सर्वज्ञ देव परमेश्वर प्रिया से रहित थे ॥ १५ ॥

हे विप्र ! उनके तीन नेत्र थे, चारों ओर सिद्ध और चारण उनकी सेवा कर रहे थे। देवताओं ने सनक आदि भक्तों से स्तुति किये जाते हुये विभु शिव को देखा ॥ १६ ॥

चिन्तयन्तं सतीं देवीं लोकानां मोहहेतवे ।
दृष्ट्वा शिवं राजमानं कैलासाद्रिमिवापरम् ।
भक्त्या गद्गद्या वाचा ब्रह्मा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच—
नमो नमस्ते शतशो नमस्ते विभो त्रिनेत्रारिनिषूदन प्रभो ।
त्वमेव पाता सुरमानवानां त्वमेव हर्त्ता नयनाग्निना च ॥ १८ ॥

न चादिरंतर्न च रूपमस्ति ते त्वमेव हे नाथ सुराधिकारणम् ।
वयं हि देवेशवर प्रभो भोः संमोहितास्ते जगदात्मशक्त्या ॥ १९ ॥

न विद्महेंऽतर्भवतो भवेश रूपं न भेदं किल सर्वमध्ये ।
अहं न जाने नितरामिदानीं सर्वस्य विश्वस्य परं निदानम् ॥ २० ॥

शिवस्य शक्तेश्च परं तु यद्वै तद्वै भवानादिजनिर्महेश ।
भिन्नश्च शक्त्या भगवान्भवान्वै त्वत्संगता सा जगदात्मशक्तिः ॥ २१ ॥

सर्वं सृजंतेति वदन्ति सर्वे येषां मनस्त्वच्चरणारविन्दे ।
पुनस्त्वमेवाखिललोकपालको मायागुणप्रेरणया महेश्वरः ॥ २२ ॥

त्वमेव चान्ते निधनप्रकारको भवस्य भिन्नो भगवान्भवा भवान् ।
त्वमेव धर्मार्थसुखप्रवर्त्तको यज्ञो भवान्सर्वगतस्त्वमेकः ॥ २३ ॥

त्वयैव देवेश भवेश सेतवो धर्मस्य तत्त्वस्य कृताः पुरातनाः ।
यद्वै परं ब्रह्म महेश योगिनो ध्यायन्ति तत्त्वार्थवदोऽक्षरं परम् ॥ २४ ॥

निर्लेपकं ज्योतिरमेयमीश्वरं तद्वै भवान्भावितसर्वजीवकः ।
सत्कर्मणां कर्म भवान्भवाकरः सुमगलं यद् भवमङ्गलानाम् ॥ २५ ॥

तेजः परं यद्रविपूर्वकानां त्वमेव यद्वै यदकिंचिदस्ति ।
यद्बुद्धिदाता भगवान्महेश्वरः कुबुद्धिदस्त्वं भवबन्धकारणम् ॥ २६ ॥

लोकों को मोहित करने के लिये वे सती देवी का चिन्तन कर रहे थे। मानों दूसरा कैलास पर्वत हो, ऐसे दीप्तिमान् शिव को देखकर ब्रह्मा ने भक्ति से गद्गद् वाणी से उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ १७ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

हे विभो, त्रिनेत्र, अरिनिजूदन, प्रभो ! तुमको नमस्कार है, सैकड़ों बार नमस्कार है। तुम ही देवताओं और मनुष्यों की रक्षा करते हो और तुम ही नेत्र की अग्नि से उनका संहार करते हो ॥ १८ ॥

हे नाथ ! न तो तुम्हारा आदि है और नाहीं अन्त है। तुम्हारा कोई रूप नहीं है। तुम ही देवताओं पर अधिकार रखते हो। हे देवेश्वर प्रभो ! हम तुम्हारी जगत् की आत्मशक्ति से सम्मोहित हो गये हैं ॥ १९ ॥

हे भवेश ! हम तुम्हारे आन्तरिक रूप को नहीं जानते। हम सबके मध्य में तुम्हारे भेद को नहीं जानते। अब सम्पूर्ण विश्व के परम कारणभूत तुमको बिल्कुल नहीं जान पा रहा हूँ ॥ २० ॥

हे महेश ! शिव का और शक्ति का जो परम सम्बन्ध है, उसके तुम ही आदि कारण हो। तुम भगवान् हो तथा शक्ति से भिन्न हो। तुमसे संगत होकर वह शक्ति जगत् की आत्मशक्ति होती है ॥ २१ ॥

जिनका मन तुम्हारे चरण-कमल में रहता है, वे सब कहते हैं कि तुम सबकी सृष्टि करते हो। पुनः तुमही महेश्वर होकर माया के गुण की प्रेरणा से सब लोगों का पालन करते हो ॥ २२ ॥

तुम ही अन्त में लोकों का निधन करने वाले हो। तुम ही भगवान् से भिन्न भी हो और तुम ही भगवान् हो। तुम ही धर्म, अर्थ और सुख के प्रवर्तक यज्ञ हो। तुम एक होते हुये भी सर्वव्यापक हो ॥ २३ ॥

हे देवेश, भवेश ! तुमने ही धर्म के तत्त्व के पुरातन सेतुओं को बनाया है, हे महेश ! जो कि तुम परम ब्रह्म हो। तत्त्व-अर्थ को जानने वाले योगी परम अक्षर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं ॥ २४ ॥

तुम निर्लेप, ज्योतिरूप, अमेय, ईश्वर और सब जीवों के प्राणभूत हो। संसार का मंगल करने वाले उत्तम कर्मों में तुम ही सुमंगल कर्म को निहित करने वाले हो ॥ २५ ॥

सूर्य आदि तेजों में जो कुछ तेज और अन्य जो कुछ भी है, वह तुम ही हो। भगवान् महेश्वर ! तुम ही बुद्धि को देने वाले हो और भव-बन्धन की धारणा भूत कुबुद्धि को देने वाले भी तुम ही हो ॥ २६ ॥

यद्वै जगत्यां क्रियते हि जंतुभिः सर्वस्य बीजं जगदाकर प्रभो।
क्षणेन यद्वै कृतमाननाशनं समास्यते सर्वसुहृद्द्विषत्सु च । २७ ॥

न जायते वै महतां भवादृशां मानस्य भंगः कुकृतो महेश्वर।
क्षमस्व दक्षस्य कृतापराधं रक्षस्व लोकान्स्वकृतानकाले।
लयं विभो देववर प्रभेशनेत्रं प्रगच्छंतितरां हि सर्वे॥ २८॥

स्कन्द उवाच –
इति स्तुतो वै भगवान्पुरारिर्धात्रा सबद्धांजलिना मुनीश।
मुनीश्वरा वै प्रणतार्त्तिनाशं महेश्वरं तुष्टुवुरामहेन्द्राः॥ २९॥
मुनिगणाः ऊचुः —
क्षमस्व हे नाथ दुरात्मभिः कृतं महेश नानाविधमप्यशेषकम्।
यद्वापराधं तव भागनाशनं रक्षस्व सर्वाणि जगन्ति नायक॥ ३०॥

नमस्तस्मै महेशाय नमस्तस्मै हि भूभृते।
नमस्तस्मै निरीशाय नमस्तस्मै सुबाहवे॥ ३१॥

नमस्स्मै सुनेत्राय नमस्तस्मै विबाहवे।
नमस्तस्मै विगुरवे नमस्तस्मै प्रधावते॥ ३२॥

नमस्तस्मै महेन्द्राय नमस्तस्मै हि धावते।
नमस्तस्मै विषवते नमस्तस्मै स्थिरात्मने॥ ३३॥

नमस्तस्मै सुविभवे नमस्तस्मै शिवात्मने॥ ३४॥
इन्द्र उवाच—
भक्त्या भजेऽहं भवतो महेश पादारविन्दं द्रुहिणादिगम्यम्।
यत्सेवनाद्याति नरो महेशं निवृत्तमायागुणसंप्रवाहः॥ ३५॥

वन्दे प्रभुं भयहरं शरणागतानां सद्विद्यया निजगुरुं भवमेकमाद्यम्।
संसेवितांघ्रिकमलं प्रमथैः सुरैस्तु नानानृमुंडकृतहस्तजलैर्महद्भिः॥ ३६॥
देवगणाः ऊचुः —
शिव प्रसन्नतां यातु पातु नो निजबालकान्।
य एव त्रिषु लोकेषु नाना भाति जगन्मयः॥ ३७॥

हे जगत् की रचना करने वाले प्रभो ! संसार में जन्तु जो कुछ भी कार्य करते हैं, उसका बीज तुम ही हो। किसी भी क्षण में जो अभिमान का नाश किया जाता है, वह सब मित्रों और शत्रुओं में तुम्हारे द्वारा संयोजित होता है ॥ २७ ॥

हे महेश्वर ! दुष्ट मनुष्यों द्वारा किये जाने पर भी आप जैसे महान् व्यक्तियों के मान का भंग नहीं होता। दक्ष के किये अपराध को क्षमा करो। अपने ही रचे गये लोकों की असमय में विनाश से रक्षा करो। हे देववर विभो ! सब लोक तुम्हारे ही प्रभायुक्त नेत्र में विलय को प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे मुनीश नारद ! अंजलि को बांधकर विधाता ब्रह्मा ने इस प्रकार पुरारि शिव की स्तुति की। महेन्द्र से लेकर मुनीश्वरों तक ने विनयशीलों की पीडा नष्ट करने वाले महेश्वर की स्तुति की ॥ २९ ॥

मुनियों ने कहा—

हे महेश नाथ ! हम दुष्टों ने जो नानाविध दुष्कर्म किया है. उसको सम्पूर्ण रूप से क्षमा करो। तुम्हारे भाग को नष्ट करने का जो अपराध किया है, उसको क्षमा करो। हे नायक ! सब लोकों की रक्षा करो ॥ ३० ॥

उस महेश के लिए नमस्कार है। पृथिवी का पालन करने वाले उसके लिये नमस्कार है। जिसका कोई स्वामी नहीं, ऐसे महेश को नमस्कार है। उत्तम भुजाओं वाले उसके लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥

उस उत्तम नेत्र वाले के लिये नमस्कार है। उस विशेष भुजाओं वाले के लिये नमस्कार है। उस विशेष गुरु के लिये नमस्कार है। उस उत्कृष्ट धावक के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥

उस महेन्द्र के लिये नमस्कार है। सबसे तेज दौड़ने वाले के लिये नमस्कार है। उस विप का भक्षण करने वाले के लिये नमस्कार है। उस स्थिरात्मा के लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥

उस उत्तम विभव वाले के लिये नमस्कार है। उस शिदात्मा के लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥

इन्द्र ने कहा—

हे महेश ! ब्रह्मा आदि से गम्य तुम्हारे चरण-कमल का मैं भक्ति से भजन करता हूँ, जिनके सेवन से मनुष्य माया के गुणों के प्रयाह से मुक्त होकर महेश को प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥

शरणागतों के भय को हरने वाले तथा उत्तम विद्या से संसार के एकमात्र आदि अपने गुरु प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ। अनेक नरमुण्डों की माला को हाथ और गले में डाले हुए महान् प्रमथ और देवता उनके चरण-कमल की सेवा करते हैं। ३६ ॥

देवताओं ने कहा—

शिव प्रसन्न होवें। वे हमारे बालकों की रक्षा करें, जो तीनों लोकों में विविध प्रकार से जगन्मय होकर प्रकाशित होते हैं ॥ ३७ ॥

नमस्कुर्म्मो वयं देवाः प्रपन्नाश्चरणाय ते ।
अनेकसिद्धिसंसेव्यरजसे प्रभवे तथा ॥ ३८ ॥

रक्ष नो रक्ष नो देव दह्यमानान्समन्ततः ।
क्षम्यतां क्षम्यतामीश क्षमावन्तो भवादृशाः ॥ ३९ ॥

अस्माभिर्भगवान्देव न ज्ञातोऽसि विमोहितैः ।
मायया ते महादेव शिक्षेयं परमा कृता ॥ ४० ॥

स्कन्द उवाच—

इति स्तुतो महादेवो भक्तिमद्भिः सुरासुरैः ।
प्रसन्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं सर्वानिव दिवौकसः ॥ ४१ ॥

श्रीशिव उवाच—

प्रसन्नोऽस्मि परं ब्रूत सर्वे देवाः सवासवाः ।
मयि प्रसन्ने जगति दुर्ल्लभं न हि विद्यते ॥ ४२ ॥

अतः परं महाभागा ईदृशं कर्म्म गर्हितम् ।
यूयं मा कुरुत क्षिप्रं शान्तिर्भवतु वः सुराः ॥ ४३ ॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा महादेववाचो हृष्टतनूरुहाः ।
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे गृणन्तो देवतागणाः ॥ ४४ ॥

देवगणा ऊचुः —

पुनर्जीवतु दक्षौऽसौ परमात्मन्महाशयः ।
भगस्य नेत्रे भवतां पूष्णो दन्तास्तथैव च ॥ ४५ ॥

अश्विनो वाहवश्चैव सर्वांगा देवतागणाः ।
यज्ञः संपूर्णतां यातु शान्तिरस्तु सदा हि नः ॥ ४६ ॥

यदा दास्यन्ति वै दुष्टा दुःखं स्वजनबल्लभ ।
रक्षणीयास्त्वया देव वयं मोहविमोहिताः ॥ ४७ ॥

श्रीसदाशिव उवाच—

श्रूयतां हे देवगणा अपराधं न चिंतये ।
अस्मिन्मायाभिभूतानां दण्डोऽयं संधृतो मया ॥ ४८ ॥

हम देबता नुमको नमस्कार करते हैं। हम तुम्हारे चरणों में शरणागत हैं। तुम्हारे चरणों की धूलि की सेवा अनेक सिद्धियों से सम्पन्न होती है। ये चरण सर्व समर्थ हैं ।। ३८ ।।

हे देव ! सब ओर से जलते हुये हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। हे ईश ! क्षमा करो, क्षमा करो। आप जैसे क्षमाशील होते हैं ।। ३६ ।।

हे भगवान् देव ! हमने तुम्हारी माया से विमोहित होकर ही तुम्हारे स्वरूप को नहीं जाना था। हे महादेव ! तुनने हमको यह परम शिक्षा दी है ।। ४० ।।

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार भक्तिशाली सुर-असुरों से स्तुति किये जाते हुए महादेव ने प्रसन्न होकर सभी देवताओं से यह बात कही ।। ४१ ।।

श्रीशिव ने कहा—

इन्द्र सहित हे सभी देवताओ ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसन्न होने पर संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ।। ४२ ।।

हे महाभागो ! इसके पश्चात् इस प्रकार का निन्दनीय काम मत करना। हे देवताओ ! तुमको शीघ्र शान्ति प्राप्त होदे ।। ४३ ।।

स्कन्द ने कहा—

महादेव की इस वाणी को सुनकर सब देवता प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो गये। वे महादेव की स्तुति करते हुए अंजलि बांधकर बोले ।। ४४ ।।

देवताओं ने कहा—

हे परमात्मन् ! वह महाशय दक्ष पुनः जीवित हो जावे। आप चन्द्रमा को नेत्र और सूर्य को दान्त प्रदान कर दें ।। ४५ ।।

अश्विनी देवताओं की भुजायें पूरी हो जावें और अन्य देवताओं के सब अंग सम्पूर्ण हो जावें। दक्ष का यज्ञ सम्पूर्ण हो जावे और हमें सदा शान्ति प्राप्त हो ।। ४६ ।।

अपने जनों पर प्रेम करने वाले हे महादेव ! दुष्ट लोग जब हमको दुःख दें तो मोह से विमोहित हमारी तुम रक्षा करना ।। ४७ ।।

सदाशिव ने कहा—

हे देवताओ ! सुनो। मैं इस विषय में तुम्हारे अपराध का विचार नहीं करता हूँ। माया से अभिभूत तुमको मेंने यह दण्ड दिया है ।। ४८ ।।

दक्षः प्रजापतिर्देवा दग्धशीर्षो भवत्यसौ।
शिरसाऽजमुखेनाशु मत्प्रसादे पुनः सुराः॥ ४६॥

मित्रस्तु चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः।
पूषा जक्षतु दद्भिश्च यजमानस्य पिष्टकम्॥ ५०॥

देवाः सर्वेऽपि सर्वांगा भवन्तु विगतज्वराः।
पूष्णो दन्ता बाहवश्च दस्रयोः कृतहस्तकाः॥ ५१॥

भवन्त्वध्वर्यवः सर्वे भृगुर्वै श्मश्रुमान्भवेत्।
अन्येऽपि ये ये विकृताः स्वस्थाः सर्वे भवन्तु ते॥ ५२॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्तवति देवेशे सर्वे देवाः सवासवाः।
साधु साध्वब्रुवंस्ते वै गृणन्तो गिरिजापतिम्॥ ५३॥

ततो देवं समामंत्र्य सर्वे देवाः सवासवाः।
आजग्मुः सशिवा यज्ञमस्मिन् क्षेत्रे महाशयाः॥ ५४॥

संविधाय च तत्सर्वं यदाह भगवान्हरः।
सवनीयपशोस्तस्य शिरो दक्षस्य संदधुः॥ ५५॥

संधीयमाने तच्छीर्ष्णि दक्षो नाम प्रजापतिः।
शिवाभिर्वीक्षितः शीघ्रमुत्तस्थौ सहसा भवम्॥ ५६॥

संददर्श महारुद्रं तद्द्वेषकलुषीकृतम्।
[1]दर्शनादभवच्चैव यथाच्छःशारदो ह्रदः॥ ५७॥

शिवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोद् वाष्पगद्गदः।
सुतां परेतां हि सतीं संस्मरन्दुःखपीडितः॥ ५८॥

प्रेमविह्वलतां प्राप्तो मुहूर्त्तप्राप्तसंज्ञकः।
निर्व्यलीकेन मनसा तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ५९॥

---

१. तद्दर्शनादभयच्च।

हे देवताओ ! इस दक्ष प्रजापति का सिर अग्नि में जल गया है। हे देवताओ ! मेरी कृपा से यह पुनः शीघ्र बकरे के सिर से युक्त हो जीवित हो ॥ ४६ ॥

सूर्य अपने यज्ञ के भाग में से चन्द्रमा को देगा और वह उसकी आँख से देखेगा। यजमान द्वारा प्रदत्त पोषक हवि को सूर्य (पूजा) अपने दान्तों से खायेगा ॥ ५० ॥

देवताओं के सभी अंग पूरे हो जायेंगे ओर उनकी पीड़ा दूर हो जायेगी। पूषा के दान्त लगेंगे और अश्विनी देवताओं की भुजाये होंगी। कृत्रिम हाथ··· ॥ ५१ ॥

सब अध्वर्ययों के हो जायेंगे। भृगु मुनि की दाढ़ी-मूँछ हो जायेगी और भी जिन-जिन के अंगों में विकृति हो गई है, वे सब स्वस्थ हो जायेंगे ॥ ५२ ॥

स्कन्द ने कहा—

देवेश महादेव के इस प्रकार कहने पर इन्द्र सहित सभी देवताओं ने साधु-साधु कहा और गिरिजापति शिव की स्तुति की ॥ ५३ ॥

तदनन्तर इन्द्र सहित सभी देवताओं ने महादेव को आमन्त्रित किया और वे महाशय देवता शिव को साथ लेकर उस क्षेत्र में यज्ञ में आ गये ॥ ५४ ॥

जैसा-जैसा भगवान् शिव ने कहा था, वैसा सब करके उन्होंने यज्ञीय पशु बकरे के सिर को उस दक्ष के धड़ पर जोड़ दिया ॥ ५५ ॥

उस सिर का सन्धान कर दिये जाने पर दक्ष नाम का प्रजापति शिवाओं से देखा जाता हुआ सहसा उठ खड़ा हुआ। उसने भव को··· ५६ ॥

और उसके प्रति द्वेष से कलुषीकृत महादेव को देखा। उसके दर्शन से ही वह वैसा ही स्वच्छ हो गया, जैसे कि शरत्कालीन जलाशय होता है ॥ ५७ ॥

शिव की स्तुति करने के लिये विचार करके भी मृत पुत्री सती का स्मरण करके शोक से पीड़ित, आँसुओं से गद्गद वह कुछ नहीं कह सका ॥ ५८ ॥

वह दक्ष प्रेम से विह्वल हो गया। मुहूर्त भर याद होश में आकर उसने निश्चल मन से परमेश्वर शिव की स्तुति की ॥ ५९ ॥

दक्ष उवाच—

अनुग्रहस्तु भवता कृतो वै मम सांप्रतम्।
युक्तो दण्डस्त्वयाऽसत्सु कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ ६० ॥

अवज्ञा या कृता देव मया ते पापबुद्धिना।
मोहितो नितरां देव मायया भवतः प्रभोः ॥ ६१ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते निर्गुणाय महात्मने।
निरंजनाय शांताय योगिनां पतये नमः ॥ ६२ ॥

मीढुष्टमाय भवते शर्वाय सुकृते नमः।
हिरण्यरेतसे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥ ६३ ॥

हिरण्यकृतबंधाय हिरण्यपशुमर्द्दिने।
हिरण्यमृगहंत्रे च हिरण्याक्षविमोहिने ॥ ६४ ॥

अग्निवर्णाय ते देव वह्निनेत्राय ते नमः।
वह्नौ कृतनिवासाय नमोऽग्निमुखतेजसे ॥ ६५ ॥

अग्निष्टोमनिवासाय राजसूयनिवासिने।
राजराजसुसेव्याय राजराजालयस्थित ॥ ६६ ॥

प्रभूणां पतये तुभ्यं नमस्ते परमेष्ठिने।
कपर्दिने नमस्तुभ्यं व्युप्तकेशाय ते नमः ॥ ६७ ॥

सहस्रधन्वने तुभ्यं नमस्तेऽङ्गरवर्चसे।
भूतिभूषितदेहाय सर्वैश्वर्यप्रदायिने ॥ ६८ ॥

नमस्त्रिशूलहस्ताय नागयज्ञोपवीतिने।
नरमुंडसुमाल्याय चन्द्रार्द्धकृतशेखर ॥ ६९ ॥

नमस्तुभ्यं सुरेशाय नमस्तुभ्यं परात्मने।
जगत्संहारकर्त्रे ते जगत्पालयते नमः ॥ ७० ॥

स्कन्द उवाच—

इदं स्तोत्रं पठेत्प्रातः समुत्थाय कृतांजलिः।
संपदस्तस्य जायन्ते दुःस्वप्नादि विनश्यति ॥ ७१ ॥

दक्ष ने कहा—

आपने निश्चय से अब मेरे ऊपर कृपा की है। कल्याण करने के इच्छुक तुमको चाहिए कि दुष्टों को उचित दण्ड दो ॥ ६० ॥

हे देव ! मुझ पापी बुद्धि ने जो तुम्हारी अवज्ञा की थी, तो हे देव प्रभो ! मैं तुम्हारी ही माया से बहुत मोहित हो गया था ॥ ६१ ॥

तुम भगवान्, निर्गुण महात्मा के लिए नमस्कार है। सत्य स्वरूप, शान्त और योगियों के स्वामी तुमको नमस्कार है ॥ ६२ ॥

अतिशय वीर्यवान्, दुष्टों की हिंसा करने वाले और उत्तम कार्य करने वाले तुमको नमस्कार है। स्वर्ण के समान दीप्तिमात् और स्वर्ण आदि सम्पत्तियों के स्वामी तुमको नमस्कार है ॥ ६३ ॥

हिरण्य के लिये बांधने नाले, हिरण्यकशिपु रूपी पशु का मर्दन करने वाले, स्वर्ण-मृग का वध करने वाले और हिरण्याक्ष को विमोहित करने वाले तुमको नमस्कार है ॥ ६४ ॥

अग्नि के समान वर्ण वाले और अग्नि के समान चमकीले नेत्रों वाले हे देव ! तुमको नमस्कार है। अग्नि में निवास करने वाले और अग्नि के मुख के समान तेजस्वी तुमको नमस्कार है ॥ ६५ ॥

अग्निष्टोम यज्ञ में निवास करने वाले, राजसूय यज्ञ में रहने वाले, कुबेर से अच्छी प्रकार सेनित और कुबेर के घर में रहने वाले तुमको नमस्कार है ॥ ६६ ॥

प्रभुओं के स्वामी और परमेष्ठी मुमको नमस्कार है। कपर्द की माला पहनने वाले और सन्यासी (व्युप्तकेभ) रूप तुमको नमस्कार है ॥ ६७ ॥

हजारों धनुष धारण करने वाले, अंगारों के समान तेजस्वी, भस्म से अलंकृत शरीर वाले और सब ऐश्वर्यों को देने वाले तुमको नमस्कार है ॥ ६८ ॥

त्रिशूल को हाथों में लेने वाले, सर्प का यज्ञोपवीत पहनने वाले, नरमुण्डों की माला धारण करने वाले और अर्द्धचन्द्र का शिरोभूषण धारण करने वाले तुमको नमस्कार है ॥ ६९ ॥

देवताओं के स्वामी तुमको नमस्कार है। परमआतमा तुमको नमस्कार है। जगत् का संहार करने वाले और जगत् का पालन करने वाले तुमको नमस्कार है ॥ ७० ॥

स्कन्द ने कहा—

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर अंजलि बांधकर इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसको सम्पत्तियां प्राप्त होती है और दुःस्वप्न आदि नष्ट होते हैं ॥ ७१ ॥

इति स्तुतो वै दक्षेण महादेवः प्रभुः शिवः।
उवाच मधुरं वाक्यं सन्तुष्टश्च तदाऽभवत् ॥ ७२ ॥

श्री शिव उवाच—

वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि संतुष्टस्तव साम्प्रतम्।
स्तुत्या च कृतया दक्ष त्वया नम्रधिया विभो ॥ ७३ ॥

दक्ष उवाच—

महादेव प्रभो देव प्रसन्नोऽसि यदीश्वर।
त्वत्पादकमले भक्तिर्मम जन्मनि जन्मनि ॥ ७४ ॥

भूयात्तदेदं तीर्थं तु महापातकनाशनम्।
यस्य संदर्शनादेव ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ७५ ॥

पापानि प्रशमं यान्तु यदि ते मय्यनुग्रहः।
स्थितिश्च भवतो नित्यं क्षेमं भवतु सर्वदा।
श्रीदेव्याश्च पुनर्देहः क्षिप्रं भवतु मा चिरम् ॥ ७६ ॥

त्वया सह विवाहश्च तथा भवतु मानद ॥ ७७ ॥

श्रीमहादेव उवाच—

सम्यक्संपादिता दक्ष मद्भक्तिर्विश्वनाशिनी।
भविष्यत्येव हि तथा यथा [1]याच्ञा कृता त्वया ॥ ७८ ॥

इदं क्षेत्रं महापुण्यं यावद्वै यज्ञभूमिका।
यत्र मायानिमित्तं हि जातं सर्वं प्रजायते।
तस्मादिदं महाक्षेत्रं मायासंज्ञं भविष्यति ॥ ७९ ॥

सकृद्दर्शनमात्रेण तस्य तीर्थस्य मानद।
कोटिजन्मकृतेभ्यस्तु पापेभ्यः परिमुच्यते ॥ ८० ॥

[2]पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेषां श्रेष्ठतमं स्मृतम्।
यस्य संस्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८१ ॥

धन्यास्ते पुरुषा लोके मायाक्षेत्रनिवासिन।
नाम्ना दक्षेश्वरेणैव निवसिष्यामि क्षेत्रके ॥ ८२ ॥

---

१. याञ्च्य २. पृथिव्यां……प्रमुच्यते" पांठ इसमें नहीं है।

इस प्रकार दक्ष से स्तुति किये जाने पर महादेव, प्रभु, शिव तब सन्तुष्ट हो गये और मधुर वाक्य बोले ॥ ७२ ॥

श्रीशिव ने कहा—

हे दक्ष विभो ! तुम्हारी इस नम्र बुद्धि से की गई स्तुति से मैं अब तुमसे सन्तुष्ट हूँ । वर मांगो, वर मांगो ॥ ७३ ॥

दक्ष ने कहा—

हे प्रभो, देव, ईश्वर महादेव ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो तुम्हारे प्रति जन्म-जन्म में मेरी मक्ति बनी रहे ॥ ७४ ॥

तथा यह तीर्थ महान् पापों को नष्ट करने वाला हो । इस तीर्थ के दर्भन करने से ही ब्रह्महत्या आदि··· ॥ ७५ ॥

पाप शान्त हो जावें । यदि तुम्हारी मुझ पर कृपा है, तो तुम यहाँ नित्य स्थित रहो । सदा कल्याण होवे । श्रीदेवी सती को पुनः शरीर प्राप्त होवे, इसमें देरी न हो ॥ ७६ ॥

हे मानद ! तुम्हारे साथ उसका विवाह हो ॥ ७७ ॥

श्रीमहाव देव ने कहा—

हे दक्ष ! विश्व को नष्ट करने वाले मेरे प्रति भक्ति को तुमने ठीक प्रकार से सम्पादित किया है । जैसे-जैसे तुमने याचना कीं है, बैसे-वैसे ही होगा ॥ ७८ ॥

जहां तक कि यज्ञ की बेदी बनाई है, वहाँ तक का यह क्षेत्र महापुण्यशाली होगा । क्योंकि ये सब वातें माया (सती) के निमित्त से हुई हैं । अतः इस क्षेत्र का नाम मायाक्षेत्र होगा ॥ ७९ ॥

हे मानद दक्ष ! उस तीर्थ के एक बार ही दर्शन करने से करोड़ जन्मों में किये गये पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ ८० ॥

पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, उन सबमें इसको श्रेष्टतम तीर्थ माना गया है, जिसके स्मरणमात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ८१ ॥

वे पुरुष धन्य हैं, जो मायाक्षेत्र में निवास करते हैं । मैं इस क्षेत्र में दक्षेश्वर के नाम से निवास करूँगा ॥ ८२ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।
अदृष्ट्वा मां मानवा ये करिष्यंत्यल्पबुद्धयः।
तीर्थाटनं प्रजाधीश तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥ ८३॥

श्रीदेव्याः प्रभवश्चापि भविष्यति हिमालये।
तदा मया विवाहश्च भविष्यति न संशयः॥ ८४॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वा भगवान्देवो गृहीत्वा तत्सतीवपुः।
स्कन्धे कृत्वा ययौ विप्र कैलासे गुह्यकालये॥ ८५॥

ततोऽवधि महाभाग मायाक्षेत्रं बभूव ह।
त्रिषु लोकेषु पुण्यं च यत्र माया सती वपुः॥ ८६॥

द्वादशयोजनायामं यज्ञस्यायतनं द्विज।
तत्प्रमाणं महाभाग बभूव क्षेत्रमुत्तमम्॥ ८७॥

अस्मिन्क्षेत्रेऽर्द्धमासेन शिवसंन्यस्तमानसः।
प्राप्नोति शिवसायुज्यं किमन्यैर्वहुभाषितैः॥ ८८॥

दक्षेश्वरं महादेवं सकृद्वै प्रणमन्ति ये।
नंदीभृंग्यादिभिस्तुल्या प्रभवन्ति नरोत्तमाः॥ ८९॥

पंचाक्षरं महामंत्रं षडक्षरमथापि वा।
प्रजपन्ति ह्यहोरात्रैस्त्रिभिः [1]सिद्धिमवाप्नुयुः॥ ९०॥

इति ते कथितो विप्र मायाक्षेत्रभवो मया।
यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या शिवसालोक्यभाग्भवेत्॥ ९१॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये यज्ञसंधान-
तीर्थोत्पत्तिर्नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. अवाप्नुयात्।

इस क्षेत्र के दर्शन मात्र से मनुष्य को आठों सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। जो अल्प बुद्धि वाले मनुष्य मेरा दर्शन न करके तीर्थयात्रा करेंगे, हे प्रजाओं के अधीश दक्ष ! उनका वह सब कार्य निष्फल होगा ॥ ८३ ॥

श्रीदेवी सती का जन्म भी हिमालय पर्वत पर होगा। तब उसके साथ मेरा विवाह होगा, इनमें सन्देह नहीं है ॥ ८४ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र ! यह कहकर भगवान् महादेव उस सती के शरीर को लेकर, कन्धे पर रखकर यक्षों के निवास कैलास पर्वत पर आ गये ॥ ८५ ॥

तब से लेकर, हे महाभाग नारद ! इस क्षेत्र का नाम मायाक्षेत्र हुआ। वह स्थान तीनों लोकों में पुण्यशाली है, जहाँ निश्चय से मायादेवी का शरींर है ॥ ८६ ॥

हे द्विज, महाभाग ! वह क्षेत्र विस्तार तथा प्रमाण में १२ योजन का, यज्ञों का आयतन उत्तम क्षेत्र हुआ ॥ ८७ ॥

और बहुत क्या कहना है, इस क्षेत्र में निवाम करते हुए शिव के प्रति मन को निहित करके मनुष्य आधे अहीने में शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥ ८८ ॥

जो उत्तम मनुष्य दक्षेश्वर महादेव को एक बार प्रणाम करते हैं, वे नन्दी, भृङ्गी आदि के समान सामर्थ्यशाली हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

पांच अक्षरों वाले महामन्त्र का और छः अक्षरों वाले महामन्त्र का जो तीन अहोरात्र ! निरन्तर जप करते हैं, वे सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ९० ॥

हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तुमसे मायाक्षेत्र की उत्पत्ति का वृत्तान्त कह दिया है। इस सबको भक्ति से सुनकर भी मनुष्य शिव के समान हो जाता है ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य-प्रकरण में यज्ञसन्धानतीर्थोत्पत्ति रूप १०५ वां अध्याय पूरा हुआ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गाद्वारोत्तरभागस्य स्वर्गभूमिसंज्ञा, अश्मचित्ताख्यानं शिवस्तुतिश्च

स्कन्द उवाच—

इदं तीर्थं महापुण्यमभूद् गंगागमे पुनः।
गंगाद्वारमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम् ॥ १ ॥

यदा भगीरथो राजा सूर्यवंशधरः प्रभुः।
आतयामास स्वर्गाद्वै गंगां परमपावनीम् ॥ २ ॥

स्वर्गान्निपातिता गंगा पृथिव्यामागता यदा।
तदैवास्य द्विजश्रेष्ठ गंगाद्वारमिति श्रुतम् ॥ ३ ॥

गंगाद्वारोत्तरं विप्र स्वर्गभूमिः स्मृता बुधैः।
अन्यत्र पृथिवी प्रोक्ता गंगाद्वारोत्तरं विना ॥ ४ ॥

इदमेव महाभाग स्वर्गद्वारं स्मृतं बुधैः।
यस्य दर्शनमात्रेण विमुक्तो भवबंधनैः ॥ ५ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा नित्यं प्रतिष्ठिताः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वाः गुह्यकाप्सरतां गणाः।
तिष्ठन्त्यत्रैव भगवञ्छेत्तुं संसारबन्धनम् ॥ ६ ॥

संसारतापतप्तानां भेषजं तीर्थमुत्तमम्।
पापानि शतसंख्यानि ब्रह्महत्यासमानि च।
कृत्वाऽन्यत्र प्रयान्त्यस्मिन्मृता मोक्षमवा[1]प्नुयुः ॥ ७ ॥

श्रृणु नारद वक्ष्यामि कथां तां पापनाशिनीम्।
यथा चांडालतुल्योऽपि कश्चिद् ब्राह्मणवंशजः ॥ ८ ॥

---

१. न्मि।

अध्याय १०६

गङ्गाद्वार से उत्तर के भाग का स्वर्गभूमि नाम रखना, अश्मचित्त का आख्यान और शिव की स्तुति

स्कन्द ने कहा—

पुनः गंगा का आगमन होने पर यह तीर्थ महापुण्यशाली हो गया। इसका नाम गंगाद्वार (हरिद्वार) हुआ। स्मरण करने से ही यह पापों को नष्ट करता हैं॥ १॥

जब सूर्यवंशी राजा भगीरथ प्रभु स्वर्ग से परमपावनी गंगा को लाये॥ २॥

और जब स्वर्ग से गिराई गंगा पृथिवी पर आई, हे द्विजश्रेष्ठ ! तभी से इस तीर्थ का नाम गंगाद्वार सुना गया॥ ३॥

हे विप्र नारद ! विद्वान् जन गंगाद्वार से उत्तर की भूमि को स्वणभूमि कहते हैं। गंगाद्वार के उत्तर भाग से भिन्न अन्य स्थानों को पृथिवी कहा जाता है॥ ४॥

हे महाभाग ! विद्वज्जन इसी को स्वर्ग का द्वार भी कहते हैं। इसके दर्शनमात्र से मनुष्य भव-बन्धनों से मुक्त हो जाता है॥ ५॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता यहाँ नित्य प्रतिष्ठित रहते हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष और अप्सरायें संसार के बन्धन का छेदन करने के लिए यहीं रहते हैं॥ ६॥

संसार के दुःलों से सन्तप्त मनुष्यों के लिए यह तीर्थ उत्तम ओषधि है। ब्रह्म-हत्या के समान भी सैकड़ों पापों को अन्यत्र करके मनुष्य यहाँ आते हैं और अमर होकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं॥ ७॥

है नारद ! सुनो। मैं पापों को नष्ट करने वाली उस कथा को कहूँगा, जिसमें कि चाण्डाल के समान भी किसी ब्राह्मण वंशज मनुष्य ने··· ॥ ८॥

प्राप वै परमं स्थानं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
अस्य क्षेत्रस्य विभवस्तच्छृणुष्व महामते ।। ६ ।।

बभूव ब्राह्मणः कश्चिदवंत्यां मुनिसत्तम ।
अश्मचित्त इति ख्यातः सार्थनामा द्विजाधमः ।। १० ।।

पूर्वं तु जातमात्रस्य पिता यमवशं गतः ।
यदा जातो भाग्यहीनः पंचवर्षात्मको द्विजः ।
माता पंचत्वमापन्ना सजातीनां वशं गतः ।। ११ ।।

उपनीतोऽपि तैर्विप्र क्रिया नैव चकार ह ।
लोलुपः स बभूवाथ चोरकर्मणि स द्विजः ।। १२ ।।

गतो देशान्तरं सोऽपि चौरैश्च सह संगतः ।
तैरेव वर्धितो विप्रस्तदा चौरो द्विजाधमः ।। १३ ।।

तेषां वै तस्कराणां च सदा मध्यगतो हि सः ।
चकार दुष्टकर्माणि स्त्रीब्राह्मणवधादिकम् ।। १४ ।।

पथिकानां कालरूपो दुर्बलानां तथैव च ।
येन केन प्रकारेण धनार्जनपरोऽभवत् ।। १५ ।।

सर्वब्राह्मणलिंगं तु प्रनष्टं तस्य दुर्मतेः ।
विरूपोऽपि बभूवासौ नष्टे ब्राह्मणकर्मणि ।। १६ ।।

कुब्जोऽतिरुक्षसर्वांगो विनष्टस्नानसंध्यकः ।
श्यामो बृहच्छिरा दुष्टः स्वल्पदेहो नृशंसकः ।। १७ ।।

सदा परशुहस्तश्च चर्महस्तस्थैव च ।
वने वासो न तस्यापि मित्रसंबंधिबांधवाः ।
आसन्नारद कुत्रापि भ्रष्टस्य हि दुरात्मनः ।। १८ ।।

एकदा स महादुष्टः मृगास्योऽतिभयानकः ।
चौरैश्च बहुभिः सार्द्धं मायाक्षेत्रे नराधमः ।। १९ ।।

निशीथसमये तत्र कर्त्तुं चौर्य्यं द्विजाधमः ।
समाययौ स दुष्टात्मा चौरैः सह समावृतः ।। २० ।।

इस क्षेत्र के विभव से ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप परम स्थान को पाया था। हे महामते ! उस कथा को सुनो ॥ ९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! अवन्ती नगरी में सार्थ नाम का कोई ब्राह्मण हुआ था। वह नीच ब्राह्मण अश्मचित्त नाम से भी प्रसिद्ध हुआ ॥ १० ॥

जब वह पैदा हुआ तो पहले तो उसका पिता मर गया। जब वह भाग्यहीन ब्राह्मग पाँच वर्ष का हुआ तो उसकी माता मर गई। तब वह अपने सजातीयों के वश में आ गया ॥ ११ ॥

उन ब्राह्मणों द्वारा उपनयन संस्कार करने पर भी वह ब्राह्मणोचित क्रियायें नहीं करता था। वह लालची ब्राह्मण चोरी करने में लग गया ॥ १२ ॥

वह लालची ब्राह्मण चोरों के साथ मिलकर दूसरे देश में गया। वहां उस नीच ब्राह्मण का चोरों ने ही पालन किया ॥ १३ ॥

तब वह उन चोरों के मध्य में रहकर ही स्त्री-ब्राह्मण-वध आदि दुष्ट कर्मों को करता रहा ॥ १४ ॥

दुर्बल पथिकों के लिए वह कालरूप था। जिस किसी प्रकार से वह धनोपार्जन में लग गया ॥ १५ ॥

उस दुष्ट बुद्धि वाले के सब ब्राह्मण चिह्न नष्ट हो गये। ब्राह्मणोचित कर्मों के नष्ट हो जाने पर वह विरूप भी हो गया ॥ १६ ॥

वह नृशंस ब्राह्मण कुबड़ा हो गया, सब अंग रुखे हो गये, स्नान-सन्ध्या आदि कर्म नष्ट हो गये। वह दुष्ट श्यामवर्ण, बड़े सिर याला और स्वल्पदेह का हो गया ॥ १७ ॥

हे नारद ! उसके हाथों में कुल्हाड़ा और चमड़े का कोड़ा रहता था। वह में रहता था। भ्रष्ठकर्मा उस दुष्ट ब्राह्मण के कोई मित्र, सम्बन्धी औरे बान्धव नहीं थे ॥ १८ ॥

एक बार वह महादुष्ट, मृग के समान मुख वाला, अतिभयानक, नराधम ब्राह्मण बहुत से चोरों के साथ मायाक्षेत्र में आया ॥ १९ ॥

वह नीच दुष्टात्मा ब्राह्मण चोरों के साथ मिलकर वहाँ आधी रात में चोरी करने के लिये निकला ॥ २० ॥

स्थितास्तत्र महात्मानः समाजे महति स्थिते।
माहात्म्यश्रवणे सर्वे मायाक्षेत्रस्य नारद ॥ २१ ॥

संन्यस्तमनसस्तत्र श्रीशिवे भक्तिसंयुताः।
श्रुत्वा तीर्थप्रशंसां वै मुदा परमया युताः ॥ २२ ॥

प्रशंसंतो मुहुश्चैव अहो पुण्यतमा वयम्।
परस्परं मोदमाना ऋषयो ब्राह्मणादयः ॥ २३ ॥

अहो धन्यतमा लोके आगच्छन्तो महास्थले।
तैरेव सुकृतं पूर्वं कृतमेव न संशयः।
इत्येवं संवदन्तस्त ऊचुर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २४ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां सर्वेषां मुनिसत्तम।
चौरान्स चाब्रवीद्वाक्यमश्मचित्तो द्विजाधमः ॥ २५ ॥

अश्मचित्त उवाच—

भो भो चौराः श्रृणुध्वं हि शणुध्वं मद्वचः खलु।
प्रशंसन्ति कथं स्थानमिदमेते द्विजातयः ॥ २६ ॥

धनं नूनं महाभागा स्थापितं वै भविष्यति।
येनैवं ब्राह्मणाः सर्वे प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥

श्रूयतामेकचित्तैश्च भवद्भिर्वच उत्तमम्।
कुत्र वै स्थापितं चौरा धनमेभिर्द्विजातिभिः ॥ २८ ॥

स्वयं वै संवदिष्यन्ति निश्वयं चौरसत्तमाः।
तद् गृहीतवा वयं सर्वे मारयित्वाऽखिलांश्च तान् ॥ २९ ॥

गमिष्यामोऽन्यदेशं हि मुहूर्त्तं सम्प्रतीक्ष्यताम्।
वर्त्तते वहुलं वित्तं यस्मात्ते मुखकांतयः ॥ ३० ॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वा विररामासावश्मचित्तः सुदुर्मतिः।
प्रशसंसुर्मुदा तं वै सर्वे चौराः सखड्गकाः ॥ ३१ ॥

हे नारद ! वहाँ महान् समाज में मायाक्षेत्र के माहात्म्य को सुनने के लिए महात्मा लोग विद्यमान थे ।। २१ ।।

तीर्थ की प्रशंसा सुनकर परभ प्रसन्नता से मुक्त उनके मन में संन्यास का भाव जागा और श्रीशिव के प्रति भक्ति हो गई ।। २२ ।।

वे ब्राह्मण आदि परस्पर आनन्दित होकर तीर्थ की पुनः पुनः प्रशंसा करने लगे कि अहो, हम पुण्यशाली हैं ।। २३ ।।

इस महान् स्थल पर आकर हम इस लोक में धन्यतम हो गये हैं। उन्होंने निस्सन्देह रूप से पहले पुण्य किये हैं। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए वे इस तीर्थ के उत्तम माहात्म्य को कहने लगे ।। २४ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! उन महात्माओं के इस वचन को सुनकर वह द्विजाधम अश्मचित्त चोरों से बोला ।। २५ ।।

अश्मचित्त ने कहा—

हे चोरों ! मेरे कथन को निश्चय से सुनो, सुनो। ये ब्राह्मण इस स्थान की कैसे प्रशंसा कर रहे हैं ।। २६ ।।

हे महाभागो ! इन्होंने निश्चय से धन जोड़ लिया होगा। इसीलिये ये सब ब्राह्मण पुनः पुनः प्रशंसा कर रहे हैं ।। २७ ।।

आप सब एकचित्त होकर इस वचन को सुनो। हे चोरौ ! इन ब्राह्मणों ने धन को कहां रखा होगा ? ।। २८ ।।

हे श्रेष्ठ चोरो ! ये निश्चय से उस धन को स्वयं बता देंगे। हम उन सबको मारकर उस धन को छीन लेंगे ।। २९ ।।

हम अन्य देश को चले जायेंगे। मुहूर्त भर प्रतीक्षा करो। क्योंकि इनके मुखों पर कान्ति है, अतः इनके पास प्रभूत धन है ।। ३० ।।

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार कहकर वह दुष्ट बुद्धि वाला अश्मचित्त चुप हो गया। खड्ग को धारण करने वाले वे सब चोर प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करने लगे ।। ३१ ।।

श्रुत्वा रागयुताश्चौराः सरागं वचसां कुलम् ।
मोहिताः सम्बभूवुश्च श्रवणे कृतमानसाः ॥ ३२ ॥

उत्तमश्लोकश्रवणाद्धतपापो द्विजस्तदा ।
उवाच वचनं चौरानिदं वै द्विजसत्तम ॥ ३३ ॥

अश्मचित्त उवाच—

प्रष्टुं गच्छाम्यहं तत्र मुनिवर्गान्हि तस्कराः ।
तत्सर्वं निश्चयं गत्वाऽऽगच्छामि सत्वरं पुनः ॥ ३४ ॥

चौरा ऊचुः —

कथं यास्यसि भो विप्र समाजे तस्करः खलु ।
ज्ञात्वा वै मारयिष्यन्ति त्वां तथा मुनयस्त्वरा ॥ ३५ ॥

परोक्षस्थायिनश्चौरा भवन्ति तस्करोत्तम ।
प्रत्यक्षतामधिगता यदि ते नाशिनस्तदा ॥ ३६ ॥

अश्मचित्त उवाच—

छद्मना तत्र गच्छेयं यत्र ब्राह्मणसत्तमाः ।
जानीयुर्मां यथाऽचौरं करोमि व्याजमीदृशम् ॥ ३७ ॥

स्कन्द प्रवाच—

इत्युक्त्वा सहसा सोऽपि त्यक्तशस्त्रास्त्रकस्तदा ।
चीरांबरोऽश्मचित्तश्च बभूव द्विजवेषधृक् ॥ ३८ ॥

स गत्वा तत्र देशे तु यत्र ते ब्राह्मणाः स्थिताः ।
नमश्चकार तेभ्यश्च विनयावनतोऽभवत् ॥ ३९ ॥

अन्तर्दुष्टो बहिः शान्तो रुद्रमालाविभूषितः ।
तिर्यक्पुण्ड्रधरो विप्रो यथा ब्राह्मणसत्तमः ॥ ४० ॥

श्रुत्वा श्रुत्वाऽस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं द्विजसत्तमः ।
विस्मृतश्चौरकर्माणि सत्संगे निरतो द्विजः ॥ ४१ ॥

तत्संगमादश्मचित्तो भक्तिमान्स बभूव ह ।
भक्तौ संजातमात्रायां प्रणनाम द्विजोत्तमान् ॥ ४२ ॥

राग से भरे वे चोर राग से युक्त वचनों को सुनकर मोहित हो गये और सुनने में मन लगाने लगे ॥ ३२ ॥

उत्तम श्लोकों के सुनने से तब उस ब्राह्मण के पाप नष्ट हो गये। तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण चोरों से यह वचन बोला ॥ ३३ ॥

अश्मचित्त ने कहा—

हे विप्र ! मैं वहाँ मुनियों से पूछने के लिए जाता हूँ। जाकर उस सबका निश्चय करके पुनः शीघ्र आता हूँ ॥ ३४ ॥

चोरों ने कहा—

हे विप्र ! तुम उस समाज में कैसे जाओगे ? तुम निश्चय से चोर हो। यह जानकर वे मुनि शीघ्रता से तुमको निश्चय से मारेंगे। ३५ ॥

हे तस्कर श्रेष्ठ ! चोर तो परोक्ष में स्थित रहते हैं। जब वे प्रत्यक्ष हो जाते हैं तो उनका विनाश हो जाता है ॥ ३६ ॥

अश्मचित्त ने कहा—

मैं छद्म रूप से वहाँ जाता हूँ, जहाँ से वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। जिससे कि वे मुझको चोर न समझें, मैं ऐसा बहाना करता हूँ ॥ ३७ ॥

स्कन्द ने कहा—

यह कहकर उस अश्मचित्त ने उस समय सहसा अस्त्र-शस्त्रों को छोड़ दिया। ब्राह्मण का वेष धारण करके उसने चीराम्बर ओढ़ लिया ॥ ३८ ॥

जहाँ वे ब्राह्मण स्थित थे, वह उस स्थान पर गया। विनय से झुककर उसने उनको नमस्कार किया ॥ ३९ ॥

उस समय रुद्राक्ष की माला से विभूषित वह अश्मचित्त अन्दर से दुष्ट और बाहर से शान्त था। श्रेष्ट ब्राह्मण के समान उस ब्राह्मण चोर ने त्रिपुण्ड्र लगा रखा था ॥ ४० ॥

वह श्रेष्ठ ब्राह्मण अश्मचित्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को सुन-सुनकर उन ब्राह्मणों की संगति में रहकर चोर-कर्मों को भूल गया ॥ ४१ ॥

उनको संगति से वह अश्मचित्त भक्त हो गया। भक्ति उत्पन्न होने पर उसने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम किया ॥ ४२ ॥

अश्मचित्त उवाच

महापापोऽस्मि मुनयो गच्छामि निरयार्णवे।
गच्छन्तं मां महाभागा रक्षध्वं द्विजसत्तमाः॥ ४३॥

स्कन्द उवाच—

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनयो विस्मयान्विताः।
ऊचुः परस्परं कोऽयं महापापोऽस्मि योऽवदत्॥ ४४॥

तमप्यूचुर्महाभाग पतितं पादसन्निधौ।
अश्मचित्तं महाभागाः कृपया परया युताः॥ ४५॥

ब्राह्मणा ऊचुः —

भो भो पुरुष कस्त्वं वै कुतो वा त्वमुपागतः।
कस्माद् गच्छसि नरकं पापकर्मफलं तथा॥ ४६॥

अश्मचित्त उवाच—

न जानामि कुलं शीलं स्वस्य वै पापकर्म्मणः।
अश्रौषं ब्राह्मणाज्जन्म ततश्चौरोऽभवं तथा॥ ४७॥

कथं स्यान्निष्कृतिर्मेऽद्य तद् ब्रूत मम सांप्रतम्।
अन्यथा सर्वथा विप्रा गच्छामि नरकं ध्रुवम्॥ ४८॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वाऽश्रपरीताक्षः पपात चरणेषु सः।
तं दृष्ट्वा तेऽपि मुनयः प्रोचुस्तं विप्रवंशजम्॥ ४९॥

मुनयः ऊचुः —

अहो धन्यतमोऽसि त्वं यो वै क्षेत्रमुपागतः।
शमं यातानि पापानि तवेदानीं द्विजर्षभ॥ ५०॥

अस्माद्वै पूर्वभागे यो गंगातीरे महागिरिः।
तत्र गत्वा महाभाग महादेवपरो भव॥ ५१॥

संतुष्टे तु महादेवे सर्वं सम्पादयिष्यसि।
अतोऽस्मद्वचनात्तूर्णं गच्छ तत्र महाशय॥ ५२॥

अश्मचित्त उवाच—

न जानामि मुनिश्रेष्ठाः सत्कर्म द्विजवंदिताः।
येनाहं स्यां महाभागस्तद् ब्रूत कृपया विभो॥ ५३॥

अश्मचित्त ने कहा—

हे मुनियो ! मैं महापापी हूँ । नरक के समुद्र में जा रहा हूँ । हे महाभागो, श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! नरक में जाते हुए मेरी रक्षा करो ॥ ४३ ॥

स्कन्द ने कहा—

उसके इस वचन को सुनकर मुनि विस्मित हो गये । वे आपस में यह कहने लगे कि यह कौन है, जो अपने को महापापी कहता है ॥ ४४ ॥

हे महाभाग नारद ! परम करुणा से युक्त उन महाभाग मुनियों ने पैरो के समीप खड़े उस अश्मचित्त से कहा ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणों ने कहा—

हे पुरुष ! तुम कौन हो और तुम कहाँ से आये हो ? तुम पाप-कर्म के फल रूप नरक में किस कारण से जा रहे हो ? ॥ ४६ ॥

अश्मचित्त ने कहा—

पाप कर्मा मैं अपना कुल-शील नहीं जानता । मैंने सुना था कि मेरा जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ । तदनन्तर मैं चोर हो गया ॥ ४७ ॥

मेरा इस पाप से छुटकारा कैसे होगा, अब यह बात मुझको बताइये । हे ब्राह्मणो ! अथवा मैं निश्चय से सर्वथा नरक को जाऊँगा ॥ ४८ ॥

स्कन्द ने कहा—

यह कहकर आँसुओं से भरी आँखों वाला वह अश्मचित्त उनके चरणों में गिर गया । उसको देखकर वे मुनि भी ब्राह्मण वंशज अश्मचित्त से बोले ॥ ४९ ॥

मुनियों ने कहा—

अहो, तुम धन्यतम हो, जो इस क्षेत्र में आ गये हो । हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! अब तुम्हारे सैंकड़ों पाप चले गये हैं ॥ ५० ॥

इस स्थान से पूर्व दिशा में गंगा के तट पर जो महान् पर्वत है, हे महाभाग ! वहाँ जाकर महादेव का ध्यान करो ॥ ५१ ॥

महादेव के सन्तुष्ट होने पर तुम सब कुछ सम्पादित कर लोगे । हे महाशय ! इसलिये हमारे कहने से तुम शीघ्र वहाँ जाओ ॥ ५२ ॥

अश्मचित्त ने कहा—

हे वन्दनीय ब्राह्मणो, मुनिश्रेष्ठो ! मैं सत्कर्म को नहीं जानता । हे महाभागो, विभो, ! मुझको इस प्रकार से उपदेश दो कि मैं वैसा हो जाऊँ ॥ ५३ ॥

मुनय ऊचुः —

महादेव महादेव महादेवेति चासकृत् ।
स्मरन्वै मनसा देव वद सर्वमनिन्दितः ॥ ५४ ॥

कृतकृत्यो महाभाग भविष्यस्येव भो द्विज ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज शर्वं हि शर्म्मदम् ॥ ५५ ॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा निगदितं तेषां वै भावितात्मनाम् ।
जगामाहोमुखे तत्र पर्वते मुनिदर्शिते ॥ ५६ ॥

तत्र गत्वा महेशानं सस्मार मनसा विभुम् ।
महादेव महादेव महादेवेति चासकृत् ।
वदन्वै सप्तरात्रेण ददर्श शिवमुत्तमम् ॥ ५७ ॥

व्याघ्रचर्मपरीधानं वृषस्थं नीललोहितम् ।
अनेकसर्पसर्वांगं नानाप्रमथसेवितम् ।
उवाच मधुरं वाक्यमश्मचित्तं सदाशिवः ॥ ५८ ॥

श्रीशिव उवाच—

उत्तिष्ठ वत्स भद्रं ते धन्योऽसि मम नामतः ।
वरं वृणीष्व सततं वरदोऽस्मि तव द्विज ॥ ५९ ॥

अश्मचित्त उवाच—

स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो देव विभो शिव ।
परं मूर्खोऽस्मि हे नाथ कथं स्तौमि भवापहम् ॥ ६० ॥

श्रीशिव उवाच—

पुराणन्यायमीमांसा साङ्गा धर्मव्यवस्थितिः ।
चत्वारश्च तथा वेदास्तथायुर्वेद उत्तमः ॥ ६१ ॥

गांधर्वं चार्थशास्त्रं च धनुर्वेदस्तथा स्मृतः ।
एतास्सर्वा महाविद्या भवन्तु तव सांप्रतम् ॥ ६२ ॥

स्कन्द उवाच —

इत्युक्तमात्रे भगवति सर्वज्ञे सर्वदे भवे ।
आविर्बभूवुस्तस्याऽपि विद्या अष्टादशैव तु ॥ ६३ ॥

मुनियों ने कहा—

महादेव, सहादेव, महादेव इस बात को बार-बार मन से स्मरण करते हुए, अनिन्दित होकर उस महादेव से सब कुछ कहो ॥ ५४ ॥

हे महाभाग द्विज ! तुम कृतकृत्य हो जाओगे। अतः सब प्रकार प्रयत्न करके सुख देने वाले शिव का भजन करो ॥ ५५ ॥

स्कन्द ने कहा—

उन पवित्र आत्मा वाले मुनियों के इस कथन को सुनकर वह मुनियों द्वारा दिखाये गये पर्वत पर प्रातः समय में गया ॥ ५६ ॥

वहाँ जाकर वह विभु महेशान शिव का मन से स्मरण करने लगा। महादेव, महादेव, महादेव, इस प्रकार बार-बार बोलते हुए उसने सात रात्रियों में उत्तम शिव के दर्शन किये ॥ ५७ ॥

उन्होंने व्याघ्र-चर्म का वस्त्र धारण किया था, बैल पर आरूढ़ थे, नील-लोहित वर्ण के थे, सब अंगों में अनेक सर्प थे और अनेक प्रमथ उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ५८ ॥

श्रीशिव ने कहा—

हे वत्स उठो। तुम्हारा कल्याण होगा। मेरा नाम लेने से तुम धन्य हो गये हो। हे द्विज ! मैं निरन्तर वर को देने वाला हूँ। वर माँगो ॥ ५९ ॥

अश्मचित्त ने कहा—

हे देव, विभो, शिव ! आज मेरा मन आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत हो रहा है। परन्तु मैं मूर्ख हूँ। हे नाथ ! भव-बन्धन को दूर करने वाले आपकी मैं कैसे स्तुति करूँ ? ॥ ६० ॥

श्रीशिव ने कहा—

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, अङ्गों सहित चारों वेद, उत्तम आयुर्वेद··· ॥ ६१ ॥

गान्धर्व वेद, अर्थशास्त्र और धनुर्वेद ये सारी विद्यायें तुमको प्राप्त हो जावें ॥ ६२ ॥

स्कन्द ने कहा—

भगवान्, सर्वज्ञ, सब कुछ देने वाले शिव के यह कहने पर सब अट्ठारह विद्यायें उसके समक्ष प्रकट हो गईं ॥ ६३ ॥

ज्ञात्वा स्वरूपमत्यर्थं भवस्य परमात्मनः ।
अस्तौषीज्जगदानंदं जगत्संहारकारकम् ।। ६४ ।।

अश्मचित्त उवाच—

वन्देऽहं भवभयहरं महेशमीशं
भावाभावैरहितमजं विभुं वरेण्यम् ।
यद्वै धाम वृषवरगं प्रपन्नचित्ते
तद्वै वन्दे निजगुरुं शंकरेशं शिवेशम् ।। ६५ ।।
अगणितगुणमहिमानं पारगं सर्वनाथं
विविधभुजगशोभं पर्वतेशे विभांतम् ।
सुरदनुजमनुजयोनिभारनाशं हि पृथ्व्याः
निगमकथितरूपं पार्वतीशं नमामि ।। ६६ ।।
यदुदरवरकुहरमध्ये प्रेरिता वाननाथै—
स्तनुजपुलककुलकमार्गे ब्रह्मणेन्द्रा वसन्ति ।
रविकरनिकरशुभजालैर्जालभव्यं यथा वै
लघुतरमणुकुलानि प्रेरितानीशमीडे ।। ६७ ।।
विभो ते रूपं भसितसितमहो मे हृदि सदा
वसेद्वै ब्रह्म त्रिभुवनगशुभं बालशशिनः ।
हस्तौ मे ते भक्तशुभगवत्पूजां वितनुतां
शिरो मे देव भवभयहरं च प्रणमतु ।। ६८ ।।
पूर्वं तवेश भगवन्भव देव देव
ब्रह्मारमेशौ तव द्रष्टुमंतम् ।
गतौ प्रभो ऊद्‌र्ध्वमधश्च लोके
गतं न वाहं हि कियान्मनुष्यः ।। ६९ ।।

स्कन्द उवाच—

संस्तुवन्ति महातमानं देवदेवं महेश्वरम् ।
ते वै परमभक्तास्तु गच्छन्ति परमं पदम् ।। ७० ।।
इमं स्तवं महेशस्य प्रातः प्रातस्तु यः पठेत् ।
मूर्खो वे लभते विद्यां यथासावश्मचित्तकः ।। ७१ ।।
ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवोऽब्रवीद् द्विजम् ।
प्रहसंस्तोत्रराजेन संतुष्टो जगदीश्वरः ।। ७२ ।।

परमात्मा शिव के स्वरूप को तत्वतः समझकर उस अश्मचित्त ने जगत् को आनन्दित करने वाले और जगत् का संहार करने वाले शिव की स्तुति की ।। ६४ ।।

अश्मचित्त ने कहा—

भव के भय को हरने वाले, महेश, ईश, भाव-अभाव से रहित, अज, विभु, वरेण्य शिव की मैं वन्दना करता हूँ। श्रेष्ठ वृषभ पर गमन करने वाले जिस शिव के स्थान पर मेरा मन गया है, उस अपने गुरु शंकरेश शिवेश की मैं वन्दना करता हूँ ।। ६५ ।।

अगञ्जित गुणों से महिमा को प्राप्त होने वाले, सबके पार पहुँचे हुए, सबके स्वामी, विविध सर्पों से सुशोभित, पर्वतराज हिमालय पर शोभायमान, पृथिवी पर देव-दानव-मनुष्यों की योनि के भार का नाश करने वाले, वेदों में बताये गये रूप वाले, पार्वती के स्वामी शिव की मैं वन्दना करता हूँ ।। ६६ ।।

जिस प्रकार सूर्य की किरणों के समूहरूपी शुभ जालों से प्रेरित किये गये अति सूक्ष्म अणु समूह शीघ्रता से उसके भव्य जाल में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार प्रलय-कालीन पवनों (ब्राननाथ) द्वारा प्रेरित ब्रह्माण्ड शरीर के लोभों के मार्ग में जिसके उदररूपी गुफा के मध्य में प्रवेश करते हैं। अर्थात् जो प्रलयकाल में सब प्राणियों को निगल जाता है, उस महादेव की मैं स्तुति करता हूँ ।। ६७ ।।

हे विभो ब्रह्म ! बाल शशि को धारण करने वाले तुम्हारा तीनों लोकों का कल्याण करने वाला, भस्म से शुभ्र रूप मेरे हृदय में सदा निवास करे। मेरे दोनों हाथ भक्तों का शुभ करने वाले भगवान् की पूजा करें। हे देव ! मेरा सिर भव-भय को हरने वाले आपको प्रणाम करे ।। ६८ ।।

हे ईश, भगवान्, भव, देव, देव प्रभो ! पूर्वकाल में ब्रह्मा और विष्णु तुम्हारी सीमाओं को देखने के लिए ऊपर और नीचे के लोकों में गये थे, परन्तु उन्होंने उनको पाया नहीं। मुझ मनुष्य का तो कहना ही क्या है ? ।। ६९ ।।

स्कन्द ने कहा—

जो उस महात्मा देवताओं के भी देव महेश्वर की स्तुति करते हैं, वे परम भक्त परम पद को प्राप्त करते हैं ।। ७० ।।

जो मनुष्य प्रातःकाल महेश के इस स्त्रोत्र का पाठ करता है, वह मूर्ख होते हुए भी विद्या को प्राप्त करता है, जैसे कि उस अश्मचित्त ने किया था ।। ७१ ।।

तदनन्तर इस उत्तम स्तोत्र-पाठ में सन्तुष्ट जगदीश्वर, भगवान्, महादेव ने प्रसन्न होकर हँसते हुए उस ब्राह्मण से कहा ।। ७२ ।।

श्री शिव उवाच—

गच्छ गच्छ हि कैलासं प्रमथेश्वरतां व्रज।
तुष्टोऽस्मि स्तवराजेन कृतभक्त्या च विप्रक॥ ७३॥

[1]ममार्द्धनामको भूयाद् गणश्च द्विजसत्तम।
नाम्ना नील इति ख्यातिं भुवि यास्यसि चोत्तमाम्॥ ७४॥

अस्य वै गिरिराजस्य नाम वै संभविष्यति।
नीलपर्वत इति वै स्मरणाच्छिवदायकः॥ ७५॥

अत्र वै निवसिष्यामि त्वया सह गणेश्वर।
नीलेश्वर इति ख्यातो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः॥ ७६॥

जलमात्रं च यो मर्त्यो मम लिंगे प्रदास्यति।
यावन्त्यः कणिकास्तत्र लिंगोऽपरि जलस्य च।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥ ७७॥

यो बिल्वपत्रमादाय पूजयेत्तेन मां शिवम्।
कल्पमेकं वसेच्छैवे मम लोके सुपुण्यदे॥ ७८॥

अक्षता मम लिंगे वै धृता यावन्त एव हि।
तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके प्रतिष्ठते॥ ७९॥

पुष्पाणि चैव यावन्ति न्यस्तानि च ममोऽपरि।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गभाग्जायते नरः॥ ८०॥

धूपं दीपं च यो दद्यान्न वै पश्यति नारकान्॥ ८१॥

नैवेद्यं विविधं यो वै ह्यर्पयेन्मम भक्तितः।
कुत्सितान्नं न वै भुंक्ते तथा जन्मसहस्रकम्॥ ८२॥

दक्षिणां मम यो दद्यात्संपूज्य भक्तितत्परः।
न दारिद्र्यमवाप्नोति नरो जन्मसहस्रकम्॥ ८३॥

गंगातीरे महत्कुण्डं वर्त्तते मम सर्वदा।
तत्रापि स्नानकर्त्तारो मम रूपा न संशयः॥ ८४॥

---

१. ममार्द्ध ...... प्रीतिवर्द्धनः" पाठ इसमें नहीं है।

श्रीशिव ने कहा—

तुम हिमालय पर जाओ और प्रमथेश्वर बन जाओ। हे ब्राह्मण ! मैं भक्ति से किये गये इस उत्तम स्तोत्र से प्रसन्न हो गया हूँ ॥ ७३ ॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम मेरे अर्द्ध नाम के गण बनोगे। तुम इस संसार में नील नाम से उत्तम प्रसिद्धि को प्राप्त करोगे ॥ ७४ ॥

इस पर्वतराज का नाम नील पर्वत होगा। यह स्मरण करने से ही शिव को प्राप्त कराने वाला होगा ॥ ७५ ॥

हे गणेश्वर ! मैं यहाँ नीलेश्वर नाम से प्रसिद्ध होकर तुम्हारे साथ निवास करूँगा और भक्तों के प्रेम को बढ़ाऊँगा ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य यहां मेरे लिंग पर जल मात्र को भी प्रदान करेगा, लिंग के ऊपर जल के जितने भी कण गिरेंगे, वह उतने हजार वर्षों तक शिवलोक में महिमा को प्राप्त होगा ॥ ७७ ॥

जो विल्वपत्र लेकर उससे मुझ शिव का पूजन करेगा, वह एक कल्प पर्यन्त मेरे उत्तम पुण्यदायक शिवलोक में निवास करेगा ॥ ७८ ॥

लो मनुष्य मेरे लिंग पर जितनी संख्या में अक्षतों को रखेगा, वह उतने हजार वर्ष तक मेरे लोक में प्रतिष्ठित होगा ॥ ७९ ॥

जो मनुष्य मेरे ऊपर जितने भी पुण्य निहित करेगा, वह उतने ही हजार वर्ष तक स्वर्ग का भागी होगा ॥ ८० ॥

जो मनुष्य मुझको धूप-दान प्रदान करता है, वह नरक-लोकों का दर्शन नहीं करता ॥ ८१ ॥

जो मनुष्य भक्ति-भाव से मुझको विविध नैवेध प्रदान करता है, वह हजार जन्मों तक कुत्सित अन्न नहीं खाता ॥ ८२ ॥

जो भक्ति-भाव से मेरी पूजा करके दक्षिणा देता है, वह मनुष्य हजार जन्मों तक दरिद्र नहीं होता ॥ ८३ ॥

गंगा के तट पर मेरा महान् कुण्ड है। जो सदा वहाँ स्नान करते हैं, वे भी निस्सन्देह मेरे रूप को पाते हैं ॥ ८४ ॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वा भगवान्देवो महादेवो ययौ गिरिम् ।
तेन सार्द्धं गणैश्चैव स्तूयमानः सुरासुरैः ॥ ८५ ॥

तस्मादयं द्विजश्रेष्ठ पर्वतः श्रेष्ठतां गतः ।

अद्यापि तत्प्रदेशे हि शंखध्वनिरहर्निशम् ।
श्रूयते पुण्यकैर्विप्र तथा वै शिवलिंगकम् ॥ ८६ ॥

दृश्यते मुनिशार्दूल प्रत्ययो दृश्यते मया ।
तं पर्वतं सकृद्दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८७ ॥

एतदुद्देशतः प्रोक्तं माहात्म्यं तव सुव्रत ।
को वा साकल्यभावेन वक्तुं शतमुखैरपि ॥ ८८ ॥

अश्मचित्तस्य चरितं कथयिष्यन्ति ये नराः ।
इह चैव परामृद्धिं मृताः स्वर्गमवाप्नुयुः ॥ ८९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नीलपर्वत माहात्म्यं नाम षड-
धिकशततमोध्यायः ।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

स्कन्द उवाच—

बिल्वपर्वतमाहात्म्यं शृणु नारद भक्तितः ।
तच्छ्रुत्वाऽपि द्विजश्रेष्ठ पुण्यं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥ १ ॥

शिवधारा समाख्याता शिवदा तत्र पर्वते ।
तस्यां नरः सकृत्स्नात्वा शिवेन सदृशो भवेत् ॥ २ ॥

स्कन्द ने कहा—

यह कहकर भगवान् देव, महादेव गणों और सुर-असुरों से स्तुति किये जाते हुए उस अश्मचित्त के साथ हिमालय पर चले गये ॥ ८५ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस कारण यह पर्वत श्रेष्ठ हो गया । हे विप्र ! आज भी उस प्रदेश में दिन-रात पुण्य कर्मों के प्रभाव से शंखध्वनि सुनाई देती है और शिवलिङ्ग··· ॥ ८६ ॥

दिखाई देता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझको इस बात की प्रतीति होती है । उस पर्वत को एक बार देखकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ८७ ॥

हे सुव्रत नारद ! इसी उद्देश्य से मैंने उसका माहात्म्य तुमको बताया है । उसको सैंकड़ो मुखों से भी सम्पूर्ण रूप से कौन कह सकता है ? ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य अश्मचित्त के चरित का कथन करेंगे, वे इस लोक में परम समृद्धि को प्राप्त करके मृत्यु होने पर स्वर्ग में पहुँचेंगे ॥ ८९ ॥

इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नीलपर्वत-माहात्म्य नाम का १०६वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय १०७

बिल्व पर्वत और शिवधारा के माहात्म्य का वर्णन करने के प्रसङ्ग में राजा विश्वदत्त द्वारा ऋचीक मुनि के पास से योग को प्राप्त करना । भ्रमरी देवी का कीर्तन

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! तुम भक्तिभाव से बिल्व पर्वत के माहात्म्य को सुनो । हे द्विज-श्रेष्ठ ! इस माहात्म्य को सुनकर भी मनुष्य दुर्लभ पुण्य को प्राप्त करता है ॥ १ ॥

वहाँ पर्वत पर शिवदायिनी शिवधारा कही गई है । उसमें मनुष्य एक बार स्नान करके शिव के समान हो जाता है ॥ २ ॥

तत्रैको बिल्ववृक्षस्तु तस्याधः शिवलिंगकम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः ।। ३ ।।

लिंगस्य दक्षिणे भागे नित्यं तिष्ठति नारद ।
अश्वतरो महानागो मणिभूषितमस्तकः ।। ४ ।।

रंध्रात्पातालगाद् द्विप्र स करोति गतागतम् ।
कदाचिन्मुनिरूपेण कदाचिन्मृगरूपकः ।
स्नानं करोति सर्वत्र तीर्थेषु मुनिसत्तम ।। ५ ।।

वाम भागेन तस्यापि गुहा पाषाणमुद्रिता ।
तस्यां वसति धर्मात्मा योगिनां प्रवरो मुनिः ।। ६ ।।

नाम्ना ऋचीक इति वै ख्यातो ब्रह्मविदां वरः ।
योगयुक्तो महात्माऽसौ शिवसंन्यस्तमानसः ।
आस्ते स्थावरवद्योगी ब्रह्मभूतो विकल्मषः ।। ७ ।।

तल्लक्षणं श्रृणु प्राज्ञ यस्मात्ते प्रत्ययो भवेत् ।
निशीथसमये तत्र चतुर्दश्यां हि कृष्णके ।। ८ ।।

पक्षे वै श्रावणे मासि ज्योतिर्वै दृश्यते महत् ।
श्रूयते कल्कलाशब्दः पुण्यैस्तत्प्राप्य दर्शनम् ।। ९ ।।

नारद उवाच—

विभो षण्मुख देवेश जातो मे विस्मयः परः ।
किं तज्ज्योतिश्च शब्दश्च सर्वं तत्कथ्यतां मम ।। १० ।।

स्कन्द उवाच—

पुरा राजा बभूवाथ कलिंगे विश्वदत्तकः ।
एकदा स मुनिश्रेष्ठ मृगयायै गतः वनम् ।। ११ ।।

हतास्तेन मृगाश्चैव वहवः सिंहशूकराः ।
दैवाज्जातो महाभाग एकाकी स नराधिपः ।। १२ ।।

परिश्रांतो नृपस्तत्र वने नरविवर्जिते ।
ददर्श स सरोयुग्मं शतपत्रैश्च शोभितम् ।। १३ ।।

नानामृगगणाकीर्णं हंसकारंडवैर्युतम् ।
सतां मनः स्वच्छजलं जलकुक्कुटशोभितम् ।। १४ ।।

वहाँ एक बिल्व वृक्ष है। उसके नीचे शिवलिङ्ग है। इसके दर्शनमात्र से मनुष्य शिवरूप हो जाता है ॥ ३ ॥

हे नारद ! लिंग के दक्षिण भाग में मस्तक पर मणि से विभूषित अश्वतर नाम का महानाग नित्य रहता है ॥ ४ ॥

हे विप्र ! वह कभी तो मुनि के रूप में और कभी मृग के रूप में, पाताल तक जाने वाले बिल के मार्ग से आना-जाना करता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह सर्वत्र तीर्थों में स्नान करता है ॥ ५ ॥

उसके वाम भाग में पाषाण से मुद्रित गुफा है। उसमें योगियों में श्रेष्ठ धर्मात्मा मुनि निवास करते हैं ॥ ६ ॥

उसका नाम ऋचीक प्रसिद्ध है। वे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। वे महात्मा योगी हैं। उन्होंने अपने मन को शिव में निहित कर दिया है। वे ब्रह्मभूत, कल्मषरहित योगी वहाँ स्थावर के समान स्थित रहते हैं ॥ ७ ॥

हे प्राज्ञ नारद ! उस स्थान का लक्षण सुनो, जिससे कि तुमको उसकी पहचान हो जायेगी। वहाँ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में आधी रात्रि में··· ॥ ८ ॥

श्रावण महीने में महान् ज्योति दिखाई देती है। कलकल शब्द सुनाई देता है। यह दर्शन पुण्यों से होता है ॥ ९ ॥

नारद ने कहा—

हे विभो, देवेश, षण्मुख ! मुझको बहुत अधिक विस्मय हुआ है। वह ज्योति क्या है और वह शब्द क्या है ? यह सारी बात मुझसे कहो ॥ १० ॥

स्कन्द ने कहा—

हे मुनिश्रेष्ठ ! प्राचीनकाल में कलिंग देश में विश्वदत्त नाम का राजा था। वह एक दिन शिकार खेलने के लिये वन में गया ॥ ११ ॥

उसने बहुत से मृग, सिंह और सूअर मार डाले। हे महाभाग ! भाग्यवश वह राजा अकेला रह गया ॥ १२ ॥

थके हुए उस राजा ने वहाँ उस निर्जन वन में कमलों से सुशोभित दो जलाशय देखे ॥ १३ ॥

वे जलाशय विविध मृगों से आकीर्ण थे। हंसों और कारण्डवों से युक्त थे। इनका जल सज्जन मनुष्यों के मन के समान स्वच्छ था और वे जल-कुक्कुटों से शोभित थे ॥ १४ ॥

कोयष्टिकैश्चक्रवाकैः क्रौञ्चैरन्यैश्च पक्षिभिः ।
नादितं कलशब्दैश्च तथा कोकिलकूजितैः ॥ १५ ॥

स्थित्वा राजा सरस्तीरे परिश्रांतो महामुने ।
जलं पीत्वा हि तत्रत्यं यावद् गच्छति भुमिपः ॥ १६ ॥

तावत्प्राप्तो द्विजश्रेष्ठः सोत्तरीय्याजिनांबरः ।
दृष्ट्वा तं सहसा राजा समुत्तस्थौ तदासनात् ॥ १७ ॥

संपूज्य वाक्यसंलापैर्विप्रवर्य्यं नराधिपः ।
उवाच वचनं राजा विस्मयोतफुल्ललोचनः ॥ १८ ॥

राजोवाच—

विप्रवर्य्य महाभाग कुत्र गंतासि तद्वद ।
सतां साप्तपदी मैत्री वर्त्तते मुनिनंदन ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं वचनं त्वया ।
एको व्यापी जगत्सर्वं मित्राऽमित्रविवर्जितः ॥ २० ॥

कुत्र तद् गमनं विद्यां क्व स्थितिं परमात्मनः ।
को वा मित्रममित्रं वा ह्येकस्य निखिलात्मनः ॥ २१ ॥

किं ब्रुवेऽहं महाराज त्वदुक्तस्योत्तरं विभो ।
विशेषं नाधिगच्छामि शिवस्य परमात्मनः ॥ २२ ॥

राजोवाच—

कि वा त्वया द्विजश्रेष्ठ कृता सेवा महात्मना ।
योगिनां यस्य ते बुद्धिरद्वैतामृतवर्षिणी ॥ २३ ॥

कथं प्राप्तं त्वया ज्ञानं शिवस्य परमात्मनः ।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्यैतज्ज्ञानमीदृशम् ॥ २४ ॥

समता सर्वभूतेषु शत्रुमित्राप्तबन्धुषु ।
कथं संजायते तन्मे प्रपन्नाय वदस्व भोः ॥ २५ ॥

टिटहिरियों, चक्रवाकों, क्रौञ्चों तथा अन्य पक्षियों के मधुर शब्दों से और कोयलों के कूजनों से वह नादित था ॥ १५ ॥

हे महामुने ! भूमि की रक्षा करने वाला वह थका हुआ राजा जब जलाशय के तट पर बैठकर, वहाँ का जल पीकर जाने की इच्छा करने लगा··· १६ ॥

तभी वहां मृगचर्म का उत्तरीय ओढ़े हुए एक ब्राह्मण आ पहुँचा। उसको देख कर राजा सहसा उस आसन से उठकर खड़ा हो गया ॥ १७ ॥

विस्मय से खिली आँखों वाले, मनुष्यों से अधिप राजा ने वार्तालापों द्वारा उस श्रेष्ठ ब्राह्मण का सत्कार करके यह वचन कहा ॥ १८ ॥

राजा ने कहा—

हे महाभाग, श्रेष्ठ ब्राह्मण ! बताइये कि आप कहाँ जा रहे हैं ? हे मुनि-नन्दन ! सज्जनों की साप्तपदी मैत्री कही गई है ॥ १९ ॥

ब्राह्मण ने कहा—

हे राजन् ! तुमने जो वचन कहा है, वह सब मैं कहूँगा। वह एक परमात्मा सारे जगत् को व्याप्त करता है और मित्र-शत्रु से रहित है ॥ २० ॥

तो मैं परमात्मा की उस गति को और स्थिति को कहाँ जान सकता हूँ। सबके आत्मस्वरूप एक परमात्मा का कौन मित्र हैं और कौन शत्रु है ॥ २१ ॥

हे विभो महाराज ! तुम्हारे कहे का मैं क्या उत्तर दूँ। मैं परमात्मा शिव के विषय में अधिक नहीं जानता ॥ २२ ॥

राजा ने कहा—

हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम महात्मा ने योगियों की ऐसी कौन-सी सेवा की है जो तुम्हारा इस प्रकार का अमृत बरसाने वाला ज्ञान है ? ॥ २३ ॥

तुमने परमात्मा शिव का ज्ञान किस प्रकार पाया है ? तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, जिसका इस प्रकार का ज्ञान है ॥ २४ ॥

हे विप्र ! सब प्राणियों में, शत्रु-मित्र-विश्वसनीय बन्धुओं में समान भाव कैसे उत्पन्न हो जाता है, यह बात शरण मे आये मुझको बताइये ॥ २५ ॥

ब्राह्मण उवाच—

साधुसंगतिरेवात्र कारणं वसुधाधिप ।
तन्मूर्तिषु सदा ध्यानं तत्तन्नाम्नानुकीर्त्तनम् ॥ २६ ॥

राजोवाच—

अहमप्यागमिष्यामि त्वया सह द्विजोत्तम ।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये साधूनां साधुरुत्तमः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण उवाच—

त्वं तु राजा महाभाग भिक्षूणां कल्पवृक्षकः ।
कथं स्थास्यसि विपिने कंदपर्णफलाशनः ॥ २८ ॥

राज्यं पालय धर्म्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
मनो यस्य महादेवे सर्वज्ञे जगदीश्वरे ॥ २९ ॥

सर्वकर्मफलत्यागी ब्राह्मणानां च पूजकः ।
भव राजन्स्वयं देवं सुतरां यास्यसि प्रभुम् ॥ ३० ॥

राजोवाच—

भगवन्द्विजशार्दूल बुद्धिरस्मादृशां मुने ।
मूकाल्पज्ञानबोधेन शुद्धा नैवोपजायते ॥ ३१ ॥

तद्वदस्व महाभाग सम्यग्जानासि तद्यथा ।
दीनस्य संतः सुधियो भवन्त्येवोपकारिणः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मण उवाच—

क्रियाकालो मम प्राप्तो राजन्भो विश्वदत्तक ।
इदानीं तीर्थके पुण्ये मायाक्षेत्रे व्रजाम्यहम् ॥ ३३ ॥

गच्छ त्वमपि तत्रैव बोधार्थं परमात्मनः ।
ऋचीको मुनिवर्य्यस्तु वर्त्तते बिल्वपर्वते ॥ ३४ ॥

शिवस्य वामभागे तु गुहा गुप्ततमा नृप ।
तस्यां योगिवरो नित्यं वसति द्विजसप्तमः ॥ ३५ ॥

स वै ब्रह्मविबोधार्थं वदिष्यति न संशयः ।
तत्र गत्वा प्रयत्नेन तस्य सेवापरो भव ॥ ३६ ॥

ब्राह्मण ने कहा—

हे राजन् ! इसका उपाय सज्जनों की सङ्गति ही है। सदा उस परमात्मा के स्वरूप में ध्यान करना और उसके नामों का कीर्तन करना भी इसका उपाय है ॥ २६ ॥

राजा ने कहा—

हे द्विजोत्तम ! मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। तीनों लोकों में तुम्हारे समान साधुओं में उत्तम साधु नहीं है ॥ २७ ॥

ब्राह्मण ने कहा—

हे महाभाग ! तुम राजा हो, भिखारियों के कल्पवृक्ष हो। कन्द, पत्ते और फलों को खाते हुए वन में कैसे रहोगे ? ॥ २८ ॥

तुम धर्म के अनुसार राज्य की रक्षा करो, प्रजा का पुत्रों के समान पालन करो। जिसका मन सर्वज्ञ, जगदीश्वर महादेव में लग जाता है··· ॥ २६ ॥

जो सब कर्मों के फलों का त्याग कर देता है, और ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला होता है, तो हे राजन् ! तुम इसी प्रकार के हो जाओ। तुम स्वयं प्रभु महादेव को प्राप्त करोगे ॥ ३० ॥

राजा ने कहा—

हे द्विजश्रेष्ठ भगवन् मुने ! हम जैसों की ऐसी ही बुद्धि है। गूंगे व्यक्ति को को अल्प ज्ञान का बोध आप जैसे शुद्ध महात्माओं से ही हो जाता है ॥ ३१ ॥

सो हे महाभाग ! जैसा आप जानते हैं, वैसा ठीक-ठीक उपदेश दीजिये। सन्त बुद्धिमान् व्यक्ति दीनों पर उपकार करते हैं ॥ ३२ ॥

ब्रह्मण ने कहा—

हे विश्वदत्तक राजन् ! मेरा धार्मिक क्रियायें करने का समय हो गया है। अब मैं पुण्य तीर्थ मायाक्षेत्र में जा रहा हूँ ॥ ३३ ॥

तुम वहीं पर परमात्मा के ज्ञान के लिए चलो। वहाँ बिल्व पर्वत पर ऋचीक नाम के श्रेष्ठ मुनि हैं ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! शिवलिंग के बायें भाग में गुप्ततम गुफा है। उसी गुफा में वे ब्राह्मणश्रेष्ठ योगिवर नित्य निवास करते हैं ॥ ३५ ॥

वे ही निश्चय से निस्सन्देह तुमको ब्रह्मज्ञान का उपदेश देंगे। वहाँ जाकर प्रयत्न से उनकी सेवा करने लगो ॥ ३६ ॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा महावाक्यं ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
ययौ तेनैव विप्रेण पादचारेण नारद ॥ ३७ ॥

तत्र गत्वा वहुतरं स्नात्वा पापविवर्ज्जितः ।
जातो नराधिपः शुद्धो ब्राह्मणेन च संगतः ॥ ३८ ॥

ययौ तेनैव मार्गेण मुनिना दर्शितेन च ।
तत्र दृष्ट्वा समाधिस्थमृचीकं मुनिसत्तमम् ॥ ३९ ॥

ननाम चरणौ तस्य पुनः पुनरुदारधीः ।
प्राप्तवान्योगशात्रं च ऋचीकान्मुनिसत्तमात् ॥ ४० ॥

योगी बभूव नृपतिस्तीर्थाटनपरोऽभवत् ।
सर्वतीर्थेषु च स्नात्वा नित्यं स मनुजाधिपः ॥ ४१ ॥

वर्षेवर्षे स राजर्षिर्मुनिदर्शनलालसः ।
स्तूयमानो मुनिगणैरायाति नियतेन्द्रियः ॥ ४२ ॥

ज्योतिर्मयस्तदा देहो दृश्यते पुण्यकारकैः ।
शब्दो मुनीनां स्तुवतां साधु साध्विति वादिनाम् ।
श्रूयते च महाभाग महापुण्यसुकर्तृभिः ॥ ४३ ॥

तत्रैव गंगानिकटे पादुके ब्रह्मणः शुभे ।
ते दृष्ट्वापि सकृन्मर्त्यो मृतो ब्रह्मपुरे वसेत् ॥ ४४ ॥

गंगायां स्नानमात्रेण बिल्वतीर्थे नरोत्तमः ।
कोटिजन्मकृतैः पापैस्तत्क्षणात्परिमुच्यते ॥ ४५ ॥

बिल्वेश्वरं महादेवं बिल्वपत्रैस्तु योऽर्चयेत् ।
यथासंख्यैर्बिल्वपत्रैः स वसेत्कल्पकोटिभिः ॥ ४६ ॥

त एव धन्या मनुजाः शिवरात्रे प्रयांति ये ।
बिल्वेश्वरं महादेवं बिल्वपत्रैरनेककैः ॥ ४७ ॥

तस्माच्छरद्वये विप्र पूर्वभागे हि पर्वते ।
जलं पुण्यतमं ख्यातं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४८ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! महात्मा ब्राह्मण के इस वाक्य को सुनकर वह राजा पैदल ही उसके साथ गया ।। ३७ ।।

वहाँ जाकर, बहुत अधिक स्नान करके, पापों से रहित होकर वह राजा ब्राह्मण की संगति से शुद्ध हो गया ।। ३८ ।।

वह उस मुनि द्वारा दिखाये गये उसी मार्ग से गया । वहाँ उसने समाधि में स्थित श्रेष्ठ मुनि ऋचीक को देखा ।। ३९ ।।

उदार बुद्धि वाले राजा ने उनके चरणों में पुनः पुनः प्रणाम किया और मुनिश्रेष्ठ ऋचीक से योगशास्त्र को प्राप्त किया ।। ४० ।।

मनुष्यों का अधिप वह राजा योगी होकर तीर्थों में भ्रमण करने लगा । नित्य सब तीर्थों में स्नान करके··· ।। ४१ ।।

जितेन्द्रिय, राजर्षि मुनियों से स्तुति किया जाता हुआ वह राजा ऋचीक मुनि के दर्शन की लालसा से आता था ।। ४२ ।।

हे महाभाग ! उस समय पुण्य करने वालों को ज्योतिर्मय शरीर दिखाई देता था । महापुण्य करने वालों को साधु-साधु करते हुए स्तुति करते मुनियों का शब्द सुनाई देता था ।। ४३ ।।

वहीं पर गंगा के निकट ब्रह्मा की शुभ पादुकायें हैं । उनका एक बार दर्शन करके भी मनुष्य ब्रह्मलोक में निवास करता है ।। ४४ ।।

बिल्व तीर्थ में गंगा में स्नान मात्र करने से उत्तम मनुष्य करोड़ जन्मों में किये गये पापों से तत्क्षण मुक्त हो जाता है ।। ४५ ।।

जो मनुष्य बिल्वेश्वर महादेव का बिल्वपत्रों से पूजन करता हैं, वह बिल्वपत्रों की संख्या के अनुसार करोड़ कल्पों तक शिवलोक में निवास करता है ।। ४६ ।।

वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो शिवरात्रियों में अनेक बिल्व-पत्रों को लेकर बिल्वेश्वर महादेव का पूजन करने के लिए आते हैं ।। ४७ ।।

हे विप्र नारद ! उस स्थान से दो शरविक्षेप दूर पर्वत पर पूर्व दिशा में भोग और मोक्ष के फल को देने वाला पुण्यतम प्रसिद्ध जल है ।। ४८ ।।

विंशतौ च धनुर्माने ह्यधतस्तान्मुनिवंदित ।
आकरो हि सुवर्णस्य प्राप्यं वै पुण्यकर्मणाम् ॥ ४९ ॥

जलेऽस्सिन्मण्डलं यावत्स्नानं कुर्य्याज्जितेन्द्रियः ।
फलमूलजलाहारस्तदा पश्यति शंखिनीम् ॥ ५० ॥

ततः क्रोशार्द्धके प्राच्यां भ्रमरी नाम विश्रुता ।
समायाति सरिच्छ्रेष्ठा प्राणिनां स्वर्गदायिनी ॥ ५१ ॥

भ्रमरीसंगमो यत्र तत्तीर्थं भ्रामरं मतम् ।
तत्रैव भ्रमरी देवी जले तिष्ठति सर्वदा ॥ ५२ ॥

इति वै बिल्वतीर्थस्य माहात्म्यं गदितं शुभम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापैश्च मुच्यते पठनात्तथा ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे मायाक्षेत्र माहात्म्ये बिल्वतीर्थमाहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

त्रिमूर्तीश्वरसुनन्दानदीनन्दीशिलाशिवतीर्थनन्दीश्वरमुण्डमालेश्वर्यादि-तीर्थवर्णनम्

स्कन्द उवाच—

शृणु नारद भक्त्या वै त्रिमूर्ति तीर्थनायकम् ।
बिल्वतीर्थात् त्रिगव्यूतौ वर्त्तते मोक्षदं परम् ॥ १ ॥

जलं रक्ततमं ह्यत्र समायाति मुनीश्वर ।
त्रिमूर्तीश्वरो महादेवः सर्वेषां मुक्तिदायकः ॥ २ ॥

यस्मिंस्तीर्थे सकृत्स्नातो व्रजेच्छिवमनुत्तमम् ।
ततः उत्तरदेशे हि नदी परमपावनी ।
सुनंदेति समाख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ ३ ॥

हे मुनियों से वन्दित नारद ! उस स्थान से २० धनुष की दूरी पर नीचे की ओर सुवर्ण की खान है । वह पुण्य-कर्म करने वालों को ही प्राप्य है ।। ४६ ।।

यहाँ के जल में जब मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर मण्डल तान्त्रिक विधि से स्नान करता है और फल-फूल-जल का आहार करता है, तब निधि (शंखिनी) का दर्शन करता है ।। ५० ।।

वहाँ से आधा कोस दूर पूर्व दिशा में भ्रमरी नाम से प्रसिद्ध श्रेठ नदी आती है । वह प्राणियों को स्वर्ग प्रदान करती है ।। ५१ ।।

जहाँ भ्रमरी का शंखिनी में संगम होता है, उस स्थान को भ्रामर तीर्थ कहते हैं । वहीं पर भ्रमरी देवी सदा जल में रहती हैं ।। ५२ ।।

इस प्रकार मैंने बिल्वतीर्थ के शुभ माहात्म्य को कह दिया है । इसको सुनकर और पढ़कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। ५३ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य
प्रकरण में बिल्वतीर्थ माहात्म्य नाम का १०७वां अध्याय
पूरा हुआ ।।

अध्याय १०८

त्रिमूर्तीश्वर-सुनन्दानदी-नन्दीशिला-शिवतीर्थ-नन्दीश्वर-मुण्डमालेश्वरी आदि तीर्थों का वर्णन

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! तुम तीर्थों के नायक त्रिमूर्ति का वृत्तान्त भक्ति-भाव से सुनो । यह परम मोक्ष को देने वाला तीर्थ बिल्वतीर्थ से तीन गव्यूति (छः कोस) दूर है ।। १ ।।

हे मुनीश्वर ! यहाँ अत्यधिक लाल जल आता है । त्रिमूर्तीश्वर महादेव सबको मुक्ति देने वाले हैं ।। २ ।।

इस तीर्थ में एक बार स्नान करके मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है । उससे उत्तर दिशा में एक परम पावनी नदी है । सुनन्दा नाम से प्रसिद्ध यह नदी सब दरिद्रताओं का विनाश करने वाली है ।। ३ ।।

तन्मूले भगवान्देवः सुनन्देश्वरसंज्ञकः ।
गंगायां तत्र देशे हि यत्र नंदीशिला भवेत् ॥ ४ ॥

पीतवर्णा तत्र देशे शिवतीर्थं सुपुण्यदम् ।
शिवतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

नंदीश्वरो महादेवस्तत्र सर्वगणावृतः ।
तं दृष्ट्वा साधकश्रेष्ठो जप्त्वा मंत्रं शिवात्मकम् ।
शिवलोकमवाप्नोति सहस्रं युगसंख्यया ॥ ६ ॥

ततोऽपि क्रोशमात्रे हि वीरभद्रतपःस्थलम् ।
लक्षवर्षसहस्राणि तताप परमं तपः ॥ ७ ॥

गणेश्वरं महादेवो वीरभद्राय संददौ ।
शिवकुंडे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि नारद ।
स्नातानि तेन भगवान् पूजितश्च तथा भवेत् ॥ ९ ॥

वीरभद्रेश्वरो देवो लिंगरूपी सदाशिवः ।
तत्र बिल्ववने विप्र दृष्टो मुक्तिप्रदो भवेत् ॥ १० ॥

यस्त्रिरात्रं महालिंगं पूजयेन्निर्भयो मुने ।
स सर्वसिद्धिमाप्नोति सत्यं तच्छिवभाषितम् ॥ ११ ॥

एकतः सर्वदानानि सर्वतीर्थाटनं पुनः ।
एकतो दर्शनं तत्र वीरभद्रेश्वरस्य हि ॥ १२ ॥

वीरभद्रेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा च शिवतीर्थके ।
हयमेधफलं विप्र प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १३ ॥

निराहारः सप्तरात्रं यो नरोऽत्र शिवाश्रितः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यमेतन्न संशयः ॥ १४ ॥

उसके मूल में सुनन्देश्वर नाम के भगवान् महादेव हैं। गंगा के उस प्रदेश में वहां नन्दी नाम की शिला है ॥ ४ ॥

वह पीले वर्ण की है। उस प्रदेश में उत्तम पुण्यदायक शिवतीर्थ है। शिवतीर्थ में स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

वहाँ सभी गणों से घिरे हुए नन्दीश्वर महादेव हैं। उनका दर्शन करके और शिवात्मक मन्त्रों का जप करके श्रेष्ठ साधक हजार युगों तक शिवलोक को प्राप्त करता ॥ ६ ॥

उससे एक कोस दूर वीरभद्र का तपःस्थल है। वहाँ वीरभद्र ने एक लाख वर्षों तक परम तप किया था ॥ ७ ॥

महादेव ने वीरभद्र को गणों का नायक बना दिया। शिवकुण्ड में स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ८ ॥

हे नारद ! पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, मानो उसने उन सब में स्नान कर लिया है और भगवान् की पूजा कर ली है ॥ ९ ॥

हे विप्र ! उस बिल्व वन में लिंगरूपधारी सदाशिव वीरभद्रेश्वर महादेव का दर्शन मुक्ति देने वाला है ॥ १० ॥

हे मुने ! जो मनुष्य निर्भय होकर तीन रात्रियों तक उस महालिंग का पूजन कर लेता है, वह सब सिद्धियों को प्राप्त करता है। शिव का यह कथन सत्य है ॥ ११ ॥

एक ओर तो सब प्रकार के दान हैं और पुनः सब तीर्थों का भ्रमण है, और एक ओर वहाँ वीरभद्रेश्वर का दर्शन है ॥ १२ ॥

हे विप्र नारद ! वीरभद्रेश्वर का दर्शन करके और शिवतीर्थ में स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल को और परम पद को प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

जो मनुष्य निराहार रहकर शिव के आश्रय में यहाँ सात रात्रियों तक रहता है, वह सब कामनाओं को प्राप्त करता है। यह बात निस्सन्देह रूप से सत्य है ॥ १४ ॥

शिवस्य दक्षिणे भागे धारा क्रोशार्द्धखंडके ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

ततो वे पश्चिमे भागे जलं पीततमं शुभम् ।
सकृदाचम्य विधिवत्सौर मंत्राभिमन्त्रितम् ।
पिबेच्छुद्धमना विप्र सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥

ततो वामप्रदेशे व शिवलिंगमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा संस्नाप्य गांगेन तोयेन शिवमाप्नुयात् ॥ १७ ॥

तत्रैका सलिलानाम्नी सुरकन्या सुरार्चका ।
मध्याह्ने नित्यमायाति पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १८ ॥

भवित्री सा परे कल्पे शची देवपतिप्रिया । १९ ॥

पितृभ्यो यवपिष्टस्य पिण्डान् दद्याद्विचक्षणः ।
तारितास्तेन पितरो दश पूर्वा दशापराः ॥ २० ॥

ततोऽतिनिकटे वामे निवर्तनमिते स्थले ।
मुंडमालेश्वरी देवी प्रमथोत्करशोभिनी ॥ २१ ॥

यस्या दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
नानावाद्यमयाः शब्दाः श्रूयन्ते देवताहृताः ॥ २२ ॥

तत्र पीठेश्वरी देवी सर्वभूतमनोहरा ।
तस्मिन् स्थाने तु यो मर्त्यो धीरात्मा दृढ़निश्चयः ।
न कार्या भीस्ततो विप्र य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २३ ॥

ददाति दर्शनं तस्य मुंडमालेश्वरी शिवा ।
नानारूपधरास्तत्र दृश्यन्ते प्रमथ स्त्रियः ॥ २४ ॥

पुरश्चर्यां च विधिवत् सप्तरात्रं जितेन्द्रियः ।
असाध्यमपि सप्ताहात् साधयेत्साधकोत्तमः ॥ २५ ॥

तस्य दक्षिणतो विप्र शिला पीततमा किल ।
आश्चर्यं दृश्यते तत्र शयनात् पूर्वजन्म यत् ॥ २६ ॥

शिव के इस लिंग के दक्षिण दिशा में आधा कोस दूरी पर एक धारा है। उसमें भक्ति-भाव से स्नान करके मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

उससे पश्चिम दिशा में अति पीत वर्ण का शुभ जल है। हे विप्र नारद ! यदि मनुष्य शुद्ध मन वाला होकर विधिवत् सौर मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके उस जल का एक बार आचमन कर ले, तो सूर्यलोक को प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

उसके बायें प्रदेश में उत्तम शिवलिङ्ग है। उसका दर्शन करके और उसको गंगा के जल से स्नान कराकर मनुष्य शिव को प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

वहाँ पूर्ण चन्द्रमा के समान सन्दर मुख वाली, देवताओं का पूजन करने वाली सलिला नाम की देवकन्या प्रतिदिन मध्याह्न में आती है ॥ १८ ॥

वह अगले कल्प में शची नाम से देवपति इन्द्र की प्रिया होगी ॥ १९ ॥

यहाँ यवों को पीस कर बुद्धिमान् व्यक्ति पितरों के लिए पिण्डदान करे। जिसने यहां पिण्डदान किया है, वह अपने से पहले के दस पितरों को और अपने से बाद के दस पितरों को तरा देता है ॥ २० ॥

उसके अति निकट बांयी ओर थोड़ा-सा वापिस लौटकर मुण्डमालेश्वरी देवी हैं। वे प्रमथों के समूह से सुशोभित हैं ॥ २१ ॥

इनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। यहाँ देवताओं द्वारा बजाये गये अनेक वाद्यों के शब्द सुनाई देते हैं ॥ २२ ॥

उस स्थान पर सब प्राणियों के लिए मनोहर पीठेश्वरी देवी हैं। हे विप्र नारद ! धैर्यशाली और दृढ़ निश्चय वाले मनुष्य को, यदि वह अपना कल्याण चाहता है, तो इस स्थान पर उससे डरना नहीं चाहिए ॥ २३ ॥

कल्याणकारिणी मुण्डमालेश्वरी देवी उसको दर्शन देती हैं। वहाँ विविध रूपों को धारण करने वाली प्रमथ स्त्रियां दिखाई देती हैं ॥ २४ ॥

जो मनुष्य इन्द्रियों को जीतकर सात रात्रियों तक यहाँ पुरश्चरण करता है, वह उत्तम साधक सात दिनों में असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर लेता है ॥ २५ ॥

हे विप्र नारद ! उससे दक्षिण की ओर अत्यधिक पीले रंग की शिला है। वहाँ शयन करने से मनुष्य पूर्व जन्म के आश्चर्यजनक वृत्तान्तों को देखता है ॥ २६ ॥

यस्मिन्कुले च योनौ च जातं पूर्वं तपोनिधे।
जानाति शयनात्तत्र यदि जीवति मानवः ॥ २७ ॥

इति गुह्यतमान्येव कथितानि तवाधुना।
पित्रोः श्रुतानि मे यानि वदतोर्वै परस्वरम्।
गोपनीयानि यत्नेन कलौ बुद्धिविवर्ज्जितान् ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायातीर्थमाहात्म्यं नामाष्टाधिक-शततमोऽध्यायः।

नवाधिकशततमोऽध्यायः

शम्बूकशूद्राख्यानहरिद्वारस्नानसमयकथनपूर्वकं धर्मकेतुनृपाख्यानम्

नारद उवाच—

हरिद्वारे महाभाग कानि तीर्थानि तानि मे।
कथयस्व प्रसादेन मुक्तिदानि विना व्रतैः ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच—

श्रृणु नारद वक्ष्यामि लोकानां मुक्तिकारणम्।
सकृत्स्नातं तु यैर्मर्त्यैर्गंगाद्वारे शुभावहे।
न[1] तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ २ ॥

गंगाद्वारसमं तीर्थं न कैलाससमो गिरिः।
वासुदेवसमो देवो न गंगासदृशं परम्।
न गोदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ३ ॥

श्रृणु दिव्यां कथां पुण्यां गंगाद्वाराश्रितां शुभाम्।
पुरा त्रेतायुगे शूद्रो बभूव विजये पुरे ॥ ४ ॥

नाम्ना शंबूक इति वै ख्यातो विप्राश्रमे मुने।
सेवार्थं सार्थलग्नो वै एकाकी शुभतत्परः ॥ ५ ॥

गंगाद्वारे महाक्षेत्रे देवर्षिगणभूषिते।
शकटानद्धवृषभनियोगे कुशलो मुने।
आययौ वेतनी तत्र शंबूको नाम शूद्रकः ॥ ६ ॥

---

१. तस्य।

हे तपोनिधे नारद ! यदि वहाँ शयन करने पर मनुष्य जीवित रह जाता है तो पूर्व जन्म में वह जिस कुल में और जिस योनि में उत्पन्न हुआ था उसको जान लेता है ॥ २७ ॥

इस प्रकार मैंने अब तुमसे गुप्ततम स्थानों को बता दिया है, जिनको कि मैंने परस्पर वार्ता करते हुए माता-पिता से सुना था। कलियुग में इनको बुद्धि से रहित व्यक्तियों से गुप्त रखना चाहिए ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायातीर्थ माहात्म्य
नाम का १०८वां अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय १०९

शम्बूक शूद्र का आख्यान, हरिद्वार में स्नान का समय, धर्मकेतु राजा का उपाख्यान

नारद ने कहा—

हे महाभाग स्कन्द ! हरिद्वार में वे कौन-कौन से तीर्थ है, जो तुम्हारी कृपा से विना ब्रतों के ही मुक्ति प्रदान करते हैं ॥ १ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! मैं तुमसे लोकों की मुक्ति का कारण बताऊँगा। जो मनुष्य शुभ गंगाद्वार में एक बार भी स्नान कर लेते हैं, उनका सौ करोड़ कल्पों तक भी पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २ ॥

तीनों लोकों में गंगाद्वार के समान तीर्थ, कैलास के समान पर्वत, वासुदेव के समान देवता, गंगा के समान श्रेष्ठ नदी और गोदान के समान दान नहीं है ॥ ३ ॥

गंगाद्वार से सम्बन्धित शुभ पुण्य दिव्य कथा को सुनो। पूर्व समय में विजय-पुर में एक शूद्र था ॥ ४ ॥

हे मुने ! वह शूद्र शम्बूक नाम से प्रसिद्ध था। वह अकेला शूद्र शुभ कार्य करता हुआ ब्राह्मणों के आश्रम में सेवा कार्य करने लगा ॥ ५ ॥

हे मुने नारद ! देवर्षियों से विभूषित महाक्षेत्र गंगाद्वार में गाड़ियों में जोते हुए बैलों को नियन्त्रित करने में कुशल वह शम्बूक नाम का शूद्र वेतन के लिए आया ॥ ६ ॥

दृष्टास्तेनात्र मुनयो धनिनश्च नृपास्तथा।
कौतुकार्थं पर्य्यटितं सर्वत्र मुनिवंदित ॥ ७ ॥

पुण्यक्षेत्रे क्षणात्तस्य पापं सर्वं क्षयं गतम्।
निष्कलमषोऽभवच्छूद्रो ज्ञानवान् समजायत ॥ ८ ॥

अधिकारविहीनस्य शूद्रस्यापि महामते।
रामभद्रस्य भगवदवतारस्य सन्निधौ।
बभूव मरणं तस्य मुक्तिं चापानिर्वर्त्तिनीम् ॥ ९ ॥

दर्शनाद्यस्य पुण्यस्य क्षेत्रस्य परमां गतिम्।
शूद्रोऽपि प्रययौ तत्र किमन्ये ब्राह्मणादयः ॥ १० ॥

दृष्ट्वा मायापुरीं पुण्यां स्नात्वा च ब्रह्ममंदिरे।
वाराणसीं लभेदन्ते सत्यं सत्यं हि नारद ॥ ११ ॥

त्रिषु स्थानेषु ये मर्त्या निवसन्ति महामुने।
गंगाद्वारे तथा काश्यां गंगासागरसंगमे।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १२ ॥

धन्यानां पुरुषाणां हि गंगाद्वारस्य दर्शनम्।
विशेषतस्तु मेषार्कसंक्रमेऽतीव पुण्यदे ॥ १३ ॥

तत्रापि कुंभराशिस्थे वाक्पतौ सुरवन्दिते।
अयने विषुवे चैव संक्रान्तौ चन्द्रसूर्य्ययोः ॥ १४ ॥

ग्रहणे वा व्यतीपाते पूर्णिमायां महामुने।
सोमवारान्वितायां वा यस्यां कस्यामथापि वा ॥ १५ ॥

अमायां च तथा माघे वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा।
तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटी च तीर्थानां मुनिसत्तम।
भजन्ते सन्निधिं तत्र स्नातः सर्वत्र जायते ॥ १६ ॥

क्षेत्राणां पंचकं पृथ्व्यां स्थास्यति प्रवरे कलौ।
गंगाद्वारं च केदारं काशी गंगागमस्तथा ॥ १७ ॥

गंगा च संगता यत्र सागरेण महामते।
गंगापि स्थास्यतेऽत्रैव सत्यमेतच्छिवेरितम् ॥ १८ ॥

हे मुनिवन्दित नारद ! यहाँ उसने मुनियों, धनियों और राजाओं को देखा। वह कुतूहलवंश सर्वत्र घूमने लगा ।। ७ ।।

इस पुण्य क्षेत्र में उसके सारे पाप क्षण भर में नष्ट हो गये । वह शूद्र निर्मल होकर ज्ञानी हो गया ।। ८ ।।

हे महामते नारद ! रामचन्द्र का अवतार लेने वाले भगवान् विष्णु के समीप, अधिकार से रहित भी उस शूद्र की मृत्यु हुई और उसने संसार में पुनः वापिस न आने वाले मोक्ष को प्राप्त किया ।। ९ ।।

जिस पुण्य क्षेत्र के दर्शन से शूद्र ने भी परम गति को प्राप्त किया था वहाँ अन्य ब्राह्मण आदियों का तो कहना ही क्या है ? ।। १० ।।

पुण्य मायापुरी का दर्शन करके और ब्रह्मा के मन्दिर में स्नान करके मनुष्य मृत्यु के बाद वाराणसी को प्राप्त करता है । हे नारद ! यह बात निश्चय से सत्य है, सत्य है ।। ११ ।।

हे महामुने नारद ! जो मनुष्य गंगाद्वार में, काशी में और गंगासागर के संगम में निवास करते हैं, उनका सौ करोड़ कल्पों तक भी पुनर्जन्म नहीं होता ।। १२ ।।

धन्य पुरुषों को ही गंगाद्वार का दर्शन होता है, विशेष रूप से अति पुण्यदायक, मेष और सूर्य नक्षत्रों के संक्रमण होने पर ।। १३ ।।

उसमें भी जब इनका संक्रमण कुम्भ राशि में देवताओं से वन्दित बृहस्पति नक्षत्र में हो और विषुवत् अयन में सूर्य और चन्द्र की संक्रान्ति हो ।। १४ ।।

हे महामुने ! अथवा सूर्यचन्द्र का ग्रहण हो रहा हो, अथवा जो कोई भी सोमवार की पूर्णिमा हो ।। १५ ।।

अथवा माघ, वैशाख या कार्तिक महीनों की अमावस्या हो । हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! वहाँ हरिद्वार में साढे तीन करोड़ तीर्थ रहते हैं । जिसने वहाँ स्नान कर लिया, वह सर्वत्र स्नान कर लेता है ।। १६ ।।

प्रबल कलियुग में पांच उत्तम क्षेत्र रहेंगे—गंगाद्वार, केदार, काशी, जहाँ से गंगा आयी हैं वह गोमुख और गंगासागर, जहाँ गंगा समुद्र में मिलती है । गंगा भी यहीं स्थित रहेगी । शिव ने यह सत्य कहा है ।। १७–१८ ।।

अत्र स्नानाधिकारी स्याद् गन्तुं केदारसन्निधिम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नायादत्र ममेप्सया ॥ १९ ॥

खलः को नाम मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम चक्रुर्मुनीश्वराः ॥ २० ॥

नारद उवाच—

कथमेतत्समुत्पन्नं कः खलो मुक्तिमाप सः ।
एतत्सर्वं समासेन महासेन वदस्व मे ॥ २१ ॥

स्कन्द उवाच—

शृणु विप्र पुरा वृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम् ।
पुरार्गलपुरे विप्रो धर्मकेतुर्बभूव ह ॥ २२ ॥

धर्मात्मा सत्यसंकल्पो विद्वान्दीनजनाश्रयः ।
नित्यं दीनांस्तथा मूकान्वृद्धानाश्रयवर्जितान् ।
भोजयित्वा स्वयं भुंक्ते दारैः पुत्रैस्तथा वृतः ॥ २३ ॥

एकदा जडमूर्तिर्वै ब्राह्मणो वाग्विवर्जितः ।
पशुबुद्धिर्ज्ञानशून्यो दृषदात्मा यथापरः ॥ २४ ॥

क्षुत्पिपासापरिज्ञानमात्रं चेत्ति निजापरम् ।
आययौ क्षुधयाविष्टो धर्मकेतोर्गृहे मुने ॥ २५ ॥

जगाद संज्ञया हस्ते याचनां भोजनाय वै ।
दत्तं च तेन विप्रेण भोजनं भोजनोत्तमम् ॥ २६ ॥

अनन्यगतये तस्मै ददावेवं महामते ।
भोजनाच्छादने चैव धर्मकेतुर्महायशाः ॥ २७ ॥

कदाचिद्दैवयोगेन मायापुर्यां समाययौ ।
सोऽपि मूकोऽशनापेक्षो ज्ञानशून्यो महामुने ॥ २८ ॥

नैतस्य स्वपरं ज्ञानं भक्ष्याऽभक्ष्ये न निर्णयः ।
अगम्यागमने नैव नैव पाने तथैव च ॥ २९ ॥

मार्गे सार्थात् परि भ्रष्टो यवनैः संगतो ह्यभूत् ।
तत्रापि तैस्तदा भुक्तं भक्षं च भ्रष्टबुद्धिना ॥ ३० ॥

वहाँ स्नान करने का अधिकारी व्यक्ति ही केदारनाथ जा सकता है। इसलिए मुझको प्राप्त करने की इच्छा वाला मनुष्य सब प्रयत्नों से पहले यहाँ स्नान करे ।। १६ ।।

वहां स्नान करने से कौन खल मनुष्य भी मुक्ति को प्राप्त नहीं करता, अतः मुनीश्वरों ने इस तीर्थ का नाम कनखल रखा ।। २० ।।

नारद ने कहा—

हे महासेन स्कन्द ! यह तीर्थ कैसे उत्पन्न हुआ और यहाँ किस खल ने मुक्ति पाई थी। इस बात को तुम मुझे संक्षेप से बताओ ।। २१ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र नारद ! पापों को नष्ट करने वाली प्राचीन कथा को सुनो। पहले समय में अर्गलपुर में धर्मकेतु नाम का ब्राह्मण था ।। २२ ।।

वह धर्मात्मा, सत्य-संकल्प, विद्वान् और दीन जनों का आश्रय था। वह नित्य दीनों, गूंगों, वृद्धों और आश्रयहीनों को भोजन कराकर स्वयं पत्नी और पुत्रों से घिरा हुआ भोजन करता था ।। २३ ।।

एक बार जड़मूर्ति गूंगा, पशुबुद्धि, ज्ञान से शून्य, मानो दूसरा पत्थर की आत्मा हो, ऐसा ब्राह्मण आया ।। २४ ।।

वह भूख-प्यास की बात को ही जानता था और अपनी किसी बात को नहीं जानता था। हे मुने नारद ! वह भूखा ब्राह्मण धर्मकेतु के घर आया ।। २५ ।।

वहाँ उसने हाथ के इशारे से भोजन की याचना की। उस ब्राह्मण धर्मकेतु ने भी उसको उत्तम भोजन दिया ।। २६ ।।

हे महामते नारद ! महायशस्वी धर्मकेतु ने अनन्य गति वाले उस ब्राह्मण को भोजन और वस्त्र दिये ।। ।।२७ ।।

हे महामुने ! वह भूखा गूंगा और ज्ञान से शून्य ब्राह्मण कभी दैवयोग से मायापुरी में आया ।। २८ ।।

उसको अपने-पराये का ज्ञान नहीं था, वह भक्ष्य और अभक्ष्य का निर्णय नहीं कर सकता था, अगम्या स्त्री से गमन करने और मदिरा पीने में दोष का भी बोध नहीं था ।। २९ ।।

मार्ग में सार्थ से भ्रष्ट होकर उसको यवनों का साथ मिल गया। भ्रष्ट-बुद्धि वाले उसने वही भोजन किया जो यवन करते थे ।। ३० ।।

एवं क्रमेण मूकेन यौवनोन्मादशालिना ।
संगमश्च कृतस्तेन नीचया द्रुहिणात्मज ।। ३१ ।।

नीचसंगतिको विप्रो मत्या ग्रावाग्रजन्मनः ।
ययौ कनखले तीर्थे मुनिवृन्दसमाश्रिते ।। ३२ ।।

विषुवे संक्रमे पुण्ये घर्म्मार्त्तो मज्जनाय वै ।
गतः कनखले तीर्थे स्नातश्च घर्मपीडितः ।। ३३ ।।

सार्थलग्नः पुनर्विप्रोऽर्गलपुर्यां समाययौ ।
काले स कालमापन्नो ययौ हि[1] परमं पदम् ।। ३४ ।।

यां गतिं योगमापन्ना यां गतिं धर्मशीलिनः ।
यां काशीमरणाद्यान्ति प्राप तां गतिमुत्तमाम् ।
तीर्थस्नानप्रभावेण भक्त्या विरहितोऽपि सः ।। ३५ ।।

ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां स्नानमात्रतः ।
प्राप्यते परमं स्थानं दुर्लभं योगिनामपि ।। ३६ ।।

विप्राय दत्ता गौर्येन दत्ता तेन वसुन्धरा ।
श्राद्धं कृतं च यैस्तत्र गयायाः फलभाग्भवेत् ।। ३७ ।।

अन्नदानं कृतं येन न दरिद्रो भवेत् क्वचित् ।
धन्याः काश्यां मृता मर्त्या धन्याः कनखले तथा ।। ३८ ।।

स्नाताश्च मुनिशार्दूल पुनरावृत्तिदुर्लभाः ।
धन्यानां मरणं चात्र मायापुर्यां महामुने ।। ३९ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्यं नाम
नवाधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. स ।

इस प्रकार, हे ब्रह्मा के पुत्र नारद ! यौवन के उन्माद से भरे हुए उस गूँगे ब्राह्मण ने क्रमशः किसी नीच स्त्री से संगम किया ।। ३१ ।।

नीच संगति वाला वह ब्राह्मण, जो कि बुद्धि से मानो पत्थर का बड़ा भाई था, मुनियों से समाश्रित कनखल तीर्थ में गया ।। ३२ ।।

पुण्यशाली विषुवत् संक्रान्ति में गर्मी से पीड़ित वह ब्राह्मण कनखल तीर्थ मैं गया और वहाँ उसने स्नान किया ।। ३३ ।।

पुनः वह ब्राह्मण सार्थ के साथ अर्गलपुरी में आ गया । समय पर मरकर उसने परम पद प्राप्त किया ।। ३४ ।।

योगिजन जिस गति को प्राप्त करते हैं, धार्मिक जन जिस गति को प्राप्त करते हैं, काशी में मरने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, भक्ति से रहित भी उस गूँगे ब्राह्मण ने कनखल तीर्थ में स्नान के प्रभाव से उस उत्तम गति को प्राप्त किया ।। ३५ ।।

ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि में स्नान करने मात्र से वह परम स्थान प्राप्त होता है, जो योगियों को भी दुर्लभ है ।। ३६ ।।

जिसने कनखल में ब्राह्मण के लिए गोदान और कर दिया उसने मानो पृथ्वी का दान कर दिया । जिसने यहाँ श्राद्ध कर लिया, वह गयातीर्थ में श्राद्ध करने के फल का भागी होता है ।। ३७ ।।

अन्न का दान करने वाला व्यक्ति कभी दरिद्र नहीं होता । काशी में मरने वाले मनुष्य धन्य हैं और कनखल में मरने वाले मनुष्य धन्य हैं ।। ३८ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! कनखल में स्नान करने वालों का पुनर्जन्म नहीं होता । हे महामुने ! मायापुरी में धन्य व्यक्तियों की ही मृत्यु होती है ।। ३९ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायापुरी-माहात्म्य नाम का १०९वां अध्याय पूरा हुआ ।।

दशाधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थयात्राविधिब्रह्मप्रोक्तदुर्गास्तुतिमहामायाविर्भावसमुद्रमन्थन-पुरस्सरं वर्धमानवैश्याख्यानं गोदानमहिमा च

नारद उवाच—

कर्त्तव्यं च कथं श्राद्धं गोदानं चान्नदानकम् ।
को विधिः कश्च कालो वै किं पात्रं किं च दैवतम् ।। १ ।।

एतत्सर्वं समासेन कथयस्व शिवात्मज ।
येन केन प्रकारेण कर्त्तव्यानि मुमुक्षुभिः ।। २ ।।

स्कन्द उवाच—

शृणु नारद तत्सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वयाद्य वै ।
पित्रोः कथयतोर्विप्र श्रुतं सान्निध्यगेन हि ।। ३ ।।

आदौ तीर्थागमे देवं गणेशं भैरवं तथा ।
वेदव्यासं पुरार्णाषं मां चैव प्रतिपूज्य हि ।
गच्छेज्जितेन्द्रियः शांतो ब्रह्मनिष्ठो दयापरः ।। ४ ।।

तीर्थप्राप्तिदिने कुर्यान्निराहारं च मज्जनम् ।
तत. प्रातः समुत्थाय कृतनित्यक्रियो मुने ।
भैरवाज्ञां गृहीत्वा तु तीर्थस्नानमथाचरेत् ।। ५ ।।

स्नानं विप्रा ज्ञया कुर्याद् दक्षादीन्स्नानकर्म्मणि ।
नमस्कृत्य ततो विप्रानावाह्य चात्र देवताः ।
श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन श्राद्धदृष्टविधानतः ।। ६ ।।

आसनं परिकल्प्यादौ पिंडदानं ततः परम् ।
ततोऽवनेजनं कुर्यात्पुनः पूर्वविकल्पिते ।। ७ ।।

अध्याय ११०

तीर्थयात्रा की विधि, ब्रह्मा द्वारा दुर्गादेवी की स्तुति, महामाया का आविर्भाव, समुद्रमन्थन की कथा, वर्धमान वैश्य का आख्यान और गोदान की महिमा

नारद ने कहा—

श्राद्ध कैसे करना चाहिए ? गोदान ओर अन्नदाग कैसे करना चाहिए ? इसकी क्या विधि है और कौनसा समय है ? इसका कौन पात्र है ? और कौन देवता है ? ॥ १ ॥

हे शिव के पुत्र स्कन्द ! मोक्ष की इच्छा करने वालों को किस प्रकार कर्त्तव्य करने चाहिएँ ? इस सबको संक्षेप से कहो ॥ २ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! यह जो तुमने आज पूछा है, वह सब सुनो । हे विप्र ! माता-पिता के वार्ताँलाप करते हुए, उनके समीप रहकर मैंने यह बात सुनी हैं ॥ ३ ॥

तीर्थ में जाते हुए सबसे पहले देव गणेश, भैरव, और पुराण ऋषि वेदव्यास का पूजन करे । तदनन्तर जितेन्द्रिय शान्त, ब्रह्मनिष्ठ होकर और दया से भरकर वहाँ जाये ॥ ४ ॥

तीर्थ पहुँचने के दिन निराहार रहकर स्नान करे । तदनन्तर हे मुने ! प्रातः-काल उठकर, नित्य क्रियायें करके, भैरव की आज्ञा को लेकर तीर्थ-स्नान करे ॥५ ॥

ब्राह्मण की आज्ञा से वह स्नान करे । स्नान करते हुये दक्ष आदि प्रजापतियों को नमस्कार करके तदनन्तर ब्राह्मणों और देवताओं का आवाहन करे । श्राद्ध में बताये विधान के अनुसार प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करे ॥ ६ ॥

पहले आसन बनाकर, तदनन्तर पिण्डदान करे । तदनन्तर पहले से कल्पित कुशों पर जल छिड़के (अवनेजन) ॥ ७ ॥

दक्षिणां च ततो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो यथाधनम् ।
यस्य सन्तोषमायान्ति तीर्थस्थाः भूमिदेवताः ।
तस्य सर्वं कृतं साग्रं सफलं स्यान्महामुने ॥ ८ ॥

असंतुष्टा यस्य विप्रास्तीर्थस्थाः श्राद्धकर्म्मणि ।
असंतुष्टास्तत्पितरो ज्ञेया धर्मपरायणैः ॥ ९ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्तोषं जनयेत्सुधीः ।
अन्नदानं च तत्कुर्यात्सांगतासिद्धि हेतवे ।
एतत्तीर्थे प्रकर्त्तव्यं श्राद्धं श्रद्धासमन्वितैः ॥ १० ॥

श्राद्धात्संततिमाप्नोति श्राद्धाद्वै परमं यशः ।
श्राद्धाद्वर्षति पर्ज्जन्यः श्राद्धात्सुखमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

श्राद्धात्स्वर्गमवाप्नोति श्राद्धान्मोक्षं च विन्दति ।
यो नरः श्राद्धहीनः स्यात्तस्य नो वर्द्धते प्रजा ॥ १२ ॥

मृते नरकमाप्नोति तस्माच्छ्राद्धं न संत्यजेत् ॥ १३ ॥

तीर्थमागत्य यो मर्त्यः श्राद्धकर्मविवर्जितः ।
सर्वतीर्थफलं व्यर्थं तीर्थ श्राद्धं विना मुने ।
तस्माच्छ्राद्धपरो भूयात्तीर्थे वापि गृहे तथा ॥ १४ ॥

धन्यानां मानुषे जन्म तत्रापि हिमवत्स्थले ।
मायापुर्यां हि तत्रापि तत्र भक्तिमतां कुले ॥ १५ ॥

वेदाध्ययनकर्माणि तथा यज्ञादिकाः क्रियाः ।
पृथ्वीपर्य्यटनं वापि स्नानं सागरसंगमे ॥ १६ ॥

मायापुरीति या सम्यक् कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १७ ॥

तेन तप्तं हुतं तेन तेन दत्ता वसुन्धरा ।
तेन सर्वं कृतं कर्म्म मुक्तिद्वारप्रदं मुने ॥ १८ ॥

येनाऽत्र विदुषे दत्ता गौः स्वर्गीयफलप्रदा ।
यावन्ति तच्छरीरस्य रोमाणि मुनिपुंगव ॥ १९ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणों को शक्ति के अनुसार धन का दान करे। हे महामुने! तीर्थों में स्थित भूमि के देवता ब्राह्मण जिसके प्रति सन्तुष्ट रहते हैं, उनके सम्पूर्ण कृत्य उत्तम रूप से सफल होते हैं ।। ८ ।।

तीर्थ में स्थित ब्राह्मण जिसके श्राद्ध कर्म में असन्तुष्ट रहते हैं, धर्मपरायणों को समझना चाहिए कि उसके पितर असन्तुष्ट हैं ।। ९ ।।

इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति सब प्रकार से प्रयत्न करके उनको सन्तुष्ट करे और उनकी संगति प्राप्त करने के लिए अन्न का दान करे। तीर्थयात्रियों को इस तीर्थ में श्राद्ध करना चाहिए ।। १० ।।

श्राद्ध से वह सन्तान को प्राप्त करता है, श्राद्ध से निश्चय से परम यश को प्राप्त करता है, श्राद्ध से मेघ बरसता है और श्राद्ध से वह सुख प्राप्त करता है ।। ११ ।।

श्राद्ध से स्वर्ग को प्राप्त करता है और श्राद्ध से मोक्ष पाता है। जो मनुष्य श्राद्ध से हीन होता है, उसकी सन्तान बढ़ती नहीं है ।। १२ ।।

श्राद्ध से हीन व्यक्ति मरने पर नरक में जाता है, इसलिए श्राद्ध को न छोड़ें ।। १३ ।।

हे मुने ! जो मनुष्य तीर्थ में आकर श्राद्ध कर्म से रहित रहता है, तीर्थ में श्राद्ध के विना उसका सब तीर्थों का फल व्यर्थ हो जाता है। इसलिए चाहे तीर्थ में हो, चाहे घर में हो मनुष्य को श्राद्ध करना चाहिए ।। १४ ।।

धन्य प्राणियों का जन्म मनुष्य योनि में होता है। उसमें भी उनका जन्म हिमालय की भूमि में, और उसमें भी मायापुरी में, और उसमें भी भक्तों के कुल में होता है ।। १५ ।।

वेदों का अध्ययन रूप कर्म, यज्ञ आदि क्रियायें पृथ्वी का पर्यटन और सागर-संगम में स्नान वे करते हैं ।। १६ ।।

अन्य तीर्थ मायापुरी तीर्थ की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं होते ।। १७ ।।

उसी ने तप किया है, उसी ने हवन किया है. उसी ने पृथ्वी का दान किया है, हे मुने ! उसी ने मुक्ति के द्वार तक पहुँचाने वाले सब कर्म किये हैं ।। १८ ।।

जिसने यहां मायापुरी में स्वर्गीय फल को देने वाली गौ को विद्वानों के लिए दान किया है। हे मुनिश्रेष्ठ ! शरीर में जितने रोम हैं ।। १९ ।।

तावत्कल्पसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
धन्यः कलियुगे घोरे ये गां दास्यन्ति तत्र वै ॥ २० ॥

एकत्र सर्वदानानि गोदानं चापरं मुने ।
तुलया संधृते चैव गोदानं चाऽभवद्गुरु ॥ २१ ॥

अनुमन्तापि यो मर्त्यो गोदाने दीनवत्सलः ।
सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति यावदिंद्राश्चतुर्द्दश ॥ २२ ॥

समुद्राश्च चतुःपात्सु रोमकूपेषु देवताः ।
सर्वतीर्थानि च तथा ह्यंगेषु सरितस्तथा ।
तस्मात्पृथ्वी समा ज्ञेया धेनुर्धन्यतमा भुवि ॥ २३ ॥

पुराकल्पादिके विप्र जगत्यम्बुमये सति ।
वेदहीनं जगत्सर्वं नष्टयज्ञं च भूसुर ॥ २४ ॥

सृष्ट्वा सर्वांस्तथा लोकान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चिंतोद्विग्नमना जातो न ववर्ध यतः प्रजाः ॥ २५ ॥
यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसंभवः ।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २६ ॥

यज्ञो न जायते विप्र सर्पिषारहितो यतः ।
सर्प्पियोनिः स्मृता धेनुस्तदभावेऽखिलं गतम् ॥ २७ ॥

तस्माद्गावः प्रसृष्टव्या मया संसारहेतवे ।
इति चिन्तयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः ।
मतिरासीन्महामायां स्तोतुं नारद भक्तितः ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच—

महामायां नमस्यामि धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।
नंदनाद्रिकृतावासां धारिणीं जगतां प्रभुम् ॥ २९ ॥

नारायणीं भद्रकालीं भद्रदां वीरवंदिताम् ।
यज्ञाशिनीं यज्ञदेहां यज्ञपालनतत्पराम् ॥ ३० ॥

त्रिशक्ति त्रिगुणारामां गुणातीतां गुणाकराम् ।
नैमिषारण्यनिलयां मलयाचलसंश्रियाम् ॥ ३१ ॥

उतने हजार कल्पों तक वह स्वर्ग लोक में महिमा को प्राप्त करता है। घोर कलियुग में वे धन्य हैं, जो गौ का दान करते हैं ॥ २० ॥

हे मुने! एक स्थान पर अन्य सब दानों को और दूसरे स्थान पर गौ के दान को लेकर तराजू पर रखा जाये तो गौ का दान ही भारी होता है ॥ २१ ॥

जो दीनवत्सल मनुष्य गौ का दान करने के लिए स्वीकृति भी प्रदान करता है, वह उतने समय तक स्वर्ग पाता है, जब तक कि चौदह इन्द्र राज्य करते हैं ॥ २२ ॥

गौ के चारों पैरों में समुद्र रहते हैं, रोमकूपों में देवता रहते हैं और अंगों में सब तीर्थ एवं नदियाँ रहती हैं। इसलिए गौ को पृथ्वी के समान जानना चाहिए। वह पृथ्वी पर धन्यतम है ॥ २३ ॥

हे विप्र! पूर्व समय में, कल्प के प्रारम्भ में जगती के जलमय हो जाने पर, हे ब्राह्मण नारद! सारा जगत् वेद-विहीन हो गया और यज्ञ नष्ट हो गये ॥ २४ ॥

लोक पितामह ब्रह्मा सभी लोकों का सर्जन करके चिन्ता से उद्विग्न मन वाले हो गये, क्योंकि प्रजा की वृद्धि नहीं हो रही थी ॥ २५ ॥

यज्ञ से पर्जन्य होता है, पर्जन्य से अन्न उत्पन्न होते हैं और अन्न से स्थावर तथा जंगम भूत उत्पन्न होते हैं ॥ २६ ॥

हे विप्र! क्योंकि घी से रहित यज्ञ नहीं होता और गौ ही घी की उत्पत्ति का कारण है, अतः गौ के न होने पर सब चला जाता है ॥ २७ ॥

इसलिए संसार के हित के लिए मुझे गौओं का सृजन करना चाहिए। हे नारद! इस प्रकार विचार करते हुए उस महात्मा ब्रह्मा का भक्ति-भाव से महामाया की स्तुति करने का विचार हुआ ॥ २८ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

मैं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देने वाली महामाया को नमस्कार करता हूँ। वह नन्दन पर्वत पर निवास करती है, लोकों को धारण करती है और प्रभु है ॥ २९ ॥

नारायणी, भद्रकाली, कल्याण प्रदान करने वाली, वीरों से वन्दित, यज्ञ के अंश का भोग करने वाली, यज्ञ रूप शरीर वाली और यज्ञ की रक्षा करने में तत्पर है ॥ ३० ॥

तीन शक्तियों वाली, सत्व-रज-तम तीनों गुणों में रमण करने वाली, गुणों से अतीत, गुणों की आकर, नैमिषारण्य में रहने वाली और मलयाचल में आश्रय लेने वाली है ॥ ३१ ॥

वीरभद्रवरां वीरां वीरासनसमास्थिताम् ।
स्वाधिष्ठानांबुजरज:पुञ्जपिञ्जरितां खगाम् ॥ ३२ ॥

शिवां सरस्वतीं लक्ष्मीं सिद्धिं बुद्धिं महोत्सवाम् ।
केदारावासशुभगां बदरीवाससुप्रियाम् ॥ ३३ ॥

राजराजेश्वरीं देवीं सृष्टिसंहारकारिणीम् ।
मायां मायास्थितां वामां वामशक्तिमनोहराम् ॥ ३४ ॥

मेनकां मनुपूज्यां च ज्वालां ज्वालामुखीं पराम् ।
एकलिंगकृतोत्सङ्गां नारायणपरायणाम् ॥ ३५ ॥

भागीरथीं भाग्यगम्यां भोगिनीं भोगिबल्लभाम् ।
भूरादिकतपोऽन्तस्थां वीणापुस्तकधारिणीम् ॥ ३६ ॥

दारुमूर्त्तिसमासीनां श्रियं पीनपयोधरां ।
केयूरांगदभूषाढ्यां चतुर्बाहुमनोहराम् ॥ ३७ ॥

सिंहासनकृतावासां रक्तवस्त्रां रणप्रियाम् ।
आर्यां कार्य्यकरीं वंदे संसारोद्भवहेतवे ॥ ३८ ॥

स्कन्द उवाच—

इति संस्तुवतस्तस्य ब्रह्मणो विष्णुजन्मन: ।
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशा देवी प्रादुरभून्मुने ।
उवाच वचनं दिव्यं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ३९ ॥

श्री देवी उवाच—

किमर्थं संस्तुता ब्रह्म किं कार्य्यं करवाणि ते ॥ ४० ॥

न बंध्यं दर्शनं मेऽस्ति कृतं यत् स्तवनं त्वया ।
प्रसन्नाऽस्मि न संदेहो भक्तिमानसि सुव्रत ॥ ४१ ॥

ब्रह्मोवाच—

सृष्टिमार्गप्रदा त्वं हि प्रकृति: परमा मता ।
त्वदिच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम् ॥ ४२ ॥

यह वीरभद्र को वर देने वाली, वीर, वीरासन पर स्थित, अपने अधिष्ठान भूत कमलों के पराग के समूह से पिंगल शरीर वाली और आकाश में विचरण करने वाली है ॥ ३२ ॥

शिव, सरस्वती, लक्ष्मी, सिद्धि, बुद्धि, और महोत्सव है। वह शुभ केदार क्षेत्र में निवास करती है और बदरी क्षेत्र में निवास करना उसे बहुत प्रिय है ॥ ३३ ॥

वह राजराजेश्वरी, देवी, सृष्टि का संहार करने वाली माया, माया में स्थित, सुन्दरी और तान्त्रिक शक्तियों से मनोहर है ॥ ३४ ॥

वह मेनका, मनु से पूजनीय, ज्वाला, श्रेष्ठ ज्वालामुखी, एकलिङ्ग महादेव की गोदी में बैठने वाली और नारायण की सेवा करने वाली है ॥ ३५ ॥

वह भागीरथी, भाग्य से प्राप्त होने वाली, भोग भोगने वाली, भोगियों की प्रिय, भू आदि व्याहृतियों के तप के अन्दर रहने वाली और वीणा तथा पुस्तक को धारण करने वाली है ॥ ३६ ॥

वह काष्ठ की मूर्ति में स्थित रहने वाली, लक्ष्मीरूप, पीन पयोधर वाली, केयूर और अंगद आभूषणों से सम्पन्न, चार भुजाओं वाली और मनोहर है ॥ ३७ ॥

सिंहासन पर बैठी हुई, लाल बस्त्रों वाली, युद्ध भूमि से प्रेम करने वाली और कार्य को सम्पूर्ण करने वाली है। उस आर्या महादेवी की मैं संसार को उत्पन्न करने के लिए वन्दना करता हूँ ॥ ३८ ॥

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार विष्णु से जन्म लेने वाले, स्तुति करते हुए उस ब्रह्मा के समक्ष करोड़ों सूर्यों के समान उज्ज्वल वह देवी प्रकट हुई। हे मुने ! उसने कमलों से उत्पन्न ब्रह्मा से कहा ॥ ३९ ॥

श्रीदेवी ने कहा—

हे ब्रह्मन् ! तुमने मेरी किसलिए स्तुति की है ? मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ ? ॥ ४० ॥

जो तुमने मेरी स्तुति की है, तो मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होगा। मैं तुमसे निःसन्देह प्रसन्न हूँ। हे सुव्रत ! तुम भक्त हो ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

तुम सृष्टि की रचना के मार्ग को देने वाली हो, सुम परम प्रकृति हो।तुम्हारी इच्छा से यह सारा चराचर जगत् उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

प्रजाः सृष्टा मया सर्वास्त्रिगुणा गुणवर्ज्जिते ।
न वर्द्धन्ते विना यज्ञैर्यज्ञभागाशनाः सुराः ॥ ४३ ॥

न वै वर्षति पर्ज्जन्यस्ततोऽन्नं नावतिष्ठति ।
उपायं कुरु देवेशि यथा स्यादन्नसंभवः ॥ ४४ ॥

श्रीदेव्युवाच—

शृणु वत्स यथा यद्वै प्रोच्यते तव यन्मया ।
स्वभागान्सुराः सर्वे ददन्तु कार्य्यसिद्धये ॥ ४५ ॥

अहं च तेन रूपेण भविष्यामि महीतले ।
मत्तः सर्वं सुरश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥ ४६ ॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सर्वे देवाः सवासवाः।
स्वं स्वं भागं भागसिद्धयै ददुस्तेजोमयं शुभम् ॥ ४७ ॥

सापि माया भगवती गृहीत्वा भागमुत्तमम् ।
निममज्ज क्षीरनिधौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ४८ ॥

आश्चर्यं परमं लेभुर्दृष्ट्वा तत्कौतुकं महत् ।
किं किमेतत् किं किमेतदिति प्रोचुः सुरालयाः ॥ ४६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे खे वाक् बभूव मुनिसत्तम ।

वागुवाच—

भो भो सुराः किमर्थं हि क्लेशं प्राप्ता मदाश्रितम् ॥ ५० ॥

मथध्वमेनं सुभगाः पयोधिं कार्य्यसिद्धये ।
अन्यान्यपि महाभागाः प्राप्स्यथ प्रवराणि मे ॥ ५१ ॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तत्तु हृष्टास्ते त्रिदिवौकसः ।
ममन्थुर्मिलितास्तत्र पयोधिं कार्य्यगौरवात ॥ ५२ ॥

गुणों से रहित हे देवि ! मैंने तीन गुणों वाली प्रजाओं की सृष्टि की है। ये प्रजायें यज्ञों के विना प्रवृद्ध नहीं हो रहीं। देवता यज्ञ के भाग को भोगने वाले हैं ॥ ४३ ॥

मेघ बरसता नहीं है। उससे अन्न उत्पन्न नहीं होता। हे देवेशि ! ऐसा उपाय करो, जिससे कि अन्न उत्पन्न हो ॥ ४४ ॥

श्री देवी ने कहा—

हे वत्स ! सुनो, जैसे कि मैं तुमसे कह रही हूँ। कार्य की सिद्धि के लिये सब देवता अपना अपना अंश देवें ॥ ४५ ॥

और मैं उस रूप से पृथ्वीतल पर आऊँगी। हे देवताओं में श्रेष्ठ ! मुझसे सब कुछ उत्पन्न होगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ४६ ॥

स्कन्द ने कहा—

उस देवी के इस बचन को सुनकर कार्य्य की सिद्धि के लिये इन्द्र सहित सब देवताओं ने अपने-अपने शुभ तेजोमय अश दिये ॥ ४७ ॥

वह भगवती माया भी उस उत्तम अंश को लेकर देवताओं के देखते-देखते ही क्षीर सागर में डूब गयी ॥ ४८ ॥

तदनन्तर उस महान् कौतुक को देखकर उनको परम आश्चर्य हुआ। देवता कहने लगे कि यह क्या है यह क्या है ? ॥ ४९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इसी बीच में आकाशवाणी हुई।

वाणी ने कहा—

हे देवताओ ! मेरे आश्रित होकर क्लेश क्यों पाते हो ॥ ५० ॥

हे सौभाग्यशाली देवताओ ! कार्य की सिद्धि के लिए इस समुद्र का मंथन करो। हे महाभागो ! मुझसे अन्य भी श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त करोगे ॥ ५१ ॥

स्कन्द ने कहा—

उस वचन को सुनकर वे देवता प्रसन्न हो गये। कार्य के गौरव के कारण उन्होंने वहां मिलकर समुद्र को मथा ॥ ५२ ॥

मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु बासुकिम् ।
कूर्मरूपो हरिस्तत्र सर्वशक्तिधरः प्रभुः ॥ ५३ ॥

मथिते दुग्धनिलये जातान्यन्यान्यपि ऋतोः ।
कामधेनुस्तदोत्पन्ना सर्वदेवांशसंभवा ॥ ५४ ॥

दृष्ट्वा तां निर्ज्जराः सर्वे जयेत्युचुर्मुदान्विताः ।
गृहीत्वा तां ततो धेनुं ब्रह्मलोकं ययुर्मुने ॥ ५५ ॥

पूजयामासुरत्यन्तं प्रदक्षिणक्रमादिभिः ।
सा पूजिता भगवती कामधेनुर्ददौ वरान् ॥ ५६ ॥

पयश्चामृतकल्पं हि यत्पीत्वाऽमृतमश्नुते ।
घृतं च सा ददौ धेनुर्यज्ञाय च्छंदिता यतः ॥ ५७ ॥

यज्ञैस्तृप्ताः सुराः सर्वे सुभिक्षं चाभवत्ततः ।
प्रजाश्च वृद्धिमापन्नाः कामधेनोः प्रसादतः ॥ ५८ ॥

पवित्रा परमा सा वै सर्वदेवमयी शुभा ।
अवतीर्णा स्वयं देवी गौर्भूत्वा भवभाविनी ॥ ५९ ॥

पूजिता येन गौर्विप्र पूजिताः सर्वदेवताः ।
प्रदक्षिणीकृता येन परिक्रांता वसुन्धरा ॥ ६० ॥

मंगलं दर्शनं प्राप्तः पूजनं परमं पदम् ।
स्पर्शनं परमं तीर्थं नास्ति धेनुसमं क्वचित् ॥ ६१ ॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि येन दृष्टा मुनीश गौः ।
तस्य पापं क्षयं याति यथाग्नेस्तूलराशयः ॥ ६२ ॥

हस्ते कृत्वा तु गोपुच्छं पितृतर्पणमाचरेत् ।
निरयस्थाश्च पितरो ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ६३ ॥

गोछायायां महाभाग श्राद्धं कुर्वन्ति ये नराः ।
गयाश्राद्धफलं तेषां कथितं स्यान्महामते ॥ ६४ ॥

उन्होंने मन्दर पर्वत को मथानी बनाया और वासुकि सर्प को डोरी बनाया। सब शक्तियों को धारण करने वाले प्रभु विष्णु ने वहां कछुए का रूप धारण किया ।। ५३ ।।

क्षीरसागर के मथे जाने पर उस यज्ञ से अन्य भी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं। तदनन्तर सब देवों के अंश से बनी हुई कामधेनु उत्पन्न हुई ।। ५४ ।।

उसको देखकर सब देवता प्रसन्न होकर जय-जय उच्चारण करने लगे। हे मुने ! तदनन्तर उस गौ को लेकर वे ब्रह्मलोक चले गये ।। ५५ ।।

उन्होंने प्रदक्षिणा आदि द्वारा उसका बहुत अधिक पूजन किया। पूजा की गई उस भगवती कामधेनु ने उनको वर दिये ।। ५६ ।।

उसने उनको अमृत के समान दूध दिया, जिसको पीकर अमरत्व प्राप्त होता है। क्योंकि उसकी यज्ञ के लिये कामना की गई थी, अतः उस गौ ने घी दिया ।। ५७ ।।

यज्ञ से सब देवता तृप्त हो गये और तदनन्तर सुभिक्ष हो गया। कामधेनु की कृपा से प्रजाजनों ने वृद्धि प्राप्त की ।। ५८ ।।

सब देवताओं के अंश से बनी हुई वह परम पवित्र थी। संसार को उत्पन्न करने वाली देवी स्वयं गौ बनकर अवतीर्ण हुई थी ।। ५९ ।।

हे विप्र ! जिसने गौ का पूजन कर लिया है, उसने सब देवताओं का पूजन कर लिया है। जिसने गौ की प्रदक्षिणा कर ली है, उसने पृथिवी की प्रदक्षिणा कर ली है ।। ६० ।।

उसका दर्शन करना मंगल पाना है, पूजन करना परम पद है, और स्पर्श करना परम तीर्थ है। गौ के समान कोई कहीं नहीं है ।। ६१ ।।

हे मुनीश्वर ! जाने या अनजाने जिसने गौ का दर्शन कर लिया है, उसके पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि से रूई के ढेर ।। ६२ ।।

हाथ में गौ की पूंछ को पकड़कर पितरों का तर्पण करे। इससे नरक में स्थित पितर भी ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं ।। ६३ ।।

हे महामते ! जो मनुष्य गौ की छाया में श्राद्ध करते हैं, उनके लिये गया में किये गये श्राद्ध का फल कहा गया है ।। ६४ ।।

गोमयेन सुलिप्तायां भूमौ वा कुरुते क्रियाः।
अनंतफलदा विप्र भवेयुर्नैव संशयः॥ ६५॥

सकृत्प्राश्नाति गोमूत्रं यो नरश्च महामुने।
दुर्भोज्यभोजनाच्चैव दुरुक्त्या दुर्नयोच्चरात्॥ ६६॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेद् ब्रह्म परं मृतः।
अपवित्रकरं स्थानं शुद्धं गोमूत्रबिन्दुना॥ ६७॥

कंडूयनं गवां यो वै करोति यदि मानवः।
गोहत्याब्रह्महत्याभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ६८॥

गो ग्रासं भोजने यस्तु दद्याद् गोभ्यो महामुने।
ब्राह्मणा भोजितास्तेन सहस्रं वेदपाठिनः॥ ६९॥

तीर्थे देवालये वापि ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
व्यतीपाते च मन्वादौ युगादौ संक्रमे तथा।
दाता तस्या गृहीतार्ऽपि तावुभौ स्वर्गगामिनौ॥ ७०॥

ससुवर्णा सवस्त्रा च सर्वाभरणभूषिता।
पयस्विनी सवत्सा च येन दत्ता मुनीश गौः॥ ७१॥

तेन तप्तं हुतं तेन जप्तं तेन कृतं तथा।
नानाद्रव्यान्विता तेन दत्ता विप्र वसुन्धरा॥ ७२॥

श्रृणु नारद यद् वृतमितिहासं सुपुण्यदम्।
उज्जयिन्यां पुरा ह्यासीद्वर्द्धमानो महावणिक्॥ ७३॥

वभूव धनधान्यैश्च पुत्रपौत्रैश्च संवृतः।
येन केन प्रकारेण कृतं द्रव्यार्जनं तथा॥ ७४॥

धनांभोधिस्ततो जातो रत्नानां निचयैस्तथा।
पुत्राश्चापि महाभागाश्चत्वारो ह्यभंवस्तदा॥ ७५॥

कृत्वा द्रव्यविभागं स कालधर्ममुपागतः।
त्रयः पुत्रास्तु तस्यापि वणिग्धर्मरता मुने॥ ७६॥

जो क्रियायें गोबर से लीपी गई भूमि में की जाती हैं, हे विप्र ? वे अनन्त फल देने वाली होती हैं, इसमें संशय नहीं है ।। ६५ ।।

हे महामुने ! जो मनुष्य एक बार गोमूत्र को पी लेता है, वह बुरे भोजन को खाने के कारण, दुष्ट वचनों के कारण और दुराचरण करने के कारण ।। ६६ ।।

उत्पन्न सब पापों से मुक्त हो जाता है और मरने पर परम ब्रह्म को प्राप्त करता है । अपवित्र स्थान गोमूत्र की बूंद से शुद्ध हो जाता है ।। ६७ ।।

जो मनुष्य गौओं की खुजली मिटाता है, वह निस्सन्देह गोहत्या और ब्रह्म-हत्या के पापों से मुक्त हो जाता है ।। ६८ ।।

हे महामुने ! जो भोजन में गौओं के लिये गोग्रास देता है, उसने मानो ! हजार वेदपाठी ब्राह्मणों को भोजन करा दिया है ।। ६९ ।।

तीर्थ में, देवमन्दिर में, चन्द्र और सूर्य का ग्रहण होने पर, मन्वन्तर के व्यतीपात योग (ज्योतिषशास्त्र के सताइस योगों में से सतरहवां योग) में, कलियुग आदि के संक्रमण के समय गौ का दान करने वाला और दान को ग्रहण करने वाला, दोनों ही स्वर्गगामी होते हैं ।। ७० ।।

हे मुनीश्वर नारद ! सुवर्णमण्डित, वस्त्रयुक्त, सब आभूषणों से भूषित, दूध देनेवाली और बछड़े से युक्त गौ का जिसने दान किया है... ।। ७१ ।।

उसने तप कर लिया है, हवन कर लिया है और जप कर लिया है । हे विप्र ! उसने विविध द्रव्यों से युक्त वसुन्धरा का दान कर दिया है ।। ७२ ।।

हे नारद ! उत्तम पुण्यदायी इस ऐतिहासिक वृत्तान्त को सुनो । पूर्व समय में उज्जयिनी में वर्धमान नाम का बड़ा व्यापारी था ।। ७३ ।।

वह धन-धान्यों और पुत्र-पौत्रों से युक्त था । जिस किसी प्रकार से उसने द्रव्य का उपार्जन किया था ।। ७४ ।।

रत्नों के संचय के कारण तब वह धन का समुद्र हो गया । उस समय उसके महासौभाग्यशाली चार पुत्र भी हो गये ।। ७५ ।।

पुत्रों में धन का विभाजन करके वह समय के धर्म को प्राप्त हुआ (मर गया)। हे मुने ! उसके तीन पुत्र व्यापार करने लगे ।। ७६ ।।

अभवत्पश्चिमो यस्तु नाम्ना वरधरो वर: ।
द्यूतवेश्यादिव्यसनै: क्षयं नीतं महद्धनम् ।। ७७ ।।

जीवनं कृतवान्वेश्यापरिचारेण वै तत: ।
अन्वेषते विटांश्चैव किंचिदाप्तधनस्तत: ।। ७८ ।।

जीविते जातिरहितोऽगम्यागमनसंयुत: ।
चौरधर्मरतश्चैव तथासीन्मुनिपुंगव ।। ७९ ।।

गोधनं चौर्य्यतो हृत्वा [1]विक्रीणाति स वै वणिक् ।
मलेच्छवेश्यासमासक्तो वनान्ते वसतिस्तथा ।। ८० ।।

वेश्याद्यूतेषु चौर्येषु समन्सक्तोऽजितेन्द्रिय: ।
एकदा मदिरां पीत्वा जगाम नगरे वरे ।। ८१ ।।

ददर्श कञ्चिद्दातारं गां शुभां दातुमुद्यतम् ।
तं दृष्ट्वा वणिजश्चित्तमाश्चर्यकलितं मुने ।। ८२ ।।

विप्रान्वेदान्पठन्तश्च धौतोत्तरपरिच्छदान् ।
ऊर्ध्वपुंड्रधराञ्शांतान् प्रतिग्रहसमुद्यतान् ।। ८३ ।।

आश्चर्यपरमो भूत्वा हसद्गोपुच्छधारिण: ।
गृहमागत्य तरसा गां गृहीत्वा मदालस: ।। ८४ ।।

एकं दिनं समानीय ब्राह्मणं ब्रह्मसत्तमम् ।
तत्कर्म हसितुं चक्रे गोदानं मदिराश्रित: ।। ८५ ।।

अन्येऽपि म्लेच्छजातीया अहसंस्तं मदालसा: ।
ब्राह्मणस्तां गहीत्वा तु ययौ स्वभवनं त्वरम् ।। ८६ ।।

प्रबुद्धो मदिरात्यक्तो वैश्योऽपि स्वस्थमानस: ।
किं कृतं किं कृतं चैतद् यद् गौर्दत्ता द्विजातये ।। ८७ ।।

---

१. विक्रीते च ।

उसका सबसे छोटा पुत्र, जिसका नाम वरधर था, उसने जुआ-वेश्या आदि व्यसनों में महान् धन को नष्ट कर दिया ।। ७७ ।।

तदनन्तर वह वेश्याओं की परिचर्या करके जीवन बिताने लगा । उनसे कुछ धन प्राप्त करके विटों को खोजता था ।। ७८ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! जीवित रहते ही वह जाति से रहित हो गया और अगम्या स्त्रियों से संगम करने लगा । तदनन्तर वह चोरी भी करने लगा ।। ७९ ।।

वह वैश्य चोरी से गोधन का हरण करके बेच देता था । म्लेच्छों और वेश्याओं से सम्बन्ध रखता हुआ वन के समीप निवास करता था ।। ८० ।।

वेश्या, द्यूत और चोरी में आसक्त वह एक दिन मदिरा को पीकर एक श्रेष्ठ नगर में गया ।। ८१ ।।

वहां उसने शुभ गौ का दान करने के लिये उद्यत किसी दानी को देखा । हे मुने ! उसको देखकर उस व्यापारी का मन आश्चर्य से भर गया ।। ८२ ।।

वेदों का पाठ करते हुये, धुले हुये उत्तरीय वस्त्र को ओढे हुये, माथे के ऊपर त्रिपुण्ड्र लगाये हुये, शान्त मन वाले और दान ग्रहण करने के लिये उद्यत ब्राह्मणों को उसने देखा ।। ८३ ।।

गौ की पूँछ को पकड़ने वाले के प्रति हँसते हुये उसको परम आश्चर्य हुआ । मद से अलस उसने शीघ्रता से घर आकर गौ को पकड़ा ।। ८४ ।।

उस कर्म का उपहास करने के लिये मदिरा से मस्त होकर एक दिन उसने श्रेष्ठ ब्राह्मण को लाकर गोदान किया ।। ८५ ।।

मद से अलस अन्य म्लेच्छ उसका उपहास करने लगे । ब्राह्मण भी उस गौ को लेकर शीघ्रता से अपने घर चला गया ।। ८६ ।।

जगाने पर जब मदिरा का प्रभाव चला गया, तो वैश्य का भी मन स्वस्थ हुआ । विचार करने लगा कि यह क्या किया है, क्या किया है, जो ब्राह्मण के लिये गौ का दान कर दिया है ।। ८७ ।।

अन्वेषयति स्म स तं न प्राप गृहमागतः ।
गृहे च वेश्यया वैश्यो धिक्कृतो विपिनं ययौ ॥ ८८ ॥

तत्र सर्पहतो विप्र वने पंचत्वमागतः ।
आगता यमदूताश्च नेतुं तं वणिजं खलम् ॥ ८९ ॥

देवदूताश्च तत्रापि तस्मिन्नेवागता वने ।
विवादश्च तथा तेषां दूतानां यमदेवयोः ॥ ९० ॥

मत्वा विकलमषं वैश्यं निन्युर्लोकं प्रजापतेः ।
अभक्त्यापि कृतं विप्र गोदानं यत्पुरा शुभम् ।
तस्मात्सर्वैश्च पापैश्च निर्मुक्तो भवदत्तकः ॥ ९१ ॥

न गोदानसमं विप्र पुण्यं कर्म महामते ।
तस्मात्सर्वेण यत्नेन गोदानं शुभमाचरेत् ॥ ९२ ॥

भूतवेतालकूष्मांडग्रहग्रस्तः समाचरेत् ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं प्राप्नोति नैव संशयः ॥ ९३ ॥

यथा गोदानतः पुण्यं तथा चान्नप्रदानतः ।
दीनानाथशरीरेभ्यो तद्दानं सात्त्विकं मतम् ॥ ९४ ॥

अन्नदानान्महाभाग सर्वं दानं कनिष्ठकम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्यन्नं दद्यात्क्षुधावृते ॥ ९५ ॥

सर्वकाले सर्वदेशे सर्वपात्रे महामते ।
दद्याद्दानं परं भक्त्या सर्वप्राणिपरायणः ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्ये गोमहिमावर्णनं
नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

वह उस ब्राह्मण को खोजने लगा, परन्तु उसको न पाकर घर आ गया। घर में वैश्या ने उसको धिक्कारा तो वह वन में चला गया ॥ ८८ ॥

हे विप्र नारद ! वहां वन में सर्प से आहत होकर वह मर गया। उस दुष्ट वणिक् को लेने के लिये यम के दूत आये ॥ ८९ ॥

देवदूत भी वहां उसी वन में आ गये। तब उन देवदूतों का और यमदूतों का विवाद होने लगा ॥ ९० ॥

वे देवदूत वैश्य को पापों से रहित मानकर प्रजापति ब्रह्मा के लोक में ले गये। हे विप्र नारद ! उस वैश्य ने पहले विना भक्ति के भी जो शुभ गोदान किया था, उसके प्रभाव से वह भवदत्तक सब पापों से मुक्त हो गया ॥ ९१ ॥

हे महामते विप्र ! गोदान के समान पुण्य कर्म अन्य नहीं है। इसलिये सब प्रकार से यत्न करके शुभ गोदान करे ॥ ९२ ॥

भूत, वेताल, पिशाच (कूष्माण्ड) और ग्रहों से मनुष्य के ग्रस्त होने पर गोदान करे। वह जिस-जिस वस्तु की इच्छा करता है, उस सबको प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ९३ ॥

जिस प्रकार गोदान से पुण्य होता है, उसी प्रकार अन्न का दान करने से होता है। दीन और अनाथ शरीर वालों को जो दान किया जाता है, उसको सात्त्विक माना गया है ॥ ९४ ॥

हे महाभाग ! अन्न के दान की अपेक्षा अन्य सब दानों को कम महत्त्व का माना गया है। इसलिये सब प्रकार से प्रयत्न करके भूखे के लिये अन्न देवे ॥ ९५ ॥

हे महामते नारद ! सब प्राणियों के प्रति परायण होकर सब समयों में, सब देशों में और सब पात्रों के लिये परम भक्ति से दान देना चाहिये ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायापुरीमाहात्म्य प्रकरण में गोमहिमावर्णन नाम का ११० वां अध्याय पूरा हुआ।

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

अन्नदानमहिमावर्णनप्रसङ्गे श्वेतराजाख्यानकम्

स्कन्द उवाच—

अन्नेन चैव दत्तेन किन्न दत्तं महीतले।
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते ॥ १ ॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्।
आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो राजा महायशाः ॥ २ ॥

गंगाद्वारे महातेजास्तपः कर्त्तुं समाययौ।
वर्षाणां नियुतं तेपे तपः परमदारुणम् ॥ ३ ॥

तस्य वै तप्यमानस्य त्रस्ताः देवाः सवासवाः।
वरेण च्छंदयामास ब्रह्मा तं च तपोनिधिम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच—

वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते।
नाप्राप्यं ते महाभाग त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ५ ॥

श्वेत उवाच—

इयं सर्वा धरा ब्रह्मन् मदधीना सुराग्रज।
यत्किंचिद्वस्तुजातं मे सर्वं स्याद् ब्राह्मणार्थकम् ॥ ६ ॥

इदं क्षेत्रं च ते नाम्ना विख्यातं स्यान्महीतले।
तवावासश्च विष्णोश्च शिवस्यापि भवत्वरम् ॥ ७ ॥

सर्वेषां चैव देवानां स्थितिश्चापि प्रजायताम्।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तान्यत्र स्युः स्थिराणि भोः ॥ ८ ॥

अध्याय १११

अन्नदान की महिमा का वर्णन करने के प्रसङ्ग में श्वेत नामक राजा का आख्यान

स्कन्द ने कहा—

पृथिवीतल पर जिसने अन्न का दान किया है, उसने क्या नहीं दे दिया। सभी दानों में अन्नदान विशिष्ट होता है ॥ १ ॥

इस सम्बन्ध में प्राचीन इतिहास को उदाहृत करते हैं। इलावृत वर्ष में श्वेत नाम का महायशस्वी राजा था ॥ २ ॥

वह महातपस्वी राजा तप करने के लिये गंगाद्वार में आया। वह दस लाख वर्षों तक परम कठोर तप करता रहा ॥ ३ ॥

तपस्या करते हुये उससे इन्द्र सहित सब देवता डर गये। तब ब्रह्मा ने उस तपस्वी को वर देने की इच्छा की ॥ ४ ॥

ब्रह्मा ने कहा—

है महाभाग ! जो तुम्हारे मन में है, वह वर मांगो। हे महाभाग ! तीनों लोकों में तुम्हारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है ॥ ५ ॥

श्वेत ने कहा —

देवताओं के अग्रज हे ब्रह्मन् ! मेरे अधीन यह सारी पृथ्वी और जो कुछ वस्तु मेरे पास है, वह ब्राह्मणों के लिये हो ॥ ६ ॥

यह क्षेत्र पृथ्वी-तल पर तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध हो। तुम्हारा, विष्णु का और शिव का भी यहां शीघ्र निवास हो ॥ ७ ॥

यहां सभी देवताओं की स्थिति हो जावे। हे ब्रह्मन् ! पृथ्वी पर जो तीर्थ हैं, वे सब यहां स्थिर हो जावें ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच—

इदं तीर्थं महापुण्यं त्रैलोक्ये चातिदुर्ल्लभम् ।
अतः परं च मन्नाम्ना विख्यातं हि भविष्यति ॥ ९ ॥

ये वै स्नास्यन्त्यत्र कुंडे गच्छेयुस्ते परं पदम् ।
यत्कर्म क्रियते चात्र तत्सर्वं स्थादनंतकम् ॥ १० ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सन्निहितानि वै ।
भविष्यन्ति महाराज सर्वभावैरतः परम् ॥ ११ ॥

इयं च पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ।
सर्वद्वीपसमुद्रांता त्वदधीना भविष्यति ॥ १२ ॥

धर्मबुद्धिर्महाराज दानबुद्धिश्च शाश्वती ।
ब्राह्मणार्थं समुत्पन्नो नारायणपरो भव ॥ १३ ॥

स्कन्द उवाच—

इत्युक्त्वा सहसा विप्र ब्रह्मा लोकं स्वकं ययौ ।
सोऽपि राजा महाराज ययौ स्वे प्रवरे स्थले ॥ १४ ॥

जित्वा च पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां ससागराम् ।
स्थापयामास स्ववशे सर्वान्वै पृथिवीभुजः ॥ १५ ॥

चकार विविधान् यज्ञान् हयमेधादिकान् मुने ।
स्वर्णरत्नमहार्हाणि वासांसि विविधानि च ।
ददौ स विप्रवर्य्येभ्यो वेदविद्भ्यो विशेषतः ॥ १६ ॥

वसिष्ठं सर्वशास्त्रज्ञं प्रोवाच तपसां निधिम् ॥ १७ ॥

श्वेत उवाच—

भगवन् दातुमिच्छामि ब्राह्मणेभ्यो वसुन्धराम् ।
देह्यनुज्ञां तपोराशे शिष्याय शुभकारणम् ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच—

अन्नदानं महाराज सर्वकामसुखावहम् ।
अन्नेन चैव दत्तेन किन्न दत्तं महीतले ॥ १९ ॥

अन्नाद् भवन्ति भूतानि अन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नदानं ददस्व भोः ॥ २० ॥

ब्रह्मा ने कहा—

यह महापुण्य तीर्थ तीनों लोकों में अति दुर्लभ है। इसके बाद यह मेरे नाम से विख्यात होगा ॥ ९ ॥

जो यहां कुण्ड में स्नान करेंगे वे परम पद को प्राप्त करेंगें। जो कर्म यहां किया जायेगा वह अनन्त फल वाला होगा ॥ १० ॥

हे महाराज ! पृथ्वी पर जो तीर्थ हैं, वे सब भावों से इसके बाद यहीं सन्निहित होंगें ॥ ११ ॥

पर्वतों, वनों और काननों सहित एवं सब द्वीपों और समुद्रों पर्यन्त यह सारी पृथ्वी तुम्हारे आधीन रहेगी ॥ १२ ॥

हे महाराज ! तुम्हारी बुद्धि धर्म और दान के प्रति शाश्वत रहेगी। तुम ब्राह्मणों के लिये उत्पन्न हुये हो। नारायण के भक्त बनो ॥ १३ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र नारद ! यह कह कर ब्रह्मा अपने लोक में चले गये। वह महाराज राजा श्वेत भी अपने उत्तम स्थान पर चला गया ॥ १४ ॥

सात द्वीपों और सागरों सहित सारी पृथ्वी को जीतकर उसने सब राजाओं को अपने वश में कर लिया ॥ १५ ॥

हे मुने ! उसने अश्वमेध आदि विविध यज्ञों को सम्पादित किया। उसने सुवर्ण, बहुमूल्य रत्न और विविध प्रकार के वस्त्र ब्राह्मणों के लिये, विशेष रूप से वेदों को जानने वाले ब्राह्मणों को दान दिये ॥ १६ ॥

सब शास्त्रों को जानने वाले और तपस्याओं के निधि वसिष्ठ से वह बोला ॥ १७ ॥

श्वेत ने कहा—

हे भगवन् ! ब्राह्मणों के लिये पृथिवी का दान करना चाहता हूँ। हे तपोराशे ! शुभ कार्य करने वाले शिष्य को अनुमति दीजिये ॥ १८ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

हे महाराज ! अन्न का दान करना सब कामों में सुख को देने वाला है। पृथिवी पर जिसने अन्न का दान कर दिया, उसने क्या नहीं दे दिया ॥ १९ ॥

अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही प्राण प्रतिष्ठित होते हैं। अतः सब प्रयत्न करके अन्नदान करो ॥ २० ॥

स्कन्द उवाच—

किं वस्त्वन्नं विदित्वा स नो ददावन्नमंबु च।
रत्नवस्त्राद्यलंकाराञ्श्रीमन्ति नगराणि च॥ २१॥

दत्तवान् ब्राह्मणेभ्योऽथ कुंजरान् वाजिनस्तथा।
सुवर्णरौप्यरत्नानि यानानि विविधानि च॥ २२॥

अश्वमेधसहस्रञ्च इयाज बहुदक्षिणैः।
स्वल्पं वस्तु परं ज्ञात्वा सोऽन्नं तु नाददात्प्रभुः॥ २३॥

एवं तस्य महाभाग दिव्यं वर्षशतं ययौ।
ततः कदाचिन्नृपतिः कालधर्मवशं गतः॥ २४॥

परलोके वर्त्तमानः स्वर्वेश्याभिरभिष्टुतः।
क्षुधया पीडितो ह्यासीत्तृषया च नराधिपः॥ २५॥

क्षुत्तृष्णाभ्यां पीड्यमानः स्वर्गभोगान्वितोऽपि सन्।
आनिनायाप्सरोभोगं गत्वा श्वेतं महागिरिम्॥ २६॥

ददर्श तत्र नृपतिर्दग्धदेहं पुरात्मनः।
अस्थीनि चर्बयामास शीर्णानि मुनिपुंगव॥ २७॥

चर्बयित्वा पुरा राजा विमानवरमास्थितः।
अप्सरोगणगंधर्वसेवितो दिवमाव्रजन्॥ २८॥

एवं स प्रत्यहं राजा संगृह्यास्थीनि संलिहन्।
तत्रास्ते श्वेतसंकाशं पुनः स्वर्गं जगाम ह॥ २९॥

अथ कालेन महता वसिष्ठेन महात्मना।
अस्थीनि चर्बयन्दृष्टो राजा श्वेतो महातपाः॥ ३०॥

उवाच प्रहसन् वाक्यं किमहो स्वस्थिचर्वणम्।
एवमुक्तस्तदा राजा ब्रह्मपुत्रेण धीमता।
जगाद लज्जितो राजा मुनिं चेदं तपोनिधिम्॥ ३१॥

स्कन्द ने कहा—

अन्न तो वस्तु ही क्या है, ऐसा जानकर उस राजा ने अन्न और जल का दान नहीं किया। उसने रत्न, वस्त्र आदि का, अलङ्कारों का और शोभाशाली नगरों का दान किया ॥ २१ ॥

उसने ब्राह्मणों के लिये हाथी, घोड़े और सोने-चाँदी-रत्नों से जड़ी हुई विविध सवारियां दान कीं ॥ २२ ॥

उसने बहुत अधिक दक्षिणा वाले सहस्र अश्वमेध यज्ञ किये। अन्न को तुच्छ वस्तु मान कर उस राजा ने दान नहीं किया ॥ २३ ॥

हे महाभाग ! इस प्रकार करते हुये उसके सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर वह राजा कभी काल-धर्म कें वश हुआ (मर गया) ॥ २४ ॥

स्वर्ग में रहते हुये अप्सरायें उसकी स्तुति करती थीं। परन्तु वह राजा भूख और प्याम से पीड़ित रहता था ॥ २५ ॥

स्वर्ग के भोगों से युक्त होते हुये भी भूख-प्यास से पीड़ित होता था। वह राजा श्वेत महापर्वत पर जाकर वहां अप्सरारूपी भोग को प्राप्त करता था ॥ २६ ॥

उस राजा ने अपने सामने जले हुये शरीर को देखा। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह बिखरी हुई हड्डियों को चबाने लगा ॥ २७ ॥

पहले हड्डियों को चबा कर वह राजा श्रेष्ठ विमान पर बैठ गया। तदनन्तर अप्सराओं और गन्धर्वों से सेवा किया जाता हुआ स्वर्ग आ गया ॥ २८ ॥

इस प्रकार वह राजा प्रतिदिन श्वेत पर्वत के पास अस्थियों का संग्रह करके उनको चाटता था और पुनः स्वर्ग चला जाता था ॥ २९ ॥

तदनन्तर बहुत समय बीत जाने पर महात्मा वसिष्ठ ने महातपस्वी राजा श्वेत को हड्डियां चबाते हुये देखा ॥ ३० ॥

उसने हँसते हुये कहा—अहो ! अपनी हड्डियां क्यों चबाते हो ? इस प्रकार बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ के कहने पर राजा लज्जित हुआ और तपस्वी मुनि से यह वचन बोला ॥ ३१ ॥

क्षुधा मां बाधते ब्रह्मन् यदन्नं न पुराददम् ।
पानं चापि महाभाग ततो मां बाधते तृषा ॥ ३२ ॥

एवमुक्तस्तदा राज्ञा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः ।
पुनर्जगाद तं श्वेतं महाराजं महार्थवित् ॥ ३३ ॥

फलमेतन्महीशानावधीरितवचो यतः ।
अदत्तं नोपतिष्ठेत कस्यचित्किञ्चिदव्यहो ॥ ३४ ॥

त्वया दत्तानि राजेन्द्र स्वर्णरत्नाम्बराणि च ।
तानि सर्वाणि भोगार्थं तव सन्ति यतः क्वचित् ॥ ३५ ॥

अन्नं पानं च नो दत्तं क्षुत्तृष्णे तव संस्थिते ।
स्तोकं मत्वा त्वया राजन्न दत्ते चान्नपानके ।
अदत्तं नोपतिष्ठेत साक्षादपि प्रजापतेः ॥ ३६ ॥

श्वेत उवाच—

किं कर्त्तव्यं महाभाग कथं नो बाधते क्षुधा ।
कृताञ्जलिरहं याचे ह्यदत्तं मां कथं भजेत् ॥ ३७ ॥

वसिष्ठ उवाच—

अस्त्येकं कारणं येन जायते नात्र संशयः ।
तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं मयानघ ॥ ३८ ॥

यथा पुरा विनीताश्वो महीपालो महायशाः ।
कृतवान् सर्वमेधांश्च सहस्राणि महामुनिः ॥ ३९ ॥

दत्तास्तेन तथा गावो रत्नस्वर्णांबराणि च ।
स्तोकं मत्वा न तेनापि पानं चान्नं महीपते ॥ ४० ॥

सोऽपि गंगोत्तरे देहं तत्याज मुनिपालक ।
गतवान् ब्रह्मलोकादीन्नानाभोगसमन्वितः ॥ ४१ ॥

क्योंकि मैंने पहले अन्न का दान नहीं किया था, अतः भूख मुझको पीड़ित करती है। हे महाभाग ! मैंने पानी का दान नहीं किया था, अतः प्यास मुझको पीड़ित कर रही है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार तब राजा से कहे गये महान् अर्थों को जानने वाले, ब्रह्मा के पुत्र महामुनि वसिष्ठ ने पुनः महाराज श्वेत से कहा ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! क्योंकि तुमने मेरे वचन की अवहेलना की थी, अतः उसका यह फल है। जिस वस्तु का दान नहीं किया गया, वह किसी को कहीं नहीं मिलती ॥ ३४ ॥

हे राजेन्द्र ! तुमने स्वर्ण-रत्न-वस्त्रों का दान किया था। वे सब वस्तुयें जहाँ कहीं से भी तुम्हारे भोग के लिये विद्यमान हैं ॥ ३५ ॥

तुमने अन्न और जल का दान नहीं किया था, अतः तुमको भूख और प्यास सताते हैं। हे राजन् ! तुमने अन्न-जल को तुच्छ समझ कर दान नहीं किया था। जो वस्तु दान नहीं की गई, वह साक्षात् प्रजापति के लिये भी उपस्थित नहीं होती ॥ ३६ ॥

श्वेत ने कहा—

हे महाभाग ! मुझको भूख पीड़ित करती है। मुझे कैसे, क्या करना चाहिये ? मैं हाथ जोड़ कर तुमसे याचना करता हूँ कि दान न की गई वस्तु मुझको कैसे प्राप्त होवे ॥ ३७ ॥

वसिष्ठ ने कहा—

इसका भी एक कारण है, जिससे कि यहां संशय नहीं रहता। मसुष्यों में श्रेष्ठ हे निष्पाप राजन् ! मैं कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार कि पूर्व समय में महायशस्वी राजा विनीताश्व ने यहामुनि होकर हजारों सर्वमेघ यज्ञ किये ॥ ३९ ॥

उसने गौओं, रत्नों, स्वर्ण और वस्त्रों का वान किया। हे राजन् ! अन्न और पान को तुच्छ समझकर उनका दान नहीं किया ॥ ४० ॥

मुनियों की रक्षा करने वाले हे राजन् ! उसने भी गंगोत्तर प्रदेश में शरीर को छोड़ा। वह अनेक भोगों से समन्वित ब्रह्मलोक आदि में गया ॥ ४१ ॥

त्वमिव क्षुधयाविष्टो बभूव तृषया तथा।
पुनमर्त्यं समायातो विमानेनार्कवर्चसा ॥ ४२ ॥

गंगाद्वारे महाक्षेत्रे नीलामिधमहीधरे ।
दग्धं कलेवरं सोऽपि दृष्ट्वा भोक्तुं मनो दधौ ॥ ४३ ॥

तावद्ददर्श होतारं विनीताश्वा पुरोहितम् ।
उक्तञ्च कारणं विप्र क्षुधायाश्च तपोनिधे ॥ ४४ ॥

कथयामास तं होता प्रतीकारं क्षुधस्तृषः ।
प्रथमा तिलधेनुश्च जलधेनुस्ततः परम् ॥ ४५ ॥

रसधेनुस्तृतीयाऽपि गुडधेनुस्तथा स्मृता ।
शर्करामधुधेनुश्च क्षीरधेनुश्च सप्तसी ॥ ४६ ॥

अष्टमी दधिधेनुश्च नवनीतमयी ततः ।
तथा लवणधेनुश्च सत्कार्पासमयी तथा ।
धान्यधेनुस्तथा प्रोक्ता द्वादशैताः प्रकीर्त्तिताः ॥ ४७ ॥

घटं संस्थाप्य राजानं कारयामास तास्तथा ।
ययौ परमिकां सिद्धिं सर्वतृप्तिमयीं प्रभो ॥ ४८ ॥

तथा त्वमपि राजेन्द्र कुरुष्वैताः महार्थदाः ।
तृप्ति प्राप्स्यसि भूयिष्ठां क्षुधा नो पीडयिष्यति ।
अन्नदानात्परं नास्ति त्रैलोक्ये प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ४९ ॥

स्कन्द उवाच

वसिष्ठोऽपि महाराज कारयामास राजतः ।
क्षुन्निवृत्तिकरं चैव धेनूनां वितरं तथा ॥ ५० ॥

अन्नदानात्परां तृप्ति प्राप श्वेतो नराधिपः ।
बिमानवरमारुह्याप्सरोगणसमन्वितः ॥ ५१ ॥

सिद्धैः संस्तूयमानो वै जगाम परमं पदम् ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन अन्नदानपरो भवेत् ॥ ५२ ॥

मुष्टिमात्रमपि क्षेत्रे गंगाद्वारे विशेषतः ।
अन्नं ददाति विप्राय तृप्तः स्यात्कल्पपंचकम् ॥ ५३ ॥

वह तुम्हारे समान ही भूख और प्यास से पीड़ित होता था। वह सूर्य के समान चमकीले विमान पर बैठकर पुनः मर्त्यलोक में आया ॥ ४२ ॥

महाक्षेत्र गंगाद्वार में नील नाम के पर्वत पर जले हुये शरीर को देखकर उसका मन भी खाने के लिये हुआ ॥ ४३ ॥

तभी विनीताश्व ने होता (पुरोहित) को देखा। उसने उससे कहा कि हे तपोनिधे विप्र ! इस भूख का उपाय क्या है ? ॥ ४४ ॥

उससे होता ने भूख और प्यास का प्रतीकार बताया। पहली तो तिलधेनु, तदनन्तर जलधेनु··· ॥ ४५ ॥

तदनन्तर तीसरी रसधेनु और पुनः गुडधेनु, तदनन्तर शर्कराधेनु और मधुधेनु, सातवीं क्षीरधेनु, आठवीं दधिधेनु और तदनन्तर नवनीतधेनु, दसवीं लवणधेनु और ग्यारहवीं कार्पासधेनु, तदनन्तर धान्यधेनु, इस प्रकार ये बारह धेनु कही गई हैं ॥ ४६-४७ ॥

उस होता ने घट को स्थापित करवाकर उन धेनुओं की उस प्रकार से रचना कराई। हे प्रभो उसने सब तृप्तियों से युक्त परम सिद्धि को प्राप्त किया ॥ ४८ ॥

हे राजेन्द्र ! इसलिये तुम भी महान् अर्थों को देने वाली इनकी रचना करो। तुम बहुत अधिक तृप्ति पाओगे। भूख पीडित नहीं करेगी तीनों लोकों में प्रीति को बढ़ाने वाला अन्न से बड़ा दान नहीं है ॥ ४९ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे महाराज ! वसिष्ठ ने भी राजा श्वेत के लिये भूख-प्यास को दूर करने वाली धेनुओं की रचना कराई और उनका दान किया ॥ ५० ॥

अन्न का दान करने से राजा श्वेत को परम तृप्ति हुई। अप्सराओं के साथ श्रेष्ठ विमान पर आरूढ होकर··· ॥ ५१ ॥

सिद्धों से स्तुति किया जाता हुआ वह राजा परम पद को प्राप्त हुआ। अतः सब प्रयत्नों से अन्न का दान करना चाहिये ॥ ५२ ॥

विशेष रूप से जो मनुष्य महाक्षेत्र गंगाद्वार में ब्राह्मण के लिये मुठ्ठी भर भी अन्न का दान करता है, वह पांच कल्पों तक तृप्त होता है ॥ ५३ ॥

अन्नदो राज्यमाप्नोति ह्यन्नदो गतिमुत्तमाम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शक्त्या चान्नप्रदो भवेत् ।। ५४ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्येऽन्न दानमाहात्म्य-
वर्णनं नामैकादशशततमोऽध्यायः ।

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गया स्वावर्तेन तपस्यतो दत्तात्रेयस्य कुशानामपहरणमतस्तत-स्थलस्य मायापुरीप्रदेशे कुशावर्तनाम्ना प्रसिद्धिः

कार्त्तिकेय उवाच—

कुशावर्त्तं महातीर्थं दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः ।
तत्र स्नात्वा महाभाग न च भूयोऽभिजायते ।। १ ।।

स्नानं दानं जयो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
यदत्र क्रियते कर्म तत्तत्स्यात्कोटिसंख्यकम् ।। २ ।।

पुरा गंगागमे मौनी दत्तात्रेयो महातपाः ।
तस्थावेकेन पादेन वर्षाणामयुतं मुनिः ।। ३ ।।

कुशचीराणि दण्डं च कुण्डीं चोवाह जाह्नवी ।
आवर्त्तेऽपि पुनरसौ कुशान् धृतवती मुनेः ।। ४ ।।

आप्लुतांस्तान्कदाचित्तु ददर्श कुशचीरकान् ।
वहमानान्महाभाग गंगामावर्त्ततां गताम् ।। ५ ।।

क्रुद्धो महामुनिस्तां तु यावद्भस्मीकरोति च ।
तावत्सर्वे समायाता ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।। ६ ।।

अन्न को देने वाला राज्य को प्राप्त करता है। अन्न को देने वाला उत्तम गति पाता है। अतः सब प्रयत्नों से शक्ति के अनुसार अन्न का दान करे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्रमाहात्म्य प्रकरण में अन्नदानमाहात्म्य वर्णन नाम का १११ वां अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय ११२

गङ्गा द्वारा अपनी भंवर में तपस्या करते हुये दत्तात्रेय की कुशाओं का अपहरण, अतः मायापुरी प्रदेश में उस स्थल की कुशावर्त नाम से प्रसिद्धि

कार्तिकेय ने कहा—

ब्रह्मतीर्थ से दक्षिण की ओर कुशावर्त नाम का महातीर्थ है। हे महाभाग ! उसमें स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १ ॥

यहां जो स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितरों का तर्पणरूप कर्म किया जाता है, वह करोड़ गुना फल वाला होता है ॥ २ ॥

पूर्व काल में गंगाद्वार में मौन धारण करने वाले महातपस्वी मुनि दत्तात्रेय दस हजार वर्षों तक एक पैर से खड़े रहे ॥ ३ ॥

गंगा ने मुनि के कुश, चीवर, दण्ड और कुण्डी को बहा दिया। पुनः उसने अपनी भंवर (आवर्त) में मुनि के कुशों को धर लिया ॥ ४ ॥

हे महाभाग ! तब कभी मुनि ने गंगा के आवर्त में भीगे हुये और बहाये जाते हुये कुशों और चीवरों को देखा ॥ ५ ॥

क्रुद्ध होकर महामुनि जब उसको भस्म करने लगे, तभी ब्रह्मा आदि सब देवता वहां आ गये ॥ ६ ॥

तुष्टुवुः परमं भक्त्या कार्त्तवीर्यगुरुं मुनिम् ।
संस्तुतश्च प्रसन्नोऽभूद् ब्रह्मादीस्तानुवाच ह ॥ ७ ॥

अत्रैव भवतां स्थानं नित्यं स्यात्तीर्थके वरे ।
आवर्त्तनाद्यतो गंगा कुशान् धृतवती मम ॥ ८ ॥

कुशावर्त्तमिति ख्यातं तीर्थमेतद् भविष्यति ।
धन्याः लोकाः करिष्यन्ति स्नानं पितृसमर्चनम् ॥ ९ ॥

तत्पितॄणां च तस्यापि न स्याज्जन्म पुनः क्वचित् ।
कुशावर्त्ते महातीर्थे दत्तं स्यात्कोटिसंख्यकम् ॥ १० ॥

इति ते कथिता व्युष्टिः कुशावर्त्तस्य पुण्यदा ।
श्रुत्वाप्येतां महोत्पत्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्ये द्वादशाधिक-
शततमोऽध्यायः ।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

विष्णुतीर्थे सूर्यवंश्यधर्मध्वजस्य राज्ञो दुर्वाससश्शापेनोरगत्व-प्राप्तस्याख्यानम्

स्कन्द उवाच—

ततो दक्षिणदिग्भागे विष्णुतीर्थं धनुःशते ।
अत्र स्नात्वा परं ब्रह्म लीनो भवति निश्चितम् ॥ १ ॥

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ।
कृष्णसर्प्पो महानेको दृश्यते फणमण्डितः ॥ २ ॥

वे परम भक्ति से कार्तवीर्य के गुरु मुनि दत्तात्रेय की स्तुति करने लगे। स्तुति से प्रसन्न होकर उसने उन ब्रह्मा आदियों से कहा ।। ७]।

यहीं इस श्रेष्ठ तीर्थ में आपका नित्य स्थान होगा। क्योंकि यहां गंगा ने अपने आवर्त में मेरे कुशों को धर लिया था ·· ।। ८ ।।

अतः इस तीर्थ का नाम कुशावर्त प्रसिद्ध होगा। धन्य लोग यहां स्नान और पितरों का पूजन करेंगे··· ।। ९ ।।

उनके पितरों का और उनका पुनः कहीं जन्म नहीं होगा। कुशावर्त नामक महातीर्थ में दिया गया दान करोड़ गुना हो जायेगा ।। १० ।।

इस प्रकार मैंने तुमसे कुशावर्त की पुण्य उत्पत्ति का वृत्तान्त कह दिया है। इस महान् उत्पत्ति के वृत्तान्त को सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।। ११ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायापुरीमाहात्म्य
प्रकरण में ११२ वां अध्याय पूरा हुआ ।।

अध्याय ११३

विष्णु तीर्थ में दुर्वासा मुनि के शाप से सूर्यवंशी राजा धर्मध्वज के सर्परूप को प्राप्त करने का आख्यान

स्कन्द ने कहा

उससे दक्षिण की ओर १०० धनुष की दूरी पर विष्णुतीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य निश्चित रूप से ब्रह्मलीन हो जाता है ।। १ ।।

मैं उसका चिह्न बताऊँगा, जिससे उस शुभ तीर्थ को पहचान लोगे। वहां फण से सुशोभित एक महान् सर्प दिखाई देता है ।। २ ।।

भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां जलमध्ये प्रयाति च।
तत्र स्नाति पुनः श्वभ्रे निविष्टो भवति क्षणात् ॥ ३ ॥

केनचित्कारणेनाऽसौ राजा परमधार्मिकः।
शप्तो दुर्वाससा विप्र पुरा कृतयुगे वरे ॥ ४ ॥

नारद उवाच—

केन वै कारणेनायं शप्तो राजा महायशाः।
किन्नामायं कार्त्तिकेय कुत्रत्यश्च नराधिपः ॥ ५ ॥

शापस्यांतः कदैतस्य भविष्यति महामते।
अनेन किं कृतं राज्ञा तस्य दुर्वाससो मुनेः ॥ ६ ॥

स्कन्द उवाच—

शृणु नारद वृत्तान्तं राज्ञश्चापि तपोनिधेः।
पुरा कृतयुगे राजा सूर्य्यवंशविवर्धदनः ॥ ७ ॥

नाम्ना धर्मध्वज इति ख्यातो रिपुविनाशनः।
कृत्वा बहुविधान्यज्ञान्समाप्तवरदक्षिणान् ॥ ८ ॥

वनितासहितस्तप्तुं गंगाद्वारे समाययौ।
अत्रागत्य महातेजा न्यवसद्विष्णुतत्परः ॥ ९ ॥

एकदा धर्मकेतुस्तु स्नात्वागत्य गृहे स्वके।
ददर्श मुनिमासीनं पीठे दुर्वाससं वरम् ॥ १० ॥

दृष्ट्वा तं सहसा राजा पादयोः प्रपपात ह।
पाद्यमाचनीयं च स्वासनं चार्घसंयुतम्।
ददौ तस्मै महाभाग विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ११ ॥

उवाच वचनं चेदं स्वागतं ते महामुने।
धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य ते गृहमागमः।
किमागमनकृत्यं ते कार्य्यं किं करबाणि तत् ॥ १२ ॥

दुर्वासा उवाच—

संप्राप्तो भोक्तुकामोऽहं पारणस्य दिनं त्विदम्।
शीघ्रं भोजय मां राजन् क्षुधितोऽस्मि परं विभो ॥ १३ ॥

भाद्रपद भास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को वह जल के मध्य में जाता है। वहां स्नान करके वह पुनः क्षण भर में बिल में प्रविष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

हे विप्र ! वह परम धार्मिक राजा था। पहले श्रेष्ठ सत्ययुग में किसी कारण से दुर्वासा ने उसको शाप दिया था ॥ ४ ॥

नारद ने कहा—

हे कार्तिकेय ! इस महायशस्वी राजा को किस कारण से शाप मिला था, इसका क्या नाम था और यह कहां का राजा था ? ॥ ५ ॥

हे महामते ! इसके शाप का अन्त कब होगा ? इस राजा ने उस दुर्वासा मुनि का क्या अपराध किया था ? ॥ ६ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे राजन् ! उस राजा के और तपस्वी के वृत्तान्त को सुनो। पहले सत्ययुग में सूर्यवंश की वृद्धि करने वाला राजा हुआ ॥ ७ ॥

उसका नाम धर्मध्वज था और वह शत्रुओं का विनाश करने वाला था। उसने उत्तम दक्षिणा वाले बहुत प्रकार के यज्ञ किये ॥ ८ ॥

पत्नी को साथ लेकर वह तपस्या करने के लिये गंगाद्वार में आया। यहां आकर वह महातेजस्वी राजा विष्णु की उपासना करने लगा ॥ ९ ॥

एक दिन वह धर्मकेतु स्नान करके जब अपने घर आया तो श्रेष्ठ दुर्वासा मुनि को पीठ पर आसीन देखा ॥ १० ॥

उसको देखकर राजा सहसा पैरों में गिर गया। हे महाभाग ! शास्त्रोक्त विधि से उसने उस मुनि के लिये अर्घसहित पाद्य, आचमनीय और आसन दिया ॥ ११ ॥

और उसने यह वचन कहा—हे महामुने ! तुम्हारा स्वागत है। मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ, जो मेरे घर में तुम्हारा आगमन हुआ है। तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है ? मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ ? ॥ १२ ॥

दुर्वासा ने कहा—

मैं भोजन करने की कामना से आया हूँ। यह मेरे व्रत की पारणा का दिन है। हे राजन् ! मुझको शीघ्र भोजन कराओ। हे विभो ! मैं बहुत भूखा हूँ ॥ १३ ॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा निगदितं मुनेर्दुर्वाससो नृपः ।
तथेत्युक्त्वा ययावन्तर्गृहं कर्त्तुं महामुने ॥ १४ ॥

संपादयति भोज्यं च यावद्राजा महामतिः ।
सूकरास्यः समायातो भ्रातुर्वैरमनुस्मरन् ॥ १५ ॥

विघ्नं वै कर्त्तुमारब्धो दृष्ट्वा दुर्वाससं मुनिम् ।
सर्पो भूत्वा स्वयं रक्ष एकान्ते भोज्यपात्रके ।
उत्ससर्ज महाक्ष्वेडं तदन्ने भक्तितोऽर्जिते ॥ १६ ॥

न ज्ञातं तन्महीभर्त्रा कृतं यद्रक्षसा मुने ।
प्रवेशयमास मुनिं भोक्तुं भोज्यं ततः परम् ॥ १७ ॥

यावदग्रे समायाति ज्ञातं तावद्विषोल्वणं ।
विषसंवलितं दृष्ट्वा भोजनं स्वर्णपात्रके ।
क्रुद्धो मुनो शशापैनं धर्मकेतुं नराधिपम् ॥ १८ ॥

यस्मात्त्वया विषोत्सृष्टं भोज्यं मे दीयतेऽधम ।
तस्मात्त्वं भविता दुष्टः कालसर्पः शतं समाः ॥ १९ ॥

उत्सृष्टं तु तदा दृष्ट्वा शापाग्निं मुनिनेरितम् ।
वेपमानो महीभर्त्ता भयार्त्तो निजगाद तम् ॥ २० ॥

ब्रह्मन्नहं कथं शप्तो विचार्याघं मम प्रभो ।
इति प्रोक्तो मुनिस्तेन दध्यौ रक्षोविचेष्टितम् ॥ २१ ॥

ज्ञात्वा लज्जासमायुक्तो दुर्वासा मुनिपुंगवः ।
उवाच तं महाराजं वेपमानं कृतांजलिम् ॥ २२ ॥

कृतमेतन्महाराज शत्रुणा तव रक्षसा ।
वसात्रैव च नृपते विष्शुतीर्थे सुपुण्यदे ॥ २३ ॥

अहमत्रागमिष्यामि युगांते नरपुंगव ।
मां दृष्ट्वा सहसा गन्ता तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २४ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे महामुने ! इस प्रकार दुर्वासा मुनि के वचन को सुनकर, ऐसा ही हो, यह कह कर वह राजा भोजन तैयार करने घर के अन्दर गया ।। १४ ।।

जब वह महामति राजा भोजन का सम्पादन कर ही रहा था, भाई के वैर को स्मरण करके सूकरास्य नाम का असुर वहां आ गया ।। १५ ।।

दुर्वासा मुनि को देखकर उसने विघ्न करना आरम्भ कर दिया । उस राक्षस ने एकान्त में स्वयं सर्प बनकर भोजन के पात्र में, भक्ति से सम्पादित किये गये उस अन्न में महाविष को छोड़ दिया ।। १६ ।।

हे मुने ! राक्षस ने जो कुछ किया था, उसको उस राजा ने नहीं जाना । उसके पश्चात् उसने भोजन के लिये मुनि को प्रवेश कराया ।। १७ ।।

जब वह मुनि आगे आया तो भोजन में महाविष मिला हुआ पहचान लिया । स्वर्ण के पात्र में भोजन को विष से मिला हुआ देखकर, क्रूद्ध होकर मुनि ने इस धर्मकेतु राजा को शाप दिया ।। १८ ।।

हे अधम ! क्योंकि तुम मुझको विष से मिश्रित अन्न दे रहे हो, अतः तुम १०० वर्ष तक काला सांप बन कर रहोगे ।। १९ ।।

मुनि से कही गई शाप की अग्नि को छोड़ा गया देखकर भय से पीडित कांपते हुये राजा ने उससे कहा ।। २० ।।

हे ब्रह्मन् ! मुझको क्यों शाप दिया है ? हे प्रभो ! मेरे पाप का विचार करो । इस प्रकार कहने पर मुनि ने राक्षस की चेष्टा का ध्यान किया ।। २१ ।।

इस तथ्य को जान कर लज्जित होकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने कांपते हुये, हाथ जोड़े हुये उस महाराज से कहा ।। २२ ।।

हे महाराज ! यह कार्य तुम्हारे शत्रु राक्षस ने किया है । हे राजन् ! तुम यहीं उत्तम पुण्यदायक विष्णुतीर्थ में निवास करो ।। २३ ।।

हे नरश्रेष्ठ ! मैं यहां सत्ययुग की समाप्ति पर आऊँगा । मुझको देख कर तुम सहसा विष्णु के परम स्थान पर जाओगे ।। २४ ।।

दु:खं नात्र प्रकर्त्तव्यं शापान्तो भविता तव।
प्रियया सहितो विष्णोः सायुज्यं प्राप्स्यसे चिरात् ॥ २५ ॥

इमं चापि महाभाग सर्पिणी भविता खलु।
गोपनार्थं स्वजातेश्च मा शोचस्व महीपते ॥ २६ ॥

गंगाद्वारं परमं क्षेत्रं यत्र ब्रह्मादयः सुराः।
निवसन्ति विमुक्त्यर्थं येन केनापि योनिना ॥ २७ ॥

खेदस्त्वया न कर्त्तव्यो भुजंगमशरीरतः।
ज्ञानं च भविता तत्र मोक्षमार्गप्रदर्शकम् ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो बदरीविपिने ततः।
सोऽपि राजा महाबाहुः सर्पदेहोऽभवन्मुने।
सपत्नीको महाभाग हरिद्वारे सुरालये ॥ २९ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे गंगाद्वारमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

तपस्यते तटसुरायाशरीरिण्या वाण्या वरप्रदानं कालखञ्जदुहितुः पाणिग्रहणानन्तरं शूकरास्यगजास्ययोस्तस्यामुत्पत्तिः मुनितपोऽन्तरायभूतस्य गजास्यस्य धर्मकेतुनृपेण हननम्

नारद उवाच—

सूकरास्यो महाभाग को वाऽसौ राक्षसाधमः।
अस्य भ्राताऽपि को वाऽऽसीत्किमर्थं नृपरक्षसोः ॥ १ ॥

अभूद्वैरं कदा वैरं सर्वं मे विस्तराद्वद।
कुत्रैतयोस्तु संस्थानं किं कृतं रक्षसा पुरा ॥ २ ॥

तुमको इस विषय में दुःख नहीं करना चाहिये। तुम्हारे शाप का अन्त होगा। तुम प्रियासहित चिरकाल तक विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करोगे ॥ २५ ॥

हे महाभाग ! यह तुम्हारी पत्नी भी अपनी जाति को गुप्त रखने के लिये सर्पिणी होगी। हे राजन् ! शोक मत करो ॥ २६ ॥

यह गंगाद्वार परम क्षेत्र है। यहां ब्रह्मा आदि देवता भी जिस किसी भी योनि में आकर विमुक्ति के लिये निवास करते हैं ॥ २७ ॥

सर्प का शरीर पाकर भी तुमको खेद नहीं करना चाहिये। तुमको वहां मोक्ष के मार्ग का प्रदर्शन करने वाला ज्ञान होगा ॥ २८ ॥

यह कहकर तदनन्तर वे विप्र दुर्वासा बदरीवन में चले गये। हे मुने महाभाग नारद ! वह महाबाहु राजा भी देवताओं के निवास हरिद्वार में पत्नी सहित सर्प के शरीर वाला हो गया ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में गंगाद्वारमाहात्म्य
वर्णन नाम का ११३ वां अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय ११४

तपस्या करते हुये तटासुर के लिये अशरीरिणी वाणी द्वारा वर देना, तटासुर द्वारा कालखञ्ज की पुत्री से विवाह करने के अनन्तर सूकरास्य और गजास्य दो पुत्रों की उत्पत्ति, मुनि के तप में विघ्न करते वाले गजास्य का राजा धर्मकेतु द्वारा वध

नारद ने कहा—

हे महाभाग ! वह शूकरास्य नाम का नीच राक्षस कौन था ? उसका भाई भी कौन था ? राजा और राक्षस का किस कारण से··· ॥ १ ॥

और कब वैर हुआ था ? इन दोनों की स्थिति कहां थी ? इस राक्षस ने पहले क्या किया था ? इन सब बातों को मुझे विस्तार से बताइये ॥ २ ॥

स्कन्द उवाच—

आसीद्दनुकुले विप्र तटो नामाऽसुराधिपः ।
सैकदा हिमवत्पार्श्वे दक्षिणे मुनिसेविते ॥ ३ ॥

पिंडारकनदीतीरे रम्ये परमदारुणम् ।
तपस्तेपे निराहारो वर्षाणामयुतं किल ॥ ४ ॥

तस्य वै तपसा त्रस्तास्त्रयो लोकाः सवासवाः ।
अथाऽशरीरिणी वाणीमाकाशे ह्यश्रृणोत्ततः ॥ ५ ॥

साधु साधु तट साधु दुर्द्धर्ष तप उत्तमम् ।
किं कृत्यं ते हि तपसा त्रैलोक्ये नास्ति दुर्लभम् ॥ ६ ॥

इति श्रुत्वा तटो वाणीं जगाद वचनं त्विदम् ।
यदि मे वै तपस्तष्तं ततः स्यां विष्णुभक्तियुक् ॥ ७ ॥

विष्णुभक्तिविहीनानां मुक्तिः स्वप्नेऽपि दुर्लभा ।
न कांक्षेऽपि त्रिलोकानां राज्यं निहतकंटकम् ॥ ८ ॥

श्रुत्वा तद्वचनं तत्र पुनः प्रोचेऽशरीरिणी ।
धन्योऽसि दानवश्रेष्ठ यस्य ते मतिरीदृशी ॥ ९ ॥

तपसा तव संतुष्टो विष्णोस्त्वं स्थानमेष्यसि ।
पुत्रै द्वै भवितारौ ते तयोरेकस्तु वंशधृक् ॥ १० ॥

तपसा हतपापस्त्वं विष्णोश्चैव प्रसादतः ।
अन्ते च परमं स्थानं यास्यसि यीगिदुर्लभम् ॥ ११ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा तटो नाम तपोनिधिः ।
तत्रैव निवसन् सोऽपि विष्णुपूजनतत्परः ॥ १२ ॥

कालखंजसुतां प्राप विवाहविधिना ततः ।
द्वौ पुत्रौ समये प्राप शूकरास्यग जाननौ ॥ १३ ॥

राक्षसीं बुद्धिमापन्नौ पीडयामासतुर्मुनीन् ।
खादवामासतुः कांश्चित्कांश्चिज्जग्राह लोमसु ॥ १४ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र नारद ! दनु के कुल में तट नाम का असुर राजा हुआ था । वह एक बार मुनियों से सेवित हिमालय के दक्षिण पार्श्व में··· ॥ ३ ॥

पिंडारक नदी के रम्य तट पर निराहार रहकर १० हजार वर्शों तक निश्चय से परम कठोर तप करता रहा ॥ ४ ॥

उसके तप से इन्द्र सहित तीनों लोक त्रस्त हो गये । तदनन्तर उस तट ने इस अशरीरिणी आकाशवाणी को सुना ॥ ५ ॥

हे तट ! साधु, साधु । तुमने उत्तम साधु दुर्द्धर्ष तप किया है । तपस्या द्वारा तुमको तीनों लोकों में कौनसा कार्य दुर्लभ नहीं है ? ॥ ६ ॥

यह वाणी सुन कर तट ने यह वचन कहा - यदि मैंने तपस्या की है, तो मैं विष्णु की भक्ति से युक्त हो जाऊँ ॥ ७ ॥

विष्णु की भक्ति से रहित मनुष्यों को स्वप्न में भी मुक्ति दुर्लभ है । मैं तीनों लोकों का शत्रुओं से रहित राज्य भी नहीं चाहता ॥ ८ ॥

उसके उस वचन को सुन कर वह अशरीरिणी वाणी पुनः बोली—हे दानव श्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, जिस तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥ ९ ॥

तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट विष्णु तुमको अपने स्थान पर ले जायेंगे । तुम्हारे दो पुत्र होंगं । उनमें से एक वंश को धारण करने वाला होगा ॥ १० ॥

तपस्या से पापों को नष्ट करके तुम विष्णु की कृपा से मृत्यु होने पर योगियों को भी दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त करोगे ॥ ११ ॥

इस वचन को सुनकर वह तट नाम का तपस्वी विष्णु का पूजन करता हुआ वहीं निवास करने लगा ॥ १२ ॥

तदनन्तर उसने विवाह की विधि से कालखञ्ज की पुत्री को प्राप्त किया । समय पर उसने शूकरास्य और गजानन दो पुत्र पाये ॥ १३ ॥

वे राक्षसी बुद्धि को प्राप्त करके मुनियों को पीडित करने लगे । वे कुछ को तो खा गये और कुछ के लोम नोचने लगे ॥ १४ ॥

पाटयामासतुः कांश्चिच्चक्रतू रुधिराशनम्।
एवं पीडयतोर्विप्र मुनीन्नाक्षसयोस्तयोः ॥ १५ ॥

मुनयस्त्रासमापन्ना राजानं शरणं ययुः।
धर्मध्वजं महाराजं त्राहि त्राहीति वादिनः ॥ १६ ॥

ऊचुः प्रांजलयः सर्वे शूकरस्य भयार्दिताः।
त्राहि नो रक्षसोर्वीर ते वयं शरणं गताः ॥ १७ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा धर्मात्मा सत्यसंगरः।
मा भैष्ट इति प्रोवाच संपूज्य च यथार्हतः ॥ १८ ॥

गृहीत्वा सशरं चापं नगराद्वहिराययौ।
लोकैः परिवृतो युक्तो हेलया जेतुमाव्रजत् ॥ १९ ॥

यत्रासाते महाभाग राक्षसौ कामरूपिणौ।
आह्वयामास तौ वीरौ धर्मकेतुरमू रिपू ॥ २० ॥

श्रुत्वा कोलाहलं तस्य राक्षसौ ययतुः क्षणात्।
रक्तेक्षणौ रक्तकेशौ रक्तमाल्यानुलेपनौ ॥ २१ ॥

बृहद्दंतौ बृहत्कायौ घोरौ भीरुभयानकौ।
दृष्ट्वा तौ युयुधे राजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥ २२ ॥

नाराचैरसिभिश्चैव गदाभिर्मुशलैस्तथा।
वृक्षैर्महीधरश्रृंगैः क्षेपणीयाश्मसंग्रहैः ॥ २३ ॥

युध्यतां तुमुलः शब्दः शुश्रुवे गिरिकन्दरे।
अश्मनां चर्मणां चैव शूलानामसिनां तथा ॥ २४ ॥

एतस्मिन्नंतरे राजा गजास्यं बाणजालकैः।
छादयामास सहसा व्याकुलोऽभूच्च राक्षसः ॥ २५ ॥

ततोऽर्द्धचन्द्रबाणेन शिरश्चिच्छेद रक्षसः।
पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाऽचलः ॥ २६ ॥

वे कुछ को विदीर्ण करने लगें और रुधिर का भोजन करने लगे । हे विप्र नारद ! इस प्रकार वे दोनों राक्षस मुनियों को पीडित करने लगे ।। १५ ।।

भयभीत होकर वे मुनि "रक्षा करो, रक्षा करो" इस प्रकार कहते हुये महाराज धर्मध्वज की शरण में गये ।। १६ ।।

शूकरास्य के भय से पीडित हुये उन मुनियों ने हाथ जोड़कर कहा कि हे वीर ! हमारी राक्षसों से रक्षा करो । हम तुम्हारी शरण में आये हैं ।। १७ ।।

उनके इस वचन को सुनकर सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा राजा धर्मध्वज ने उनका यथायोग्य सत्कार करके कहा कि आप मत डरो ।। १८ ।।

बाणों सहित धनुष को लेकर वह नगर से बाहर आ गया । लोगों से घिरा हुआ वह अनायास ही जीतने के लिये चल पड़ा ।। १९ ।।

हे महाभाग ! जहाँ कि वे इच्छानुसार रूप को धारण करने वाले राक्षस थे । धर्मकेतु ने उन वीर शत्रुओं का आह्वान किया ।। २० ।।

उस राजा धर्मकेतु के कोलाहल को सुनकर लाल आंखों वाले, लाल केशों वाले और लाल मालाओं एवं अनुलेपन को धारण करने वाले दोनों राक्षस निकल आये ।। २१ ।।

वे बड़े दान्तों वाले, विशाल शरीर वाले, भयानक, और डरपोकों को डराने वाले थे । उनको देखकर सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा राजा धर्मध्वज युद्ध करने लगा ।। २२ ।।

उनका युद्ध बाणों से, तलवारों से, गदाओं से, मूसलों से, वृक्षों से, पर्वतों के शिखरों से और फेंकने के योग्य पाषाणों के संग्रहों से होने लगा ।। २३ ।।

पत्थरों, चमड़े की ढालों, शूलों तथा तलवारों से युद्ध करते हुए उनका तुमुल शब्द पर्वतों की कन्दराओं में सुनाई देने लगा ।। २४ ।।

इसी मध्य में राजा ने गजास्य को बाणों के समूहों से आच्छादित कर दिया । वह राक्षस सहसा व्याकुल हो गया ।। २५ ।।

तदनन्तर उसने अर्धचन्द्र बाण से राक्षस का सिर काट डाला । वह सहसा भूमि पर बज्र से आहत पर्वत के समान गिर गया ।। २६ ।।

अलकनंदोत्तरे तीरे क्षेवे श्रीसंज्ञके शुभे ।
तन्मांसास्थिमयो विप्र पर्वतो दृश्यते महान् ॥ २७ ॥

गजाचल इति ख्यातस्तत्रास्ते ब्रह्मपुत्रकः ।
शूकरास्योऽपि तद् दृष्ट्वा कर्म राज्ञो महोल्बणम् ।
ययौ कैलासनिलये महादर्पो भयान्वितः ॥ २८ ॥

गजास्यो दिवमापन्नो देववैमानिकैर्युतम् ।
ययौ परमिकां सिद्धिं मरणाद्धि हिमालये ॥ २९ ॥

अज्ञानादपि यद्रक्षोऽनेकब्रह्मवधादिकम् ।
संप्राप परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ३० ॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वया द्विज ।
श्रुत्वा धर्मध्वजस्येदमुपाख्यानं सुपुण्यदम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सत्यमेतन्न संशयः ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये धर्मध्वजोपाख्यान-
वर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

**सप्तसामुद्रिकतीर्थे समुद्रेश्वरः शिवतीर्थे बिल्वेश्वरः सारवती-
गङ्गयोः सङ्गमे पार्वतीतीर्थमापदुद्धारकभैरवादिवर्णनं
समाप्तञ्च गङ्गाद्वारमाहात्म्यम्**

स्कन्द उवाच—

अन्यानि तीर्थवर्य्याणि सर्वपापहराणि वै ।
कथयामि शृणु प्राज्ञ गङ्गायां नारदाधुना ॥ १ ॥

गङ्गायाः पश्चिमे कूले कुशावर्त्तादधः शरे ।
सप्तसामुद्रिकं नाम तीर्थं परमपावनम् ॥ २ ॥

यत्र स्नात्वा महाभाग शिवलोके महीयते ।
पुरा तत्र समुद्रैश्चाराधितो भगवाञ्छिवः ॥ ३ ॥

हे विप्र ! अलकनन्दा के उत्तरी तट पर श्री नाम के क्षेत्र में उसके मांस और अस्थि से बना हुआ महान् पर्वत दिखाई देता है ॥ २७ ॥

उसका नाम गजाचल प्रसिद्ध है। वहां ब्रह्मा के पुत्र रहते हैं। महाघमण्डी शूकरास्य भी राजा के उस महान् उग्र कार्य को देखकर भयभीत होकर कैलास पर्वत पर चला गया ॥ २८ ॥

देवताओं के विमानों पर आरूढ होकर गजास्य स्वर्ग में पहुँचा। हिमालय में मृत्यु होने से उसको परम सिद्धि प्राप्त हुई ॥ २९ ॥

अनेक ब्राह्मणों के वध आदि पाप को अज्ञान से भी करने वाले उस राक्षस ने देवताओं को भी दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त किया ॥ ३० ॥

हे द्विज नारद ! जो कुछ तुमने पूछा था, वह सारा वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया है। धर्मध्वज के इस उत्तम पुण्यदायक उपाख्यान को सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, यह निस्सन्देह सत्य है ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्रमाहात्म्य प्रकरण में धर्मध्वजोपाख्यानवर्णन नाम का ११४ वां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ११५

सप्तसामुद्रिक तीर्थ में समुद्रेश्वर, शिवतीर्थ में विल्वेश्वर, सारवती-गंगा के संगम पर पार्वती तीर्थ, आपदुद्धारक भैरव आदि का वर्णन, गंगाद्वार-माहात्म्य का वर्णन समाप्त

स्कन्द ने कहा—

हे प्राज्ञ नारद ! अब मैं तुम्हारे समक्ष गंगा के क्षेत्र में पापों का हरण करने वाले अन्य श्रेष्ठ तीर्थों का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १ ॥

गंगा के पश्चिमी तट पर कुशावर्त तीर्थ से नीचे एक शरविक्षेप दूर सप्त-सामुद्रिक नाम का परम पावन तीर्थ है ॥ २ ॥

हे महाभाग ! यहां स्नान करके मनुष्य शिवलोक में महिमा को प्राप्त करता है। पूर्व समय में यहाँ समुद्रों ने भगवान् शिव की आराधना की थी ॥ ३ ॥

समुद्रेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः।
ततो वै दक्षिणे भागे स्वर्ण वर्द्धीश्वरः शिवः।
सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

ततोऽर्द्धक्रोशखण्डे वै शिवतीर्थमिति ध्रुवम्।
तत्र स्नात्वा महाभाग कैलासनिलये वसेत् ॥ ५ ॥

तत्र विल्वेश्वरो नाम महादेवो विमुक्तिदः ॥ ६ ॥

यस्तत्र नियताहारः सप्तरात्रं जितेन्द्रियः।
जपते शिवमन्त्र च रुद्रं चागमतत्परः।
परां सिद्धिमवाप्नोति या सुरैरपि दुर्ल्लभा ॥ ७ ॥

विल्पपत्रैः समभ्यर्च्य न भूयः स्तनपो भवेत्।
ततः शरद्वये तीरे गंगायाः शुभदायकम्।
तीर्थं गणेश्वरं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८ ॥

तत्र स्नात्वा महाभाग सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यस्तत्र कुरुते पिंडदानं पितृनिमित्तकम्।
दशवारं कृतं तेन गयाश्राद्धं न संशयः ॥ ९ ॥

ततः पश्चिमदिग्भागे शिला परमपावनी।
नाम्ना नारायणी ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ १० ॥

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
पितृवंश्या शतं मातृवंश्याश्चापि तथा स्वयम्।
तारिताः पितरस्तेन सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ११ ॥

गंगायाः पूर्वदिग्भागे पार्वतीश्वरसंज्ञितः।
पार्वत्या यत्र नितरां पूजितो भगवाञ्छिवः ॥ १२ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण सर्वं पापं प्रणश्यति।
गंगातो दण्डदशके शिवः परमपावनः।
यद्दर्शनात्पूजनाच्चव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १३ ॥

समुद्रेश्वर महादेव सब कामनाओं के फलों को देने वाले हैं। उससे दक्षिण भाग में स्वर्णबद्धीश्वर शिव हैं। उस देव का एक बार दर्शन करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४ ॥

उससे ऊपर एक कोस दूर शिवतीर्थ है। हे महाभाग ! वहां स्नान करके मनुष्य कैलास पर्वत पर निवास करता है ॥ ५ ॥

वहां मुक्ति को देने वाले बिल्वेश्वर नाम के महादेव हैं ॥ ६ ॥

जो मनुष्य इन्द्रियों को जीतकर, आहार को नियन्त्रित करके, वेदों में तत्पर होकर सात रात्रियों तक शिव-मन्त्र का और रुद्र का जप करता है, वह देवताओं को भी दुर्लभ परम सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

बिल्व-पत्रों से शिव का पूजन करके पुनः स्तनपान नहीं करता (पुनर्जन्म नहीं होता)। उससे भी दो शरविक्षेय की दूरी पर गंगा के तट पर सब पापों को नष्ट करने वाला शुभदायक गणेश्वर नाम का तीर्थ है ॥ ८ ॥

हे महाभाग ! वहां स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो वहां पितरों के निमित्त से पिण्डदान करता है, उसने मानों दस बार गया में श्राद्ध कर लिया है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥

उसके पश्चिम भाग में सब पापों को नष्ट करने वाली परमपावनी नारायणी नाम से प्रसिद्ध शिला है ॥ १० ॥

जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर वहां श्राद्ध करता है, वह अपने पिता के वंश के एवं माता के वंश के सौ पितरों को तरा देता है। यह बात निस्सन्देह सत्य है, सत्य है ॥ ११ ॥

गंगा के पूर्व दिशा में पार्वतीश्वर नाम के महादेव हैं, जहां पार्वती ने भगवान् शिव का बहुत अधिक पूजन किया था ॥ १२ ॥

जिसके दर्शन-मात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। गंगा से दस दंड दूर परम पावन शिव हैं, जिनका दर्शन करने और पूजन करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

नीलपर्वतप्राग्भागे धारा सारवती स्थिता ।
तस्यां स्नात्वा तथाऽऽचम्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।। १४ ।।

यत्रैषा संगता विप्र गंगायां पापनाशिनी ।
पार्वतीतीर्थमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।। १५ ।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ।
मृत्तत्र कुंकुमारक्ता तथा रक्तशिलाऽर्थदा ।। १६ ।।

यस्तां भाले नरः कुर्याद्गौरीलोके महीयते ।
तया मृत्तिकया यस्तु पूजयेद्विश्वनायकम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति याति ब्रह्म सनातनम् ।। १७ ।।

यस्तया पूजयेल्लिगं सहस्रं वेदमन्त्रकैः ।
प्राप्नोति सकलां सिद्धिं महादेवप्रसादतः ।। १८ ।।

तस्मात्कोशार्द्धके तीर्थं गंगाया भैरवाश्रितम् ।
पुरा यत्र महादेवो भैरवेन समर्चितः ।। १९ ।।

आपदुद्धारणो नाम सर्वापत्तिविनाशनः ।
तंपूज्य विधिवद् भक्त्या पूजितो नीललोहितः ।। २० ।।

तत्राऽऽयाति नदीश्रेष्ठा नाम्ना भानुभवाशिनी ।
तत्संगमे नरः स्नात्वा सूर्यलोके महीयते ।। २१ ।।

गंगाया दक्षिणे तीरे माने क्रोशात्मके मुने ।
पुरुकुत्सेश्वरो नाम महादेवो वरप्रदः ।। २२ ।।

यस्य दर्शनमात्रेण महापातककोटयः ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि नाशमीयुर्महामुने ।। २३ ।।

तत्रैका जलमध्ये तु पीतवर्णा शिलाऽस्ति हि ।
नाम्ना नादेश्वरी प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी ।। २४ ।।

गंगाद्वारोत्तरे भागे गंगायाः प्राग्विभागके ।
नदी कौमुद्वती ख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी ।। २५ ।।

नील पर्वत के पहले भाग में सारवती नाम की धारा है। उसमें स्नान करके और आचमन करके मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ।। १४ ।।

हे विप्र नारद ! जहां यह सारवती नाम की पापनाशिनी धारा गंगा में मिलती है, वहाँ सब पापों को नष्ट करने वाला पार्वतीतीर्थ कहा गया है ।। १५ ।।

मैं उसका चिह्न बताऊँगा, जिससे तुम उस शुभ तीर्थ को पहचान लोगे। वहाँ केसर के समान लाल मिट्टी है और लाल रंग की शिला अर्थ को प्रदान करने वाली है ।। १६ ।।

जो मनुष्य उस मिट्टी को मस्तक पर लगाता है, वह गौरी लोक में महिमा को प्राप्त करता है। उस मिट्टी से जो मनुष्य विश्वनायक शिव का पूजन करता है, वह सब सिद्धियों को और सनातन ब्रह्म को पाता है ।। १७ ।।

जो मनुष्य उस मिट्टी से सहस्र वेद-मन्त्रों के साथ लिंग की पूजा करता है, वह महादेव की कृपा से सम्पूर्ण सिद्धि को पाता है ।। १८ ।।

उस स्थान से गंगा के तट पर आधा कोस दूर भैरव से आश्रित तीर्थ (भैरवतीर्थ) है। यहां पूर्व काल में भैरव ने महादेव का पूजन किया था ।। १९ ।।

सब आपत्तियों का विनाश करने वाले उस भैरव का नाम आपदुद्धारण है। उसका विधिवत् पूजन करने से नीललोहित शिव का पूजन होता है ।। २० ।।

वहां से भानुभवाशिनी नाम की नदी आती है। उसके संगम में स्नान करने पर मनुष्य सूर्यलोक में महिमा को प्राप्त करता है ।। २१ ।।

हे मुने ! वहाँ से एक कोस दूर गंगा के दक्षिणी तट पर बर को प्रदान करने वाले पुरुकुत्सेश्वर नाम के महादेव हैं ।। २२ ।।

हे महामुने ! उनका दर्शन करने मात्र से हजारों ब्रह्महत्यायें और अन्य करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं ।। २३ ।।

वहां जल के मध्य में पीले रंग की एक शिला है। सब पापों को नाश करने वाली उस शिला का नाम नादेश्वरी है ।। २४ ।।

गंगाद्वार से उत्तर में गंगा के पूर्वी विभाग में कौमुद्वती नाम से प्रसिद्ध, सब दरिद्रताओं का विनाश करने वाली नदी है ।। २५ ।।

धनार्थं ये महाभागाः स्नानं कुर्वन्ति भक्तितः ।
लभन्ते सप्तरात्रेण धनं दारिद्र्यनाशनम् ॥ २६ ॥

ततो वै पश्चिमे तीरे धारा परमपावनी ।
गंगायां सङ्गमे यत्र रेणुका नाम नामतः ॥ २७ ॥

तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानन्त्यं लभेन्नरः ।
ततः क्रोशार्द्धखण्डे वै नदी वज्रशिला किल ।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति रविमण्डलम् ॥ २८ ॥

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं भक्त्या मुक्तो महामुने ।
पितरस्तस्य गच्छन्ति स्थानं सप्तोत्तरं शुभम् ॥ २९ ॥

ततः सौम्यार्ऽद्धगव्यूतौ नदी शङ्करवल्लभा ।
यदम्बुस्पर्शमात्रेण ब्रह्महत्यादिकोटयः ।
नश्यन्ति किं पुनर्विप्र स्नानात् पानाच्छिवार्चनात् ॥ ३० ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवाः पुरा शिवमतोषयन् ।
नाम्ना चक्रुर्नदीं रम्यां पुण्यां शङ्करवल्लभाम् ॥ ३१ ॥

गंगायां संगमे यत्र तीर्थं परमपावनम् ।
शङ्करं मुक्तिदं नृणां ब्रह्महत्यानिवारकम् ॥ ३२ ॥

शङ्करेशो महादेवोऽखिलसिद्धिमनोहरः ।
यस्य दर्शनमात्रेण शतजन्मार्जितैः परैः ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु कल्पं शिवपुरे वसेत् ॥ ३३ ॥

महापुण्यतमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
यदत्र कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ३४ ॥

वीरभद्रेश्वराद् देवात् पश्चिमे योजनार्द्धके ।
शालिहोत्रेश्वरो देवो महादेवो वरप्रदः ॥ ३५ ॥

शालिहोत्रो मुनिर्यत्र शिवसंन्यस्तमानसः ।
बभूव नियताहारस्तथा वर्षसहस्रकम् ॥ ३६ ॥

जो महाभाग यहां धन के लिये भक्ति-भाव से स्नान करते हैं, वे सात रात्रियों में दरिद्रता को नष्ट करने वाले धन को प्राप्त करते हैं ।। २६ ।।

वहां से गंगा के पश्चिमी तट पर गङ्गा के संगम पर रेणुका नाम की परम-पावनी धारा है ।। २७ ।।

वहां स्नान करके और जप करके मनुष्य अनन्त फल को प्राप्त करता है । वहां से आधे कोस की दूरी पर वज्रशिला नाम की नदी है । भक्ति-भाव से उसमें स्नान करके मनुष्य सूर्यमंडल को प्राप्त करता है ।। २८ ।।

हे महामुने ! जो मनुष्य वहां भक्ति-भाव से श्राद्ध करता है, उसके पितर ऊपर के सात शुभ लोकों में जाते हैं ।। २९ ।।

हे सौम्य विप्र ! वहां से आधे गव्यूति (दो मील) की दूरी पर शंकरबल्लभा नाम की नदी है, जिसके जल का स्पर्शमात्र करने से ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं । पुनः उसमें स्नान करने, उसका जल पीने और वहां शिव-पूजन करने का तो कहना ही क्या है ? ।। ३० ।।

यहां पूर्व समय में ब्रह्मा आदि देवताओं ने शिव को प्रसन्न किया था । उन्होंने यहां रम्य पुण्य नदी का नाम शंकरबल्लभा रखा ।। ३१ ।।

यहां गंगा के संगम पर परमपावन शाङ्कर तीर्थ है । वह मनुष्यों को मुक्ति देने वाला है और ब्रह्महत्या का निवारण करता है ।। ३२ ।।

यहां सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाले शंकरेश नाम के महादेव हैं, जिनके दर्शन मात्र से मनुष्य सौ जन्मों में उपार्जित किये गये सब परम पापों से मुक्त हो जाता है और कल्प पर्यन्त शिवलोक में रहता है ।। ३३ ।।

यहां महापुण्यतम पीठ है, जो तत्काल ज्ञान को देने वाला है । मनुष्य यहां जो कर्म करता है, वह करोड़-करोड़ गुना हो जाता है ।। ३४ ।।

वीरभद्रेश्वर महादेव से पश्चिम की ओर आधे योजन दूर, वर को देने वाले शालिहोत्रेश्वर महादेव हैं ।। ३५ ।।

जहाँ कि शालिहोत्र नाम के मुनि शिव के प्रति मन को निहित करके एक हजार वर्ष तक निराहार होकर तप करते रहे थे ।। ३६ ।।

लेभे विद्याः महादेवादष्टादश महामुने ।। ३७ ।।

शालिहोत्रेश्वरं देवं पूजयित्वा विधानतः ।
मूढोऽपि मण्डलाद्याति सर्वविद्यां महामुने ।। ३८ ।।

तस्मात् पूर्वे क्रोशपादे नदी रम्भाभिधा मता ।
यत्र रम्भा निवसितुं मायापुर्यां सरिद्वपुः ।। ३९ ।।

एकदा स्वर्गभवने नृत्यन्ती वासवालये ।
ददर्श विष्णुदूतैस्तु नीयमानान् मृताञ्छुभे ।। ४० ।।

मायाक्षेत्रे कृतावासान् वैकुण्ठं प्रति गच्छतः ।
उपासमानान् देवाद्यैरिन्द्राद्यैर्गणकिन्नरैः ।। ४१ ।।

चतुर्भुजाञ्छंखचक्रगदापाणीन् हरीनिव ।
पीताम्बरान् सलक्षणीकांस्तथा श्रीवत्सलांछनान् ।। ४२ ।।

विभूतिभि· शोभमानान् गरुडस्थान् सुवर्चसः ।
इति तान् मुक्तिमापन्नान् दृष्ट्वाश्चर्यमवाप सा ।। ४३ ।।

प्रोवाच शक्रं देवेशं तदातिथ्यार्थमुत्थितम् ।
त्रैलोक्यनाथ भगवन् क एते सूर्यवर्चसः ।। ४४ ।।

हरयो वाऽनन्तरूपधरा बुधगणेश्वर ।
कुतः समागता ह्येते द्यां प्रयान्ति च सेविताः ।। ४५ ।।

इन्द्र उवाच—

प्रिये ह्येते महात्मानो मायाक्षेत्रान्तवासिनः ।
मृता गच्छन्ति परमास्तद्विष्णोः परमं पदम् ।। ४६ ।।

मायाक्षेत्रसमं पुण्यं पृथिव्यां नैव विद्यते ।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
तानि तीर्थानि यन्वङ्गि मायाक्षेत्रे न संशयः ।
वयं सर्वेऽपि तत्रैव वसामो भक्तिलालसाः ।। ४७ ।।

हे महामुने ! उन्होंने महादेव से अठारह विद्यायें प्राप्त की थीं ।। ३७ ।।

हे महामुने ! शालिहोत्रेश्वर महादेव का विधि-विधान से पूजन करके मूर्ख मनुष्य भी अपने मण्डल में सब विद्याओं को प्राप्त करता है ।। ३८ ।।

उससे पूर्व दिशा में चौथाई कोस दूर रम्भा नाम की नदी है। यहां मायापुरी में निवास करने के लिये रम्भा नाम की अप्सरा नदी रूप में परिणत हुई थी ।। ३९ ।।

एक दिन वह स्वर्गलोक में इन्द्र के शुभ भवन में नृत्य कर रही थी। उसने देखा कि विष्णु के दूत मृतकों को ले जा रहे हैं ।। ४० ।।

वे मायाक्षेत्र में निवास करते थे और वैकुण्ठ की ओर ले जाये जा रहे थे। इन्द्र आदि देवता और किन्नर उनकी उपासना कर रहे थे ।। ४१ ।।

उनकी चार भुजायें थीं और वे शंख-चक्र-गदा को हाथों में लिये विष्णुओं के समान थे उन्होंने पीताम्बर धारण किये थे, लक्ष्मी के साथ थे और श्रीवत्स से चिह्नित थे ।। ४२ ।।

वे विभूतियों से शोभायमान थे, गरुड़ों पर बैठे थे, और तेजस्वी थे । उनको मुक्ति को प्राप्त हुआ देखकर उस रम्भा को आश्चर्य हुआ ।। ४३ ।।

उनके आतिथ्य के लिये खड़े हुये देवेश इन्द्र से उसने कहा—हे त्रैलोक्यनाथ भगवन् ! सूर्य के समान तेजस्वी ये कौन हैं ? ।। ४४ ।।

हे देवराज ! अनन्त रूपों को धारण करने वाले ये विष्णु कहां से आ गये हैं। वे स्वर्ग को जा रहे हैं और इनकी सेवा की जा रही है ।। ४५ ।।

इन्द्र ने कहा—

हे प्रिये ! ये महात्मा लोग मायाक्षेत्र के अन्दर रहने वाले हैं। मरने के अनन्तर ये विष्णु के परम पद को जा रहे हैं ।। ४६ ।।

मायाक्षेत्र के समान पुण्य स्थल पृथिवी पर नहीं है। साढे तीन करोड़ तीर्थ हैं। हे तन्वङ्गि ! वायु का कथन है कि वे सब मायाक्षेत्र में हैं। इसमें सन्देह नहीं है भक्ति की लालसा करने वाले हम भी वहीं रहते हैं ।। ४७ ।।

रम्भोवाच—

अहमत्र वसेयं वै यथाऽऽज्ञापय वासव।
भविष्यामि यथा ह्यन्ते कृपां कुरु मयि प्रभो॥ ४८॥

इन्द्र उवाच—

सरिद्भूता वरारोहे नित्यं तिष्ठ वरानने।
पुण्ये तव जले येऽपि स्नातारः पारगामिनः॥ ४९॥

स्कन्द उवाच—

इति श्रुत्वा वचो भर्तुः प्रणिपत्य त्वरान्विता।
आययौ परमे पुण्ये मायाक्षेत्रे सरिद्वरा॥ ५०॥

जाता पुण्यतमा विप्र सर्वपापप्रणाशिनी।
रम्भाकुण्डं च गङ्गायां सङ्गमे पुण्यदायके॥ ५१॥

उपस्पृश्यापि पानीयं रम्भया सह मोदते।
रम्भेश्वरो महादेवस्तत्रैव शिवदायकः।
ततः परं महाभाग कुब्जाम्रकमिति श्रुतम्॥ ५२॥

यत्राम्रे कुब्जरूपेण दृष्टो मुनिभिरच्युतः।
ततः कुब्जाम्रकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५३॥

सकृद् दृष्ट्वा तु यत्क्षेत्रं परब्रह्मणि लीयते।
इति ते कथितं विप्र गङ्गाद्वारस्य वैभवम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ५४॥

श्राद्धे शृणोति यो मर्त्यो गङ्गाद्वारस्य वैभवम्।
पितरस्तस्य गच्छन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ५५॥

यः पठेन्मानवो भक्त्या शृणुयाद्वापि भक्तितः।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः॥ ५६॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये गङ्गाद्वारमाहात्म्यसमाप्तिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिक-शततमोऽध्यायः।

रम्भा ने कहा—

हे इन्द्र ! मैं भी वहीं पर निवास करूँ, यह आज्ञा दीजिये । हे प्रभो ! अन्तिम समय में मुझ पर कृपा करो ।। ४८ ।।

इन्द्र ने कहा—

हे सुन्दर जांघों और सुन्दर मुख वाली रम्भे ! तुम नदी बन कर नित्य वहां रहो । जो तुम्हारे पुण्य जल में स्नान करेंगे, वे भी परम लोकों में जायेंगे ।। ४९ ।।

स्कन्द ने कहा—

स्वामी इन्द्र के इस वचन को सुनकर वह रम्भा प्रणाम करके शीघ्रता करती हुई परम पुण्य मायाक्षेत्र में श्रेष्ठ नदी के रूप में आ गई ।। ५० ।।

हे विप्र ! वह सब पापों का विनाश करने वाली पुण्यतम नदी हो गई । गंगा के पुण्यदायक संगम पर रम्भाकुण्ड है ।। ५१ ।।

पानी का आचमन करके मनुष्य यहां रम्भा के साथ आनन्द करता हूँ । वहीं पर कल्याण को प्रदान करने वाले रम्भेश्वर महादेव हैं । हे महाभाग ! इसके बाद कुब्जाम्रक तीर्थ है, ऐसा सुना गया है ।। ५२ ।।

जहां कि आम्र के वृक्ष के नीचे मुनियों ने कुबड़े (कुब्ज) के रूप में विष्णु को देखा था । इसलिये वह सब पापों को नष्ट करने वाला कुब्जाम्रक तीर्थ हुआ ।। ५३ ।।

इस क्षेत्र को देखकर मनुष्य परब्रह्म में लीन हो जाता है । हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तुमसे गंगाद्वार के वैभव का वृत्तान्त कह दिया है, जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं है ।। ५४ ।।

जो मनुष्य श्राद्ध में गंगाद्वार के वैभव का वृत्तान्त सुनता है, उसके पितर विष्णु के परम पद को प्राप्त करते हैं ।। ५५ ।।

जो मनुष्य भक्ति-भाव से इस वृत्तान्त को पढता है, अथवा सुनता भी है, वह उस परम स्थान को जाता है, जहाँ देव महेश्वर हैं ।। ५६ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य प्रकरण में गंगाद्वारमाहात्म्य समाप्ति वर्णन नाम का ११५ वाँ अध्याय पूरा हुआ ।

षोडशदशाधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जाम्ररूपेण तपस्यतो रैभ्यस्यानुग्रहार्थं विष्णोरागमनम्, किमपरेण वरेणात्रैव भगवता जनोपकाराय स्थेयमित्युक्ते ओमिति भगवत्स्वीकरणत्कुब्जाम्रकक्षेत्रनाम्ना प्रसिद्धिः किञ्चाहमत्र हृषीकाणि जित्वा स्थास्याम्यतोऽस्यैव हृषीकेशस्थलमित्याख्या

नारद उवाच—

कुब्जाम्रकं महातीर्थं वद विस्तरतो मम।
यथेदं च समुत्पन्नं यथा पुण्यं हि चाऽभवत्॥ १॥

केन केन तपस्तप्तं केऽवापुः परमां गतिम्।
कानि तीर्थानि चैवाऽत्र कियन्मानं सुपण्यदम्॥ २॥

एतत् सर्वं समासेन विस्तराद् वद मे प्रभो।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये भक्तवत्सलतां गतः॥ ३॥

शृणु नारद यत्नेन गुह्यं क्षेत्रं परं हरेः।
यस्य स्मरण मात्रेण शतजन्मसमुद्भवैः।
मुच्यते सर्वपापैश्च विष्णुलोकं च गच्छति॥ ४॥

सान्निध्यं यत्र विष्णोर्हि नित्यं तिष्ठति नारद।
पुरा सप्तदशे प्राप्ते युगे योगीन्द्र माधवः॥ ५॥

मायां स्वीयां प्रविष्टोऽपि दृष्ट्वा चैकार्णवीं महीम्।
मधुकैटभौ दुरात्मानो निजकर्णसमुद्भवौ॥ ६॥

साधयन्तौ च ब्रह्माणं त्रैलोक्यं क्षेप्तुमुद्यतौ।
हत्वा तौ हि दुराधर्षौ रचयित्वा च मेदिनीम्॥ ७॥

अध्याय ११६

कुब्जाम्र रूप से तपस्या करते हुये रैभ्य मुनि पर कृपा करने के लिये विष्णु का अवतरण, "अन्य वर से मुझे क्या लेना है, लोगों का उपकार करने के लिये आप यहीं रहें", रैभ्य मुनि के इस प्रकार कहने पर विष्णु द्वारा उस कथन को स्वीकार करना, इस क्षेत्र की कुब्जाम्रक नाम से प्रसिद्धि, मैं यहाँ इन्द्रियों (हृषीक) को जीतकर स्थित रहूँगा, अतः इस स्थान की हृषीकेश नाम से भी प्रसिद्धि

नारद ने कहा—

कुब्जाम्रक महातीर्थ के विषय में मुझको विस्तार से बताइये कि यह तीर्थ किस प्रकार उत्पन्न हुआ और कैसे पुण्यशाली हो गया ।। १ ।।

यहां किस-किसने तप किया था, किसने परम गति प्राप्त की थी, यहां कौन-कौन से तीर्थ हैं और पुण्य देने वाले इसका कितना माप है ।। २ ।।

हे प्रभो ! इस सबको सम्पूर्ण विस्तार के साथ बताइये । तीनों लोकों में तुम्हारे समान भक्तवत्सल नहीं है ।। ३ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे नारद ! विष्णु के इस परम गुप्त क्षेत्र के विषय में प्रयत्न से सुनो । इसके स्मरण मात्र से मनुष्य १०० जन्मों में उत्पन्न हुये सब पापों से मुक्त हो जाता है और विष्णु लोक को जाता है ।। ४ ।।

हे नारद ! यहां विष्णु का नित्य सान्निध्य रहता है । हे योगीन्द्र नारद ! पूर्व काल में सतरहवें युग के आने पर, विष्णु ने ····· ।। ५ ।।

अपनी माया में प्रविष्ट होकर भी पृथिवी को एकमात्र समुद्रमय देखा । दुष्ट मधु और कैटभ नाम के राक्षस, जो कि उनके अपने कान से उत्पन्न हुये थे ·· ।। ६ ।।

और जो ब्रह्मा को जीत रहे थे तथा तीनों लोकों को फैंकने के लिये उद्यत थे, उन दुराधर्षों का वध करके और पृथिवी की रचना करके ।। ७ ।।

मेदसा दुष्टयोश्चैव ब्रह्मा वचननोदितः।
जगाम शतशो विप्र क्षेत्राणि धरणीतले ॥ ८ ॥

द्रष्टुं भक्तान् स्वकीयांश्च गङ्गाद्वारमुपागमत्।
यत्र रैभ्यो महातेजा उग्रे तपसि संस्थितः ॥ ९ ॥

दशवर्षसहस्राणि तस्थावूद्ध्र्वकरो मुनिः।
ततो वर्षसहस्रं वै वायुभक्षो महातपाः ॥ १० ॥

शैवालचर्बणं पञ्चशतं वर्षाणि नारद।
इति वै तप्यमानस्य रैभ्यस्य मुनिपुङ्गव ॥ ११ ॥

आम्ररूपं समासाद्य कुब्जरूपस्य माधवः।
दर्शयामास भगवान् दर्शनं मुक्तिकारणम् ॥ १२ ॥

सोऽपि रैभ्यो महाभागस्तं दृष्ट्वा जगतां पतिम्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा पुनः पुनरुदारधीः।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं प्रसादार्थी महायशाः ॥ १३ ॥

रैभ्य उवाच—

नमः कमलनाभाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
सुनन्दाय सुभद्राय दुराधर्षाय ते नमः ॥ १४ ॥

हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्याक्षविमर्दिने।
नमो हिरण्यनाभाय हिरण्यचरुरूपिणे ॥ १५ ॥

हरिदश्वाय हरये हरिताङ्गाय हारिणे।
हयग्रीवाय हेयाय पराय हयबाहवे ॥ १६ ॥

अहङ्कारविमुक्ताय हेमसंस्थाय हारिणे।
नमो हरिणनेत्राय नमस्ते हरिबाहवे ॥ १७ ॥

नमो हिरण्यगर्भाय हृषीकेशाय ते नमः।
हविषे हविराशाय बर्हिपत्राय बर्हिषे ॥ १८ ॥

विप्र ! उन दोनों की मेदस् से पृथिवी की रचना करके, हे ब्रह्मा के वचनों से प्रेरित होकर वे पृथिवीतल पर सैंकड़ों क्षेत्रों में गये ॥ ८ ॥

अपने भक्तों को देखने के लिए वे गंगाद्वार आये। यहाँ महातेजस्वी रैभ्य उग्र तप कर रहे थे ॥ ९ ॥

वे मुनि दस हजार वर्षों तक हाथों को ऊपर उठाये रहे। तदनन्तर एक हजार वर्षों तक वायु का भक्षण करते रहे ॥ १० ॥

तदनन्तर पाँच सौ वर्षों तक शैवाल चबाते रहे। हे मुनिश्रेष्ठ ! रैभ्य जब इस प्रकार तपस्या कर रहे थे··· ॥ ११ ॥

आम्र वृक्ष के समीप जाकर विष्णु ने कुबड़े का रूप धारण कर लिया। तदनन्तर भगवान् ने मुक्ति देने वाले अपने रूप को दिखाया ॥ १२ ॥

वह महाभाग, उदार बुद्धि वाला, कृपा को चाहने वाला, महायशस्वी रैभ्य भी लोकों के स्वामी उस विष्णु को देखकर, घुटनों से पृथिवी का स्पर्श करके पुनः पुनः मधुर वाक्य को बोला ॥ १३ ॥

रैभ्य ने कहा—

कमल की नाभि वाले, विष्णु के लिये, प्रभविष्णु के लिए नमस्कार है। सुनन्द, सुभद्र और दुराधर्ष तुमको नमस्कार है ॥ १४ ॥

स्वर्णिम भुजाओं वाले, हिरण्याक्ष का वध करने वाले तुमको नमस्कार है। स्वर्णिम नाभि वाले हिरण्य-चरु रूप को धारण करने वाले तुमको नमस्कार है ॥ १५ ॥

हरे रंग के अश्व वाले, पापों का हरण करने वाले (हरि), हरे अंगों वाले, मन का हरण करने वाले, हयग्रीव अवतार धारण करने वाले (इस अवतार में विष्णु ने मधु-कैटभ का वध किया था) सबसे हेय और परे एवं हयबाहु विष्णु को नमस्कार है ॥ १६ ॥

अहंकार से रहित, स्वर्णिम पदार्थों में स्थित, सबका हरण करने वाले, हरिण के समान नेत्रों वाले विष्णु को नमस्कार है। हरिबाहु तुमको नमस्कार है ॥ १७ ॥

हिरण्यगर्भरूप आपको नमस्कार है। हृषीकेशरूप तुमको नमस्कार है। हवि रूप, हवि का भक्षण करने वाले, बर्हिपत्ररूप और अग्निरूप तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥

हेमाङ्गदाय बुद्धाय हिमाद्रिप्रकृतौकसे ।
हिमाद्रितनयाधीशहृदयस्थाय हुङ्कृते ।। १९ ।।

हेयाहेयविहीनाय सर्वाहिपतये नमः ।
हृषीकेशाश्रमस्थाय हीरकाक्षाय ते नमः ।। २० ।।

हस्तिमस्तकसंस्थाय बहुहस्ताय ते नमः ।
सहस्रहस्तरूपाय सहस्रकरमर्दिने ।। २१ ।।

सहस्ररश्मिरूपाय फणासाहस्ररूपिणे ।
सहसा कृतकार्याय सहसा भवितभाविने ।। २२ ।।

स्कन्द उवाच—

इति स्तुतो महाविष्णुस्तेन रैभ्येण धीमता ।
उवाच मधुरं वाक्यं विनयावनतं स्थितम् ।। २३ ।।

श्रीभगवानुवाच—

वरं वरय भद्रं ते तव यद्धृदि वर्तते ।
किं च वै कांक्षसे गावः किं वा राज्यमसंकटम् ।। २४ ।।

अथ चेच्छसि कन्यानां सहस्रं दिव्यमुत्तमम् ।
वररत्नसमृद्धानां हेमभाण्डविभूषितम् ।। २५ ।।

सर्वासां दिव्यरूपाणां भवन्त्यप्सरसां गणाः ।
ददामि ते वरं चैव रैभ्य यते विचिन्तितम् ।। २६ ।।

रैभ्य उवाच—

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यस्य त्वं दृष्टिगोचरः ।
न चाऽहं काञ्चनं गावो न स्त्रियो राज्यमेव च ।
नो कांक्षे जगतां नाथ त्वत्कृपां प्रार्थये विभो ।। २७ ।।

यदि प्रसन्नो भगवंल्लोकनाथ जनार्दन ।
तब चाऽत्र निवासं वै नित्यमिच्छामि माधव ।। २८ ।।

यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदत्र मम प्रभो ।
स्नानं तव मम स्थानं तव नामामृतं भुवि ।
भक्तिश्च स्याद् रमानाथ तव पादाम्बुजद्वये ।। २९ ।।

हेमाङ्गद, बुद्ध, हिमालय पर निवास करने वाले, पार्वती के पति शिव के हृदय में स्थित हुंकार करने वाले तुमको नमस्कार है ॥ १६ ॥

हेय-अहेय रहित, सब नागों के स्वामी तुमको नमस्कार है। हृषीकेश आश्रम में रहने वाले, हीरे के समान उज्ज्वल आँखों वाले तुमको नमस्कार है ॥ २० ॥

हाथी के मस्तक पर बैठने वाले, अनेक हाथों वाले तुमको नमस्कार है। हजार हाथों वाले और कार्तवीर्यार्जुन का मर्दन करने वाले आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥

सूर्यरूप, शेषनागरूप, सहसा कार्य पूरा करने वाले और सहसा भक्ति का समादर करने वाले आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार बुद्धिमान् रैभ्य से स्तुति किये गये महाविष्णु ने विनय से अवनत उससे मधुर वाक्य कहा ॥ २३ ॥

श्री भगवान् ने कहा—

जो तुम्हारे हृदय में है, ऐसे कल्याणकारी वर को मांग लो। क्या तुम गौओं को चाहते हो, अथवा निष्कंटक राज्य की इच्छा करते हो ? ॥ २४ ॥

क्या तुम हजारों दिव्य उत्तम कन्याओं को चाहते हो और उत्तम रत्नों से भरे हुये सुशोभित स्वर्णपात्र को चाहते हो ? ॥ २५ ॥

अप्सरायें सब दिव्यरूप होती हैं। हे रैभ्य। जो कुछ तुम विचार करते हो, वह मैं तुम को प्रदान करता हूँ ॥ २६ ॥

रैभ्य ने कहा—

मैं धन्य हो गया हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ, जो तुम मुझको दृष्टिगोचर हो गये हो। मैं स्वर्ण को, गौओं को, स्त्रियों को और राज्य को नहीं चाहता । हे लोकों के नाथ, विभो ! मैं तो आपकी कृपा की प्रार्थना करता हूँ ॥ २७ ॥

हे भगवन्, लोकों के नाथ, जनार्दन, माधव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मैं यहां आपके नित्य निवास को चाहता हूँ ॥ २८ ॥

हे प्रभोः ! जब तक ये लोक स्थित रहेंगे, तब तक तुम्हारी और मेरी यहां स्थिति रहे, मैं यहां स्नान करता रहूँ और पृथिवी पर तुम्हारा नाम रूपी अमृत विद्यमान रहे। हे रमानाथ ! तुम्हारे दोनों चरण-कमलों में मेरी भक्ति बनी रहे ॥ २६ ॥

स्कन्द उवाच—

रैभ्यस्यैवं वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः ।
वाढमित्येव विप्रेन्द्र सर्वमेतद् भविष्यति ।। ३० ।।

यस्मादाम्रं समाश्रित्य कुब्जरूपेण वै त्वया ।
दृष्टोऽस्मि रैभ्य तस्माद् वै कुब्जाम्रकमिति स्फुटम् ।। ३१ ।।

तीर्थमेतन्महापुण्यं करिष्यन्त्यविधानतः ।
अस्मिन् क्षेत्रेऽपि ये मर्त्याः स्नानं दानं जपादिकम् ।
करिष्यन्ति महाभाग तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ।। ३२ ।।

करिष्यन्ति निवासं च तीर्थेऽस्मिन् प्रवरे नराः ।
प्राप्स्यन्ति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।। ३३ ।।

पापिनश्चापि विप्रेन्द्र मृता विष्णुमवाप्नुयुः ।
पितरस्तस्य हृष्यन्ति यस्यास्मिन् क्षेत्रके स्थितिः ।। ३४ ।।

येऽपि बिन्दुप्रमाणं वै दद्युर्जलमनुत्तमम् ।
पितृभ्यस्तारितास्तेन संसारात् पितरो मने ।। ३५ ।।

परमाणु प्रमाणं च ये च दद्युर्हिरण्यकम् ।
दत्तं तेन भवेद्विप्र सहस्रं परिसंख्यया ।। ३६ ।।

ये च दद्युर्महाभाग वासोगोभूषणादि च ।
तेन दत्तं भवेदेव सर्वं वस्तु महामुने ।। ३७ ।।

कुब्जाम्रके महातीर्थे वसामि रमया सह ।
हृषीकाणि पुरा जित्वा दर्शः सम्प्रार्थितस्त्वया ।। ३८ ।।

यद्वाऽहं तु हृषीकेशो भवाम्यत्र समाश्रितः ।
ततोऽस्याऽपरकं नाम हृषीकेशाश्रितं स्थलम् ।। ३९ ।।

त्रेतायुगे दाशरथिर्नाम्ना भरतसंज्ञितः ।
तुर्यो भागो मदीयो वै भविष्यति सहाग्रजः ।। ४० ।।

शंकरः शंकरः साक्षात् पुनर्मां स्थापयिष्यति ।
कलौ भरतनामानं वदिष्यन्ति महीतले ।। ४१ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे विप्रेन्द्र ! रैभ्य के इस वचन को सुनकर भगवान् भूतभावन विष्णु ने हां कहा कि सब ऐसा ही होगा ।। ३० ।।

हे रैम्य ! क्योंकि आम्र वृक्ष का आश्रय लेकर तुमने मुझको कुब्ज के रूप में देखा है, तो इस स्थान का नाम स्फुट रूप से कुब्जाम्रक होगा ।। ३१ ।।

यह तीर्थ महापुण्यशाली होगा । इस क्षेत्र में जो मनुष्य शास्त्रों के विधान के अनुसार स्नान, दान, जप आदि करेंगे, हे महाभाग ! वह सब करोड़ गुना हो जायेगा ।। ३२ ।।

जो श्रेष्ठ मनुष्य इस तीर्थ में निवास करेंगे, वे परम स्थान को प्राप्त करेंगे, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होगी ।। ३३ ।।

हे विप्रेन्द्र नारद ! यहां पर मरने से पापी भी विष्णु को प्राप्त करेंगे । जिसकी इस क्षेत्र में स्थिति होगी, उसके पितर प्रसन्न होंगे ।। ३४ ।।

हे मुने ! जो भी इस क्षेत्र में पितरों के निमित्त से विन्दुमात्र भी उत्तम जल को देंगे, वे संसार से पितरों को तरा देंगे ।। ३५ ।।

जो मनुष्य यहां परमाणु के तुल्य भी स्वर्ण का दान करेंगे, हे विप्र ! मानो इन्होंने सहस्र संख्या में स्वर्ण का दान कर दिया है ।। ३६ ।।

हे महाभाग महामुने ! जिन्होंने यहां वस्त्र, गौ, भूषण आदि का दान किया है, उन्होंने मानों सब वस्तुओं का दान कर दिया है ।। ३७ ।।

तुमने इन्द्रियों को जीतकर मेरे दर्शन की प्रार्थना की है, अतः मैं इस कुब्जाम्रक महातीर्थ में सदा लक्ष्मी के साथ रहूँगा ।। ३८ ।।

क्योंकि मैं हृषीकेश नाम वाला सदा यहां स्थित रहूँगा, अतः इस क्षेत्र का दूसरा नाम हृषीकेश से आश्रित स्थल (हृषीकेषाश्रम) होगा ।। ३९ ।।

त्रेता युग में भरत नाम के दशरथपुत्र होंगे । वे मेरे चतुर्थ अश होंगे । वे यहां अपने बड़े भाई राम के साथ रहेंगे ।। ४० ।।

साक्षात् शंकराचार्य के रूप में शंकर मेरी पुन : स्थापना करेंगे । कलियुग में इस पृथिवी पर भरत नाम से लोग मुझको कहेंगे ।। ४१ ।।

कृते वाराहरूपेण त्रेतायां कृतवीर्यजम् ।
द्वापरे वामनं देवं कलौ भरतमेव च ।
नमस्यन्ति महाभाग भवेयुर्मुक्तिभागिनः ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णू रैभ्यं नाम तपोनिधिम् ।
तत्राऽन्तर्द्धानमापन्नः पश्यतस्तस्य नारद ॥ ४३ ॥

इति ते कथितोत्पत्तिः क्षेत्रकुब्जाम्रकस्य हि ।
श्रुत्वेमां सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीकुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं
नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जाम्रकतीर्थसीमानिरूपणं मायाजिज्ञासवे सोमशर्मणे भगवता नाम विष्णुना विविधरूपेण मायावर्णनम्

नारद उवाच—

कियन्मानं परं क्षेत्रं कानि तीर्थानि तत्र वै ।
किं तत्र पुण्यं लभते स्नानाद् दानात् तथाऽर्चनात् ॥ १ ॥

उत्पत्तिं चैव माहात्म्यं सर्वं विस्तरतो वद ।
केन केन फलं प्राप्तमत्र क्षेत्रे शिवात्मज ॥ २ ॥

के के परां गतिं प्राप्ता हृषीकेषाश्रयात् तथा ।
सर्वं विस्तरतो ब्रूहि श्रोष्यमाणाय मे प्रभो ॥ ३ ॥

स्कन्द उवाच—

साधु पृष्टं त्वया विप्र कुब्जाम्रकसुतीर्थकम् ।
सुन्देश्वरीं समारभ्य यावद्धैमवती नदी ।
तावत्कुब्जाम्रकं क्षेत्रं पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ ४ ॥

हे महाभाग ! जो व्यक्ति सत्ययुग में वराह के रूप में, त्रेता युग में कार्तवीर्य को जीतने वाले परशुराम के रूप में, द्वापर युग में वामन के रूप में और कलियुग में भरत के रूप में मुझ को नमस्कार करेंगे, वे मुक्ति के भाजन होंगे ॥ ४२ ॥

हे नारद ! इस प्रकार रैभ्य नामक तपस्वी से कह कर भगवान् विष्णु उसके देखते-देखते ही वहां अन्तर्धान हो गये ॥ ४३ ॥

इस प्रकार मैंते तुम से कुब्जाम्रक क्षेत्र की उत्पत्ति का वृत्तान्त कह दिया है। इसको सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तार्गत केदारखण्ड में मायापुरी-कुब्जाम्रक-माहात्म्य वर्णन नाम का ११६ वां अध्याय पूरा हुआ।

अध्याय ११७

कुब्जाम्रक तीर्थ की सीमाओं का निरूपण, माया को जानने की इच्छा वाले सोमशर्मा के लिये भगवान् विष्णु द्वारा विविध रूप से माया का वर्णन

नारद ने कहा—

वह क्षेत्र परिमाण में कितना है, वहां कौन से तीर्थ हैं और वहां स्नान-दान-अर्चना से कौन सा पुण्य प्राप्त होता है ? ॥ १ ॥

इस सारी बात को, उत्पत्ति को और माहात्म्य को मुझ से विस्तार से कहिये। हे शिव के पुत्र ? इस क्षेत्र में किस-किसने फल प्राप्त किया था ? ॥ २ ॥

हे प्रभो ! यहां हृषीकेश विष्णु का आश्रय लेकर किस-किसने परम गति को प्राप्त किया था। मुझ श्रोता से आप सारा वृत्तान्त विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे विप्र ! इस कुब्जाम्रक उत्तम तीर्थ के विषय में तुमने ठीक पूछा है। सुन्देश्वरी से लेकर जहां तक हैमवती नदी है, वहां तक कुब्जाम्रक क्षेत्र है। यह पापियों को भी मुक्ति देने वाला है ॥ ४ ॥

करमाने स्थले तत्र तीर्थानां पञ्चकं ध्रुवम् ।
तत्राऽपि विप्र श्रेष्ठानि स्वर्गदान्यपि दर्शनात् ॥ ५ ॥

शृणु तीर्थानि पुण्यानि मुक्तिदानि परात्मनाम् ।
मायातीर्थं परं ख्यातं यत्र दृष्टो जनार्दनः ॥ ६ ॥

गङ्गा च यमुना चाऽपि द्वयं यत्र समास्थितम् ।
तस्मिन् कृतोदको विप्र तारयेत् कुलसप्तकम् ॥ ७ ॥

सकृत् स्नातोऽपि भवनं कुबेरस्य लभेन्मुने ।
श्रृणूत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मायाक्षेत्रस्य नारद ॥ ८ ॥

सर्वपापहरां दिव्यां मोक्षस्वर्गानुदर्शिनीम् ।
पुरा कृतयुगे विप्रः सोमशर्मेति विश्रुतः ॥ ९ ॥

तपस्वी निरपेक्षश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
तपस्तताप परमं जितात्मा पापवर्जितः ॥ १० ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपाश्चैव वर्षायां वृष्टिसाहकः ।
हेमन्ते जलधाराभिः सिच्यमानः समन्ततः ॥ ११ ॥

इति वर्षसहस्रं वै ततोऽभूदूर्ध्वबाहुकः ।
एकपादेन तस्थौ च शिलायां नियतासनः ॥ १२ ॥

सहस्रद्वितयं तस्य ययावेवं महामते ।
वायुभक्षः सहस्रं च सहस्रं तूर्ध्वपादकः ॥ १३ ॥
एवं वै तप्यमानस्य प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

साधु साधु महाभाग सोमशर्मन् द्विजोत्तम ।
वरं वरय भद्रं ते यदस्त्यभिमतं तव ॥ १५ ॥

प्रसन्नोऽस्मि न सन्देहस्तपसाऽनेन सुव्रत ।
दुर्लभं तव विप्रेन्द्र नास्ति त्रैलोक्यमण्डले ॥ १६ ॥

हे विप्र ! वहां पर भी उस हस्तप्रमाण स्थान पर निश्चय से पांच तीर्थ हैं। वे दर्शन करने से ही स्वर्ग प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ आत्माओं को मुक्ति देने वाले पुण्य तीर्थों को सुनो। उत्तम मायातीर्थ है, जहाँ जनार्दन विष्णु के दर्शन हुये थे ॥ ६ ॥

हे विप्र ! जहां कि गंगा और यमुना दोनों स्थित हैं, वहाँ जल-तर्पण करने वाला मनुष्य सात कुल को तरा देता है ॥ ७ ॥

हे मुने। वहाँ एक वार स्नान करने पर ही मनुष्य कुबेर के लोक को प्राप्त करता है। मैं माया क्षेत्र की उत्पत्ति का वर्णन करूंगा, हे नारद ! सुनो ॥ ८ ॥

यह कथा सब पापों को हरने वाली, दिव्य और मोक्ष-स्वर्ग को दिखलाने वाली है। पूर्व काल में सत्य युग में सोमशर्मा नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण था ॥ ९ ॥

वह तपस्वी, निरपेक्ष, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, जितात्मा और पापरहित ब्राह्मण परम तपस्या करता था ॥ १० ॥

ग्रीष्म ऋतु में वह पंचाग्नितप करता था, वर्षा ऋतु में वृष्टि को सहन करता था, हेमन्त ऋतु में अपने को चारों ओर से जल-धाराओं से सींचता था ॥ ११ ॥

इसके बाद वह एक हजार वर्षों तक भुजाओं को ऊपर किये रहा। तदनन्तर आसन को स्थिर करके शिला पर एक पैर से खड़ा रहा ॥ १२ ॥

हे महामते ! इस प्रकार उसको दो हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर वह एक हजार वर्ष तक केवल वायु का भोजन करता रहा और तदनन्तर एक हजार वर्ष तक पैर ऊपर करके खड़ा रहा ॥ १३ ॥

इस प्रकार उसके तप करने पर विष्णु प्रसन्न हो गये ॥ १४ ॥

श्री भगवान् ने कहा—

हे महाभाग, द्विजोत्तम, सोमशर्मन् ! साधु, साधु जो तुमको अभिमत हो, ऐसे कल्याणकारी वर को मांग लो ॥ १५ ॥

हे सुव्रत ! तुम्हारी इस तपस्या से निस्सन्देह प्रसन्न हूँ। हे विप्रेन्द्र ! तीनों लोकों में तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ १६ ॥

सोमशर्मोवाच—

यदिच्छसि वरं दातुं प्रसन्नो यदि वै मयि ।
जानीयां तव मायां हि मुग्धं त्रैलोक्यकं यया ।। १७ ।।

श्रीभगवानुवाच—

मम मायां महाभाग न जानन्ति दिवौकसः ।
ब्रह्माद्या ये पुरा सृष्टाः सा माया मम कीर्तिता ।। १८ ।।

वर्षन्ति च महामेघाः सा माया मम कीर्तिता ।
यया निर्जलतां यान्ति सा माया मम कीर्तिता ।। १९ ।।

चन्द्रो यत् क्षीयते पक्षे पक्षे पूर्णत्वमेति च ।
मायैषा मम विप्रेन्द्र ग्रहनक्षत्रतारकाः ।। २० ।।

हेमन्ततौं च सलिलं कूपे कोष्णं विभाति च ।
शीतलं च तथा ग्रीष्मे सा माया मम कीर्तिता ।। २१ ।।

उदेति सविता प्राच्यां प्रतीच्यामस्तमेति च ।। २२ ।।

शोणितं च तथा रेतः संयुक्तं स्यान्महामते ।
गर्भे चोत्पद्यते जन्तुस्तन्माया प्रबला मम ।। २३ ।।

जठराग्नौ प्रदीप्ते हि गर्भाशयगतो मुने ।
मातृभुक्तानुसारेण प्रयाति प्राणकूटकः ।। २४ ।।

पूर्वजन्मसहस्राणि पापपुण्ये कृताकृते ।
विजानात्यवशो जन्तुर्गर्भे मायाबलं मम ।। २५ ।।

जानाति सुखदुःखे च तथाऽऽत्मानं च विन्दति ।
अङ्गुल्यश्चरणौ चैव भुजौ शीर्षं कटिस्तथा ।। २६ ।।

पृष्ठं तथोदरं चैव दन्तौष्ठपुटनासिकाः ।
कर्णादिचक्षुरादीनि सर्वं मायाकृतं मम ।। २७ ।।

वधिरस्यापि व्यापारोऽन्धस्यापि हृत्सुनेत्रता ।
मूकस्य चेष्टनं ज्ञान सर्वं मायाकृतं मम ।। २८ ।।

सोमशर्मा ने कहा -

हे विष्णो ! यदि तुम वर देना चाहते हो और मुझ पर प्रसन्न हो, तो मैं तुम्हारी उस माया को जानना चाहता हूँ, जिसने तीनों लोकों को मोहित किया है ।। १७ ।।

श्री भगवान् ने कहा—

हे महाभाग ! मेरी माया को देवता भी नहीं जानते । पूर्व समय में ब्रह्मा आदि ने जो सृष्टि की थी, वही मेरी माया कही गई है ।। १८ ।।

जो महान् मेघ जल बरसाते हैं, वही मेरी माया कही गई है । जिससे मेघ जलहीन हो जाते हैं, वही मेरी माया कही गई है ।। १९ ।।

जो चन्द्रमा एक पक्ष में क्षीण हो जाता है और दूसरे पक्ष में पूर्ण हो हो जाता है वह मेरी माया है । हे विप्रेन्द्र ! ग्रह, नक्षत्र और तारे मेरी माया हैं ।। २० ।।

हेमन्त ऋतु में कुयें का जल कुछ गरम प्रतीत होता है और वही ग्रीष्म ऋतु में शीतल प्रतीत होता है, वह मेरी माया है ।। २१ ।।

सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता है, यह मेरी माया है ।। २२ ।।

हे महामते ! जब शोणित (रजस्) का वीर्य के साथ संयोग होता है, तो गर्भ में जन्तु उत्पन्न होता है । यह मेरी प्रबल माया है ।। २३ ।।

हे मुने ! गर्भाशय में स्थित जन्तु जठराग्नि के प्रदीप्त होने पर माता के भोजन के अनुसार प्राणों को धारण करता है, यह मेरी माया है ।। २४ ।।

गर्भ में स्थित अवश जन्तु पूर्व जन्म में किये गये हजारों पाप-पुण्यों को और कर्तव्य-अकर्तव्य को मेरी माया के सामर्थ्य से जानता है ।। २५ ।।

मेरी माया से ही वह सुख-दुःख को, अपनी आत्मा को, अंगुलियों को, चरणों को, भुजाओं को, सिर को और कटि को पहचानता है ।। २६ ।।

वह पीठ को, उदर को, दान्तों को, होठों को और नासिका को पहचानता है । कान, चक्षु आदि इन्द्रियां सब मेरी माया से बनती हैं ।। २७ ।।

बहरे को सुनाई देना, अन्धे के उत्तम नेत्र होना, गूंगों को चेष्टाओं का ज्ञान यह सब मेरी माया से होता है ।। २८ ।।

मूढत्वं संसृतौ चैव जातमात्रे महामते।
धर्माधर्मपरिज्ञानं विस्मृतिश्च तथा मम ।। २९ ।।

मायया मे महाभाग योनियन्त्राद् बहिर्गतिः।
कृमिर्व्रणादिव प्राण्यपवृत्तोऽपानवायुभिः ।। ३० ।।

निष्क्रम्य मम मायाया वशमाप्नोति सत्वरम्।
जरायुजाश्चाण्डजाश्च स्वेदजा द्विजपुङ्गव।
उद्भिजाः प्राणिनश्चैव जायन्ते निजरूपतः ।। ३१ ।।

श्वेतकृष्णादयो भावा मायया मम देहिनाम्।
शब्दः स्पर्शस्तथा गन्धो रूपं चापि तथा रसः।
मायया मम भाव्यन्ते लीयन्ते च द्विजेश्वर ।। ३२ ।।

समुद्राश्च तथा दिव्यभौमैर्जलैरलङ्कृताः।
पूर्यमाणा न वर्द्धन्ते मायया मम सर्वतः ।। ३३ ।।

वर्षासु बहुतोयाश्च सरितः पल्वलानि च।
सरांसि वृद्धिमायान्ति शुष्यन्ति तपनेऽखिलाः ।। ३४ ।।

एष मायाप्रभावो मे मेघा गृह्णन्ति यज्जलम्।
लवणं लवणाब्धेश्च वर्षन्ति मधुरं पुनः ।। ३५ ।।

एष मायाप्रभावो मे हिमवच्छिखरादधः।
मन्दाकिनी समाख्याता गंगा जाता ततः परम् ।। ३६ ।।

वन्यौषधयो वीर्यरूपा जीवन्ति प्राणिनो द्विजाः।
पुनस्त एव चौषधयो नाशमायान्ति सत्वरम् ।। ३७ ।।

आयुःक्षयपरिज्ञानं सर्वं वीर्यं हराम्यहम्।
जायमानोऽल्पतनुको यौवने च तथा महान् ।। ३८ ।।

अवस्थायां तृतीयायां जराव्याप्तः श्लथस्तथा।
पश्चादिन्द्रियनाशश्च सर्वं मायाबलं मम ।। ३९ ।।

अणुमात्रेऽश्वत्थवीजे वापितेऽङ्कुरसम्भवः।
पुनः पत्रादिकोत्पत्तिस्तथा शाखाः प्रशाखिकाः ।। ४० ।।

हे महामते नारद ! इस संसार में पैदा होते ही मूढता, धर्म-अधर्म का परिचय और विस्मृति सब मेरी माया से होता है ।। २६ ।।

हे महाभाग ! मेरी माया से ही, जिस प्रकार व्रण से कृमि बाहर आता है ओर प्राणी अपान वायु छोड़ता है, उसी प्रकार प्राणी योनि रूप यन्त्र से बाहर आता है ।। ३० ।।

वह योनि से बाहर निकल कर शीघ्र ही मेरी माया के वश में हो जाता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज प्राणी अपने रूप से ही होते हैं ।। ३१ ।।

शरीर धारियों का गोरा-काला होना मेरी माया से होते हैं। हे द्विजेश्वर ! शब्द, स्पर्श, गन्ध, रूप और रस मेरी माया से उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं ।। ३२ ।।

दिव्य तथा भूमि के जलों से सब ओर से भरे हुये अलंकृत समुद्र मेरी माया से ही अधिक नहीं बढ़ते ।। ३३ ।।

सारी नदियाँ, पल्वल और तालाब वर्षा ऋतु में बहुत जल से भर कर बढ़ जाते हैं और ग्रीष्म ऋतु में सूख जाते हैं ।। ३४ ।।

यह मेरी माया का ही प्रभाव है कि मेघ खारी समुद्र से नमकीन जल को ग्रहण करते हैं और पुनः मधुर जल बरसाते हैं ।। ३५ ।।

यह मेरी माया का ही प्रभाव है, जो हिमालय के शिखर से मन्दाकिनी नीचे आती है। तदनन्तर इसका श्रेष्ठ नाम गंगा हो जाता है ।। ३६ ।।

वीर्यशाली वन्य ओषधियाँ, प्राणी और पक्षी मेरी माया से जीवित रहते हैं। पुनः वे ही ओषधियां शीघ्र नष्ट हो जाती हैं ।। ३७ ।।

आयु, क्षय, परिज्ञान और वीर्य मैं सबका हरण करता हूँ। मनुष्य अल्प शरीर का उत्पन्न होता है और वह युवावस्था में महान् हो जाता है ।। ३८ ।।

तृतीय अवस्था में वह वृद्ध होकर शिथिल हो जाता है। पीछे उसकी इन्द्रियों का नाश हो जाता है। यह सारा मेरी माया का बल है ।। ३६ ।।

अणु मात्र अश्वत्थ का बीज बोने पर उससे अंकुर उत्पन्न होता है। पुनः उससे पत्ते उत्पन्न होते हैं। तदनन्तर शाखायें और प्रशाखायें होती हैं ।। ४० ।।

जायन्ते मायया विप्र पुनर्बीजं तथाङ्कुरम् ।
यो यो विभूतिमाञ्जन्तुर्दरिद्रश्च तपोधन ।
मायामेतामहं कृत्वा तोषयामि दिवौकसः ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा सृजति लोकं हि चेति सर्वे वदन्ति हि ।
मायामयं वपुः कृत्वा ह्यहमेव सृजामि वै ॥ ४२ ॥

लोका वदन्ति शक्रोऽयं देवान् पालयति द्विज ।
अहमेवेन्द्रवपुषा पालयामि दिवौकसः ॥ ४३ ॥

मायया यमरूपेण नाश्यते च मया जगत् ।
कौबेरं रूपमास्थाय धनानां रक्षिता ह्यहम् ॥ ४४ ॥

इन्द्रमायां समाश्रित्य वृत्रो मे नाशितः पुरा ।
रुद्रमायां समाश्रित्य त्रिपुरोऽपि विनाशितः ॥ ४५ ॥

वायुमायां समाश्रित्य प्राणिनां देहसंस्थितः ।
जाठराग्निरहं भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
चतुर्विधं पचाम्यन्नं मायैषा मम कीर्तिता ॥ ४६ ॥

वाडवं रूपमास्थाय सामुद्रं जलमन्वहम् ।
पिबामि मायया विप्र समुद्रे कृतसंश्रयः ॥ ४७ ॥

सामुद्रं रूपमास्थाय संधरामि जगद् बहिः ।
लोकानाश्रित्य भूरादीञ्जगद्रूपोऽस्मि मायया ॥ ४८ ॥

सौरीं मायां समाश्रित्य संतरामि जगत् त्रयम् ।
मायां मेघमयीं कृत्वा संधरामि जलं तथा ॥ ४९ ॥

राजरूपं समाश्रित्य पालयामि स्वमायया ॥ ५० ॥

अहमेव पुरा मत्स्यो वेदोद्धारं तथाऽकरम् ।
कौर्मीं मायां समाश्रित्य धृतो वै मन्दराचलः ॥ ५१ ॥

वाराहरूपमाश्रित्य धरोद्धारः कृतो मया ।
नारसिंहं वपुर्धृत्वा हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ५२ ॥

हे विप्र ! मेरी माया से ही बीज और अंकुर उत्पन्न होते हैं। हे तपस्विन् ! जो जन्तु समृद्धिशाली हैं और जो जन्तु दरिद्र हैं, वह मेरी माया से है। मैं इस माया की रचना करके देवताओं को सन्तुष्ट करता हूँ ।। ४१ ।।

सब लोग यह कहते हैं कि ब्रह्मा लोक की सृष्टि करता है। परन्तु निश्चय से मैं ही मायामय शरीर की रचना करके लोक की सृष्टि करता हूँ ।। ४२ ।।

हे द्विज ! लोग कहते हैं कि यह इन्द्र देवताओं का पालन करता है। परन्तु मैं ही इन्द्र का शरीर धारण करके देवताओं का पालन करता हूँ ।। ४३ ।।

माया द्वारा यम का रूप धारण करके मैं जगत् का विनाश करत हूँ। कुबेर का रूप धारण करके धनों का रक्षक भी मैं ही हूँ ।। ४४ ।।

मैंने इन्द्र रूप में माया का आश्रय लेकर पूर्व काल में वृत्र का बध किया था। रुद्र के रूप में माया का आश्रय लेकर त्रिपुर का विनाश किया था ।। ४५ ।।

माया का आश्रय लेकर मैं वायु रूप में प्राणियों के शरीर में स्थित हूँ। जाठराग्नि होकर मैं प्राणियों के शरीर में आश्रित हूँ। मैं चतुर्विध भोजन (भक्ष्य, लेह्य, चोष्य, पेय) का पाचन करता हूँ, यह मेरी माया ही है ।। ४६ ।।

हे विप्र ! माया द्वारा समुद्र में आश्रय लेकर वाडवाग्नि का रूप धारण करके मैं प्रतिदिन समुद्र के जल का पान करता हूँ ।। ४७ ।।

समुद्र का रूप धारण करके मैं बाह्य जगत् को धारण करता हूँ। माया से भूः आदि लोकों का आश्रय लेकर मैं जगत् का रूप हूँ ।। ४८ ।।

सूर्य रूप में माया का आश्रय लेकर मैं तीनों लोकों को तपाता हूँ। मेघमयी माया बना कर जल को धारण करता हूँ ।। ४९ ।।

अपनी माया से राजा का रूप धारण करके प्रजा की रक्षा करता हूँ ।। ५० ।।

मैंने ही पहले मत्स्य अवतार लेकर वेदों का उद्धार किया था। माया द्वारा कूर्म अवतार लेकर मन्दराचल को धारण किया था ।। ५१ ।।

वराह रूप को धारण करके मैंने पृथिवी का उद्धार किया था। नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का बध किया था ।। ५२ ।।

वामनं रूपमास्थाय बलिर्नीतो रसातले।
भूत्वा परशुरामोऽहं क्षत्रस्यान्तकरोऽभवम् ।। ५३ ।।

भूमेर्भारापनोदश्च रामरूपेण वै कृतः।
कृष्णमायां समाश्रित्य भूमिभारो हृतो मया ।। ५४ ।।

योगमायां समाश्रित्य बदरीविपिने स्थितः।
कल्किर्भूत्वा म्लेच्छजातीन्नाशयिष्ये स्वमायया ।। ५५ ।।

यत् किञ्चिद् दृश्यते विप्र जगत् स्थावरजङ्गमम्।
मायैषा मम विप्रेन्द्र सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ।। ५६ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवता वार्यमाणोऽपि सोमशर्मा तपसामन्ते भगवन्तं मायादर्शनकयाचत। स्नानार्थं नदीजले प्रविष्टस्य तस्य प्राणान् कच्छपो जहार लिङ्गशरीरेण च सोमशर्मणा विविधा याम्यो यातना दृष्टाः स्वर्गादिकञ्च पुनस्तस्य गर्भवासः कन्यारूपेणोत्पद्यानेकमायादर्शनान्ते तस्मै भगवतःप्रसादः

सोमशर्मोवाच—

प्रोक्ता माया त्वया देव जगदेतच्चराचरम्।
कथं परमहं जाने तव मायां दुरत्ययाम् ।। १ ।।

स्वकर्मणा ह्ययं लोकः कर्मसु वै [1]प्रवर्त्तते।
त्वन्माया प्रेरितो जन्तुः करोतीति कथं नरः ।। २ ।।

---

१. प्रवर्तये।

वामन का रूप धारण करके बलि को रसातल में ले गया था। परशुराम का अवतार लेकर क्षत्रियों का अन्त किया था ॥ ५३ ॥

भूमि के भार को दूर करने के लिये मैंने राम का रूप धारण किया था। माया से कृष्ण का रूप धारण करके भूमि के भार को दूर किया था ॥ ५४ ॥

योगमाया का आश्रय लेकर मैं बदरीवन में स्थित हूँ। अपनी माया से कल्कि का अवतार लेकर म्लेच्छों का विनाश करूंगा ॥ ५५ ॥

हे विप्र ! जो कुछ भी यह स्थावर-जंगम जगत् दिखाई देता है, हे विप्रेन्द्र ! यह सब मेरी माया ही है, यह बात मैंने कह दी है ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायातीर्थ माहात्म्य नाम का ११७ वां अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय ११८

भगवान् द्वारा रोके जाने पर भी तपस्या के अन्त में सोमशर्मा द्वारा भगवान् से माया के दर्शन की याचना, स्नान के लिये नदी के जल में प्रविष्ट होकर उसके प्राणों का कच्छप द्वारा अपहरण, लिङ्ग शरीर के माध्यम से सोमशर्मा द्वारा विविध नारकीय यातनाओं और स्वर्ग आदि का दर्शन, पुनः गर्भ में निवास और कन्या के रूप में उत्पत्ति, इस प्रकार अनेक मायाओं का दर्शन करने के अनन्तर उस पर भगवान् की कृपा

सोमशर्मा ने कहा--

हे देव ! तुमने माया का वर्णन कर दिया है, जो कि यह चर-अचर जगत् तुम्हारी माया ही है। परन्तु तुम्हारी इस दुर्ज्ञेय माया को मैं कैसे जानूंगा ? ॥ १ ॥

यह लोक अपने कर्म से ही कर्मों में प्रवृत्त होता है। परन्तु तुम्हारी माया से प्रेरित होकर मनुष्य कैसे कार्य करता है ? ॥ २ ॥

तस्माद्यथा महाविष्णो तव मायां दुरत्ययाम् ।
जानीयाममितां देव वृणे वरमिमं ध्रुवम् ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच—

मम माया महाभाग दुर्गम्या च सुरैरपि ।
अन्यं वरं वृणुष्व त्वं धनं रत्नं वसुन्धराम् ॥ ४ ॥

अथवा स्वर्गगमनं रम्भासेवनमेव च ।
स्वच्छन्दगमनं चैव भूरादिषु महामते ॥ ५ ॥

अथ चेच्छसि त्रैलोक्ये राज्यं निहतकंटकम् ।
अथ चेच्छसि पुत्रादींस्तथा वाचां प्रचारणम् ॥ ६ ॥

अवध्यत्वं सुरेन्द्राद्यैरजेयत्वं सुरासुरैः ।
अमरत्वं तथान्यद्वै मनईहितमेव च ॥ ७ ॥

ददामि सर्वं प्रवरं विना मायां तपोनिधे ।
मायां द्रष्टुं न योग्योऽसि तपसां निधिरेव हि ॥ ८ ॥

सोमशर्मोवाच—

न कांक्षे भगवन्विष्णो वरमन्यत्तथा महत् ।
मायां दर्शय मे स्वीयां यदि तप्तं मया तपः ॥ ९ ॥

स्कन्द उवाच—

वारंवारं महाभाग मुनिना सोमशर्मणा ।
याचितोऽपि रमाकान्तो न ददौ तद्वरं द्विज ॥ १० ॥

एवं तेन तपस्तप्तं त्रिवारं विष्णुदर्शनम् ।
वार्यमाणोऽपि हरिणा पुनर्मायामयाचत ॥ ११ ॥

भक्तानुकम्पी भगवानुवाच च शुभां गिरम् ।
मायां मे सोमशर्मंस्त्वं मदीयां परिवेत्स्यसे ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुस्तास्मिन्क्षेत्रे शुभावहे ।
सोमशर्माऽपि गंगायां ययौ स्नातुं द्विजोत्तम ॥ १३ ॥

हे महाविष्णो देव ! इसलिये जिससे कि मैं तुम्हारी दुर्ज्ञेय असीम माया का ज्ञान प्राप्त कर लूँ, मैं निश्चय से वही वर मांगता हूँ ।। ३ ।।

श्री भगवान् ने कहा—

हे महाभाग ! मेरी माया तो देवताओं के लिये भी दुर्गम है । तुम धन, रत्न पृथिवी और अन्य वर मांग लो ।। ४ ।।

हे महामते ! अथवा स्वर्गगमन, रम्भा आदि अप्सराओं का सेवन और 'भूः' आदि लोकों में स्वच्छन्द गमन का वर मांग लो ।। ५ ।।

यदि तुम तीनों लोकों का निष्कण्टक राज्य चाहते हो, और पुत्र आदि को चाहते हो और वाणियों के प्रचार को चाहते हो ·· ।। ६ ।।

इन्द्र आदि देवताओं से अवध्य होना चाहते हो, असुरों से अजेय होना चाहते हो, अमर होना चाहते हो तथा अन्य भी जो कुछ तुम्हारे मन की इच्छा हो ।। ७ ।।

हे तपोनिधे ! माया के अतिरिक्त मैं तुमको वह सब देता हूँ हे तपस्विन् ! तुम माया को देखने के योग्य नहीं हो ।। ८ ।।

सोमशर्मा ने कहा—

हे विष्णो ! मैं उससे महान् अन्य वर की इच्छा नहीं करता । यदि मैंने तप किया है, तो अपनी माया को दिखाओ ।। ९ ।।

स्कन्द ने कहा—

हे महाभाग द्विज ! सोमशर्मा मुनि द्वारा बार-बार याचना करने पर भी विष्णु ने वह वर उसको नहीं दिया ।। १० ।।

इस प्रकार उसने तीन बार तप करके विष्णु का दर्शन किया । विष्णु से मना किये जाने पर भी माया की ही याचना की ।। ११ ।।

भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् ने यह शुभ वचन कहा—हे सोमशर्मन् ! तुम मेरी माया को जानोगे ।। १२ ।।

यह कहकर विष्णु उसी शुभ क्षेत्र में अन्तर्धान हो गये । हे द्विजोत्तम नारद ! सोमशर्मा भी गंगा में स्नान करने के लिये गया ।। १३ ।।

धृत्वा कुंडीं त्रिदण्डं च धौतमासनमेव च ।
कमंडलुं पुस्तकं च सोमशर्मा सरित्तटे ।
संन्यस्य प्रययौ स्नातुं गंगायां नियतव्रतः ॥ १४ ॥

यावत्प्रविशते विप्र गंगायां नाभिमात्रतः ।
तावद्धृतो महास्येन कच्छपेन महामुने ॥ १५ ॥

निगीर्णश्चर्वितश्चैव प्राणैस्त्यक्तो बभूव ह ।
आकृष्टो यमदूतैश्च वायवीयवपुर्मुनिः ॥ १६ ॥

मायानरकसामग्रीं ददर्श स महातपाः ।
क्रकचैः पाट्यमानांश्च क्वथमानांश्च सर्वतः ॥ १७ ॥

ताड्यमानांश्च मुशलैर्हाहाकारवांस्तथा ।
ददर्श किंकरांस्तत्र यमस्य परितो बहून् ॥ १८ ॥

सिंहाननान् वृकमुखान्विकृतान्विकृताननान् ।
केचिद् गर्जन्ति केचित्तु साट्टहासास्तथापरे ॥ १९ ॥

भिंधि भिंधि च्छिधि च्छिधि भक्ष भक्षामि चाऽपरः ।
इति नानाविधा वाचः शुश्राव यममन्दिरे ॥ २० ॥

दृष्टा पापगतिस्तेन तथा पुण्यगतिर्मुने ।
त्रासयुक्तो महाभाग ददर्श विविधा गतीः ॥ २१ ॥

असिभिश्छिद्यमानाश्च चक्रक्षेपार्त्तिपीडिताः ।
निगडैर्बध्यमानाश्च तप्तैरायसनिर्मितैः ॥ २२ ॥

त्रिशूलैर्भेद्यमानाश्च भिन्नाश्चेष्टततरं तथा ।
अपरे भिद्यमानाश्च भिन्नांगाश्च तथाऽपरे ॥ २३ ॥

लोहस्तम्भेषु तप्तेषु बद्धान्दृष्ट्वा मुनिस्तथा ।
नदीं वैतरणीं तत्र पूयशोणितवाहिनीम् ॥ २४ ॥

कुण्डी, त्रिदण्ड और धुले हुये आसन को रखकर, नदी के तट पर कमण्डलु, और पुस्तक को छोड़कर व्रत को रखने वाला वह सोमशर्मा गंगा में स्नान करने करने गया ॥ १४ ॥

हे विप्र । ज्यों ही उसने गंगा में नाभि तक प्रवेश किया, हे महामुने ! तभी बड़े मुख वाले एक कच्छप ने उसको पकड़ लिया ॥ १५ ॥

कछुये से निगले और चबाये जाकर उसके प्राण छूट गये । उस मुनि के वायवीय शरीर को यमदूत खींच कर ले गये ॥ १६ ॥

उस महातपस्वी ने माया से उत्पन्न नरक की सामग्री को देखा । वहाँ पापी जन आरों से चीरे जा रहे थे और सब ओर उबाले जा रहे थे ॥ १७ ॥

वे मूसलों से पीटे जा रहे थे और हाहाकार शब्द कर रहे थे । उसने वहां चारों ओर बहुत से यम-सेवकों को देखा ॥ १८ ॥

कुछ तो सिंह के समान मुख वाले, कुछ भेड़िये के समान मुख वाले, कुछ विकृत शरीर वाले और कुछ विकृत मुख वाले थे । कुछ गरज रहे थे और कुछ दूसरे अट्टहास कर रहे थे ॥ १९ ॥

दूसरे कह रहे थे फोड़ दो-फोड़ दो, काट दो-काट दो, खालो-मैं खाता हूँ । इस प्रकार यमलोक में उसने विविध वाणियां सुनी ॥ २० ॥

हे मुने ! वहाँ उसने पापों की गति देखी और पुण्यों की गति देखी । हे महाभाग ! डरे हुये उसने विविध गतियों को देखा ॥ २१ ॥

उसने तलवारों से काटे जाते हुये, चक्र के प्रहार से कष्ट से पीड़ित और गरम लोहे से बनी जंजीरों से बांधे जाते हुये पापियों को देखा ॥ २२ ॥

त्रिशूलों से भेदे जाते हुये और विभिन्न चेष्टाओं को करते हुये पापियों को देखा । कुछ तो भेद दिये गये थे और दूसरों के अंग काट दिये गये थे ॥ २३ ॥

उस मुनि ने वहां तपे हुये लोहस्तम्भों पर बंधे पापियों को देखा । वहां उसने पीप और रक्त को बहाने वाली वैतरणी नदी को देखा ॥ २४ ॥

तथा कृमिकुलैश्छन्नां तप्तां पूरीषकर्दमाम् ।
संकीर्णां पापिभिश्चापि क्रन्दमानैरितस्ततः ।। २५ ।।

असिपत्रवनं चैव तथा संतप्तबालुकम् ।
रौरवं च महाघोरं योजनत्रयविस्तृतम् ।। २६ ।।

संतप्यमानं तीक्ष्णेन वह्निना च समंततः ।
हाहारवशताकीर्णं महारौरवमेव च ।। २७ ।।

योनिपुंसाख्यमपरं तामिस्रं च महार्तिदम् ।
महातामिस्रकं चैव संभ्रमं च तथैव च ।। २८ ।।

अभेद्यकृमिसंपूर्णं पुरीषभक्षणं तथा ।
स्वमांसभक्षणं चैव कुंभीपाकं च दृष्टवान् ।। २९ ।।

एते चान्ये च बहवो यातनानरकास्तथा ।
दृष्टास्तेन महाभाग लम्बमानास्तरुव्रजे ।। ३० ।।

पश्यन्महातपा विप्रस्त्रस्तः पापान्समीक्ष्य वै ।
ततो ब्रह्मपुरे विद्वन्नानाभोगपरिप्लुतः ।। ३१ ।।

क्षुत्तृष्णारहितस्तत्र दुःखेन रहितस्तथा ।
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महर्जनम् ।। ३२ ।।

तपःसत्ये च पातालमव्याहतगतिर्द्विजः ।
यत्रेच्छति स वै गंतुं तत्र तत्र विमानगः ।
जगामाऽप्सरोगन्धर्वकिन्नरैरुपशोभितः ।। ३३ ।।

एवं वर्षसहस्रं च भुक्त्वा दिव्यं च भोगकम् ।
पृथिव्यां च पुनर्जातो राजा परमधार्मिकः ।। ३४ ।।

बुभजे च ततो भोगान्राज्यप्राप्तान्महायशाः ।
इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
पुनः स्वर्गं जगामाऽपि भुक्त्वा भोगांश्च शाश्वतान् ।। ३५ ।।

ततश्चन्द्रस्य बिम्बे च भूत्वा नीहाररूपधृक् ।
स्रवते स्म तथौषध्यां जीवश्चन्द्रस्य मण्डलात् ।। ३६ ।।

वह नदी कीड़ों के समूहों से भरी थी, गरम थी और विष्ठा तथा कीचड़ से युक्त थी। पापी लोग उसमें इधर-उधर क्रन्दन कर रहे थे ॥ २५ ॥

उसमें तलवारों का वन था और तपी हुई रेत भरी थी। वह महाभयानक रौरव नरक तीन योजन विस्तृत था ॥ २६ ॥

वह नरक सब ओर से तीक्ष्ण अग्नि से सन्तप्त था। वह हाहाकार शब्दों से भरा हुआ था। वह महारौरव नरक ही था ॥ २७ ॥

वहां दूसरा नरक योनिपुंस नाम का था। एक नरक तामिस्र था, जो अति पीड़ादायक था। एक नरक महातामिस्र था और दूसरा एक संभ्रम था ॥ २८ ॥

उसने कुम्मीपाक नरक देखा। वह अभेद्य कृमियों से भरा हुआ था। वहां पापीजन विष्ठा खाते थे और अपने ही मांस का भक्षण कर रहे थे ॥ २९ ॥

हे महाभाग नारद! इन नरकों को तथा यातना देने वाले अन्य बहुत से नरकों को उसने देखा, जो वृक्ष-समूहों पर लटक रहे थे ॥ ३० ॥

वह महातपस्वी विप्र उन पापियों को देखकर डर गया। हे विद्वन्! तदनन्तर वह ब्रह्मलोक में गया, जो विविध भोगों से भरा हुआ था ॥ ३१ ॥

वहां भूख और प्यास नहीं थी और दुःख नहीं था। भूः लोक, भुवः लोक, स्वः लोक, महःलोक, जनः लोक, ॥ ३२ ॥

तपः लोक, सत्यम् लोक और पाताल लोक में, उस ब्राह्मण की अव्याहत गति थी। वह जहां जाना चाहता था, विमान पर आरूढ होकर, अप्सराओं, गन्धर्वों और किन्नरों के साथ सुशोभित होकर वहां जाता था ॥ ३३ ॥

इस प्रकार एक हजार वर्षों तक दिव्य भोगों को भोग कर, वह पुनः पृथ्वी पर परम धार्मिक राजा हुआ ॥ ३४ ॥

तदनन्तर उस महायशस्वी ने राज्य से प्राप्त भोगों का भोग किया और अनेक यज्ञ किये, जिनके समाप्त होने पर प्रचुर दक्षिणायें दीं। वह पुनः स्वर्ग गया और शाश्वत भोगों का भोग किया ॥ ३५ ॥

तदनन्तर चन्द्रमा के मण्डल में नीहार के रूप को धारण करके वह चन्द्रमा के मण्डल से ओषधियों में जीव के रूप में स्रवित हुआ ॥ ३६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे काचिन्निषादवनिता ततः ।
जाता ऋतुमती तत्र गर्भाधानपराऽभवत् ।। ३७ ।।

निषादेन तु यद् भुक्तं तत्र प्राप्तोऽमृतात्मकः ।
निषाद्या योनियंत्रे वै क्षिप्तो मैथुनकर्म्मणा ।
रेतः संचालितो जंतुलिंगात्स्त्रीयोनिसंचितः ।। ३८ ।।

योनिरक्तेन संयुक्तो जरायुपरिवेष्टितः ।
दिनेनैकेन कललं कठिनत्वमगात्ततः ।। ३६ ।।

बुद्बुदाकारतां प्राप्तः पंचरात्रेण स द्विजः ।
ततः पेशित्वमापन्नो मांसस्य सप्तरात्रितः ।। ४० ।।

मासार्धेन मांसपेशी रुधिरेण परिप्लुतः ।
कठिनत्वं तदाप्नोति पंचविंशतिरात्रेषु ।। ४१ ।।

मासाच्छिरः समुत्पत्तिर्ग्रीवास्कन्धौ तथोदरम् ।
पृष्ठवंशस्तथोत्पन्नः पंचधांगानि तत्क्रमात् ।। ४२ ।।

पाणिपादौ तथा पार्श्वौ कटिर्जानद्वितीयकम् ।
त्रिभिर्मासैः करांगुल्यः सन्धयश्च महामुने ।। ४३ ।।

मासेन च चतुर्थेन सर्वांगुल्यस्तपोनिधे ।
नासिकाकर्णनेत्राणि पंचमे मासि संस्फुटम् ।। ४४ ।।

दन्तभूमिर्नखा गुह्यं जीवश्च जठरस्थितः ।
अंगच्छिद्राणि षष्ठे च पायुर्मेढ्रं तथा मुने ।। ४५ ।।

नाभिश्च सप्तमे मासि जातास्तस्य महामते ।
लोमानि च महाभाग शीर्षकेशास्तथोद्गताः ।। ४६ ।।

विभिन्नावयवत्वं च सर्वं जातं तथाष्टमे ।
ववृधे जठरे जन्तुः संस्मरन्पूर्वकर्म तत् ।। ४७ ।।

नाना जन्मानि जातानि तथा चोच्चावचानि च ।
जठराग्निसमुद्विग्नः कतिवारं स्वजन्मसु ।। ४८ ।।

इसी मध्य में, तदनन्तर कोई निषाद स्त्री ऋतुमती हुई और वह गर्भ का आधान करने वाली हो गई ॥ ३७ ॥

निषाद ने वहां ओषधियों में प्राप्त इस अमृत रूप नीहार का भोग किया था। उसने उसको मैथुन करते हुए निषादी के योनि यन्त्र में डाल दिया। निषाद के वीर्य में संचलित वह जन्तु उसके लिङ्ग से स्त्री की योनि में सञ्चित हो गया ॥ ३८ ॥

योनि के रक्त से संयुक्त होकर और जरायु से परिवेष्टित होकर वह जीव एक दिन में ही कठोर कलल हो गया ॥ ३९ ॥

तदनन्तर वह ब्राह्मण पांच रात्रियों में बुद्बुद के आकार का हो गया। तदनन्तर सात रात्रियों में उसमें मांस की पेशियां बन गयीं ॥ ४० ॥

उसके पश्चात् आधे महीने में मांसपेशी रुधिर से भर गयी। उसके बाद पच्चीस रात्रियों में वह कठोर हो गया ॥ ४१ ॥

एक महीने में सिर, ग्रीवा, कन्धे, उदर, और पृष्ठ वंश उत्पन्न हुए। तदनन्तर क्रमश: पांच प्रकार के अंग उत्पन्न हुए ॥ ४२ ॥

हाथ, पैर. पार्श्व भाग, कटि और दोनों घुटते उत्पन्न हुए। हे महामुने ! तीन महीनों में हाथों की अंगुलियाँ और सन्धियां बन गयीं ॥ ४३ ॥

हे तपोनिधे चौथे मास में सब अंगुलियां बन गयीं। पांचवें महीने में नाक, कान और नेत्र स्पष्ट रूप से उत्पन्न हो गये ॥ ४४ ॥

इस समय तक गर्भाशय में स्थित जीव में दांत के स्थान और नाखून भी हो गये थे। हे मुने ! छठे महीने में अंगों के छिद्र पायु (गुदा का मार्ग) और मेढ्र (शिश्न) बन गये ॥ ४५ ॥

हे महामुने नारद ! सातवें महीने में नाभि बन गयी। हे महाभाग ! उसी समय लोम और सिर के बाल उत्पन्न हूए ॥ ४६ ॥

आठवें महीने में सब विभिन्न अंग स्पष्ट रूप में उत्पन्न हो गये। वह जन्तु वहां गर्भाशय में अपने पूर्व कर्मों का स्मरण करता हुआ बढ़ने लगा ॥ ४७ ॥

उसके ऊँचे-नीचे अनेक जन्म व्यतीत हो गये थे। अपने जन्मों में वह कितनी ही बार पेट की अग्नि से उद्विग्न हुआ था ॥ ४८ ॥

स्वकर्मणा कर्महीनो जातोऽहं देहदुःखभाक्।
न मे मृत्यः कर्मसूत्रान्निबद्धस्यापि पीडतः ।। ४९ ।।

नाना योनिसहस्राणि ह्यनुभूतानि वै मया।
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारास्तथैव च ।। ५० ।।

कुटुम्बभरणासक्तिर्जाता च मम सर्वदा।
सत्कर्म न कृतं येन जातो मुक्तिविवर्जितः ।। ५१ ।।

न जाने पातकं तद्वै येन जातोऽस्मि गर्भगः।
स्त्रीशरीरो भाग्यहीनो निषादीगर्भमागतः ।। ५२ ।।

जातं मे दर्शनं विष्णोस्तपस्तप्तं च मे महत्।
केन कर्मविपाकेन निषादीगर्भसंस्थितः ।। ५३ ।।

किं करोमि क्व गच्छामि पीड्यमानोऽग्निना मुहुः।
भक्ष्याभक्ष्यविधिश्चैव न स्थिरो मम सांप्रतम् ।। ५४ ।।

अत ऊर्ध्वं कदाचिद्धि भविष्यति गतिर्बहिः।
कर्तव्या मे विष्णुचिन्ता गर्भवासो यतो न हि ।। ५५ ।।

इति वै चिन्तयोद्विग्नः स वै ब्राह्मणसत्तमः।
दशमे मासि योनेस्तु कुर्वन्मातुः प्रपीडनम् ।। ५६ ।।

पीड्यमानः स्वयं चैव नरकात्पातकीऽऽयथा।
निर्गतस्तु स्वरूपेण स्पृष्टः संसारवायुना ।। ५७ ।।

जायमाना तु सा कन्या रुरोद क्षुधयाऽऽवृता।
अजानती महामायां वैष्णवीं विष्णुतत्परा ।। ५८ ।।

विण्मूत्रपरिक्लिनांगी स्तनपानपरायणा।
वक्तुं किमपि नो शक्ता न गंतुं च क्वचिन्मुने ।। ५९ ।।

एवं बाल्येऽपि दुःखानि ह्यनुभूतानि चैतया।
क्रमेण यौवनाक्रान्ता जाता नैषादकन्यका ।। ६० ।।

वह विचार करने लगा कि मैं शरीर के दुखों को भोगने वाला अपने कर्म से कर्महीन होकर उत्पन्न हुआ हूँ। कर्म के सूत्र से बन्धे कुछ और पीड़ित होते हुए भी मेरी मृत्यु नहीं होती है ॥ ४९ ॥

मैंने विविध हजारों योनियों का अनुभव किया है। हजारों माता-पिताओं, पुत्रों और पत्नियों का अनुभव किया है ॥ ५० ॥

मुझे सदा कुटुम्ब के भरण करने में आसक्ति होती रही है। मैंने सत्कर्म नहीं किये, जिससे मुझको मुक्ति नहीं मिली ॥ ५१ ॥

न जाने मेरा वही पाप है, जिससे मैं भाग्य से हीन स्त्री शरीर होकर इस निषादी के गर्भ से आया हूँ ॥ ५२ ॥

मैंने महात् तप किया था और विष्णु के दर्शन किये थे। किस कर्म के परिणाम से मैं निषादी के गर्भ में स्थित हूँ ॥ ५३ ॥

क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? बार-बार अग्नि से पीड़ित होता हूँ। अब मेरी भक्ष्य-अभक्ष्य की विधि भी स्थिर नहीं है ॥ ५४ ॥

इसके पश्चात् यदि कभी गर्भ से बाहर आऊँगा, तो विष्णु का ही चिन्तन करूँगा, जिससे कि पुनः गर्भवास न हो ॥ ५५ ॥

इस प्रकार चिन्ता से उद्विग्न वह श्रेष्ठ ब्राह्मण माता के गर्भ को पीड़ित करता हुआ दसवे महीने में ॥ ५६ ॥

और स्वयं पीड़ित होता हुआ उसी प्रकार बाहर निकला, जिस प्रकार कोई पापी नरक से निकलता है। इस स्वरूप में संसार की वायु ने उसका स्पर्श किया ॥ ५७ ॥

वह कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ। विष्णु में तत्पर भी वह कन्या विष्णु की माया को न जानती हुई भूख से पीड़ित होकर रोने लगी ॥ ५८ ॥

टट्टी या पेशाब से भीगे अंगों वाली वह कन्या स्तनपान करती रही। हे मुने! वह न तो कुछ बोलने में समर्थ थी और नाहीं कहीं जाने में समर्थ थी ॥५९॥

इस प्रकार उसने बाल्यकाल में भी दुःखों का ही अनुभव किया। वह निषाद कन्या क्रमशः यौवन से भर गयी ॥ ६० ॥

पित्रा दत्ताऽपि कस्मैचिन्निषादाय महामते।
तत्राऽपि पुत्रभृत्यादिसंयुताऽऽसीत्क्रमेण सा ॥ ६१ ॥

एवं जातानि पंचाशद्वर्षाणि द्विजपुंगव।
एकदा सा नदीतीरे गता स्नातुं महामते ॥ ६२ ॥

यावत्स्नाति महाशूद्रा तावत्कच्छपमूर्त्तिना।
कालेन संगृहीता सा पुनर्जातो यथा पुरा ॥ ६३ ॥

स्नातः समागतो यद्वत्त्रिदंडी दंडकुंडिकाम्।
गृहीत्वा वाससी तद्वत्पश्यतां वै तपस्यताम् ॥ ६४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु निषादः क्रोधमूर्च्छितः।
महायष्टिं गृहीत्वा तु तामन्वेष्टुं समाययौ ॥ ६५ ॥

अन्वेषमाणः सततं तीरे तीरे विशेषतः।
वनानां चैव कुंजेषु वप्रेषु [1]तटवीचिषु ॥ ६६ ॥

एवमन्विष्यतस्तस्य निषादस्य महामते।
दिनं सर्वं क्षयं जातं प्राप्ता चैव तु शर्वरी ॥ ६७ ॥

विललाप ततोऽरण्ये गंगातीरे समाश्रितः।
हा प्रिये क्व गतासि त्वं त्यक्त्वा मां पुत्रदारिकाः ॥ ६८ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि कथं जीवेयुरर्भकाः।
का मां प्रिये चिन्तयानं शयानं शयने स्थिता।
मधुरालापप्रश्नैश्च तूर्णमाश्वासयिष्यति ॥ ६९ ॥

स्तनंधयश्च स कथं भविष्यति दिनात्यये।
मातर्मातः पुनर्मातरित्युक्त्वाऽश्रुपरिप्लुतः ॥ ७० ॥

रोदयिष्यति मां चैव तथान्याञ्जातिबांधवान्।
कच्चित्त्वं परिहासाय लीलापुलिनसंस्तरे ॥ ७१ ॥

---

१. त्वट।

है महामते नारद ! पिता ने उसे किसी निषाद को दे दिया। वहां भी वह क्रमशः पुत्र, भृत्य आदि से संयुक्त हुई ।। ६१ ।।

हे द्विजश्रेष्ठ महामते नारद ! इस प्रकार उसको पचास वर्ष बीत गये। एक दिन वह स्नान करने के लिए नदी के तट पर गयी ।। ६२ ।।

जब वह महाशूद्रा स्नान कर रही थी तभी कच्छप के शरीर में काल ने उसे पकड़ लिया और वह सोमशर्मा ब्राह्मण पहले के समान उत्पन्न हो गया ।। ६३ ।।

स्नान करके वह त्रिदण्ड, दण्ड-कुण्डिका और वस्त्रों को लेकर तपस्वियों के देखते हुए वहां आया ।। ६४ ।।

इसी बीच में क्रोध से मूर्च्छित वह निषाद बड़े डण्डे को लेकर उसको खोजने के लिए आया ।। ६५ ।।

नदी के किनारे-किनारे, विशेष रूप से वनों के निकुञ्जों में पहाड़ी टीलों पर और तटवर्ती लहरों में निरन्तर खोजता रहा ।। ६६ ।।

हे महामते ! इस प्रकार खोजते हुए उस निषाद का सारा दिन व्यतीत हो गया और रात आ पहुँची ।। ६७ ।।

तदनन्तर वह जंगल में गंगा के तट पर बैठकर बिलाप करने लगा—"हाय प्रिये तुम मुझको, पुत्र-पुत्रियों को छोड़ कर कहाँ चली गई हो ।। ६८ ।।

मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? मेरे बच्चे कैसे जीवित रहेंगे ? हे प्रिये ! जब मैं नुम्हारी चिन्ता करते हुए लेटूँगा, तब मेरे शयन पर स्थित होकर मधुर आलाप और प्रश्नों से कौन मुझको शीघ्र आश्वासित करेगा ।। ६९ ।।

दिन व्यतीत हो जाने पर, दूध पीते बच्चे की कैसी अवस्था होगी। वह, "हे माता ! हे माता ! इस प्रकार कह कर आँसुओं से भर जायेगा ।। ७० ।।

वह मुझको और अन्य जाति-बन्धुओं को रुलायेगा। क्या तुम परिहास के लिए नदी के सुन्दर और रेतीले तट में छुप गयी हो ? ।। ७१ ।।

कच्चिन्मम प्रेम द्रष्टुं स्थिता कुञ्जेतिवेश्मनि ।
कच्चित्त्वां व्याघ्रसर्पाद्या चक्रुरसुविवर्जिताम् ।। ७२ ।।

कच्चित्त्वं गह्वरे तन्वि गता नीता च राक्षसैः ।
इति लालप्यमाने तु तत्र तस्मिन्निसादजे ।। ७३ ।।

मुमोह माययाऽऽविष्टो दृष्ट्वा तंतादृशं मुने ।
उवाच वचनं दीनो वाष्पकण्ठः सगद्गदम् ।। ७४ ।।

मा रोदीस्त्वं निषादेश कालो वै दुरतिक्रमः ।
अप्रमादेन स्थातव्यं शत्रुमित्रेषु सर्वदा ।। ७५ ।।

इति सर्वं वचः श्रुत्वा वाष्पगद्गदया गिरा ।
उवाच सहसाऽऽगत्य तत्र ब्राह्मणसन्निधौ ।। ७६ ।।

भो भो द्विजवरश्रेष्ठ क्व गता सा मम प्रिया ।
तया विना क्षणमपि न जीवेयं सुदुःखितः ।। ७७ ।।

कयाऽत्र वनकुञ्जेषु नदीनां संगमेषु च ।
वहन् कुटजवातेषु पर्वतानां च मूर्द्धसु ।। ७८ ।।

तमालमालाजालेषु कूजितेषु च कोकिलैः ।
रमयिष्यामि विप्रेश तथा विपिनपंक्तिषु ।। ७९ ।।

कथयस्व महाभाग क्व गता सा प्रियंवदा ।
प्राणदो भव मे सौम्य रक्षस्व मम बालकान् ।। ८० ।।

इतोरितं तस्य वचो निशम्य वै निषादपुत्रस्य विमोहितो द्विजः ।
सवाष्पकण्ठोद्गतमंदवाक्यो जगाद भूयो जगदीशमोहितः ।। ८१ ।।

अहं तव स्त्री भवनाधिवासिनी ।
स्थिता निषादेश्वर गच्छ मन्दिरम् ।
एतावदेवाभवदस्ति नो तव ।
संबन्धकः कर्मगतानुसारिकः ।। ८२ ।।

क्या तुम मेरे प्रेम को देखने के लिए कुञ्जों के सुन्दर घर में बैठी हुई हो ? क्या व्याघ्र, सर्प आदि ने तुमको प्राणों से रहित कर दिया है ? ॥ ७२ ॥

हे सुन्दरि ! क्या तुम गढे में गिर गई हो और क्या तुमको राक्षस ले गये हैं ? इस प्रकार वह निषाद-पुत्र वहाँ विलाप करने लगा ॥ ७३ ॥

हे मुने ! उस प्रकार के उसको देख कर तथा माया से आविष्ट होकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया। वाष्प से रुन्धे कण्ठ वाला वह दीन गद्गद् स्वर मैं कहने लगा ॥ ७४ ॥

हे निषादराज ! तुम रुदन मत करो। समय दुर्लंघ्य है। शत्रु और मित्रों के मध्य सदा सावधान होकर रहना चाहिए ॥ ७५ ॥

इस प्रकार वाष्प से गद्गद् वाणी से ब्राह्मण सोमशर्मा के सारे कथन को सुन कर वह निषाद सहसा वहाँ ब्राह्मण के समीप आकर बोला ॥ ७६ ॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! वह मेरी प्रिया कहाँ चली गयी ? अति दुःखित मैं उसके विना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ७७ ॥

इन वन-कुञ्जों में, नदियों के संगमों पर, हिलते हुए, कुटज वृक्षों के पत्रनों में और पर्वतों के शिखरों पर मैं किसके साथ विहार करूँगा ? ॥ ७८ ॥

हे विप्रेश ! तमाल वृक्षों के समूह में, कोकिलों के कूजनों में और वनों की पंक्तियों में, मैं किसके साथ रमण करूँगा ? ॥ ७९ ॥

हे महाभाग ! कहिये कि प्रिय बोलने वाली वह मेरी प्रिया कहाँ गयी ? हे सौम्य ! तुम मुझे प्राणों को प्रदान करो और मेरे बालकों की रक्षा करो ॥ ८० ॥

इस प्रकार निषाद पुत्र के कहे गये वचन को सुन कर वह द्विज मोहित हो गया ! जगदीश विष्णु की माया से मोहित होकर आंसुओं से भरे कण्ठ से निकले मन्द वाक्य को उसने पुनः कहा ॥ ८१ ॥

मैं ही तुम्हारे घर में रहने वाली स्त्री थी। हे निषादेश्वर ! अब तुम घर जाओ। कर्मों की गति के अनुसार हमारा और तुम्हारा इतना ही सम्बन्ध था ॥ ८२ ॥

रक्षस्व चेमानतिबालकान्मे त्वमेव ।
तेषां जननी पिता च ।
कनिष्ठको यः सततं हि रक्ष्यो ग ।
च्छस्व गेहं वचनं कुरुष्व ॥ ८३ ॥

एवं लुब्धं वाक्यमुक्त्वा ।
द्विजस्तु रुरोदोच्चैस्तेन साकं मुनीशः ।
विष्णोर्मायासंवशो ह्यस्वतंत्रो ।
हाहेत्युक्त्वा पातयामास वाष्पान् ॥ ८४ ॥

व्याधोऽपि तत्राशु तदीयबाला ।
नानाययामास विमोहनार्थकम् ।
रुरोद पादे पतितो जगाद ।
भूयश्च देवेशविमोहितः परम् ॥ ८५ ॥

एते वै बालका मह्यं मोहयन्तितरां मुने ।
गच्छ मे मन्दिरं शीघ्रं त्वां मत्वा मातरं तथा ।
जीविष्यन्ति तथाऽहं च रक्ष नो म्रियमाणकान् ॥ ८६ ॥

रक्षा त्वया प्रकर्तव्या गृहे गत्वा यथा वनात् ।
आनेया मृगपक्ष्याद्या भक्षणार्थं यथा पुरा ॥ ८७ ॥

तदैव सर्वं भवनं बालकाश्च धनं तथा ।
इति श्रुत्वा वचो विप्र निषादस्य नदीतटे ।
चकार मनसो भावं गेहे गंतुं त्वरान्वितः ॥ ८८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र न व्याधो न च बालकाः ।
ददर्श दंडं कुंडीं च धौतं पात्रं स्थितं तदा ॥ ८९ ॥

दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं हरिमायावशो द्विजः ।
किमेतद्धि किमेतच्चिद्ध चकितोऽभून्महामते ॥ ९० ॥

स्मृत्वा तन्मरणं चैव नरकाणां च दर्शनम् ।
गर्भवासं च नैषाद्यास्तथा वै स्त्रीस्वरूपताम् ॥ ९१ ॥

तत्र मायां च पुत्रेषु धनेषु च तथा पतौ ।
परमं खेदमापन्नो दुरात्माऽहं भृशं खलः ॥ ९२ ॥

मेरे इन बालकों की तुम रक्षा करो। तुम ही इनके माता-पिता हो। जो सबसे छोटी सन्तान है, उसकी तुम रक्षा करो। घर चले जाओ और इस वचन का पालन करो ॥ ८३ ॥

हे मुनीश नारद ! इस प्रकार निषाद से यह वाक्य कह कर वह ब्राह्मण उसके साथ ही उच्च स्वर से रुदन करने लगा। वह विष्णु की माया के वश में होकर और पराधीन होकर, हा ! हा ! कह कर आंसू गिराने लगा ॥ ८४ ॥

वह निषाद भी उस ब्राह्मण को मोहित करने के लिए शीघ्र ही उसके बच्चों को वहाँ ले आया। देवताओं के स्वामी विष्णु की माया से बहुत अधिक विमोहित होकर वह उसके पैरों में गिर कर रोने लगा और पुनः कहने लगा ॥ ८५ ॥

हे मुने ! ये बालक मुझको बहुत अधिक मोहित करते हैं। तुम मेरे घर शीघ्र चलो। ये तुमको माता समझ कर जीवित रहेंगे। इस प्रकार तुम मेरी और हमारे मरते हुए बालकों की रक्षा करना ॥ ८६ ॥

तुमको घर जाकर हमारी रक्षा करनी चाहिए और पहले के समान ही भोजन करने के लिए, मृग, पक्षी आदि को लाना चाहिए ॥ ८७ ॥

यह सारा भवन, बालक और धन तुम्हारे ही हैं। हे विप्र नारद ! इस प्रकार नदी के तट पर निषाद के वचन को सुनकर उस ब्राह्मण ने शीघ्रता करते हुए घर जाने का विचार किया ॥ ८८ ॥

इसी मध्य में न तो वहाँ व्याध था और न बालक थे। उसने तब वहाँ दण्ड, कुंडी और धुले पात्र को स्थित देखा ॥ ८९ ॥

हे महामते ! विष्णु की माया के वशीभूत उस ब्राह्मण को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। यह क्या हो गया है ? यह क्या हो गया है ? वह चकित हो गया ॥ ९० ॥

उस मरण का, नरकों के दर्शन का, निषाद स्त्री के गर्भ में रहने का और अपने स्त्री के स्वरूप का स्मरण करके ॥ ९१ ॥

वहाँ पुत्रों के प्रति, धनों के प्रति और पति के प्रति माया का स्मरण करके उसको परम खेद हुआ कि मैं बहुत दुरात्मा खल हूँ ॥ ९२ ॥

यस्य मे तादृशी जाता गतिर्विष्णोस्तु चिन्तनात् ।
अभक्ष्यं भक्षितं चैवाऽपेयं पीतं च वै मया ।। ९३ ।।

अगम्यागमनं चैव कृतं यद्वै दुरात्मना ।
भवित्री का गतिर्मे हि कृतपापस्य सर्वदा ।। ९४ ।।

पापादस्मात्कथं मेऽद्य निष्कृतिर्भविता तथा ।
तपश्चर्या कृता पूर्वं प्राप्तं दुःखमनन्तकम् ।। ९५ ।।

का भविष्यति पापैर्हि परत्र च गतिर्मम ।
इति तच्चिन्तयानस्य द्विजस्य नरपुंगव ।
भक्तानुकंपी भगवान्प्रत्यक्षं निजगाद ह ।। ९६ ।।

शंखचक्रगदापद्मधरैर्बाहुभिरन्वितः ।
पीताम्बरलसत्कान्तिर्वनमालावभूषितः ।। ९७ ।।

श्रीवत्सवक्षास्तेजस्वी नवनीरदरूपधृक् ।
अनन्तमणिमुक्ताभिर्ललितं मुकुटं तथा ।। ९८ ।।

धारयन्वै त्रिलोकीशो रमया सहितः प्रभुः ।
रुदन्तं तं समासीनमधोवक्त्रं विमोहितम् ।। ९९ ।।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपोराशे महामते ।
त्वत्समो नाऽस्ति त्रैलोक्ये मद्भक्तो विजितेन्द्रियः ।। १०० ।।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि न ते दुर्गतिरस्ति हि ।
न त्वया भक्षितं किंचिन्न पीतं न कृतं तथा ।। १०१ ।।

न तेऽभून्मरणं विप्र यातना नारकी न हि ।
[1]न ते भू स्वर्गवासश्च न राज्याप्तिर्न वै मृतिः ।
न तेऽभूद् गर्भवासश्च न ते जाठरवेदना ।। १०२ ।।

---

१. न ते ... वै मृतिः । पाठ इसमें नहीं है

विष्णु का चिन्तन करने से जिस मेरी उस प्रकार की गति हो गयी थी कि मैंने न खाने योग्य पदार्थों का भक्षण किया और न पीने योग्य पेयों को पीया ।। ९३ ।।

जो मुझे दुष्ट ने अगम्य के साथ गमन किया। सदा पाप करने वाले मेरी कौनसी गति होगी ।। ९४ ।।

इस पाप से मेरा आज छटकारा कैसे होगा। मैंने पहले तपस्या की थी जौर अनन्त दु:ख पाया ।। ९५ ।।

इन पापों के कारण परलोक में मेरी कौनसी गति होगी ? हे नरपुङ्गव नारद ! वह ब्राह्मण इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् विष्णु ने प्रत्यक्ष होकर कहा ।। ९६ ।।

वे भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और कमल को धारण किये हुए थे, उनकी कान्ति पीताम्बर से अलंकृत थी और वे वनमाला से विभूषित थे ।। ९७ ।।

वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न था। वे तेजस्वी थे और नवीन मेघ के सदृश उनका रूप था। वे अनन्त मणियों और मोतियों से सुन्दर मुकुट पहने हुए थे ।। ९८ ।।

उस मुकुट को धारण किये हुए तीनों लोकों के स्वामी प्रभु विष्णु लक्ष्मी के साथ, रोते हुए, नीचे मुख करके बैठे हुए और विमोहित उस ब्राह्मण के पास आये ।। ९९ ।।

हे तपोराशे महामते विप्र ! उठो ! उठो ! तुम्हारा कल्याण हो। तीनों लोकों में तुम्हारे समान जितेन्द्रिय मेरा और भक्त नहीं है ।। १०० ।।

तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, तुम्हारी दुर्गति नहीं हुई है। तुमने न तो कुछ खाया है, न कुछ पीया है, और न कोई बुरा काम किया है ।। १०१ ।।

हे विप्र ! न तो तुम्हारा मरण हुआ है, न नरक की यातना हुई है, न स्वर्गवास हुआ है, न राज्य प्राप्त हुआ है, न मृत्यु हुई है, न गर्भवास हुआ है. और नाही गर्भाशय की वेदना हुई है ।। १०२ ।।

न ते स्त्रीत्वस्य सम्प्राप्तिर्न निषादगृहे जनिः।
न विवाहो न पुत्राद्या नैतत्सर्वं प्रपंचितम्॥ १०३॥

यत्त्वया याचितं भद्र तपश्चर्याफलं पुरा।
सेयं माया मया विप्र दर्शिता प्रियलिप्सुना॥ १०४॥

[1]एतयैव परं मूढो न जानाति परायणम्।
त्वं तया मोहितो विप्र दृष्टवानिदमद्भुतम्॥ १०५॥

स्वावज्ञा न च ते कार्या मायारूपमिदं जगत्।
स्वभाव एष मायायाः प्रपंचः सार्वकालिकः॥ १०६॥

अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिर्हि या मता।
तया सम्मोह्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥ १०७॥

परात्मनो न जन्मापि मरणं न च वेदना।
न वृद्धिर्न च वै ह्रासो न बाल्यं न च यौवनम्॥ १०८॥

न वा वार्द्धक्यभावोऽस्ति नित्यस्य परमात्मनः।
मम चेष्टास्वरूपस्य स्वभावोऽयं प्रवर्त्तते॥ १०९॥

संसार मूलभूता सा माया मे द्विजपुंगव।
शक्यते सा यदि त्यक्तुं प्रसादेन मम प्रभो।
तदा तरति संसारं नानादुःखमयं चलम्॥ ११०॥

अतः परं महाभाग मे माया सा दुरत्यया।
व्यापयिष्यति त्वां नैव यथा संसृज्यते जगत्॥ १११॥

इदं च परमं स्थानं संसारातपनाशनम्।
माया ते दर्शिता यद्वै ततो मायाभिधन्त्विदम्॥ ११२॥

तीर्थं पापवनाग्निर्वै सद्यः शुद्धिकरं स्मृतम्।
ये नराः पिंडदानं हि करिष्यन्ति महाशयाः।
तेषां गयाश्राद्धशतैः किं कर्तव्यं कृतैस्तथा॥ ११३॥

---

१. एता मे परं।

न तुम्हें स्त्रीत्व की प्राप्ति हुई है, न निषाद के घर में जन्म हुआ है, न विवाह हुआ है और नाहीं पुत्र आदि उत्पन्न हुए, यह सारा प्रपंच कुछ नहीं हुआ है ॥ १०३॥

हे भद्र ! पहले तुमने तपस्या के जिस फल की याचना की थी, हे विप्र ! तुम्दारा प्रिय चाहने वाले मैंने वही माया तुमको दिखला दी है ॥ १०४ ॥

हे विप्र ! इस माया से मोहित होकर ही मनुष्य परम तत्त्व को नहीं जान पाता । तुम उससे मोहित हो गये थे; अतः इस अद्भुत माया को देखा ॥ १०५ ॥

तुम्हें अपनी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये । यह जगत् मायारूप है । यह माया का स्वभाव है कि सब समयों में इसका प्रपंच होता है ॥ १०६ ॥

जो आत्मा नहीं है, ऐसे शरीर आदि में जो आत्मा की बुद्धि हो जाती है, उसी माया से यह सारा चर-अचर जगत् सम्मोहित होता है ॥ १०७ ॥

परम आत्मा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु होती है, न वेदना होती है, न वृद्धि होती है, न ह्रास होता है, न बाल्यावस्था होती है और न युवा अवस्था होती है ॥ १०८ ॥

उस नित्य परम-आत्मा में वार्धक्य भी नहीं होता । यह तो मेरी चेष्टाओं के स्वरूप का स्वभाव प्रवर्तित होता है ॥ १०९ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! वह मेरी माया संसार की मूलभूत है । हे प्रभो ! यदि तुम मेरी कृपा से उसको छोड़ सकते हो, तब अनेक दुःखमय अस्थिर संसार से पार हो सकते हो ॥ ११० ॥

हे महाभाग ! इसके बाद मेरी वह दुर्ज्ञेय माया, जिस प्रकार जगत् की संसृष्टि करती है, तुमको व्याप्त नहीं करेगी ॥ १११ ॥

और यह परम स्थान संसार के दुःखों का विनाश करने वाला होगा । क्योंकि वहाँ मैंने तुमको माया को दिखाया है अतः इस क्षेत्र का नाम मायाक्षेत्र होगा ॥११२॥

यह तीर्थ पापरूपी वन के लिये अग्नि होगा और निश्चय से तत्काल शुद्धि करने वाला होगा । जो महाशय मनुष्य यहाँ पिण्डदान करेंगे उनको गया में सौ श्राद्ध करके भी क्या करना है ॥ ११३ ॥

दानमत्र कुरुक्षेत्रवृद्धितोऽष्टगुणं तथा ।
मायाकुंडे तथा स्नानं कोटि कोटिगुणं भवेत् ।। ११४ ।।

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
सर्वं कोटिस्तथा कोटी भविष्यन्ति न संशयः ।। ११५ ।।

मायाकुंडमिदं मायाक्षेत्रे श्रेष्ठतमं स्मृतम् ।। ११६ ।।

स्कन्द उवाच—
इत्युदीर्य स भगवान् महाविष्णुर्महामते ।
अन्तर्दधौ ब्राह्मणस्य पश्यतः सोमशर्म्मणः ।। ११७ ।।

आश्चर्यं परमं लेभे सोमशर्मा द्विजोत्तमः ।
तत्रैव संस्थितो विप्र दृष्टवान्मुनिपुंगवान् ।। ११८ ।।

स्नातुं समागतास्ते चाऽपृच्छंस्तं महदाशयाः ।
किं कृता शीघ्रता विप्र मज्जने चाघमर्षणे ।। ११९ ।।

इति तेषां च वचनं श्रुत्वा मायाबलं च तत् ।
न मुमोह महाभाग कृपया जगदीशितुः ।। १२० ।।

सोऽपि कालेन केनापि सायुज्यं प्राप्तवान्परम् ।
इति ते कथितं विप्र मायातीर्थस्य वैभवम् ।
श्रुत्वा यत्सर्वमायाभ्यो लिप्यते न हि मायया ।। १२१ ।।

इदं स्थानं परं गोप्यं भवमुक्तिकरं ध्रुवम् ।। १२२ ।।

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रके
सोमशर्मोपाख्यानं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

यहाँ पर किया गया दान कुरुक्षेत्र में किये गये दान से आठ गुना अधिक पुण्यशाली होता है। और मायाकुण्ड में किये गये स्नान का फल करोड़-करोड़ गुना हो जाता है ॥ ११४ ॥

इस माया कुण्ड में स्नान करना, दान देना, जप करना, हवन करना, स्वाध्याय करना और पितरों का तर्पण करना यह सब करोड़-करोड़ गुना हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११५ ॥

मायाक्षेत्र मैं यह मायाकुण्ड सबसे श्रेष्ठ माना गया है ॥ ११६ ॥

स्कन्द ने कहा—

हे महामते नारद ! इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णु सोमशर्मा ब्राह्मण के देखते-देखते ही अन्तर्धान हो गये ॥ ११७ ॥

उस द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा को परम आश्चर्य हुआ। हे विप्र नारद ! उसने वहीं पर स्थित होकर श्रेष्ठ मुनियों को देखा ॥ ११८ ॥

वे मुनि वहाँ स्नान करने के लिये आये थे। उन महाशयों ने सोमशर्मा ब्राह्मण से पूछा—हे विप्र ! स्नान करने में और अघमर्षण मन्त्रों का पाठ करने में शीघ्रता क्यों की है॥ ११९ ॥

हे महाभाग ! उनके इस वचन को सुनकर और जगन् के ईश विष्णु की माया के सामर्थ्य को जानकर वह सोमशर्मा मोहित नहीं हुआ ॥ १२० ॥

उसने भी कुछ समय पश्चात् विष्णु के परम सायुज्य को प्राप्त किया। हे विप्र ! यह मैंने तुम्हें मायातीर्थ के वैभव को कह दिया है। इसको सुनकर मनुष्य सब मायाओं से दूर रहकर माया से लिप्त नहीं होता ॥ १२१ ॥

यह परम गुप्त स्थान निश्चय ही भव-बन्धन से मुक्त करने बाला है ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य में कुब्जाम्रक प्रकरण में सोमशर्मोपाख्यान नाम का एक सौ अठारहवां अध्याय पूरा हुक्षा ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्याय:

कौमुदतीर्थचन्द्रेश्वरसार्षपतीर्थसोमेश्वराद्यनेक पुण्यस्थानवर्णनम्

स्कन्द उवाच—

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं परमपावनम् ।
तस्मादूर्ध्वप्रदेशे हि धनुषां पञ्चविंशतौ ॥ १ ॥

कौमुदं नाम तत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
यत्र स्नात्वा नरो विप्र सोमलोके महीयते ॥ २ ॥

कार्तिके च तथा राधे माघे मार्गशिरे तथा ।
स्नानं कुर्वन्ति येऽप्यत्र ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ।
प्राप्नुवन्ति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ३ ॥

यदि कश्चिद्भाग्यवशात् प्राणांस्त्यजति तत्र वै ।
पुमान्वा यदि वा षण्ढो नारी वा पापसंयुता ॥ ४ ॥

स याति परमाँल्लोकान्पुनरावृत्तिदुर्लभान् ॥ ५ ॥

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि यथा तज्ज्ञायते परम् ।
कुमुदस्य तथा गन्धो लक्ष्यते मध्यरात्रके ॥ ६ ॥

अकस्माच्चन्द्रिका तत्र दृश्यते तीर्थराजके ।
पुरा तत्र महाभाग चन्द्रो वै तप्तवांस्तपः ॥ ७ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं च महादेवमनुस्मरन् ।
ततः प्रसन्नो भगवान्सन्तुष्टो वृषभध्वजः ॥ ८ ॥

प्रादात्स्थानं ललाटे स्वे चंद्राय ध्रुवमुत्तमम् ।
कौमुदस्य तु मासस्य राकायां यन्निशाकरः ।
वरं च प्राप्तवान् रुद्रात्तीर्थं कौमुदकं ततः ॥ ९ ॥

अध्याय ११६

कौमुद तीर्थ, चन्द्रेश्वर, सार्षप तीर्थ, सोमेश्वर आदि अनेक पुण्य स्थानों का वर्णन

स्कन्द ने कहा—

इसके बाद मैं परम पावन अन्य तीर्थ को बताऊंगा। उससे (कुब्जाम्रक से) ऊपर के प्रदेश में २५ धनुष की दूरी पर ॥ १ ॥

हे विप्र ! कौमुद नाम का तीर्थ है, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। यहां स्नान करके मनुष्य चन्द्रलोक में महिमा को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

कार्तिक, वैशाख (राध), माघ और मार्गशिर (अगहन) महीनों में जो मनुष्य यहां जाने-अनजाने में स्नान करते हैं, वे उस परम स्थान को प्राप्त करते हैं, जहां जाकर शोक नहीं रहता ॥ ३ ॥

यदि कोई भाग्यवश यहां प्राणों का परित्याग करता है, चाहे वह पुरुष हो, या नपुंसक हो, या पापिनी नारी हो···· ॥ ४ ॥

वह उन परम लोकों में जाता है, जहां से पुनः लौटना दुर्लभ है ॥ ५ ॥

मैं उसका चिह्न बताऊंगा, जिससे कि उस तीर्थ को पहचान लोगे। वहां रात्रि में कुमुद की गन्ध लक्षित होती है ॥ ६ ॥

उस तीर्थराज में अकस्मात् चांदनी दृष्टिगोचर होती है। हे महाभाग ! वहां पहले चन्द्र ने तपस्या की थी ॥ ७ ॥

वह दिव्य सहस्र वर्ष तक महादेव का स्मरण करता रहा। तदनन्तर भगवान् वृषभध्वज (शिव) प्रसन्न और सन्तुष्ट हुये ॥ ८ ॥

उन्होंने अपने मस्तक पर उसको स्थिर उत्तम स्थान प्रदान किया। कौमुद (क्वार) महीने की पूर्णिमा में चन्द्रमा ने रुद्र से इस कौमुद नाम के तीर्थ का वर पाया था ॥ ९ ॥

तस्यैव दक्षिणे भागे शिवचन्द्रेश्वराभिधः।
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापकोटयः॥ १० ॥

चन्द्रेश्वरं सकृद्दृष्ट्वा स्नात्वा वै कौमुदे ह्रदे।
पुष्कलां लभते सिद्धिं विष्णुलोकं च गच्छति॥ ११ ॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं सार्षपकं परम्।
यस्य दर्शनमात्रेण शुद्धो भवति मानवः॥ १२ ॥

तस्माच्छरद्वये पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
यत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुश्चैव सुरासुराः।
वापयामासुरत्यर्थं [1]सर्षपान्यज्ञहेतवे॥ १३ ॥

यदा दक्षो महातेजा गंगाद्वारसमीपतः।
चकार विपुलं यज्ञं यत्र दग्धा सती पुरा॥ १४ ॥

ततश्चेदं महातीर्थं नाम्ना [2]सार्षपकं स्मृतम्।
यत्र स्नानान्नरो याति लोकान्पुण्यान्सनातनान्॥ १५ ॥

अथाऽत्र मुंचते प्राणान्महापापैर्युतोऽपि वा।
संगच्छति परं स्थानं यत्र ब्रह्मादयः सुराः॥ १६ ॥

यदि भाग्यवशाद्विप्र वैशाखे स्नाति मानवः।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं कल्पेनाऽपि न शक्यते॥ १७ ॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
तत्फलं लभते तत्र स्नानमात्रेण मानवः॥ १८ ॥

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि मध्याह्ने मृगरूपधृक्।
समायाति रविः स्नातुं रविवारे विशेषतः॥ १९ ॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके महत्।
नाम्ना पूर्णमुखं ख्यातं देवानामपि दुर्लभम्॥ २० ॥

---

१. शर्षपान् २. शार्षपकं।

उसके ही दक्षिण भाग में शिवचन्द्रेश्वर नाम के महादेव हैं, जिनके दर्शन-मात्र से करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं ।। १० ।।

जो मनुष्य एक बार चन्द्रेश्वर महादेव का दर्शन करके कौमुद ह्रद में स्नान करता है, वह पुष्कल सिद्धि को प्राप्त करता है और विष्णुलोक को जाता है ।। ११ ।।

मैं तुमको अन्य सार्षपक तीर्थ के विषय में बताऊंगा, जिसके दर्शन-मात्र से मनुष्य शुद्ध हो जाता है ।। १२ ।।

यह कौमुद तीर्थ से दो शर विक्षेप दूर है । सब पापों का विनाश करने वाला यह तीर्थ पुण्यशाली है । यहाँ ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु और अन्य सुर-असुरों ने यज्ञ करने के लिये सरसों बोये थे ।। १३ ।।

जबकि महातेजस्वी दक्ष ने गंगाद्वार के सपीप विपुल यज्ञ किया था और जहां पूर्व समय में सती जल गई थीं ।। १४ ।।

तब से लेकर यह महातीर्थ सार्षपक नाम से जाना गया । यहां स्नान करने से मनुष्य सनातन पुण्य लोकों में जाता है ।। १५ ।।

महान् पापों से युक्त भी कोई मनुष्य यदि यहां प्राणों का परित्याग करता है, तो वह परम स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ कि ब्रह्म आदि देवता रहते हैं ।। १६ ।।

हे विप्र ! यदि कोई मनुष्य भाग्यवश यहाँ वैशाख मास में स्नान करता है, तो उसके पुण्य-फल को कल्प तक भी कोई कह नहीं सकता ।। १७ ।।

सब तीर्थों से जो पुण्य मिलता है, सब यज्ञों से जो फल मिलता है, मनुष्य को वह फल यहां स्नान करने मात्र से प्राप्त हो जाता है ।। १८ ।।

मैं उस सार्षप तीर्थ का चिह्न बताऊंगा । मध्याह्न के समय सूर्य मृग के रूप को धारण करके यहां आता है, विशेष रूप से रविवार को ।। १९ ।।

मैं कुब्जाम्रक क्षेत्र में अन्य भी महान् तीर्थ को बताऊंगा । उसका नाम पूर्णमुख प्रसिद्ध है और वह देवताओं को भी दुर्लभ है ।। २० ।।

यत्र व स्नानमात्रेण सोमलोकं स गच्छति ।
ज्ञेयं तत्रोष्णसलिलं शीते गंगाजले पुनः ।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। २१ ।।

सोमेश्वरं महालिंगं जलमध्ये प्रवर्त्तते ।
जलमध्येऽथ सम्पूज्य शिवलोके महीयते ।। २२ ।।

शतवर्षसहस्राणि दिव्यभोगसमन्वितः ।
ततस्तस्मात्परिभ्रष्टो ब्राह्मणः शुद्धवंशजः ।
जायते शिवभक्तश्च सर्वशास्त्रविशारदः ।। २३ ।।

पुनर्मुक्तिमवाप्नोति मृत्वा यत्तीर्थके परे ।
द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु यस्तत्र कुरुते क्रियाम् ।
सर्वा ह्यनन्तफलदास्तस्मात्पापं विवर्जयेत् ।। २४ ।।

प्राणांस्त्यजति वा ह्यत्र व्रतेन व्रततत्परः ।
विष्णुर्ददाति साक्षाद्वै दर्शनं चामृतं तथा ।। २५ ।।

तस्माद्बाणप्रमाणे हि तीर्थकं करवीरकम् ।
माघमासे सिते पक्षे द्वादश्यां करवीरकः ।
पुष्पितो दृश्यते तत्र तस्मात्तज्ज्ञायते शुभम् ।। २६ ।।

पितृभ्यश्चाम्बुदानं हि यैः कृतं शुभलिप्सुभिः ।
कल्पकोटिसहस्रैस्तु विमानवरमाश्रितः ।
मोदते भवने विष्णोः पितृभिः सह नारद ।। २७ ।।

ततो गच्छेत्पुंडरीके तीर्थे पापवनानले ।
यत्र चक्रप्रमाणो वै चरते कमठो मुने ।। २८ ।।

मध्याह्ने तत्र देवेशो ह्यायाति निजशुद्धये ।
तत्र स्नात्वा महाभाग पुंडरीकफलं लभेत् ।। २९ ।।

यस्तत्र त्यजते प्राणान्स याति हरिमव्ययम् ।
यस्तत्र कुरुते दानं त्रुटिमात्रं हिरण्यकम् ।
दशानां पुण्डरीकानां यज्ञानां फलभाग्भवेत् ।। ३० ।।

यहां स्नान करने मात्र से मनुष्य चन्द्रलोक (सोमलोक) को जाता है। वहां शीतल गंगा जल में उष्ण जल है। इसके दर्शन मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥

वहां सोमेश्वर नाम का महालिंग जल के मध्य में है। जल के मध्य में इस का पूजन करके मनुष्य शिवलोक में महिमा को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

वहां वह एक लाख वर्षों तक दिव्य भोगों का उपभोग करता है। तदनन्तर वहां से वापस लौटकर शुद्ध ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होता है। यहाँ वह सब शास्त्रों में विशारद और शिव का भक्त होता है ॥ २३ ॥

वह पुनः परम तीर्थ में जाकर मृत्यु को प्राप्त होता है। जो मनुष्य शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में वहाँ जिन कर्मों को करता है, उसके वे कर्म अनन्त फलों को देने वाले हैं। अतः पाप कर्म का परित्याग करदे ॥ २४ ॥

जो मनुष्य वहाँ व्रतों का पालन करते हुये प्राणों का परित्याग करता है, विष्णु उसको साक्षात् रूप में दर्शन देते हैं और वह अमृत प्राप्त करता है ॥ २५ ॥

उस स्थान से एक शर विक्षेप दूर कर वीरक नाम का तीर्थ है। माघ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में वहां करवीर वृक्ष पुष्पित दिखाई देता है। उससे मनुष्य का शुभ होता है ॥ २६ ॥

हे नारद ! शुभ को चाहने वाले जो मनुष्य यहां पितरों के लिये जल का तर्पण करते हैं, वे हजार-करोड़ वर्षों तक उत्तम विमान में आरूढ होकर विष्णुलोक में पितरों के साथ आनन्द करते हैं ॥ २७ ॥

हे मुने ! तदनन्तर पापरूपी वन के लिये अग्निरूप पुण्डरीक तीर्थ में जाना चाहिये। यहां चक्र के परिमाण वाला कछुआ विचरण करता है ॥ २८ ॥

मध्याह्न के समय वहाँ अपनी शुद्धि के लिये देवराज इन्द्र आते हैं। हे महाभाग ! वहां स्नान करके मनुष्य विष्णु लोक रूप फल को पाता है ॥ २९ ॥

जो वहां प्राणों का परित्याग करता है, वह अविनाशी विष्णु को प्राप्त करता है। जो वहां अणुमात्र भी स्वर्ण का दान करता है, वह दस पुण्डरीक यज्ञों के फल का भागी होता है ॥ ३० ॥

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके स्थितम् ।
पुंडरीकस्य तीर्थस्य वामभागे धनुःशते ।
गुह्यमेतच्छुभं कुंडं ज्ञायते नैव पापिना ॥ ३१ ॥

येन स्नातं च तीर्थेषु येन वै पूजनं हरेः ।
कृतं तद्वै विजानाति तीर्थं परमपावनम् ॥ ३२ ॥

यत्राग्निः संस्तुतो देवैः पुरा प्रादुर्बभूव ह ।
तस्मादिदं परं तीर्थमग्निसंज्ञां गतं शुभम् ॥ ३३ ॥

धन्यः स एव लोकेषु पुण्यात्मा मुनिपुंगवः ।
अग्नितीर्थं येन दृष्टं विष्णुसायुज्यदं परम् ॥ ३४ ॥

यदत्र क्रियते कर्म सर्वं तत्स्यादनन्तकम् ।
यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्याग्रकोटिभिः ।
संयुक्तोऽपि नरः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ३५ ॥

त्रैलोक्ये धन्यतां याति दर्शनाद्दर्शनार्थवित् ।
अग्नितीर्थस्य संयोगो यावन्नो भवति द्विज ।
तावत्कलिभयं विद्यात्स्पृष्टे पापक्षयो भवेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रके
एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रहोगतयोः शिवयोर्मध्ये गतस्याग्ने रुद्रकोपाद्दाहो विष्णवादि-देवप्रार्थनया कुब्जाम्रतीर्थे रुद्रनेत्रात्तस्य पुनरुत्पत्तिरग्नि-तीर्थमाहात्म्यम्

स्कन्द उवाच—
शृणु वत्स पुरावृत्तं पापघ्नं सर्वकामदम् ।
यथा वैश्वानरो देवः प्राप्तवाञ्छापमीशतः ॥ १ ॥

अब मैं कुब्जाम्रक क्षेत्र में स्थित एक अन्य तीर्थ का वर्णन करूंगा। पुण्डरीक तीर्थ के बायें भाग में सौ धनुष की दूरी पर यह शुभ कुण्ड गुप्त रूप से स्थित है। उसको पापीजन नहीं पहचान सकते ॥ ३१ ॥

इस तीर्थ में जिसने स्नान कर लिया है और यहां जिसने हरि का पूजन कर लिया है, वही उस परम पावन तीर्थ में होने वाले पुण्य को जानता है ॥ ३२ ॥

यहां प्राचीन काल में देवताओं से स्तुति किया जाकर अग्नि प्रादुर्भूत हुआ था। अत: इसके पश्चात् इस तीर्थ का नाम अग्नितीर्थ हुआ ॥ ३३ ॥

लोकों में वही मनुष्य धन्य है, पुण्यात्मा है और श्रेष्ठ मुनि है, जिसने अग्नि तीर्थ का दर्शन कर लिया है। वह विष्णु के परम सायुज्य को प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

यहां जो कर्म किया जाता है, वह अनन्त फल देने वाला है। यहां स्नान करने मात्र से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि उच्च कोटि के पापों से युक्त होने पर भी उनसे मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ३५ ॥

तीर्थों के दर्शन के वास्तविक तत्त्व को जानने वाला मनुष्य इसका दर्शन करने से तीनों लोकों में धन्य हो जाता है। हे द्विज ! जब तक अग्नितीर्थ का संयोग नहीं होता, तभी तक कलियुग का भय रहता है। उसका स्पर्श होने पर पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र माहात्म्य में कुब्जाम्रक क्षेत्र नामक ११९ वां अध्याय पूरा हुआ ॥

अध्याय १२०

एकान्त में विद्यमान शिव-पार्वती के मध्य में जाने वाले अग्नि का रुद्र के कोप से दाह, विष्णु आदि देवताओं की प्रार्थना पर कुब्जाम्रक तीर्थ में रुद्र के नेत्र से उसकी पुन: उत्पत्ति, अग्नितीर्थ का माहात्म्य

स्कन्द ने कहा—

वे वत्स ! पापों को नष्ट करने वाले और सब कामनाओं को देने वाले प्राचीन वृत्तान्त को सुनो। जिस प्रकार से कि अग्नि देवता ने शिव से शाप को पाया था ॥ १ ॥

एकदा हिमशोभाढ्ये कैलासे प्रमथावृते ।
शिवश्च शिवया सार्द्धं क्रीडन्नास्ते रसाप्लुतः ॥ २ ॥

शालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसैर्वटैः ।
भूर्जैर्भज्जकरैश्चैव कुंकुमैश्चंपकद्रुमैः ॥ ३ ॥

घने नीहारसंयुक्ते रजतेनेव संवृते ।
तत्र स्वर्णमया वृक्षाः पक्षिणश्च हिरण्मयाः ॥ ४ ॥

नानाप्रसवशोभाढ्ये धातुरागविभूषिते ।
रमयामास देवेशो गिरौ गिरिजया सह ॥ ५ ॥

वसन्तश्च सदा तत्र समग्रेणेन्दुना सह ।
पुंस्कोकिलरुतैश्चैव तथा मधुरनिःस्वनैः ॥ ६ ॥

पुष्पितानि वनान्यासन्विचेरुर्भ्रमरास्ततः ।
एवं तस्मिन्वनोद्देशे क्रीडायां संस्थितौ शिवौ ॥ ७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दर्शनार्थमुमापतेः ।
आजगाम सुनासीरस्त्रिदशौघसमन्वितः ॥ ८ ॥

यावद् गच्छति कैलासे प्रणंतुं च सदाशिवम् ।
तावन्निवारितो नंदिगणेन प्रमथेशिना ॥ ९ ॥

एकान्ते संस्थितो देवः शिवया सहितः प्रभो ।
न कालो दर्शनस्याऽयं गच्छध्वं त्रिदशेश्वराः ॥ १० ॥

इत्युक्तो नंदिना शक्रो जगादाऽग्निमितः स्थितम् ।
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि सर्वदा ॥ ११ ॥

त्वया तत्र प्रगन्तव्यं विलीनेन मदाज्ञया ।
सत्यं वा यदि वाऽसत्यं वदति प्रमथो ह्ययम् ॥ १२ ॥

शिवोऽन्तः किं प्रकुरुते सर्वं विज्ञाय चेष्टितम् ।
शीघ्रं त्वयाऽत्राऽऽगन्तव्यं मा विलम्बं कुरु प्रभो ॥ १३ ॥

एक बार हिम की शोभा से सम्पन्न और प्रमथों से घिरे हुये कैलास पर्वत पर भगवान् शिव श्रृङ्गार रस से आप्लुत होकर पार्वती के साथ क्रीडा कर रहे थे ।। २ ।।

वह स्थान, साल, तमाल, ताल, खजूर, कटहल, बढ, भोजपत्र, देवदारु, केसर और चम्पक वृक्षों से शोभित था ।। ३ ।।

वह घने नीहार (हिम) से इस प्रकार संयुक्त था, मानो चांदी से ढका हो। वहां स्वर्णमय वृक्ष और हिरण्मय पक्षी थे ।। ४ ।।

विविध वनस्पतियों की शोभा से सम्पन्न और धातुओं की लालिमा से विभूषित उस कैलाश पर्वत पर देवताओं के ईश शिव पार्वती के साथ रमण कर रहे थे ।। ५ ।।

वहां सदा वसन्त ऋतु विद्यमान रहती थी। सम्पूर्ण चन्द्रमा प्रकाशित रहता था। मधुर स्वर वाले पुरुष कोकिलों की ध्वनि विद्यमान रहती थी ।। ६ ।।

वन पुष्पित थे। इधर-उधर भ्रमर विचरण कर रहे थे। इस प्रकार उस वन्य स्थान पर शिव-पार्वती क्रीडा कर रहे थे ।। ७ ।।

इसी मध्य में वहां उमापति शिव का दर्शन करने के लिये देवताओं को साथ लेकर इन्द्र आ गया ।। ८ ।।

जब वह सदाशिव को प्रणाम करने के लिये कैलास पर्वत पर आ रहा था। उस समय प्रमथों के ईश नन्दी नाम के गण ने उसको रोका ।। ९ ।।

उसने कहा कि हे प्रभो ! देव शिव पार्वती के साथ एकान्त में स्थित हैं। यह उनके दर्शन का समय नहीं है। अतः हे देवताओ ! चले जाओ ।। १० ।।

नन्दी के इस प्रकार कहने पर इन्द्र ने वहां स्थित अग्नि से कहा—हे अग्ने ! तुम सब प्राणियों के अन्दर सदा विचरण करते हो ।। ११ ।।

तुम मेरी आज्ञा से छिप कर वहां जाओ। पता नहीं कि यह प्रमथ सत्य कहता है या असत्य कह रहा है ।। १२ ।।

शिव अन्दर क्या कर रहे हैं, इस प्रकार इनकी सब चेष्टाओं को जान कर तुम शीघ्र यहां आ जाओ। हे प्रभो ! विलम्ब मत करो ।। १३ ।।

इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा वह्निः कालप्रचोदितः ।
जगाम तत्र देशे हि यत्राऽऽस्ते भगवाञ्छिवः ।। १४ ।।

अग्नेर्विचेष्टितं ज्ञात्वा महादेवो दिवस्पतेः ।
कारितं च तथा ज्ञात्वा शशापाऽग्नि त्वरान्वितः ।। १५ ।।

यज्ञभागाश्च देवानां नाशमेष्यन्ति सत्वरम् ।
अयमग्निश्च लोकाद्धि विनंक्ष्यति न संशयः ।। १६ ।।

इतीरितं शिवस्याऽग्निर्ननाश क्षणतस्तदा ।
इन्द्रो वै दैवतैः सार्द्धं वेपमानो गृहं ययौ ।। १७ ।।

निःस्वाध्यायवषट्कारं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात् ।
निश्चेष्टाश्च तथा ह्यासन्प्राणिनो वह्निवर्जिताः ।। १८ ।।

प्रलये यानि कर्माणि तान्यासन्वह्निसंक्षये ।
उल्कापाताश्च शतशो पेतुर्वै धरणीतले ।। १९ ।।

इन्द्रोऽपि दैवतैः सार्द्धं ययौ क्षीरोदसागरे ।
तत्र स्थितं रमानाथं ब्रह्मणा सहितस्तदा ।। २० ।।

ब्रह्माऽपि तत्र गत्वा च विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमे ।
विनयावनतो भूत्वा वासवेन समन्वितः ।। २१ ।।

ब्रह्मोवाच—

नमस्ते भगवन् विष्णो चराचरगत प्रभो ।
रमापते रसाधीश कृतदैत्यविनाशन ।। २२ ।।

मुरारये नमस्तेऽस्तु नमो भक्तजनाश्रय ।
नमस्ते सुरराजाय सहस्राक्षाय ते नमः ।। २३ ।।

ऋग्वेदाय नमस्तुभ्यं यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ।
सामवेदाय देवाय नमोऽथर्वस्वरूपिणे ।। २४ ।।

अग्निनाशेन सर्वेषां नाशो भवति निश्चितम् ।
निःस्वाध्यायवषट्कारं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।। २५ ।।

इस प्रकार आज्ञा को शिरोधार्य करके काल से प्रेरित किया गया अग्नि उस देश में गया, जहां कि भगवान् शिव थे ।। १४ ।।

अग्नि की चेष्टाओं को और देवराज इन्द्र के कार्य को जान कर महादेव ने शीघ्रता से अग्नि को शाप दिया ।। १५ ।।

देवताओं के यज्ञ में भाग शीघ्र नष्ट हो जायेंगे । यह अग्नि संसार से निस्सन्देह रूप से नष्ट हो जायेगा ।। १६ ।।

इस प्रकार से शिव के कहने पर तब अग्नि उसी क्षण नष्ट हो गया । कांपता हुआ इन्द्र देवताओं के साथ घर चला गया ।। १७ ।।

क्षण भर में तीनों लोक स्वाध्याय से और वषट्कार (यज्ञाहुति) से रहित हो गये । अग्नि से रहित सारे प्राणी निश्चेष्ट हो गये ।। १८ ।।

प्रलय होने पर जो कार्य होते हैं, वह्नि का नाश होने पर, वे सब होने लगे । पृथिवीतल पर सैंकड़ों उल्कापात होने लगे ।। १९ ।।

इन्द्र भी देवताओं के साथ क्षीर सागर में गया । वहां रमानाथ विष्णु ब्रह्मा के साथ स्थित थे ।। २० ।।

उनके वहां आने पर ब्रह्मा ने भी विनय से अवनत होकर इन्द्र के साथ मिलकर विष्णु की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ।। २१ ।।

ब्रह्मा ने कहा—

चर-अचर में व्याप्त प्रभो, रमापते, पृथिवी के स्वामी, दैत्यों का विनाश करने वाले हे विष्णो ! तुमको नमस्कार है ।। २२ ।।

मुर नामक असुर का विनाश करने वाले तुमको नमस्कार है । भक्त जनों के आश्रय तुमको नमस्कार है । देवताओं के अधीश तुमको नमस्कार है । हजारों आंखों वाले तुमको नमस्कार है ।। २३ ।।

ऋग्वेदरूप तुमको नमस्कार है । यजुर्वेद रूप तुम को नमस्कार है । सामवेद देवतारूप तुमको नमस्कार है । अथर्ववेदरूप तुमको नमस्कार है ।। २४ ।।

अग्नि का विनाश होने से सबका निश्चित रूप से नाश हो जायेगा । चर-अचर सहित तीनों लोक स्वाध्याय एवं वषट्कार से रहित हो गये हैं ।। २५ ।।

विनंक्ष्यामो रमानाथ वयं सर्वे सवासवाः।
त्वयैवेदं कृतं पूर्वमकाले क्षयमेति च॥ २६॥

रुद्रशापाग्निनिर्दग्धो नष्टोत्ग्निर्भुवनत्रये।
यदा यदा महाविष्णो ग्लानिर्भवति संसृतौ।
तदा त्वयैव सर्वं हि कृतं शत्रुविनाशनम्॥ २७॥

पुनर्यथा वीतिहोत्रो जायते च तथा कुरु॥ २८॥

श्रीभगवानुवाच—

गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे कुब्जाम्रश्रेत्र उत्तमे।
तत्राऽहं च शिवश्चापि संस्थितो चतुरानन॥ २९॥

तत्र ह्याराधयिष्यामो भगवन्तं महेश्वरम्।
नित्यं सन्निहितस्तत्र पिनाकी त्रिदशेश्वराः॥ ३०॥

स्कन्द उवाच—

इति कृत्वा मतिं तां वै ब्रह्माद्यास्तिदिवौकसः।
गताः कुब्जाम्रके क्षेत्रे शिवं स्तोतुं प्रचक्रमुः॥ ३१॥

देवा ऊचुः —

प्रतिष्ठितानीश्वरमार्यवृत्ति कृत्तिप्रवत्ते नवमालतीभे।
वृन्दारवंद्याखिलमूर्त्तकंदे नंदीशवन्दीभवचन्द्रचूड़े॥ ३२॥

अधीश्वरे सागरकालकूटकंठे प्रचण्डापरवारहृद्ये।
विद्यानवद्येऽमितवैद्यविद्ये सिद्धे प्रसिद्धे विधुबुद्धिशुद्धे॥ ३३॥

भावः स्यान्नो भीतिभाजोंशभाजो भूयः स्याम श्वेतभूभृद्वरेशात्।
केशावासेनेन नीतांशरूपाद् भूतेशो मूभीमभूपांतराजा॥ ३४॥

स्फुरद्विधुदलादिकं कलितकालिसंमालिकं,
सुनेत्रवनमंजरीप्रभवभूरिगंगास्पदम्।
वमद्विषपरंपराभयकरा हि भूषाधरं,
धराधरसुतावरं परमहं भजामो वयम्॥ ३५॥

हे विष्णो ! इन्द्रसहित सब देवता नष्ट हो जायेंगे। तुमने यह जो पूर्वकाल में रचना की है, वह असमय में नष्ट हो रही है ॥ २६ ॥

रुद्र के शाप रूपी अग्नि से तीनों लोकों में अग्नि नष्ट हो गया है। हे विष्णो ! संसार में जब-जब शुभ का नाश होता है, तब तुम ही सब शत्रुओं का विनाश करते हो ॥ २७ ॥

जिससे कि पुनः हवन की क्रियायें होने लगें, वैसा कीजिये ॥ २८ ॥

श्री भगवान् ने कहा—

हे देवताओ ! तुम सब उत्तम कुब्जाम्रक क्षेत्र में जाओ। हे चतुरानन ! वहां मैं और शिव भी स्थित हैं ॥ २९ ॥

वहां हम भगवान् महेश्वर की आराधना करेंगे। हे देवताओ ! वहां पिनाकी शिव सदा सन्निहित रहते हैं ॥ ३० ॥

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार विचार करके ब्रह्मा आदि देवता कुब्जाम्रक क्षेत्र में गये और शिव की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३१ ॥

स्कन्द ने कहा—

आर्य व्यवहार वाले हम ईश्वर के समीप आये हैं। नव मालती पुष्प के समान जिसकी कान्ति है, हस्तिचर्म को जिसने धारण किया है, जिनकी मूर्ति देवताओं से वन्दनीय है और जो सम्पूर्ण मूर्त जगत् का मूल है। वह नन्दी का स्वामी, संसार का रक्षक और चन्द्रचूड है ॥ ३२ ॥

जो सबका अधीश्वर है, समुद्र से उत्पन्न कालकूट विष को कण्ठ में रखता है, प्रचण्ड आपत्तियों को दूर करता है, हृद्य है, निर्दोष विद्याओं से युक्त है, असीमित चिकित्सा विद्या को जानता है, सिद्ध और प्रसिद्ध है, चन्द्रमा के समान शुद्ध बुद्धि वाला है···॥ ३३ ॥

उस शिव के प्रति हमारी भक्ति हो। हम भयभीत हैं। हिमालय के स्वामी आपकी कृपा से हम पुनः यज्ञ के अंश के भागी हैं। तुम सुखों को प्रदान करने वाले, पापों का विनाश करने वाले, भूतों के स्वामी और पृथिवी पर भयानक राजाओं के विनाश पर शासन करने वाले राजा हो ॥ ३४ ॥

कान्तिमान् चन्द्रमा की कला को धारण करने वाले, कण्ठ में कालिमा रूप माला को धारण करने वाले, उत्तम नेत्र वाले, वन मंजरी से उत्पन्न श्रेष्ठ गंगा को धारण करने वाले, विष की परम्पराओं को वमन करने वाले, भयानक सर्पों के आभूषण को धारण करने वाले, पार्वती के पति परम शिव का हम भजन करते हैं ॥ ३५ ॥

प्रपन्नपरमापहं वृजिनदोहमोहापहं,
जलौघवरधीप्रदं सुरवरं धियार्थप्रदम् ।
जरामरणकालिनं भवबलाज्ञसंशालिनं,
गले कलितकालिकं भुवनपालकं चालकम्[1] ॥ ३६ ॥

भजेम गजचर्मणा प्रकटशुद्धतत्कर्मणा,
सुशोभितकटोत्कटं नटितभूरिचंचज्जटम् ।
चराचरपरंपराहरणधीरमंदासुरा–
सुरेशमूर्तिकारकं जितमनोजकं तारकम् ॥ ३७ ॥

श्रयेम नवभावनप्रखरचंडनंद्याहत–
प्रकीर्णमणिमंजरीमुकुटकूटभूतावृतम् ।
महेशभवनं वनं परमुदा पुनर्भावितं,
विरोधिविविधार्थदं विबुधवंद्य पादे नताः ॥ ३८ ॥

स्कन्द उवाच—

इति देवैः स्तुतो देवो भगवान् पार्वतीपतिः ।
आविर्बभूव तरसा वृषस्थश्चन्द्रशेखरः ॥ ३९ ॥

उवाच वचनं देवान्ब्रह्मादीञ्जातवेदसम् ।
इच्छतो भक्तिनम्रांस्तान्मेघगंभीरनिःस्वनः ॥ ४० ॥

ईश्वर उवाच—

भो भो देवगणाः सर्वे यदर्थपरिचिंतया ।
समागताः स्तुतोऽहं च सन्तुष्टः प्रवदामि वः ॥ ४१ ॥

मन्नेत्रप्रभवेनाऽऽशु बह्निना कुरुत क्रतुम् ।
आप्यायध्वं तथाभूता नयध्वं ददतो मम ॥ ४२ ॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा सहसा भीमो नेत्रज्वालां भयानकाम् ।
[2]ददौ दीनान्महाभाग लेलिहानां त्रिलोककम् ॥ ४३ ॥

तां ज्वालां शिवनेत्रोत्थां दृष्ट्वा त्रस्ताः सुरासुराः ।
प्रसादयामासुरपि स्तोत्रेणाऽऽनतमस्तकाः ॥ ४४ ॥

---

१. घालकम् । २. मंदो ।

शरणागतों की परम आपत्तियों को दूर करने वाले, पापों के समूह और मोह को दूर करने वाले, समुद्र के समान वर और बुद्धि देने को वाले, देवताओं में श्रेष्ठ, बुद्धि से अर्थों की व्याख्या करने वाले, जरा और मरण से रहित, शिव के बल को न जानने वालों को शिक्षा देने वाले, गले में कालबूट दिष की कालिमा को धारण करने वाले, भुवनों का पालन और संचालन करने वाले शिव का हम भजन करते हैं ।। ३६ ।।

शुद्ध कर्मों को प्रकट करने वाले, हाथी के चर्म से सुशोभित विशाल गण्ड-स्थल वाले, नाचती हुई प्रचुर चंचल जटाओं वाले, चर-अचर जगत् की परम्पराओं का हरण करने वाले, धैर्यशाली, परन्तु मुर्ख असुरों और असुरेशों को मारने वाले, कामदेव को जीतने वाले और उद्धार करने वाले शिव का हम भजन करते हैं ।। ३७ ।।

नवीन भावनाओं से भरे प्रखर और प्रचण्ड नन्दी आदि गणों से आहत होने से जिन पर्वत शिखरों पर मुकुटों की मणि-मंजरियां विखर गई हैं, उन पर स्थित भूतगणों से आवृत, परम प्रसन्नता से पुनः ध्यान किये गये, परस्पर विरोधी विविध अर्थों को बताने वाले, बन में स्थित महेश के भवन का हम आश्रय लेते हैं । देवताओं से बन्दनीय हे महेश ! हम तुम्हारे चरणों में प्रणत हैं ।। ३८ ।।

स्कन्द ने कहा—

इस प्रकार देवों द्वारा स्तुति किये जाने पर पार्वती के पति भगवान्, चन्द्रशेखर शिव, वृषभ पर आरूढ होकर शीघ्रता से प्रकट हो गये ।। ३९ ।।

मेघ के समान गम्भीर स्वर वाले शिव ने अग्नि की कामना करते हुये और भक्ति से विनम्र ब्रह्मा आदि देवताओं से कहा ।। ४० ।।

ईश्वर ने कहा—

हे देवताओ ! तुम सब जिस वस्तु का चिन्तन करते हुये यहां आये हो, और तुमने मेरी स्तुति की है, वह मैं जानता हूँ । मैं तुमसे कहता हूँ ।। ४१ ।।

तुम मेरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि से शीघ्र यज्ञ कर लो । तुम प्राणियों को तृप्त करो । मैं इसको देता हूँ तुम ले जाओ ।। ४२ ।।

स्कन्द ने कहा—

है महाभाग ! इस प्रकार कहकर भयानक शिव ने उन दीन देवताओं को तीनों लोकों को चाटती हुई भयानक नेत्र-ज्वाला को दे दिया ।[४३ ।।

शिव के नेत्रों से उत्पन्न उस ज्वाला को देख कर सुर-असुर भयभीत हो गये । नतमस्तक होकर उन्होंने स्तोत्र द्वारा अग्नि को प्रसन्न किया ।। ४४ ।।

देवा ऊचुः —

अग्निर्वैश्वानरो वह्निः कृष्णवर्त्मा भयानकः।
प्रभवो विभवश्चैव वीतिहोत्रस्तनूनपात् ॥ ४५ ॥

भव्यो भीमो भीमनेत्रसमुत्थो देहसंस्थितः।
त्रैलोक्यदीपको भानुः स्वर्भानुः सर्वगस्तथा ॥ ४६ ॥

चित्रभानुः शीतहंता शीतसंस्थः कृपाकरः।
धेनुको वाडवाजन्मा जाठरो जठरस्थितः ॥ ४७ ॥

यज्ञनेता यज्ञभोक्ता भक्तगम्यो भयंकरः।
कृपीटयोनिः शोचिष्माञ्ज्वलनो जातरूपदः ॥ ४८ ॥

जातवेदा वेदसंस्थो ह्याश्रयाशो महाप्रभुः।
दानवारिर्ज्वलत्केशो मदनो दीनवत्सलः ॥ ४९ ॥

स्कन्द उवाच—

अग्नेरेतानि नामानि यः पठेत्प्रयतो नरः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति शतयज्ञफलं लभेत् ॥ ५० ॥

मंदाग्निर्यो नरो विप्र सुभक्त्या प्रतिपत्तिथौ।
नामामृतं पिबेन्नित्यं त्रिवारं नियतः शुचिः ॥ ५१ ॥

मन्दाग्निस्तस्य नश्येद्वै सर्वरोगक्षयस्तथा।
धन्यो भवति लोकेषु पूतात्मा नाऽत्र संशयः ॥ ५२ ॥

स्तूयमानस्ततो वह्निः शांतात्मा ह्यभवत्क्षणात्।
ततो देवा महेशाद्यास्तीर्थमेतत्समाश्रिताः ॥ ५३ ॥

ततो मुने शुभं तीर्थमग्निसंज्ञं स्मृतं त्विदम्।
यत्र स्नात्वा शुभाँल्लोकान्प्राप्नोति च परं पदम् ॥ ५४ ॥

तस्यैवमभिधानं तु कृत्वा देवाः सवासवाः।
प्राप्याग्निं शिवतो विप्र यथास्थानं ययुस्ततः ॥ ५५ ॥

देवों ने कहा—

यह अग्नि वैश्वानर, वह्नि, कृष्णवर्त्मा, भयानक, प्रभव, विभव, वीतिहोत्र और तनूनपात् नामों वाला है ॥ ४५ ॥

यह अग्नि भव्य, भीम, भयानक नेत्र से उत्पन्न, शिव के शरीर में स्थित, तीनों लोकों का दीपक, भानु, स्वर्भानु और सर्वत्र गति करने वाला है ॥ ४६ ॥

यह चित्रभानु, शीत को नष्ट करते वाला, शीतल जल में स्थित, कृपा करने वाला, धेनुक, वडवा (घोड़ी) से उत्पन्न, जठराग्नि और जठर में स्थित है ॥ ४७ ॥

यह यज्ञ का नेता, यज्ञ का भोक्ता, भक्त से गम्य, विनाशक, कृपीटयोनि (ईंधन से उत्पन्न), शोचिष्मान् (कान्तिमान्) और जातरूपद (स्वर्ण का शोधन करने वाला) है ॥ ४८ ॥

यह जातवेदा (सब पदार्थों को जानने वाला), वेदों में स्थित, आश्रय का भक्षण करने वाला, महाप्रभु, दानवों का शत्रु, जलते केशों वाला, मदन (प्रसन्न करने वाला) और दीनवत्सल है ॥ ४९ ॥

स्कन्द ने कहा —

अग्नि के इन नामों का जो मनुष्य प्रयत्न से पाठ करता है, वह सब सिद्धियों को प्राप्त करता है और सौ यज्ञों का फल पाता है ॥ ५० ॥

हे विप्र ! मन्द अग्नि वाला जो मनुष्य नियम पालन करके, पवित्र होकर, उत्तम भक्ति-भाव से, प्रतिपदा तिथि में सदा दिन में तीन बार इस नामरूपी अमृत का पान करता है ·· ॥ ५१ ॥

उसकी मन्दाग्नि व्याधि नष्ट हो जाती है और सब रोगों का विनाश होता है । वह पवित्रात्मा लोकों में धन्य होता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ५२ ॥

स्तुति किया हुआ वह शिव के नेत्र का अग्नि उसी क्षण शान्तात्मा हो गया । तदनन्तर महेश आदि देवताओं ने इस तीर्थ का आश्रय लिया ॥ ५३ ॥

हे मुने ! इसलिये इस तीर्थ का नाम अग्नितीर्थ हुआ । यहाँ स्नान करके मनुष्य शुभ लोकों को और परम पद को प्राप्त करता है ॥ ५४ ॥

हे विप्र ! शिव से अग्नि को प्राप्त करके और उस तीर्थ का इस प्रकार अग्नितीर्थ नाम रखकर इन्द्रसहित वे सब देवता अपने स्थानों को चले गये ॥ ५५ ॥

इति ते कथिता वह्नितीर्थोत्पत्तिः शुभंकरी।
यां श्रुत्वाऽपि नरो याति पूतात्मा स्वर्गलोककम् ॥ ५६ ॥

आषाढ्यां चैव द्वादश्यां कार्तिक्यां च विशेषतः।
तथा मार्गशिरे मासि द्वादश्यां दर्शकेऽपि वा ॥ ५७ ॥

यः करोत्यग्निपूजां वै स्नानं दानं जपं तथा।
स याति परमाँल्लोकान्पुनरावृत्तिदुर्लभान् ॥ ५८ ॥

चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन तज्जायते शुभम्।
उष्णं भवति हेमन्ते ह्यष्टधारं महामते ॥ ५९ ॥

गंगा भवति तत्रोष्णा ग्रीष्मे शीताऽतिमात्रतः।
यस्तत्र मुञ्चते प्राणान्दिव्याँल्लोकान्स गच्छति ॥ ६० ॥

कोटिवर्षं सहस्राणि विमानवरमास्थितः।
अप्सरोगणसंयुक्तो भोगभाग्भवति ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

भुक्त्वा भोगं पुनर्मर्त्यो राजा भवति धार्मिकः।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शत्रुपक्षविवर्जितः ॥ ६२ ॥

संशास्ति पृथिवीमेतां ससागरवनावृताम्।
अन्ते तद्वैष्णवं धाम संप्राप्नोति न संशयः ॥ ६३ ॥

एतदेव परं क्षेत्रं तीर्थं पुण्यत स्मृतम्।
तरन्ति मानुषा यस्माद् घोरं संसारसागरमं ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कुब्जाम्रकेऽग्नितीर्थकथनं नाम
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष शुभ करने वाली वह्नितीर्थ की उत्पत्ति बता दी है। इसको सुनकर मनुष्य पवित्र आत्मा वाला होकर स्वर्ग को जाता है ।। ५६ ।।

विशेष रूप से आषाढ़ और कार्तिक मास की द्वादशी तिथि में, मार्गशीर्ष मास मास की द्वादशी निथि में और अमावस्या (दर्शक) तिथि में··· ।। ५७ ।।

जो मनुष्य अग्नि की पूजा स्नान, दान और जप करता है, वह परम लोकों में जाता है, जहाँ से पुनरावृत्ति दुर्लभ है ।। ५८ ।।

मैं उस स्थान का चिह्न बताऊँगा, जिससे कि वह शुभ अग्नि उत्पन्न होता है। हे महामते नारद ! वहाँ हेमन्त ऋतु में जल आठ धाराओं में आता है और उष्ण होता है ।। ५९ ।।

वहाँ हेमन्त में गंगा अत्युष्ण होती है और ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक शीतल होती है। जो वहाँ प्राणों का परित्याग करता है, वह दिव्य लोकों में जाता है ।।६०।।

उत्तम विमान में स्थित वह अप्सराओं से संयुक्त होकर सहस्र करोड़ वर्षों तक निश्चित रूप से भोगों का भोग करता है ।। ६१ ।।

इन भोगों का भोग करके पुनः मनुष्य बन कर धार्मिक राजा होता है। वह पुत्र-पौत्रों से घिर जाता है तथा शत्रुओं से रहित रहता है ।। ६२ ।।

वह सागर सहित वनों से ढकी हुई इस पृथिवी का शासन करता है। अन्त में वह विष्णु के धाम को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है ।। ६३ ।।

यही क्षेत्र परम और पुण्यतम माना गया है। इस क्षेत्र से ही मनुष्य घोर संसाररूपी सागर को पार करसे हैं ।। ६४ ।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में कुब्जाम्रक क्षेत्र में अग्नितीर्थ कथन नाम का १२०वां अध्याय पूरा हुआ ।।





